॥ राम ॥

श्री गणेशाय नमः

श्री सीतारामाभ्यां नमः

श्री हनुमते नमः श्री गुरुवे नमः

भूमिका

संत आतिथ्यालय बलरामपुर में कई वर्षों से मंगलवार को सायं श्री रामचरितमानस जी की कथा होती है, जिसके मुख्य वक्ता इस नगर के व्यास पं० शिव नारायण जी पाण्डेय 'साहित्य रत्न' हैं। उनसे पूर्व मैं भी कथा कहता हूँ, वह मानस जी के किसी विशेष जानकारी के कारण नहीं प्रत्युत "अघ कि रहहिं हरि चरित बखाने" के उद्देश्य से।

मानस जी की कथा कहते हुये उसके जिस चौपाई अर्धाली के भावुद्रेक से पद रचना का स्फुरण हुआ वह है : "प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुनचूड़ बर बोलन लागे॥" इस अर्धाली के भाव मुझे प्रकट होने की कारण हैं करुणानिधान श्री राम की अतिशय प्रिय जनक सुता जी, जिनकी प्रार्थना मैं निर्मल मति प्राप्ति हेतु कथा कहने के आरम्भ ही में कर लिया करता हूँ। इस प्रकार इस पदावली की रचना की प्रेरक श्री सीता जी ही हैं। विद्या स्वरूपा श्री सीता जी की प्रेरणा से प्रकटी कविता इतनी तुच्छ क्यों है इसका कारण है अपने को उन्हें समर्पण करने की अपनी न्यूनता। फिर भी मुझ उर्दू भाषा के विद्यार्थी द्वारा ऐसे भी पदों की रचना में जगत जननी जानकी जी की अनुकम्पा झलकती है।

अब मैं उस बात की चर्चा करता हूँ कि मानस जी की अर्धाली : "प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुनचूड़ बर बोलन लागे॥" से किस प्रकार के भाव उत्पन्न हुये जिनसे पद रचना का स्फुरण हुआ। बालकाण्ड ही में जनकपुर के प्रसंग में आ चुका है : "उठे लखन निसि विगत सुनि अरुनसिखा धुनि कान।" उपर्युक्त जनकपुर प्रसंग और उसके पूर्व उल्लिखित अवधपुर प्रसंग के वर्णन में निम्नलिखित अन्तर प्रत्यक्ष हैं।

(१) जनकपुर के प्रसंग में केवल मुर्गों का उल्लेख और अवधपुर के प्रसंग में श्रेष्ठ (बर) मुर्गों का है।

(२) जनकपुर में मुर्गों ने अपना स्वाभाविक ध्वनि करना प्रारम्भ

किया, किन्तु अवधपुर में सुन्दर (बर शब्द दीप देहली न्याय से दोनों तरफ़ लगता है) बोलने लगे ।

(३) जनकपुर में मुर्गे अपना शब्द करने लगे जिसे सुनकर लक्ष्मण जी रात्रि समाप्त समझकर उठ पड़े, किन्तु अवधपुर में भगवान श्री राम के प्रातःकाल जग जाने के पश्चात् तत्काल मुर्गों ने बोलना आरम्भ किया ।

दोनों स्थलों के वर्णन में उपर्युक्त विशेष अन्तर उपस्थित करने से गोस्वामी जी द्वारा उस अन्तर के कारण के खोज की प्रेरणा मिलती है ।

विवाह से अयोध्या जी लौटने की प्रथम रात्रि को सब कार्य तथा भोजनादि से निवृत्त होने के पश्चात् सर्व प्रथम महाराज दशरथ जी विश्रामगृह-गये, उसके उपरान्त भगवान श्री राम पलँग पर पौढ़ाये गये, तदनन्तर तीनों भाइयों ने अपने अपने सेजों पर शयन किया और सबके पश्चात् सासुयें बधुओं को लेकर सोईं ।

जागने में गोसाईं जी केवल श्री राम जी के जागने का वर्णन करते हैं और वह सब भ्राताओं सहित माता-पिता की वन्दना करके असीस प्राप्त कर प्रसन्न होते हैं । बधुओं को उठने, सासुओं को प्रणाम करने तथा और क्रिया करने का उल्लेख नहीं करते, सम्भवतः इस अभिप्राय से कि पाठकगण बधुओं के उतनी ही सीमित क्रिया को उनका पूर्ण क्रिया कलाप समझ कर उनके अन्तरंग लीला के रसास्वादन से वंचित न रह जायँ । जिस क्रम से लोग शयन करने गये ठीक उसके विपरीत क्रम से उनका जागना अथवा उठना उचित प्रतीत होता है, अर्थात् सर्व प्रथम बधुयें उठीं उनके पश्चात् सासुओं, श्री राम भ्राताओं, भगवान श्री राम और महाराज दशरथ जी का क्रमशः उठना हुआ ।

"प्रात पुनीत काल प्रभु जागे । अरुनचूड़ बर बोलन लागे ।।" अर्धाली से निम्नलिखित विचार उत्पन्न होते हैं कि :—

(१) श्री सीता जी तथा उनके साथ उनकी तीन बहिनों के आने के पूर्व कभी अयोध्या जी में मुर्गों के बोलने का उल्लेख मानस जी में नहीं आता है ।

(२) यह मुर्गे (राज महल के) ऐसे स्थान पर बैठ कर बोलते हैं कि, सरकारों की निद्रा में बाधा उपस्थित करने की सम्भावना होते हुये भी, पहरेदार उन मुर्गों को बोलने से न रोक सकते हैं न उनको भगा सकते हैं ।

(३) इन मुर्गों का बोलना केवल भगवान श्री राम के जग जाने से संबन्धित है।

(४) यह मुर्गे श्रेष्ठ हैं, उनके बोलने के स्वर मधुर हैं और उनके बोलने के अर्थ हैं जो आकर्षक हैं।

(५) यह मुर्गे ऐसे श्रेष्ठ हैं जो भगवान श्री राम की निद्रा भंग नहीं करना चाहते और उनको भली भाँति जागृत निश्चित करके तब बोलना आरम्भ करते हैं। श्री राम जी की मनावस्था जानने की सामर्थ्य ब्रह्मा विष्णु महेश में भी नहीं, केवल श्री सीता जी में है, यथा :—

"जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥
तेउ न जानहिं मरम तुम्हारा। और तुम्हहि को जाननिहारा॥
× × ×
पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुदरी मन मुदित उतारी॥"

उपरोक्त विचारों से सिद्ध होता है कि श्री सीता जी ही मांडवी जी, उर्मिला जी और श्रुतिकीर्ति जी बहिनों सहित उठ कर, सासुओं को प्रणाम करके तथा मुर्गे बन कर भगवान श्री राम के जागने की प्रतीक्षा करने लगीं और उनके जग जाने के तत्काल ही (शय्या छोड़ने से पूर्व ही) श्रेष्ठ भाव से उनकी वन्दना करने लगीं।

उद्भव स्थिति संहार करने वाली भगवान श्री राम की आह्लादिनी शक्ति का अपने प्रियतम को रिझाने के लिये क्षुद्र कुक्कुट बनने की अन्तरंग लीला के भाव उद्रेक ने ही मेरे हृदय में पद रचना का स्फुरण किया।

प्रियतम को रिझाने के लिए प्रियतम के स्वभाव को जानने वाली श्री राम वल्लभा ने जिस भाव वाले पद का गान किया होगा उसका अनुमान विनय पत्रिका के "सुनि सीतापति सील सुभाँउ" वाले पद के निम्नांकित अंश से किया गया :—

"निज करुना करतूति भगत पर, चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत, सुनत कहत फिरि गाउ॥"

अर्थात् भगवान के भक्तों की प्रशंसा युक्त वन्दना की गई। इस श्री रामचरितमानस पदावली के अयोध्या काण्ड के श्री राम बन गवन प्रसंग के भाव प्रकरण के प्रथम पद का आधार यही भाव है।

पूज्यपाद गोस्वामी जी ने स्पष्ट कहा है कि श्री रामचरितमानस सर में सफल अवगाहन हेतु सत्संग आवश्यक है, यथा :—

"जो नहाइ चह यहिं सर भाई। सो सतसंग करउ मन लाई ।।
बिनु सतसंग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गए बिनु राम पद, होइ न दृढ़ अनुराग ।।"

और वह फल सर्वोत्कृष्ट श्री राम भक्ति अथवा निर्वाण हो इस हेतु श्री रामचरितमानस की कथा का श्रवन व पठन भाव सहित होना अनिवार्य है, यथा :—

"राम चरन रति जो चहै, अथवा पद निर्वान।
भाव सहित सो यहि कथा, करौ स्रवन पुट पान ।।"

तात्पर्य कि श्री रामचरितमानस का पठन, कथन व श्रवन जीव में भली भाँति फलित होने हेतु उनके साथ भाव और सत्संग का होना अनिवार्य है।

स्वामिनी श्री सीता जी के परम अनुकम्पा द्वारा प्राप्त "प्रात पुनीत कालि प्रभु जागे। अरुनचूड़ बर बोलन लागे ।।" वाले अर्धाली का भाव ही इस "श्री रामचरितमानस पदावली" पुस्तक के प्रत्येक काण्ड के "भाव प्रकरण" के भाव का स्रोत बना और उन्हीं की कृपा प्रसूत अन्तरंग अनुभूति ने उपर्युक्त पुस्तक के "सत्संग प्रकरण" का जन्म दिया। प्रत्येक काण्ड की पदावली उपर्युक्त दो प्रकरणों में विभक्त है। लीला क्रम-बद्ध रखने के कारण प्रत्येक काण्ड में भाव प्रकरण प्रथम दिया गया है और सत्संग प्रकरण उसके पश्चात्। अयोध्या काण्ड "श्री राम बन गवन प्रसंग" और "श्री भरत चरित प्रसंग" में विभाजन कर दिया गया है। भाव प्रकरण के पदों में यथा शक्ति भाव चरित क्रम से उपस्थित किये गये हैं, किन्तु मानस जी के जिन प्रसंगों में किसी विशेष भाव की अनुभूति नहीं हुई उनका पदावली में वर्णन नहीं किया गया। प्रत्येक काण्ड के सत्संग प्रकरण में जहाँ-तहाँ उस काण्ड के प्रसंगों से संबन्धित पद लिखे गये हैं। विशेष रूप से किसी काण्ड के भाव प्रकरण के पदों की रचना के अवधि में ही सत्संग विषयक जिन पदों की रचना हुई वही उस काण्ड के सत्संग प्रकरण में लिखे गये। इस प्रकार सत्संग प्रकरणों के पद अधिकांश चरित क्रम बद्ध नहीं हैं।

"श्री रामचरितमानस पदावली" का लिखना दिनांक १८-१०-७८ को "प्रात पुनीत काल प्रभु जागे..." वाली मानस जी की बालकाण्ड

को अर्धाली से आरम्भ हुआ और श्री जानकी नवमी दिनांक ९-५-८४ को उसी अर्धाली तक पहुँच कर समाप्त हुआ। "पदावली" का क्रम आधारित "मानस" जी के अनुसार रहे इस हेतु पुस्तक रूप में पदावली का आरम्भ बाल काण्ड से किया गया और समाप्ति उत्तर काण्ड के अन्त में की गई।

श्री सीता जी की कृपा सम्भूत "श्री रामचरितमानस पदावली" पाठकों, भक्तों तथा साधकों को आनन्द, रस और दिशा प्रदान करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

राम चरन रति जो चहै, अथवा पद निर्वान।
राम चरित सँग सो करै, तेहि पदावली गान॥

कथा से सम्बन्धित थोड़े पद भी मुझसे सुन कर जिन श्रोताओं ने तथा पं० शिव नारायण पाण्डेय 'व्यास' ने मुझे पद रचना प्रचलित रखने तथा पदों को संकलन करके पुस्तक का रूप देने को प्रोत्साहित किया मैं उन सब का कृतज्ञ हूँ।

समर्पण

जिन्होंने कुक्कुट रूप से प्रेमास्पद सार श्री राम की वन्दना करके मुझे पद रचना का सामर्थ्य और प्रोत्साहन दिया यह श्री रामचरित-मानस पदावली तीन बहिनों सहित उन्हीं विश्ववन्दिनी श्री सीता जी के पाद पद्मों में समर्पित है।

उमानाथ दुबे

॥ राम ॥

अनुक्रमणिका

□ □

॥ राम ॥

श्री रामचरितमानस पदावली

बाल काण्ड

(भाव प्रकरण)

॥ राम ॥

श्री सीताराम जी

हनुमान जी

[१]

बन्दउँ बाल रूप रघुराई ।
मंगल भवन अमंगल हर गुन, लेश गणेश लहाई ॥१॥
श्रुति श्वासा शारद कठपुतली, राम सूत्रधर नाँई ।
शिव विश्वास भवानी श्रद्धा, सो हृदयेश लखाई ॥२॥
कविवर कपिवर शुद्ध बोध धर, नित जेहि चरित रमाई ।
जेहि सुख सिन्धु सकृत सीकर ते, विधि हरि हर प्रभुताई ॥३॥
ब्रह्म सिय इन्दु अनुग्रह उर जेहि, किरन लखिय मुसकाई ।
शिव उपास्य लोमस भुशुण्डि सोइ, सतगुरु तत्व सुहाई ॥४॥
जासु शक्ति सिय उद्भव थिति लय, कारण मुक्ति कहाई ।
जेहि माया वश विधि हरि हर, कारण अशेष शिर नाई ॥५॥

[२]

बन्दउँ गोस्वामी तुलसिदास ।
पद पंकज बन्देउ सुर अनेक, मंगल करने देने विवेक ।
तिन्ह भक्ति न माँगेउ राखि टेक, मन मधुप माँग प्रेमातिरेक ॥
पद पद्म राम सिय नित निवास ॥१॥
बन्देउ गुरु द्विज संतन मनाइ । नहिं भेद असंतन तनिक लाइ ।
जिव लख चौरासी जे गनाइ । तिन पद सरोज सुमिरेउ सुभाइ ॥
सब सियाराम मय आपु दास ॥२॥
जे राम कथा के रसिक राज, वर्णन किय करिहहिं करत आज ।
शिव व्यास कीर मुनिवर समाज, बन्दे पद नीरज जानि काज ॥
जेहि रचित कथा कलि कलुष नास ॥३॥
मन राम भक्ति जल किये मीन, सनकादि रिषय नारद प्रवीन ।
हनुमान विभीषन प्रेम पीन, पद कंज वन्दना सबहिं कीन ॥
सिय राम चरित हित मति विकास ॥४॥

सम्बन्धित रामहिं भाग्यवान, कौशल्या दशरथ नृप सुजान।
नृप जनक सुनयना गुरु महान, बन्देउ सरयू अवधहुँ समान॥
कैंकर्य राम माँगेउ हुलास॥५॥

प्रिय भरत शत्रुहन लखन लाल, सिय पद बनरुह बन्दत निहाल।
विनसेउ माया भ्रम जगत जाल, पद कमल राम जब धरेउ भाल॥
बन्दत तुलसी पद सब सुपास॥६॥

[३]

श्रद्धा अरु विश्वास सहायक।
राम भक्ति के तथा दरस हित, सिद्धन हिय रघुनायक॥१॥
एक स्वरूप उमा एक शिव मिलि, जन्मत प्रेम विनायक।
सिद्ध करत जो दरस राम सिय, परमानन्द कहायक॥२॥
सम्बल श्रद्धा संत संग विश्वास कथा पहुँचायक।
राम चरन प्रियता दोउ फल जो, राम चरित फल दायक॥३॥
बिनु विश्वास न भक्ति जो रामहिं, द्रवित करन हित लायक।
राम द्रवित होइ कृपा करन ही, जिव विश्राम लहायक॥४॥
कृपा उमा शिव राम चरित के, भाव जगावहिं गायक।
सीता सह हिय बस रघुनायक, करन धरे धनु सायक॥५॥

[४]

जंगम संत समाज प्रयागू।
गंग भक्ति सरस्वती ज्ञान, यमुना श्रुति कर्म विभागू॥१॥
हरि हर चरित प्रत्यक्ष त्रिवेनी, बनत ज्ञान छिपि लागू।
सबहि सुलभ सब देश सबहिं दिन, पुण्य श्रेष्ठ जब जागू॥२॥
राम चरन अभिराम त्रिवेनी, देइ सुगति अनुरागू।
पीठ यमुन नख गंग सुतलु, सरस्वति अवतारन दागू[1]॥३॥
गौतम तिय तारन रज पावन, जेहि पद कमल परागू।
निज चित राम चरन बसाव जो, सोई जग बड़ भागू॥४॥
राम चरन सम गुरु पददानी, हरि रति जगत विरागू।
फल प्रयाग तन तजत मिलत इन्ह, सद्य विना तन त्यागू॥५॥

---

१. अवतारन दागू = तलुओं से उत्पन्न २४ अवतारों के चिह्न।

[५]

राम नाम गुन गनि किमि जाई ।
जब अन्तिम गुन राम नाम जप, जापक राम बनाई ॥१॥
कहइ सो जेहि नहिं नित्य अवस्था, आवइ मिलि लौटाई ।
राम अनन्त अनन्त नाम गुन, कहत अन्त कब पाई ॥२॥
शक्तिमान जितने महान नामाक्षर रूप लहाई ।
का त्रिदेव का अग्नि भानु शशि, अन्य देव समुदाई ॥३॥
प्रान प्रान के राम रमन हित, जपत श्वास नित भाई ।
अनुभव करिअ जात बाहर "रा" कह "म" समय अवाई ॥४॥
जपि गणेश अग्र पूज्य भे, वश हनुमत रघुराई ।
ध्रुव अविचल प्रहलाद नाम बल, नरकेहरि प्रकटाई ॥५॥
मानस[1] राम नाम बिथ बेदन, ओऽम समान बताई ।
कछु विशेषता राम नाम लखि, शिव ताही अपनाई ॥६॥
त्रास नास कर सुख दे जग नर, अन्त परम गति दाई ।
वाचक राम नाम जप जापक, राम अवश्य मिलाई ॥७॥

[६]

बन्दउँ राम नाम रघुराई ।
हेतु अग्नि रवि शशि त्रिदेव मय, सार वेद तय पाई ॥१॥
शिव शिवत्व जेहि मंत्र जाप, जीवत्व ताप जिव जाई ।
प्रथम पूजियत गनपति जो गति, ब्रह्म आदि कवि दाई ॥२॥
सहस-नाम गुनि दाम नाम एक, राम शिवा शिव भाई ।
तत्व नाम अमरत्व राम चुनि, कालकूट शिव खाई ॥३॥
भक्ति सार महिमा अपार, दोउ लोक विशोक बनाई ।
चहुँ जुग भव रुग मेटन सब लुग, अनुग अनन्द बसाई ॥४॥
नाम रूप महिमा अनूप, बढ़ि नाम स्वरूप लखाई ।
निराकार अवतार नाम बढ़ि, भव उबार प्रभुताई ॥५॥
राम नाम तजि अनि प्रकार भजि, परमारथ सजि आई ।
करन आस बरसत प्रयास गहि, बूँद-अकास चढ़ाई ॥६॥
राम नाम कलि जाम कलपतरु, आप्तकाम फल लाई ।
देइ धाम संसृति विराम, विश्राम परम श्रुति गाई ॥७॥

---

[1] मानस = श्री रामचरितमानस ।

[७]

बीज अवसि गुन तरु फल आई ।
राम सुनाम बीज उपजेउ तरु, राम चरित सरसाई ॥१॥
मंगल करन अमंगल हारी, दोउ[1] जिव भव उबराई ।
जोग विराग ज्ञान उपजै एक, सतगुरु तिन्हन कहाई ॥२॥
दोउ संजीवनि मूरि अमिय मय, दोऊ कामद गाई ।
नाशन नरक दलन माया दल, दोउ निज जनन सहाई ॥३॥
जीवन मुक्ति दोउ दायक, लायक बिधि रेख मिटाई ।
शिव प्रिय दोउ भक्ति आभूषन, जो अति राम सुहाई ॥४॥
मुक्ति धाम धन दानि दोउ, संसृति रुज सफल दवाई ।
दोउ श्रेष्ठ साधना भरत सिय, प्रिय अनिवार्य मिलाई ॥५॥

[८]

जौ चित चह सिय राम बसावन ।
तौ नित राम कथा मन्दाकिनि, सुचित विचारु बहावन ॥१॥
बनि जइहै तू चित्रकूट, बन बनिय सनेह सुहावन ।
होइ जइहै बिहार स्थली, सीता राम रमावन ॥२॥
सद्गुन सुन्दर खग मृग हलि बन, लगिहैं सुभग नचावन ।
मृगगन विहरहिं रागहिं खगगन लागहिं सिय पिय गुनगन गावन ॥३॥
काम क्रोध मद करि केहरि नहिं सकहिं सचान सतावन ।
राम लखन दोउ दक्ष अहेरी, अतिशय तिनहिं नसावन ॥४॥
नित निवसत सिय राम लखन बन, चित्रकूट मन भावन ।
चित रखि राम कथा मन्दाकिनि, चित्रकूट बन पावन ॥५॥

[९]

राम कथा कलि सात्वकि गाई ।
सकल साधना श्रुति पुरान त्रिन, चुनि चुनि चरति अघाई ॥१॥
जेहि पय सकल धर्ममय पीवत, रुज अघ अगुन नसाई ।
बढ़ै धर्म बल योग ज्ञान वैराग्य सहज सरसाई ॥२॥
घृत विज्ञान सेव जब मुख पर, रहै भक्ति छवि छाई ।
शक्ति सिया अमरत्व हिया तब, राम जीव दरसाई ॥३॥
पकड़े पूँछ उतर भव सरि लइ, निज सुख मुख सुहराई ।
पानी प्रेम पियाये पुरुषा, आवागमन सिराई ॥४॥

---

१. दोउ = राम नाम और रामचरित ।

कलियुग नृपति नसावति सेना, सतगुन भट उपजाई।
जीव दिलीप देत सुख रघुपति, रघु हिय तिय प्रकटाई ॥५॥

[१०]

राम चरित मानस न राम अनि।
राम जन्म त्रेता ग्रह आये, सम्बत सोलह सौ एकतिस बनि ॥१॥
सोइ कोशलपुर जन्म भूमि, तिथि नवमी शुक्ल, मास चैत्र ध्वनि।
राम ब्रह्म अवतरेउ कथा वपु, कलि निज रूपहिं उपयोगी गनि ॥२॥
पाँय बाल कटि बनेउ अयोध्या, उदर अरण्य हृदय किष्किन्धनि।
ग्रीवा सुन्दर मुख लंका, मस्तक उत्तर अवयव हरि जन्मनि ॥३॥
शिव मानस निवास राम नित, बदलेउ जिव हित वपु रघुकुलमनि।
जिव हमेश तारन विशेष कलि, निरुवारन कुग्रंथि जड़ चेतनि ॥४॥
शिव से लोमश तिन भुशुण्डि तेहि, याग्यवल्कि सो भरद्वाज भनिं।
नरहरिदास लहेउ परम्परा, तिन गुरु तुलसिदास रहि वासनि ॥५॥
राम चरित आदरइ राम सम, न्यून न गनि पुस्तक के धोखनि।
तारक ब्रह्म राम तेहि तारइ, भव सागर निज कृपा विलोकनि ॥६॥

[११]

बरनउँ राम चरित मानस सर।
स्थित हिय अगाध गहिराई, जासु भूमि थल मति अति सुन्दर ॥१॥
वेद पुरान समुद्र संत घन, बरस राम जस विमल वारि वर।
लीला सगुन विशद वर्णन सोइ, माया मल निःशेष सपदि हर ॥२॥
प्रेम भक्ति जल शीतलता, माधुर्य पार नहिं लहिय बरनि कर।
राम भक्त जन जीवन सोइ भा, भरि थिराइ पाइ चिर अवसर ॥३॥
राम चरित संवाद चारि सोहत सर चारिउ घाट मनोहर।
सप्त काण्ड सोपान सात, प्रति घाट लखिय विराट सर जौहर ॥४॥

[१२]

राम चरित सर लखु नगिचाई।
दोहा छन्द सोरठा सरसिअ, पुरइनि घन चौपाई ॥१॥
भाषा अर्थ भाव अनुपम, कंजन पराग महकाई।
सुकृती अलि वैराग्य ज्ञान सुविवेक हंस रह आई ॥२॥
ध्वनि गुन कवित मीन, जलचर वर्णन सद्गुन समुदाई।
साधु सुजान नाम गान गुन, जल विहंग की नाँई ॥३॥

संत सभा अवँराई, श्रद्धा रितु बसंत नित छाई।
भक्ति निरूपन दया छमा दम, लता लसेउ अवँराई ॥४॥
शम यम नियम फूल ज्ञान फल, रस हरि भक्ति भराई।
सम्बन्धित चरित्र अन्य, शुक पिक विहंग रह धाई ॥५॥
संत समाज ललित पुलकावलि, लघु समान अधिकाई।
सोइ बाटिका बाग बन पंछिन, कर बिहार सुखदाई ॥६॥
सुख पुलकनि बिरवनि सनेह जल, नयननि स्रवनि सिंचाई।
सुनत कथा बरसत दृग जल, माली उपाधि ते पाई ॥७॥

[१३]

बन्दउँ राम चरित शिर नाई।
लखिअ जासु महिमा प्रताप गुन, राम ब्रह्म की नाँई ॥१॥
बरनेउ प्रथम गोसाईं गुरु पद, रज भव रोग नसाई।
अन्त पुष्टि किय भव रोगन गुरु, वच विश्वास दवाई ॥२॥
निश्चय किय बिधि शिव सम जिव, बिनु गुरु भव उतरि न पाई।
कहेउ अरम्भ मध्य अन्त, मानस भव उतरन नाई ॥३॥
यहि विरोध भाव दोनों कर, समाधान होइ जाई।
याद करिअ जब मानस तुलसी, सतगुरु रूप बताई ॥४॥
सतगुरु ज्ञान विराग योग, भव रोगन वैद जनाई।
मानस सतगुरु सीख संजीवन, राम भक्ति सुलभाई ॥५॥

[१४]

मानस गुन मानस लखि पाई।
तुलसी लहेउ विमल मानस कवि, मानस चरित नहाई ॥१॥
तब मानस कवि मानस भरि, आनन्द उमँग उमड़ाई।
राम विमल यश जल भरिता सोइ, सरिता सरजु कहाई ॥२॥
मानस नन्दिनि सुर मुनि बन्दिनि, सरजू बेग बढ़ाई।
कलि अघ अवगुन तृन समूह तरु, कूल समूल नसाई ॥३॥
कूल ग्राम पुर नगर त्रिश्रोता, अवध सन्त समुदाई।
सरजू ज्ञान राम यश सीता, गंग भक्ति मिलि आई ॥४॥
सोन विरति यश लखन संग मिलि, सिन्धु त्रिताप नसाई।
संयुत ज्ञान विराग भक्ति जिव, राम स्वरूप समाई ॥५॥

[१५]

रितु प्रति कीरति सरित सुहावनि ।
आवत अवसर कोउ विशेष, प्रकरन प्रवेश मन भावनि ॥१॥
हिम हिमशैल सुता विवाह शिव, राम जन्म शिशिरावनि ।
रितू बसन्त विवाह राम सिय, ग्रीषम बनहिं सिधावनि ॥२॥
वर्षा युद्ध राम रावन, प्रभु राज्य शरद सुख लावनि ।
सती शिरोमनि सीता यश जल, भूतल विमल बनावनि ॥३॥
शीतलता गुन भरत मधुरता, भ्रातन प्रीति हँसावनि ।
आरति विनय दीनता तुलसी, लघुता गुन कहलावनि ॥४॥
अद्भुत अम्बु सुनत गुन कर जिव, आस पियास बुझावनि ।
पोषक राम प्रेम सोषक श्रम, भव भ्रम भाव भगावनि ॥५॥
काम कोह मद मोह नसावनि, विरति बिवेक बढ़ावनि ।
सादर मज्जन चरित सरित हिय, पाप त्रिताप मिटावनि ॥६॥
जिन यहि वारि न मानस धोये, मिटिहि न मृग जल धावनि ।
सहित सनेह पान जल मंगल, सुख हरि भक्ति लहावनि ॥७॥

[१६]

मानस परम्परा अस पाई ।
रचि महेश निज मानस राखेउ, मानस नाम लहाई ॥१॥
मानस रचि शिव बहुरि कृपा करि, उमहिं सुकथा सुनाई ।
"बहुरि" अर्थ पश्चात तेही, "करि कृपा" न पात्र जनाई ॥२॥
सोइ शिव काग भुशुण्डिहिं दीन्हा, "सोइ" यह बोध कराई ।
वही कथा जो उमहिं सुनाई, प्रथम कृपा उर लाई ॥३॥
शब्द भ्रमात्मक उमा प्रथम कहि, बाद शिवा सुलझाई ।
प्रथम प्रकट किय चरित गुप्त हिय, "भाषा" भाव बताई ॥४॥
अजा अनादि अर्ध अंग शिव, नारद उमा लखाई ।
संशय करिअ न जस विवाह शिव, उमा गनेश पुजाई ॥५॥
प्रथम शिवा कहि पुनि लोमश मुनि, शिव यह कथा सुनाई ।
लोमश कहेउ भुशुण्डि सुनायेउ, याग्यवल्क्य हर्षाई ॥६॥
याग्यवल्क्य कह भरद्वाज प्रति, परम्परा यह भाई ।
कथा न पात्र शिवा विमोह वश, सुनेउ न ध्यान लगाई ॥७॥
लेत परीक्षा परिचय पायेउ, सती रूप रघुराई ।
तेहि प्रकटेउ रुचि उमा जन्म कोउ, कथा सुनेउ सुधि आई ॥८॥

उमा सुनेउ भुशुण्डि पीछे, सत्ताइस कल्प बिताई ।
उमाँ सुनेउ दुइ बार कथा यह, संशय सकल मिटाई ॥६॥
याग्यवल्क्य कह उमा न सुनि, कह काग भुशुण्डि कहाई ।
कहत कथा दोउ उमा सुनेउ जो, कथा महेश मिलाई ॥१०॥

[१७]

भरद्वाज आश्रम अति पावन ।
होइ समागम तहाँ सिद्ध मुनि, जाहिं प्रयाग नहावन ॥१॥
प्रात नहाइ त्रिवेनी हरि यश, करहिं परसपर गावन ।
बरनहिं ब्रह्म तत्व गुन भक्ती, ज्ञान विराग लगावन ॥२॥
सब गे भरद्वाज टेकि पद, याग्यवल्क्य ठहरावन ।
सादर अति विनीत विनयेउ, श्री राम रहस्य बतावन ॥३॥
देत मुक्ति बल जासु नाम शिव, सादर नित्य जपावन ।
सोइ कि दशरथ सुत कि नाम एक, व्यक्ती दो विलगावन ॥४॥
याग्यवल्क्य कह तुम सब जानत, चाहत मोहिं कहावन ।
सम्बन्धित यहि प्रश्न उमा शिव, सुनु संवाद सुहावन ॥५॥

[१८]

समुझउ राम रूप यहि ठाँई ।
भरद्वाज का उमा गरुड़ का, एकइ प्रश्न उठाई ॥१॥
दाशरथी का राम सोई, शिव सदा जपत चित लाई ।
देते मुक्ति जासु नाम बल, शिव सचराचर साँई ॥२॥
कहेउ याग्यवल्क्य दोउ सोइ, वहि शिव भुशुण्डि समुझाई ।
जो दोउ सदा एक, तौ दशरथ, सुत सदैव एक भाई ॥३॥
कारन नारद श्राप विजय जय, हेतु जलन्धर आई ।
क्षीर शैन बैकुंठनाथ सो, भ्रम से विष्णु लखाई ॥४॥
मनु शतरूपा हेतु परात्पर, ब्रह्म भयेउ रघुराई ।
ऐसेइ होत प्रत्येक कल्प, सो यहाँ स्वल्प समुझाई ॥५॥

[१६]

सती चरित विरचित रघुराई ।
अजर अमर शिव लखत शिवा गति, मरनशील दुख पाई ॥१॥
राम चरित करि कृपा सुनायेउ शिव, सो शिवा न भाई ।
सती जन्म कुम्भजउ सुनायेउ, सोउ न सुनेउ मन लाई ॥२॥

जाने बिनु परतीति होइ नहिं, तेहि बिनु भक्ति दृढ़ाई।
तेहि निज महिमा प्रकट जनावन, विरचेउ राम उपाई ॥३॥
सीता रूप सती पहिचानेउ, चहुँ दिशि आपु लखाई।
सह सिय भ्रात एक रूप, बहु कर त्रिदेव सेवकाई ॥४॥
शिव प्रन देह तजन प्रायश्चित, कथा न सुनन कराई।
योग अग्नि त्यागेउ शरीर पुनि, उमा जन्म धरवाई ॥५॥
हृदय प्रेरि नारदहिं पठायेउ, शिव ब्याहन समुझाई।
विप्र रूप प्रेरणा स्वप्न करि, तप हित उमा पठाई ॥६॥
प्रकटि विवश किय शिव ब्याहन, गिरिजा रुचि कथा सुनाई।
लहे भक्ति कृतकृत्य नित्य शिव, संगी मृत्यु मिटाई ॥७॥

[२०]

शिक्षाप्रद पति प्रेम उमा हद।
जासु प्रभाव धारणा अविचल, महादेव किय अटल सुप्रन रद ॥१॥
मेटन प्रन भव परम असम्भव, सम्भव किहेउ सीख गुरु नारद।
अति अगाध प्रेम जासु शिव, निकट राम होइ प्रकट बिसद बद ॥२॥
प्रेम परीक्षा लेत उमा की, कीन्हेउ सप्त रिषिन आवन भद।
प्रेम गँभीर सुनायेउ शिव सुनि, उमा सु-प्रेम मग्न भे गद्गद् ॥३॥
उमा प्रेम निर्भर न रूप गुन, पति अकाम नहिं धाम मान मद।
रूप त्रिविक्रम उमा प्रेम जेहि, लखिय सकल कामना उपर कद ॥४॥
शान्त ब्रह्म सिन्धु से मिल जहँ, भ्रान्त बहत अशान्त जीव नद।
मिलत वारि पर भीति उठायेउ, भेद प्रेम मुक्ति बढ़ि शायद ॥५॥
ब्याहि अकाम अभोगी जोगी, उमा ऊँच किय प्रेम परम पद।
अञ्जलि प्रेम अनोखा सोखा, कुम्भज उमा सिन्धु मति शारद ॥६॥

[२१]

रघुपति भगति न शिव सम धारी।
लखि जेहि व्रत होइ कृतज्ञता नत, रघुपति पूज पुरारी ॥१॥
दोष सती न प्रतोष शम्भु उर, तजी सती सम नारी।
पितु अपमान शम्भु जेहि सहि नहिं, मख दहि प्रीति प्रचारी ॥२॥
भक्त बिरह बावला तदपि हिय, वपु साँवला सँभारी।
राम जपत नित सुनत चरित, बिचरत व्रत तनिक न टारी ॥३॥
योग ज्ञान विज्ञान शिरोमनि, गनि गुन भक्ति भिखारी।
राम जनम विवाह रन लख, अभिषेक निमेष निवारी ॥४॥

हनूमान रूप धरि सेवा, कीन्हेउ वश त्रिशिरारी।
माँगउँ भिक्षा भक्ति राम प्रति, राम भक्ति भण्डारी ॥५॥

[२२]

लखु मन काम प्रतापु बड़ाई।
लखते जे चर अचर ब्रह्ममय, नारीमय दिखलाई ॥१॥
धीरज धारि सकेउ नहिं कोऊ, मन कर मनसिज भाई।
जेहि पाई व्यक्तित्व चेतना, काम कामना लाई ॥२॥
लखत रहे जे जगत ब्रह्ममय, देखन अहं बचाई।
अथवा जिन महँ मन अहमिति बस, करि बस काम नचाई ॥३॥
ईश कोटि स्थिति समाधि शिव, निर्विकल्प विचलाई।
कामदेव काम सायक जब, अस शिव लक्ष्य बनाई ॥४॥
ऐसेउ स्थिति शिव बचाव कुछ, अहं पुनः लौटाई।
ताहू कामदेव भेदि सक, पहुँचि तहाँ तक पाई ॥५॥
अपने अहं बसाव राम जो, राम भरोस रहाई।
ताको सीम न काम चाँपि सक, नारद मुनि की नाँई ॥६॥
नारद काम नचायो जब तेहि, जीतन अहमिति आई।
जीतन काम जतन एकै, हनुमान कथा सिखलाई ॥७॥
अस निज अहं बिटाव राम, चेतना आपु भुलि जाई।
स्त्रिन रावन लखु न आपु, जलु लंक राम प्रभुताई ॥८॥

[२३]

सुख कि उमा शिव ब्याह बताई।
जेहि सुर सकल बराती रिधि सिधि, कर बरात सेवकाई ॥१॥
शिव कल्याण स्वरूप शक्ति निज, बिछुड़ी होत मिलाई।
फल तारक सँहार जग मंगल, षट्मुख गनप जनाई ॥२॥
परम रम्य कैलाश उमा शिव, भयेउ अकाम रमाई।
हृदय सिन्धु शिव मथेउ उमा, अमृत मानस प्रकटाई ॥३॥
लै तुलसी धन्वन्तरि प्रकटे, रख शिव कंठ लगाई।
प्रकटेउ जब कलि बिषम हलाहल, जग तुलसी लै आई ॥४॥
तेहि निज मानस मातु उमा शिव, पिता बताव गुसाँई।
राम चरित बल सुधा, हलाहल कलि बसुधा जेहि खाई ॥५॥

[२४]

राम रूप शिव उमा लखावै ।
एक सत्य सत्यता जासु ते, जीव जगत दरसावै ॥१॥
इन्द्रिय मन बुधि चित्त अहं, क्रमशः बढ़ि चेत जनावै ।
तिन्ह कर परम प्रकाशक जोई, सोई राम कहावै ॥२॥
झूठा जगत सर्प भासत सत, लखि रजु राम नसावै ।
राम सत्य सीप चमकत, माया भ्रम रजत दिखावै ॥३॥
राम सत्य रवि किरन झूठ जल, लखि जिव मृग भरमावै ।
जदपि झूठ दुख देत सत्य सम, जिमि सिर स्वप्न कटावै ॥४॥
जासु कृपा अस भ्रम मिटि जावै, अन्त न जेहि कोइ पावै ।
कर बिनु कर्म चलै बिनु पद, लख दृग बिनु श्रवन सुनावै ॥५॥
पुरुष प्रसिद्ध प्रकाशक जग जोइ, नेति नेति श्रुति गावै ।
जेहि जोगीश मुनीश ध्यान धर, गति कोइ जानि न जावै ॥६॥
व्यापक विश्व जीव हृदयेश्वर, अगुन अरूप रहावै ।
बनि साकार सगुन जल हिम जिम, सोइ होइ रघुबर आवै ॥७॥

[२५]

जानत राम आपु जग जाई ।
जैसे जागत स्वप्न दृश्य भ्रम, बिनु श्रम जाइ सिराई ॥१॥
राम सत्यता हीं लख माया झूँठो अहि रजु ठाँई ।
निश्चित होत राम रजु, जग अहि नहिं अस्तित्व लखाई ॥२॥
इन्द्रिय मन बुधि चित अहमिति, स्थिति जिव आपु जताई ।
सो चेतना प्रकाश राम, निर्भर इन चेतनताई ॥३॥
तन मन बुधि चित अहं समुच्चय, चेतन जीव कहाई ।
एक ते एक सचेत चेतना, सबन राम ते पाई ॥४॥
जग जिव दोउ अस्तित्व तबहिं लगि, राम न जानन आई ।
जानिअ राम जताये रामहिं, जानन राम बनाई ॥५॥

[२६]

जिव मूढ़ता चतुरता हरि बस ।
जीव करत अनुसार चेष्टा, अन्तर्यामी करत जबहिं जस ॥१॥
हरि सुमिरत नारद समाधि लग, दक्ष श्राप नहिं करि सक टसमस ।
निज बल भरि प्रयत्न काम किय, होइ प्रभावित नारद मुनि हँस ॥२॥

नारद मानेउ निज बल जीतेउ, कामं तेही अपराध गयेउ फँस ।
विश्वमोहनी विरचेउ हरि जेहि,निरखि काम मुनि व्यापेउ नसनस ।।३।।
अति अधीर तेहि पावन नारद, काम बिकलता धरि मूरति अस ।
जब हरि कृपा प्रबल माया टल, गावत चल हरि माया बल जस ।।४।।
यहि प्रसंग हरि कृपा सुनिर्भर, मति न मूढ़ता चातुरता ग्रस ।
राम कृपा जिव अति कृतज्ञ, सर्वज्ञ राम अपनाव अहं खस ।।५।।

[२७]

योग्य प्रशंसा मनु मति धीरा ।
बिना विषय वैराग्य भये मन, तजेउ भवन हठि बीरा ।।१।।
तीरथ वर नैमिष चलि पहुँचेउ, नदी गोमती तीरा ।
हेतु अखिल ब्रह्माण्ड नायकहिं, कर तप सहि सब पीरा ।।२।।
विधि हरि हर होइ प्रकट लुभायेउ,वैभव सुख मणि हीरा ।
ज्योति अखण्ड धारणा डिगे उ न, लोभ प्रचण्ड समीरा ।।३।।
गति अनन्य अवलोकि नृपति भइ, बानी गगन गँभीरा ।
माँगु माँगु बर भाव जो मन मोहि, दानिन जानि अमीरा ।।४।।
माँगेउ दर्शन भूप रूप जो, मन हर हर भव भीरा ।
प्रकटेउ नील जलज घन मणि तनु, सुन्दर कर धनु तीरा ।।५।।

[२८]

का बरनउँ तनु सुन्दरताई ।
छबि सुषमा शोभा शृँगारू जनु, त्रिभुवन रखि तनु आई ।।१।।
कोटि चन्द्र केन्द्र आनन घन, घिरेउ श्याम कच छाई ।
स्वर्ण किरीट चमक ऊपर घन, दिनकर दुखद दुराई ।।२।।
मन्द मन्द मुसकान मनोहर, चन्द्र किरन छिटकाई ।
मानहुँ बिछुड़े कोटि जनम जिव, बरबस लेत बुलाई ।।३।।
नयनन आकर्षन अपार जिव, जावत जगत भुलाई ।
बिनु जप जोग विराग कठिन तप, सहज स्वरूप लहाई ।।४।।
राम वाम दिशि सोहति सीता, माता जग जेहि जाई ।
रूप अनूप राम मिलि सीता, छवि समुद्र कहलाई ।।५।।
त्यागि त्रिलोकी जेहि अवलोकी, मनु मनु गयेउ लुभाई ।
जेहि स्वरूप सुख सिन्धु सकृत, सीकर सुख स्वर्ग समाई ।।६।।
जो अनन्यता फल स्वरूप तजि, विधि हरि हर प्रभुताई ।
बरनउँ सो किमि मोह मग्न मैं, साया स्वप्न न पाई ।।७।।

[२९]

धनि मनु शतरूपा बरदान ।
लखि ब्रह्माण्ड नायकहिं नख शिख, तृप्ति न होहिं सुजान ॥१॥
परम चतुर नृप रानी माँगेउ, सुत सुख करन प्रदान ।
जेहि महँ सहज सुलभ सुख आनंद, वर्धन विविध विधान ॥२॥
शतरूपा विशेष माँगेउ बर, भक्ती संयुत ज्ञान ।
सर्वेश्वर हृदयेश्वर अनश्वर, मंगल मोद निधानं ॥३॥
मनु पुनि माँगेउ सुत विषयक रति, सब ऐश्वर्य भुलान ।
जिमि मणि फणि जल मीन बिछुड़ते, सुत निज रहइ न प्रान ॥४॥
सहित विवेक रहित एक माँगेउँ, राम भक्ति विलग्रान ।
बिछुड़त राम मातु निज धिक् कह, पिता सनेह बखान ॥५॥

[३०]

मन मनु की गति भगति निहारु ।
पग पनही निज चाम करउँ कह, राम सो नेह विचारु ॥१॥
विषय विराग न भये त्याग सुख, राज भवन भण्डारु ।
देत भोग वैभव असीम सिधि, सीधे किय इनकारु ॥२॥
सर्वेश्वर लखि तृप्ति न मानेउ, माँगेउ सुत अवतारु ।
भोग वासना भरि करि भोगेउ, सुर पुर करत बिहारु ॥३॥
पुनि दशरथ होइ नृपति अवध रख, रानि करीब हजारु ।
तदपि त्यागि तनु राम विरह नृप, कीन्हेउ मरन सँभारु ॥४॥
राम रटत मरि मुक्ति न लह हित, सुत अभिषेक हिदारु ।
रामउ दीन्हे ज्ञान रहति मति, भक्ति पगी सुख सारु ॥५॥
दै निज भक्ती राम उरिन भे, हनूमान उपकारु ।
किये नेह दशरथ बिनु इच्छा, भे रिनिया सरकारु ॥६॥
दानी परम कहावत दीन्हेउ, मनु सुत मोद उदारु ।
दानी दशरथ प्रेम सुसमरथ, याँचत राम भिखारु ॥७॥

[३१]

भानु प्रताप अर्थ आख्यान ।
जहँ लगि पुण्य वेद कह मिलि नहिं, पूजन विप्र समान ॥१॥
मन क्रम बचन विप्र पद पूजा, पुण्य समान न आन ।
श्रीमुख राम भक्ति निज कारन, बासिन अवध बखान ॥२॥

पूजन विप्र देत संत सँग, जौ कर भक्ति प्रदान।
संसृति होत अन्त बल भक्ती, रस नव नित्य निधान ॥३॥
नृपति प्रताप भानु सिख वैरी, गुरु कपटी पतियान।
विप्र वृन्द अपने वश करि चह, सब विधि निज कल्यान ॥४॥
विप्रन होते भ्रष्ट बचायेउ, द्विजन देव भगवान।
कुल समेत नाश भे निश्चर, पायेउ दण्ड महान ॥५॥
पुण्यन-पूर्व विपुल वैभव लहि, विप्रन किय हैरान।
हरि कुल सँहित सँहारि मुक्त किय, पापिन परम प्रमान ॥६॥
द्रोह महीसुर मारेउ, तारेउ मोह महेश्वर लान[1]।
विप्र रोष शिव तोष निबाहेउ, एक सँग राम सुजान ॥७॥

[३२]

लखु मन भजन प्रताप बड़ाई।
नारद हर गन भजन सुसेवा, से स्पष्ट लखाई ॥१॥
कोटिन जग्य कठिन तप कीन्हे, इन्द्रासन कोउ पाई।
नारद भजन करत टुक डरपेउ, निज पद इन्द्र छिनाई ॥२॥
नृपति प्रताप भानु कीन्हे पुनि, जग्य विपुल श्रुति गाई।
तेहि फल पायेउ इन्द्रउ ते बढ़ि, रावन विभव सुहाई ॥३॥
सोइ रावन वैभव लह शिव गन, कुछ शिव की सेवकाई।
देत विभव निज विधि हरि हर, कइ बेर मनू लौटाई ॥४॥
पुण्य तपस्या यजन भजन फल, केवल अहं घटाई।
अहं घटै तापर न्योछावर, सुर त्रिदेव प्रभुताई ॥५॥
पोषन अहं गहं सुख वैभव, मनु तेहि तनिक न भाई।
जस जस अहं जात घटि तस जिव, राम सिया निअराई ॥६॥
जग सुख त्याग इन्द्र पद, विधि हरि हर सुख स्वर्ग तजाई।
पद त्रिदेव त्याग राम पद, सीता सोउ न चहाई ॥७॥
मुक्ति राम पद सीता रामहिं भिन्न अभिन्न रहाई।
दोउ परम पद परा भक्ति सिय, स्थिति सरस सवाई ॥८॥

[३३]

रावन तपेउ तपहिं बर पाई।
पहिले जीतेउ स्वर्ण लंक तहँ, जक्षन मारि भगाई ॥१॥

१. लान = लाने = वास्ते, लिये, हेतु।

पुष्पक जान जीति पुनि लायेउँ, करत कुबेर चढ़ाई।
सुनत चढ़ाई सुरगन भगि कर, गुहा सुमेर लुकाई ॥२॥
सुर किन्नर नर नाग जक्ष बर, नारि बरेउ बरिआई।
दिकपालन जिति लाइ लंक निज, सेवकाई करवाई ॥३॥
भये पुत्र पौत्र अगनित जग-जित एक एक प्रभुताई।
सुत इंद्रजित अतिकाय अकंपन, भीमकाय लघु भाई ॥४॥
जेहि पुर वेद पाठ विप्र गउ, तेहि तकि आगि लगाई।
पीड़ित किये नगर नारिन नर, कानन मुनिगन खाई ॥५॥
क्रमशः भूमि देव ब्रह्मा शिव, पहुँगे दुख मिटवाई।
बर अनुसार सँहार देव कोउ, रावन करि न सकाई ॥६॥
अति आतुर चातुर बिधि शिव, शरनागत सुझेउ उपाई।
जगत नियामक पालक ब्यापक, स्तुति सभय सुनाई ॥७॥

[३४]

करुणाधार अधार दीन को।
साको चलत विरद बर जाको,नाको कुशल सँवार छीन को ॥१॥
अरथ धर्म काम परमारथ, निःस्वारथ उदार पीन को।
आगर भव सागर उद्धारन, अति लागर लवार लीन को ॥२॥
जिन अभिमान समान आन नहिं, उपजेउ अहंकार कीन को।
भय आतुर सुर दुःख टारि, किय असुर मारि संसार हीन को ॥३॥
दशा विप्र सुर धेनु निकट कट, चढ़े विकट असि धार खीन को।
कृपा वारिधर सुखत वारि सर, बेगि बृष्टि डर टार मीन को ॥४॥

[३५]

दीन बन्धु लो दीन बचाई।
करुणा सागर सब विधि आगर, त्राहि त्राहि जिव साँई ॥१॥
जहँ लगि निज बल रहेउ थकेउ सब, हारेउ सकल सहाई।
एक सहारा नाथ तुम्हारा, हारा सभी उपाई ॥२॥
केवल व्यथित न हमहिं उपस्थित, सृष्टि विनष्टि लखाई।
नेम धर्म आचार लोप जग, अत्याचार बसाई ॥३॥
अन्य न समरथ रोकन अनरथ, सुर द्विज गो सिर आई।
दीनदयाल कृपाल दीन दुख, हरहु न कृपा भुलाई ॥४॥

सब व्यापक थापक सुधर्म श्रुति, जापक जन सुखदाई।
दीनानाथ अनाथ रक्ष, आये समक्ष सरनाई ॥५॥

[३६]

गाढ़े काढ़े काको बानि।
बाढ़े अनुकम्पा जाको जस, ठाढ़े बिपति बढ़ानि ॥१॥
जग तरसत जेहि किरपा बरसत, दीन दुखी पहिचानि।
अन्य न कारन दुःख निवारन, नाता दीनन छानि ॥२॥
जेहि कल निज बल तेहि न कृपा ढल, यद्यपि सम बरसानि।
जेहि गुन न्यारा दीन पियारा, प्रनवउँ यारा मानि ॥३॥
सब विधि हारा एक सहारा, अद्भुत धारा कानि।
सरनागतवत्सल व्रत नहिं टल, दीनन वाञ्छित दानि ॥४॥
खल अति प्रबल न काहू बल चल, विश्व सकल अनुमानि।
आयेउँ सरन समर्थ सँहारन, संयुग सारँग-पानि ॥५॥

[३७]

जनि डरपहु मुनि सिधि सुरसाँई।
जग भेउ मगन गगन भेउ बानी, देउ स्पष्ट सुनाई ॥१॥
मेटन क्लेश वेष नर धरि, सह शक्ति अंश महि आई।
थापब धर्म सँहारब निश्चर, राखब कोउ न बचाई ॥२॥
टारब सुर दुख तारब जिव गन, रूप अनूप लखाई।
जग विस्तारब जश जेहि चाहब, तारब नर सुनि गाई ॥३॥
दिनकर कुल संकुल नृप यश बर, प्रकटे मर्म छिपाई।
प्रकट सो कुल दशरथ कौशल्या, मोहिं सुत हित बर पाई ॥४॥
श्राप अनुसार देव-रिषि करबै, लीला नर की नाँई।
सुर सब बानर बनि होइ मम सँग, बदला असुर लहाई ॥५॥
खल दल दहि गहि बाँह निबल, महि बेगि हरब गरुवाई।
देब शान्ति हरि लेब भ्रान्ति जिव, ब्रह्म प्रेम दरसाई ॥६॥
लोचन चातक तिन हरि पातक, स्वाति दरस बरसाई।
शीतल करि जगतीतल जिव, जन आनब धाम लिवाई ॥७॥

[३८]

शृंगी रिषिहिं बसिष्ठ बुलावा।
मख पुत्रेष्टि पवित्र भूमि किय, नाम मखौरा पावा ॥१॥

प्रकटे अगिनि चरू कर लीन्हे, नृप दशरथ समुझावा।
जथाजोग नृप रानिन बाँटहु, यह हवि भाग बनावा ॥२॥
आधा कौशल्यहिं दै आधे, कर दुइ भाग लगावा।
एक दै कैकेई दूजेहिं कर, पुनि दुइ भाग करावा ॥३॥
कौशल्या कैकई दिहेउ तिन्ह, हाथ सुमित्रा डावा।
तिन्ह प्रत्येक सुत अनुग सुमित्रा, यमज पुत्र उपजावा ॥४॥
आधा मिल कौशिला कैकई, हाथ चौथई आवा।
दुइ अठई मिलि जोग चौथई, रानि सुमित्रा खावा ॥५॥
रानिन सहित अनन्दित दशरथ, गुरु बसिष्ठ भा भावा।
पुरजन प्रेम मगन सुर हर्षित, गगन निसान बजावा ॥६॥
जग जिव मोद प्रमोद मुनिन, निश्चर बिनोद बिनसावा।
बाँचत बिधि दिन नाँचत शिव लिन, राम जन्म नियरावा ॥७॥

[३९]

जेहि प्रभु प्रकट सो अवसर आवा।
मंगल मय भय भूमि मनोहर, नगर रम्यता छावा ॥१॥
हरित पल्लवित पुष्पित तरु, सर, सुजल सरोज सुहावा।
सरिता विमल मधुर जल भारिता, चल सुतरंग लुभावा ॥२॥
सागर रत्न हेम महि मणि गिरि, डारत परत लखावा।
त्रिविध वायु निर्मल निकायु नभ, जग जिव आनँद पावा ॥३॥
खग शुभ बोलत पशु सुख डोलत, सहजं बैर बिसरावा।
नाचति प्रकृति सुकृति गावति, दरसावति प्रभु प्रकटावा ॥४॥
अवसर जानि विरञ्चि सिद्ध सुर, रञ्चि विलम्ब न लावा।
अवध गगन जुटि सघन विमानन, मगन प्रेम गुन गावा ॥५॥
चैत्र मास सित पक्ष नवमि दिन, मध्य नछत्र सुभावा।
बरसि सुमन नभु समय प्रकट प्रभु, सेवा सुरन जनावा ॥६॥

[४०]

अवतरि जग जगनिवास आयो।
नत कृपासिन्धु व्रत आर्तबन्धु, सतसन्धु कौशिला बर लायो ॥१॥
शिव मुनि मनहर विग्रह वर नर, जलधर सुश्याम लखि माँ भायो।
पट पीत जड़ित घन श्याम तड़ित, हिय रूप गड़ित माँ हरषायो ॥२॥

चमकत किरीट रबि मुख मयंक छबि, नयन लखत फबि हुलसायो।
अति कुंचित कच कुंडल कपोल नच, मच अनन्द जब मुसकायो ॥३॥
शर धनु कर अम्बुज दो अजानु भुज, संसृति रुज आश्रिति ढायो।
दोउ करन जोरि धीरज बटोरि, माता बहोरि स्तुति गायो ॥४॥
जय जय अविनासी सब घट वासी, सुखरासी सब जग जायो।
मम उदर निवासी सहि उपहासी, गहि मोहि दासी अपनायो ॥५॥
मुख आव न बानी पद लटपानी, जइहँइ जानी घबरायो।
बह नयन नीर कंपित शरीर, उर पीर तनिक नहिं छिपि पायो ॥६॥
माता अधीर बानी गँभीर, तप बिनु समीर बर समुझायो।
माता धीरज गहि, प्रभु प्रबोध लहि, कहि कृतज्ञता सिर नायो ॥७॥
जेहि सम न कोइ भेउ है न होइ, जन प्रेम टोइ सोइ प्रकटायो।
करुणा निधान नहिं विरद आन, जग अज बखान सो जनमायो ॥८॥
शिशु बनइ लाल मोहिं करु निहाल,लीला रसाल शिव ललचायो।
शिशु बनि सुजान लिय रुदन ठान, सुत जन्म ज्ञान परिकर धायो ॥९॥

[४१]

हरि अवतरन गान हरि पद प्रद।
भव उद्धरन परन पुनि भव नहिं, लहन राम पद परमारथ हद ॥१॥
निराकार साकार बनन हरि, धरि नर रूप भूमि करि आमद।
जीव चेतावत स्वयं सो आवत, पथ अन्तर माया रद एक लद ॥२॥
माया मिथ्या रूप अविद्या, तद्यपि मोहति जीवन सो सद।
चेतत जीव रूप नित जबहीं, तबहीं हटत मोह माया मद ॥३॥
हरि अवतरन जीव आरोहन, सप्तावरनन बिहाइ बरामद।
एकइ पथ एक सबल निबल एक,निरखत पथ चढ़ एक कोउ शायद ॥४॥
गान अवतरन हरि प्रसन्न, आवरन हरहि माया जिमि नारद।
जीव गाव प्राकट्य नाट्य हरि, चहै उबरि भव लहै जो हरि पद ॥५॥

[४२]

प्रकटेउ राम तोर हित लागी।
यह जिव लावै हरि पद पावै, नित्य मुक्त भव आगी ॥१॥
कठिन तपस्या कौशल्या सुख, पायेउ हरि सुत माँगी।
अनायास सुख प्राप्त चरित सोइ, भाव कौशिला जागी ॥२॥

सुख समर्थ राम विग्रह जेहि, तेहि लीला नहिं खाँगी।
विग्रह प्रकटत लीला विग्रह, एक सक एक न त्यागी ॥३॥
प्रकटि राम लीला प्रकटेउ, जेहि नेह तोर मति पागी।
होइ कृतज्ञ नहिं बिकेउ राम कर, तू अनभिज्ञ अभागी ॥४॥
निराकार नित प्रकटेउ तव हित, चित करुणा दव दागी।
लहु पद साँवर होइ न्योछावर, ऊतर संसृति साँगी ॥५॥

[४३]

निज इच्छा प्रभु जग अवतरई।
निज इच्छा अवतरत राम, निज इच्छित ही तनु धरई ॥१॥
सुर महि गो द्विज दुःख निवारन, बिनु वपु प्रभु सकि करई।
महा प्रलय संकल्प होइ, कस दुष्ट कोइ नहिं मरई ॥२॥
दोइ कार्य अनिवार्य अवतरन, दर्शन गुन विस्तरई।
दर्शन देत स्वरूप जीव निज, गुन गावत भव तरई ॥३॥
सत्यं शिवं सुन्दरं विग्रह, स्मृति जिव बुधि हरई।
गुन यश माया विवश जीव, करि स्ववश प्रेम हरि भरई ॥४॥
सरिस विभीषन प्रमी दर्शन, देत लहत सुख परई।
लीला करत संवरन जिव मन, पहुँचन बन अनुसरई ॥५॥

[४४]

शिशु स्वरूप कोउ बरनि कि पाई।
छबि शोभा सुषमा नहिं उपमा, जगमा सुन्दरताई ॥१॥
शोभा सकल अप्राकृत विभु कृत, नहिं बिधि प्रकृत बनाई।
विभु इच्छा निर्मित बिधि बिस्मित, विरचित निज न लखाई ॥२॥
सृष्टि भूप आदर्श रूप, अति ही अनूप निर्माई।
जेहि अनुरूप स्वरूप न बनि बिधि, रूप बनावत जाई ॥३॥
शोभा धाम विमोह काम, अभिराम जीव जत दाई।
बिधि हरि हर जिव निकर अचर चर, निरखत रूप लुभाई ॥४॥
माया त्रिगुन परे उवरे भव, उर जो धरे सजाई।
कथनी पार सार सुन्दरता, नेति चार श्रुति गाई ॥५॥

[४५]

उमड़ि चल आनँद अवध अवनिया।
प्रकटेउ आनँद सिन्धु मुरति बनि, सुरति न लहै लवनिया ॥१॥

श्रृंगी रिषी मग्न होइ कीन्हेउ, विधिवत अग्नि हवनिया।
अग्नि प्रसाद चारु चारु सुत, जन्मेउ नृपति रवनिया ॥२॥
चहुँ दिसि चहुँ सुत आप्लावित किय, बरिसि सुसुख सावनिया।
कोरि कोरि जग बोरि गगन मग, रोकेउ रबिहिं गवनिया ॥३॥
विप्र साधु प्रद दुख अगाधु, लंका बड़वाग्नि दवनिया।
जे विहाल कीन्हेउ निहाल सुर, द्विज मुनि धेनु छवनिया ॥४॥
ब्रह्मा विष्णु महेश सकल सुख, लेश अनन्द जवनिया[1]।
प्रकटि अवध उपलब्ध सो आनँद, सिन्धु भयो त्रिभुवनिया ॥५॥

[४६]

अवध लखि निज पति प्रकट होवनिया।
निज साकेत स्वरूप प्रकट किय, जिमि पति लखत रमनिया ॥१॥
अति रमनीक अलौकिक शोभा, स्वर्ग न सुलभ अवनिया।
बिखरेउ नर नारिन फुलवारिन, बीथिन बाट भबनिया ॥२॥
नहिं विपदा सब प्रकट सम्पदा, अन धन हाटाक मनिया।
दृश्य ललित नित चलित सुगन्धित, सीतल मन्द पवनिया ॥३॥
सरजू सरि जल निर्मल भरि चल, प्रेम तरँग मँगनिया।
शुक पिक खग कलरव नित उत्सव, जहँ तहँ मोर नचनिया ॥४॥
बैर बिहाइ परम आनन्दित, सब पुर पशु बिचरनिया।
परमानन्द बास पुर फुर उर, राम जन्म हुलसनिया ॥५॥

[४७]

सुनि सुत रुदन धाइ चलि रानी।
कौशल्या जनमेउ अभिमत सुत, मन महँ यह अनुमानी ॥१॥
प्रकटेउ प्रथम रूप प्रभु सो जो, कुछ माता बतुआनी।
रहीं निकट दासी भइँ सोवत, मध्य दिवस नहिं जानी ॥२॥
दासिन दास जनायेउ ते नृप, फैलि गई पुर बानी।
दौड़े पुरजन राज महल, तजि टहल अनन्द भुलानी ॥३॥
नृप दशरथ आनन्द सुनत सो, नहिं मोहिं जाइ बखानी।
ब्रह्मानन्द सुशब्द सुनत सुत, जन्म हृदय जनमानी ॥४॥
पुर बाहर सर सरित निकट मुनि, सिद्ध बसे अगुआनी।
ध्यानावस्था पहुँचि ब्रह्म शिशु, हृदय लाय लिपटानी ॥५॥

---

1. जवनिया = जौन = जो ।

गुरु बसिष्ठ नृप बोलि पठायेउ, अनुपम शिशु निरखानी।
रूप राशि गुन गुनत सुनिश्चित, किहेउ ब्रह्म प्रकटानी ॥६॥
बैठि विमान व्योम बरसैं सुर, पुर पुष्पन भरि पानी।
उड़ि चल पुर भुशुण्डि भाव भव, तकि नहिं संग भवानी ॥७॥

[४८]

रसिक चल धाइ शिशु, लखन बदनिया।
नीलगिरी भुशुण्डि बासी शिव, कैलासी विज्ञनिया ॥१॥
बूढ़ ज्योतिषी शम्भु भुशुण्डी, शिष्य बयस लड़िकनिया।
चले लखत रेखा कर घर घर, बजै बधाव सधनिया ॥२॥
भूत भविष्य वर्तमान सच; बरनै बृद्ध लगनिया।
पोथी पत्रा लिये बाल, बृध गुरु सँभाल चलनिया ॥३॥
सब गुन गावत परिचय पावत, बुलवायेउ गृह रनिया।
कर रखि कर मुख चन्द्र भाल भे, अतिहिं निहाल लखनिया ॥४॥
सुर मुनि त्रान प्रान भक्तन, बलवान मान मर्दनिया।
अवनि किशोरी सब गुन बोरी, जोरी कहेउ कहनिया ॥५॥
पुलकावली प्रेम जल दृग बृध, लखि शिशु की चितवनिया।
शिष्य विभोर बटोर पलक नहिं, पत्रा गिरेउ धरनिया ॥६॥
शिशु शिर द्विज कर रानि रखायेउ, विप्र लिहेउ शिशु कनिया।
शिष्य धरेउ शिर शिशु चरनन, गुरु शिष्य भये धन धनिया ॥७॥

[४९]

गुरु हित नाम करन आवनिया[1]।
भये अदृशि लख दृशि सुर रिषि, सुरसरि सादृशि पावनिया ॥१॥
प्रेम मगन नृत गाव लगन, चढ़ि यान गगन छावनिया[2]।
सजि चुन्दरि सुर सुन्दरि अन्दरि, बरस सुमन सावनिया ॥२॥
कौशल्या कैकइ सुत लइ भइ, हिय सुमित्र चावनिया[3]।
भूप सुतन अनुरूप रूप गुन, गुरु कर लग नावनिया[4] ॥३॥
आनँदसिन्धु सत्यसन्धु श्रुति, दीनबन्धु गावनिया।
नाम अनुहरत राम, भरत रत, त्रिप्त भूख तावनिया[5] ॥४॥

---

१. आवनिया = आने के समय। २. छावनिया = छा जाना। ३. चावनिया = चाव। ४. नावनिया = नामकरण। ५. भूख तावनिया = क्षुधाग्नि।

नाम शत्रुहन हन रिपुगन जन, हित आतुर धावनिया[1] ।
रक्षण भकवे ततक्षण लक्षण, लक्ष्मण प्रण भावनिया[2] ॥५॥
हय गय मणिमय रथ याचक दय, चित सुर लय लावनिया[3] ।
देहिं अशीश महीश होहिं, दसशीश मारि रावनिया ॥६॥
इन्ह सम नहिं महि भयो होन नहिं, कहि गुरु गृह गावनिया[4] ।
ज्ञानिन पय चित भक्त बनन घृत, वितरित यह जावनिया[5] ॥७॥

[५०]

शिशुन नाम गुरु धरे विचारी ।
उनके गुन स्वरूप वस्तुतः, कर्म धर्म अनुसारी ॥१॥
गुरु बसिष्ठ कह वेद तत्व अवयव नृप तव सुत चारी ।
करन कृपा जीवन विशेष तोहिं, प्रकटि भये अवतारी ॥२॥
"अ" लक्ष्मण "उ" भयो शत्रुहन, भरत रूप "म" धारी ।
राम अर्धमात्रा[6] सो ब्रह्म वाचक कह प्रणव प्रचारी ॥३॥
जागृत स्वप्न सुषुप्ति तुरीधा के क्रमशः अधिकारी ।
लक्ष्मण विश्व शत्रुहन तैजस, भरत प्राज्ञ वृति कारी ॥४॥
अन्तर्यामी राम मुक्ति, कैवल्याद्वैत उचारी ।
अन्त दशा सर्वोच्च अवस्था, ब्रह्म तनिक नहिं न्यारी ॥५॥

[५१]

पालने झुलहिं नृप शिशु चारी ।
किलकहिं पुलकहिं पैर उठावहिं, झटकि पालने दें डारी ॥१॥
रहि रहि शिशु मुसकाहिं सोवते, जगि जमुहाहिं ते सम्भारी ।
जेहि मुख भीतर जिव अवनी पर, डर न दृश्य लखि भयकारी ॥२॥
कबहुँ पकरि दोउ हाथ अँगूठा, कोउ पग मुख मँह लें डारी ।
चूसन दें अवलम्बु अम्बु भव, बालमुकुन्द प्रलय भारी ॥३॥
मारकन्ड एक ते शरण्य, ब्रह्माण्ड बरण्य ये उपकारी ।
प्रलय वारि ते भय निकारि ये, जिव भव सागर मजधारी ॥४॥
लखन राम सँग भरत शत्रुहन, पौढ़ावत हँसि दें तारी ।
लखन भरत सँग राम शत्रुहन, रुदहिं लखन रिपु भय हारी ॥५॥

---

१. धावनिया = धाना । २. भावनिया = भाना । ३. लावनिया = लावण्य ।
४. गावनिया = गवन किया । ५. जावनिया = जावन । ६. अर्धमात्रा = ऽ ।

राम के लखन भरत के रिपुहन, शिशुपन ते जन अनुहारी।
श्याम गौर मनहर दोउ जोरी, लखि त्रिन तोरी महतारी।।६।।

[५२]

चलो सखि आई लखि नृपति ललनवा।
सुन्दर भवन समुन्दर शोभा, शिशु चहुँ झुलत पलनवा।।१।।
जग भेउ सपन लखन लखि रिपुहन, छूटेउ सोउ सपनवा।
केवल आपु अनाम भरत लखि, राम भुलान अपनवा।।२।।
सुन्दरता सुषमा छवि शोभा, भयेउँ समुद्र मगनवा।
द्रष्टा लय भेउ दृश्य भयो लय, आनँद परे कहनवा।।३।।
अपनो सृष्टि भयो सुदृष्टि पुनि, ललन करन मुसकनवा।
कहुँ मैं लखउँ राम शिशु कबहूँ, मोहिं बनि एक होवनवा।।४।।
सुन्दरता आनन्द होत लय, पुनि निज रूप लहनवा।
जीव ब्रह्म ब्रह्म जिव स्थिति, बन शिशु राम लखनवा।।५।।

[५३]

लिये नृप दशरथ रामहिं कनिया।
भरत कौशिला रिपुहन कैकेइ, लखन सुमित्रा रनिया।।१।।
मुक्ति भक्ति विज्ञान विरति जनु, सोहति लहेउँ लवनिया।
ज्ञानी रती सुमती विरागी, पायेउ आपु चहनिया।।२।।
पीत झगुलिया राम भरत, रिपुदवन लखन बैगनिया।
उर मनि माल श्रवन कुण्डल कटि, करधनि पग पैगनिया।।३।।
हुलसनि लपकनि किलकनि चितवनि, चेष्टा छवि लड़िकनिया।
मुख नोचनि मोचनि त्रिताप, विनु नाप मधुर मुसकनिया।।४।।
परम मोद राखत लखि माखत, मोरे गोद अवनिया।
बनिया लेन मोल मन बनिया, बरनन आव न बनिया।।५।।

[५४]

पूजा भूप भवन भगवान।
बहुत भाँति भोजन बनाइ रख, अमित पाँति मिष्ठान।।१।।
सकल बनाइ बनावन वाले, छोड़ि गये स्थान।
सुत सुलाइ कौशल्या गवनी, जहाँ धरा पकवान।।२।।
तहँ अवलोकेउ निज सुत रानी, भोजन करते पान।
पीछे खम्भा लखइ अचम्भा, भ्रम या मर्म न जान।।३।।

लौटि गयेउ जहँ बाल सुलायेउ, तहँ सुत लखेउ सुलान।
जाइ धाइ सोइ देखि बार बहु, भा आश्चर्य महान ॥४॥
मातु चकित अति थकित तकित शिशु, खोलत मुख जमुहान।
भीतर मुख तब मातु बिलोकेउ, सारी सृष्टि जहान ॥५॥
बन्द किहेउ मुख राम देखि दुख, माता बहुत डरान।
कह रागेउ विवेक माँगेउ तेहि, लागेउ रचेउँ विधान ॥६॥
जोरे कर कौशल्या माँगइ, माया मोचन दान।
दीन्ह नातु सुत लीन्ह मातु हित, माँगि न यह कह आन ॥७॥

[५५]

नृप सुत घुटरुन घुमहिं अँगनवा।
छबि आनन लखाइ जीवन मन, बुधि चित अहं ठगनवा ॥१॥
झँगुली झीन रँगीन मनोहर, कटि कोपीन टँगनवा।
तेहि करधनी माल मनि उर पग, पैगनि करन कँगनवा ॥२॥
जनु छवि ब्रह्म चारि रूप धरि, माया भयो नगनवा।
विचरत रुचिर अजिर नृप दशरथ, पाये तपहिं मँगनवा ॥३॥
बिथकित तकित सुतन दस स्यन्दन, रुक रवि चकित गगनवा।
शिव भुशुण्डि मुनि सिद्ध झुंडि मन, सुमिरत लखत मगनवा ॥४॥
शुक पिक मोर चकोर काग बनि, सैवहिं परम लगनवा।
चारि चारु सुत दशरथ दर्शन, समरथ जीव जगनवा ॥५॥

[५६]

पय पियहिं न राम शोक भारी।
अनमन करहिं पियन में ठनगन, लखि स्तन लें मुख टारी ॥१॥
पुत्र रतन हित जतन जतन कर, ततन न बन लखि मन हारी।
आकुल नगर लोग कुल व्याकुल, भई भयाकुल महतारी ॥२॥
सिद्ध आइ कुल वृद्ध किहेउ एक, ऋद्ध न सहि सक कोउ नारी।
रूप अनूप विलोकि भूप सुत, पाप कूप टोना डारी ॥३॥
शोक भुलाई पुत्र तुलाई, गुनी बुलाई दें झारी।
तुला तौलि नृप बोलि पठायेउ, डोलि लाउ गुरु बैठारी ॥४॥
गुरु आये नरसिंह सुनाये, मन्त्र मिटाये दुख जारी।
स्तन कर लय राम पियहिं पय, भागेउ भय सुनि किलकारी ॥५॥

[५७]

माँग ललन शशि गगन निहारी।

रोवत राम रानि दवरी होइ, बवरी काम विसारी ॥१॥
झटकहिं सिर पटकहिं गोदी, लटकहिं कर दहिन पसारी।
गोद लेन चह कोऊ सोऊ, कर ते देहिं निवारी ॥२॥
देइ मात मनि तात द्रव्य गनि, कर लै लखि दें डारी।
दूध देत मुख मिष्ठानन सुख, मानत दुख दें—टारी ॥३॥
हलरावत दुलरावत दिखरावत बहु मृग महतारी।
बहँकावत डहँकावत पावत, रुदत क्रोध करि भारी ॥४॥
आयेउ गुर शशि मुकुर दिखायेउ, राम हर्ष उर धारी।
शशि लखात लहि राम गात चहि, स्वाति पपीह पुरारी ॥५॥

[५८]

पग चलिहौ लग कब जग प्यारे।

यहँ वहँ जहँ तहँ आँगन घर महँ, घुमिहौ रूप सँवारे ॥१॥
कुण्डल लोल कपोल मोल मन, लेन बोल तुतुलारे।
आनन ससि मसि भाल मनोहर, हँसि दुखहूँ दुख टारे ॥२॥
कुँचिच केश सुवेश लेश नहिं, क्लेश निमेष निहारे।
तरुन अरुन अम्बुज ओंठन विच, बरुन मोति रद डारे ॥३॥
नीरज नयन, न वयन बुलावत, शयन अयन निज न्यारे।
जहँ न रयन दिन, मयन मोह बिन, चयन स्वरूप सँभारे ॥४॥
गगन मगन सुर लखि आँगन नर, रगन बहिंहिं सुख सारे।
रद सागर भव, पद सम्भव भव, मद शव तव करुणा रे ॥५॥

[५९]

लग लालन पग चलन अँगनवा।

सुन्दरता छबि शोभा सुषमा, उपमा महि न गगनवा ॥१॥
केशन झारि सँवारि ललन, पहिराये वस्त्र रँगनवा।
कुण्डल हार सुंदरता वरधनि, करधनि ललित कँगनवा ॥२॥
रजत स्वर्ण अनुहरत वर्ण, आभूषण मणिन नगनवा।
सुत चहुँ परिछाँई बहु मणि, खम्भन मन लखत मगनवा ॥३॥
तलुआ लाल ललित परिछाँई, कलित सुफ़र्श लगनवा।
झँकनि झुँकनि लरखरनि गिरनि जब, पकरनि चलत खगनवा ॥४॥

तोतरि बोल लेत मोल मर्न, मयन सुनयन भगनवा।
आप ब्याप इन मूरति, सूरति माया सकि न ठगनवा ।।५।।

[६०]

जोरी कँगन अँगन दोउ जोरी।
राम लखन सँग भरत शत्रुहन, दँग लखि मदन करोरी ।।१।।
छबि मयंक शंक रवि मान न, आनन टिकेउ चकोरी।
मरकत सुबुरन मिलत बरन तन, रन त्रिभुवन छबि छोरी ।।२।।
नीरज नयन दयन सुशयन, निज आनँद मयन मरोरी।
चितवनि चारु निशा भव बितवनि, हित वनि वृत कर होरी ।।३।।
सुभग कपोल लेत मोल चित, देत रूप निज ठोरी।
ओठ देत विज्ञान कोठ, भव नहिं भसोठ दे बोरी ।।४।।
तोतरि बोल अलोल करत मन, जाइ न धाइ बहोरी।
दुख भगान मुसकान मधुर चखिं, लखि जिव जग त्रिन तोरी ।।५।।

[६१]

जागु लाल करु निहाल होइ गयेउ सबेरा।
सो न तात अब न रात प्राची ऊषा लखात,
शशि प्रभा सिरात खग उड़ात तजि बसेरा ।।१।।
सीतल सुखदा समीर चलत लगेउ धीर धीर,
मज्जन हित सरजु तीर भीर भेउ घनेरा।
अरुणिमा दिखै प्रभात निकट रवि उदय लखात,
सर सरोज भे खिलात अलि गुंजात घेरा ।।२।।
पंक्षीगन लगे बोल मृगगन लग कर कलोल,
बीथिन लगि लोग डोल पटन खोल डेरा।
भजन गाव मधुर राग कोउ चलेउ सैर बाग,
याचक कहुँ लगे माँग कोउ न लाग देरा ।।३।।
सोवन अब छाँड़ लाल द्वार बज नफीरि ताल,
चन्दन कर लिये माल जोव काल चेरा।
भ्रातन सँग भरत लाल चरनन पर शीश डाल,
सुनत उठल कर कृपाल सवन भाल फेरा ।।४।।

[६२]

आँगन राम चलन पग भाई।
धारन प्रति डग अवलम्बित मग, प्रतिबिम्बित परिछाईं ।।१।।

श्वेत फटिक मणि अँगन पगन लखि, तलुअन कोमलताई।
अरुण कमल दल देत पाँवड़े, पग पारत अँगनाई ॥२॥
अथवा लालन पग लालन महि, आपन हृदय बिछाई।
चरन ललित अनुहरत कलित जग, ढूँढ़त कतहुँ न पाई ॥३॥
निज तनुजा देखन पग रेखन, अथवा अवनि चुराई।
चरन धरन प्रति बार लखावत, करन न गहन सचाई ॥४॥
अथवा श्याम रूप परिछाईं, पर पग-तर अरुणाई।
रखि लखाव पद-तल प्रभाव बढ़ि, ध्यान रूप समुदाई ॥५॥

[६३]

बिहरत बीथिन बिच चहुँ भाई।
वयस समान सखा सँग लागे, रागे निज निधि पाई ॥१॥
धनुष बान गेंद भँवरा कर, लिहे छौट शहनाई।
कतहुँ ठिकाना मार निशाना, खेलत नतहुँ बजाई ॥२॥
नर नारी धावत लखि पावत, मोद न हृदय समाई।
गृह लावत बैठावत सबन, पवावत मधुर मिठाई ॥३॥
सुनन बढ़ेउ लालसा पुरी जन, भवन हमन हूँ आई।
नृप रानी रह विकल भयाकुल, बाहर सुत जब जाई ॥४॥
राम दयाल न सहि सक मुतलक, निज सनेह बिकलाई।
निज हमजोली पूरी टोली, डोली संग सब ठाँई ॥५॥
जो सुख सुलभ कौशिला दशरथ, करि तप अति कठिनाई।
अनायास आनन्द अवध, वासिन लह कृपा कमाई ॥६॥
जेहि सुख सिन्धु सकृत सीकर धर, विधि हरि हर प्रभुताई।
बढ़त अवध बोथिन सु-बीचि वह, लह सरि चरित नहाई ॥७॥

[६४]

सुघर प्यारे घर आजु अइहैं।
मोहि माँगने आँगने प्यारे, होइ सामने सुहइहैं ॥१॥
पश्चाताप पाप ताप त्रै, हृदय मिलाप नसइहैं।
पूँछत कुसल मुसल बरसइहैं, आनँद हृदय बसइहैं ॥२॥
भ्रातन संग सखन बरामदे, नमदे हर्ष विठइहैं।
विनु मिसरी पय पीवत विसरी, बिगरी मोर बनइहैं ॥३॥

गद्गद निरखत पद लालन, पदैं परम दिलत न भुलइहैं।
नयन निरखि असहाय परखि मोहिं, आनँद देत रुलइहैं ॥४॥
बान दिखाइ आन माहिं देहैं, अवगुन सकल भगइहैं।
ऊसर हिय करि दूसर ऊपर, भक्ति सुबाग लगइहैं ॥५॥
जात लाल विलखात मोहिं लखि, कर रखि गाल सुनइहैं।
विलग न मानव सच करि जानव, मोहिं सोहिं अपनइहैं ॥६॥

[६५]

गुरु गृह पढ़न चले चहुँ भाई।
चारिउ वेद धरे तनु चल जनु, रिषि निज रूप लखाई ॥१॥
तीन भ्रात तात वेद त्रै, चारिउ के रघुराई।
गुरू पढ़ावत हुतन सुतन नृप, अतिशय परिचय पाई ॥२॥
सुधि पितु बचन रचन रविकुल तनु, ब्रह्म रिषीश्वर आई।
सुतन पढ़ावत जिन गुन गावत, तिन पावत हरषाई ॥३॥
सब के एकमेव देव, माया निज भेव छिपाई।
गुरु अरुन्धती अति करि भक्ती, सेवत तजि प्रभुताई ॥४॥
शिष्य जो जानत गुरू वखानत, मानत यही पढ़ाई।
पढ़न स्मरन नृपति सुवन गति, त्रिभुवन शिक्षा दाई ॥५॥

[६६]

सरयू राम करत अश्नान।
चारिउ भाई एक सँग आई, सेवक लिहे सुजान ॥१॥
पूर्व राम डग धरत नीर पग, धोवत सरि लहरान।
पावन करन अपन सुरसरि अघ हरन सु-अघिन नहान ॥२॥
जस रितु तैसेहिं करत राम हितु, सुखमय सलिल प्रदान।
ग्रीषम शीतल नरम गरम हिम, निर्मल सदा समान ॥३॥
जलचर आवत लखि सुख पावत, मुख आनन्द निधान।
टेरत राम देत कर फेरत, चिट्ठा भव उबरान ॥४॥
देत अर्घ रवि उदय होत फवि, पूजत शिव भगवान।
होत प्रकट शिव नत कृतज्ञ ग्रिव, कह नित रह कल्यान ॥५॥
विप्रन देत दान याचक गन, अन धन परे बखान।
माँगेउँ हमहुँ जो कर "न" कबहुँ, पद भक्ति सदा सरसान ॥६॥

[६७]

खेलत गेंद राम रघुराई।
सेनप सचिव सगे सम्वन्धिन, सुवन संग तिहुँ भाई ॥१॥
समतल भूमि रम्यता चहुँ दिशि, सरजू कछुक हटाई।
रितु अनुरूप धीम धूप, वायू अनूप सुखदाई ॥२॥
राम लखन एक और, दूसरे भरत शत्रुहन आई।
वीकि लिये गोइयाँ ग्यारह, प्रति ओर जे कुशल खेलाई ॥३॥
उचित व्यवस्था करत रीति करि, आगे गेंद बढ़ाई।
अपने दल कहँ पास करत, दूजो दल रोकि घुमाई ॥४॥
गोल करत कोउ दल कोलाहल, करत जो खेल लखाई।
जो विशेष दिखलाव कुशलता, कर लै नाम बड़ाई ॥५॥
पहले जीतत जात राम दल, पीछे जाइ हराई।
राम विदित त्रिभुवन सुखेलइया, ऐसी युक्ति कराई ॥६॥
सीकर स्वैद सुघर मुख पोंछत, राम मधुर मुसकाई।
जीतत भरत राम के हारत, दीखत मुख लटकाई ॥७॥

[६८]

करन अहेर राम जात बन।
भ्राता संग सखा सम आयू, तथा अहेर सुकुशल भृत्य गन ॥१॥
धनुष बान कर कटि निषंग असि, भाला परशु लिये साथी जन।
हिन्सक पशुहिं हेरि मारत अरु, पशु जे करते हानि कृषक धन ॥२॥
सिंह ब्याघ्र चीता शूकर बन, कूकर वृक गैंडा कर निर्जन।
जल घड़ियाल मगर मारत नभ, उड़त नचान शचान बान हन ॥३॥
झुंड मृगन लोवा शश होइ वश, प्रेम निहार राम तजि विचरन।
झरना वाज बजाव गाव शुक, मोर नचाव लखाव राम घन ॥४॥
विटप फूल झरि घन छाया करि, सर पियास हरि सेवा लावन।
तरु फल च्वै मेदनि मृदु ह्वै, चरनन सरि ध्वै त्रै वायु बहावन ॥५॥
सम दरस थल जल नभ चर जिव, भा कारन स्वरूप स्थापन।
मारे जिव तुरन्त धाम गे, प्यारे अन्त धाम भे भार्जन ॥६॥
धन्य निरख छवि राम न कोइ फवि, परे कहन कवि विचरन कानन।
अजहुँ गन्य ते परम धन्य जे, तजे अन्य स्मर रामानन ॥७॥

[६९]

धनि धनि धन्य राम धनु बान।

इच्छा राम धनुष कार्यान्वित, करन बान पड़ जान ॥१॥
अतुलित ज्ञान शक्ति बढ़ि परमिति, सदा अमोघ प्रमान।
जानि परत मोहिं इनहिं अंश भेउ, मूर्तिमान हनुमान ॥२॥
राम नाम इमि पावन करता, सोउ न इनहिं समान।
मरत सम्मुख कर नाम मुक्ति, ये मारत करत प्रदान ॥३॥
जिनहिं न कोइ उपाय तरन की, करत परम पद दान।
लेत ते शरण नहीं रामहुँ की, राम बान की ठान ॥४॥
माया राम रूप धरि सक, सामने राम न डरान।
माया तम हट एकदम जब शर, राम धनुष संधान ॥५॥
देश काल के परे हाल, हरि भक्तन लेत सुजान।
छेद कर्म तन मन बुधि चित ये, नासत जिव अभिमान ॥६॥
दुष्टन दलन राम जन पालन, निर्भय करन प्रधान।
रूप भयंकर प्रलयंकर दोउ, प्रान परम कल्यान ॥७॥
अवयव नित्य राम विग्रह, सँग प्रकटहिं छिपहिं छिपान।
चिदानन्द राम विग्रह धनु बान सही पहिचान ॥८॥

[७०]

लखत तेजमय छबि रघुराई।

प्रातः प्राची भान मगन शशि, पश्चिम गगन रुकाई ॥१॥
शोभा तेज देखि रवि ठहरेउ, शशि लखि छबि रुचिराई।
अजब समा आसमा भूमि सँग, जमा न कबहुँ लखाई ॥२॥
नभ सुहात रवि शशि उडुगन सँग, खग दिन रात उड़ाई।
एकहिं एक लखत सकुचत, नत प्रकृति प्रभा मुसकाई ॥३॥
चकई चक मिल सर सरोज खिल, हिल कुमुदनी खिलाई।
संध्या कर कोउ प्राची दिशि मुख, पश्चिम कोउ भुलाई ॥४॥
शुक पिक गाव चकोर भाव तक, मोर नचाव निकाई।
राम बाल रवि शोभा शशि छवि, नभ रँग अँग निलमाई ॥५॥

[७१]

आये राम लौटि तीर्थाटन।

लागे राज महल रहने जनु, रह वैरागय स्वयं धरि नर तन ॥१॥

सादे वस्त्र ढूँढ़ि कर पहिरत, डारे इत उत सब आ भूषन।
टारि देत पकवान सुरुचिकर, रखन प्रान कर सात्वकि भोजन ॥२॥
बोलन मित डोलत नहिं बाहर, घरहिं रहत उदास भुइँ आसन।
हँसत न लसत मोद मुख कीन्हे, जतन भरत सौमित्र शत्रुहन ॥३॥
ताही समय यज्ञ रक्षा हित, आये उनहिं गाधिसुत माँगन।
राम दशा बताइ नृप दशरथ, कहेउ न समरथ उन्ह भेजन बन ॥४॥
नृपति बुलाये रघुपति आये, ज्ञान सुनाये गुरू अथर्वन।
ज्ञान विशिष्ट वशिष्ट योग भा, हित वैराग्य शिष्ट हिय भाजन ॥५॥
परमारथ हित पुरषारथ चित, वरन अकारथ जिव विराग मन।
राम ज्ञान लहि धनुष बान गहि,किय पयान सँग मुनि सह लछिमन॥६॥
निज करतूत लखाव राम, अनुभूत ज्ञान जग ध्यान विसर्जन।
नहिं निरास हद ज्ञान मोक्ष प्रद, प्रेम राम पद सँग सुख वर्धन ॥७॥

[७२]

मुनि मोहिं माँगि अन्य सब लीजै।
राज महल धन कोष सेन सँग, मोहिं सब भाइ भतीजै ॥१॥
चौथेपन मैं लहेउँ चारि सुत, चहुँ फल त्याग नतीजै।
मरन क्लेश मन समुझि लेश मैं, दै न राम सक जीजै ॥२॥
हरिश्चन्द्र बलि रन्तिदेव मम, दशा न तुल मिलि तीजै।
ते सब दिये अन्य प्रान रखि, मोहिं न प्रान बिन कीजै ॥३॥
क्षत्री से ब्राह्मण होइ मुनि अब, विप्रन हृदय पसीजै।
राम छाँड़ि मोहिं कछु अदेय नहिं, मम अधीन जित चीजै ॥४॥
पुण्य जो देइ परम पद तौ बिन, राम रहिहि कर मीजै।
कहत राम बिन नृपति प्रान छिन, गिन मुनीश मन भीजै ॥५॥
गुरु बसिष्ठ विज्ञान निष्ठ, मुनि हिय रख प्रिय सुत वीजै।
मुनि विराग दै हिय दशरथ किय, समरथ रामहि दीजै ॥६॥
नृपति दान किय वच प्रमान, मुनि शान्त नितान्त करीजै।
निपट समस्या विकट तपस्या, मुनि, नृप प्रेम परी जै ॥७॥

[७३]

मुनि सँग हर्षि चले दोउ भाई।
सगुन ब्रह्म सिरजन पालन, संहारन गुनन गनाई ॥१॥

सुख सुन्दरता सिन्धु पूर्ण विधु, अवसर कृपा लखाई।
सौरँज धीरज दया दान बनि, बीचि चलेउ लहराई ॥२॥
जहाँ दुष्टता बल कटोरता, अति नीचता निचाई।
धान खेत फल बाग वाटिका, सुख जल बिना सुखाई ॥३॥
कमलन तोड़न कूदन चोँड़न, विपटन कहुँ चढ़ि जाई।
दौड़न खग पकड़न फिरि आवन, भवँर ललित लड़िकाई ॥४॥
पिता नेहँ बाणिज्य भार हिय, नाव धार मुनिराई।
बीचि विलास निवास नाव लखि, माल विनास डराई ॥५॥
मग जिव हिय सर जलज चेतना, सरसाये जल पाई।
शीतलता जल अजहुँ सुलभ भल, राम चरित्र नहाई ॥६॥

[७४]

दीन दयाल राम पायेउँ अस।

देन अर्थहूँ दीन कहे, निर्वाह करत अति दीन सत्य जस ॥१॥
चले जात मुनि दीन दिखाई, सुनि धाई ताड़का क्रोध बस।
तासु प्रान करुनानिधान हर, एकइ बान आन झट तरकस ॥२॥
बिन प्रसंग प्रति अंग क्रोध जेहि, राम दंग ढंग लखि तामस।
बालक बिन अपराध बृद्ध मुनि, बेगि दौड़ि चल ऐसेहूँ ग्रस ॥३॥
सहि न दुःख तेहि मुनि प्रबोध जेहि, मारेउ यहि एक बान बीर रस।
दीन जानि अति फुरति ताहि हति, कुमति दीन गति सन्तन सरवस॥४॥
ते न राम प्रिय जिनहिं मान हिय, साधन बहु किय जगि बिच मानस।
दीन छीन कर्तव्य हीन कर, लीन राम निज करुना बरबस ॥५॥

[७५]

लखु मखु विश्वामित्र सँवरिगा।

यज्ञ करन लागे मुनि झारी, भारी धूम लवरिगा ॥१॥
लखि रखि धीर न पीर सहेउ सकि, निश्चर बीर सपरिगा।
धायेउ घोर शोर भोर रवि, छिपेउ धूरि नभ भरिगा ॥२॥
खल मारीच सुबाहु नीच दल, निश्चर लखि मुनि डरिगा।
राम चलायेउ अग्नि बान, लागत सुबाहु जेहि जरिगा ॥३॥
लछिमन बान चले गन गन असुरन तन भिन शिर करिगा।
विनु फर लगि मारीच राम शर, शत योजन पर धरिगा ॥४॥
बड़ प्रयास विन सकल सेन गिन, निश्चर छिन महँ मरिगा।
कर लाघव दोउ राघव नाँघव, करि सुर अरि डर सरि गा ॥५॥

[७६]
धनुष यज्ञ कह देखन जाई।
मुनि प्रस्ताव सुनत रघुनन्दन, चलन कहेउ हरषाई ॥१॥
दीन दयाल अहिल्या दुर्गति, जनक दशा सुधि आई।
तापर जनक सुता सनेह हिय, चलन उमंग बढ़ाई ॥२॥
मग एक आश्रम पड़ेउ जहाँ, खग मृग नहिं जन्तु लखाई।
स्त्री मूरति शिला पड़ेउ, वेहाल बिना सेवकाई ॥३॥
मुनि न कहेउ कछु मूरति दुरगति, दीन दयालु दुखाई।
पूँछा मुनिहिं प्रसंग कहत हिय, ढंग दया दरसाई ॥४॥
यह गौतम तिय कहेउ परस तव, पद रज चहेउ तराई।
कहि न सकेउ रज आतुर जिमि गज, जिव अज पद परसाई ॥५॥

[७७]
परसत प्रभु पद पदुम पराग।
झरेउ परेउ पाहन प्रकटेउ तिय, तेज पुन्ज जनु आग ॥१॥
सुन्दर अति मर्दन गुमान रति, मद नति तिय नर नाग।
मनहुँ जाग जाग तप फल तिय, तनु पिय लहन सुहाग ॥२॥
श्राप किहेउ परिणत जगि तप रत, राम चरन रज लाग।
शिला वनन तिय मूरि मिला जनु, श्राप ताप अनुराग ॥३॥
शोभा धाम राम लख वहु तप, करि जो मनु बर माँग।
राम चरन रज दिहेउ दीनता, तिय सुभाग भरि माँग ॥४॥
चिन्मय रूप अनूप राम लखि, जीव जीवता भाग।
आत्म तत्व परमात्म सत्व लह, भे भव अहं विराग ॥५॥

[७८]
गतिदायक नायक लखि पाई।
जग आकर्षन हरन ब्रह्म, छवि जीव बरन दरसाई ॥१॥
हटे द्वन्द जिव कटे फन्द भव, श्राप ताप दुखदाई।
आनँद बसे लसे चिन्मय छवि, हँसे निरखि मुनिराई ॥२॥
सन्मुख निरखि निवारक निज दुख, तारक दीन दुखाई।
शोभामय स्वरूप भूप जग[1], कूप निकाल निकाई ॥३॥
परे परन पर परन पाँय, पर दुख हर परन बनाई।
मुनि पतनी सकुचाय धरमधुर, पाँय बचाय हटाई ॥४॥

१. "जग" दीप देहली समझ कर करें।

हर्ष अहिल्या कर्ष वाक्य, रोमाँच वर्ष बतलाई।
हिरदय भाव कृतज्ञ अहिल्या, प्रभु सर्वज्ञ सुहाई ॥५॥

[७९]

दीन असीम दानि रघुराई।
द्रवत दीन विनु जतन कीन, नहिं दीन न कछू बचाई ॥१॥
सर्वोत्कृष्ट भक्ति माँगि जो, जन विशिष्ट कोउ पाई।
सनकादिक भुशुण्डि मुनि माँगत, राम देत सकुचाई ॥२॥
द्रवि दीनता अहिल्या हरि सोइ, माँगे बिना लहाई।
करुणामय की करुणा सीमा, वन्धन नियम नँघाई ॥३॥
निगम सेतु पालक रघुनायक, श्रुति मरिजाद मिटाई।
ब्राह्मण रिषि तिय तनु क्षत्रिय बिय, पग जब जानि छुवाई ॥४॥
दीन अहिल्या लीन राम पद, तेहि पुनि पुनि शिर नाई।
पाप ताप सन्ताप श्राप हरि, पद आनन्द वसाई ॥५॥

[८०]

स्रव पद कृपा राम तनु राखी[1]।
कछु स्रवि बहु द्रवि हिम गिरि सुरसरि, सगर सुवन परि राखी[2] ॥१॥
रज सज पात्र कृपा स्रव बितरन, भज जो दीन कोउ लाखी[3]।
सो तज जग लति भज रघुपति मति, धरि रति चूड़ी लाखी[4] ॥२॥
मुनिन अलिन सँग जहँ गौतम बस, चख रस जस मधु माखी[5]।
तहँ पद कमल राम रति भल मति, तिय मुनि संग न माखी[6] ॥३॥
परम अनुग्रह मय विग्रह ग्रह, ब्याह समय सहसाँखी[7]।
सोइ मूरति इच्छा पूरति जिव, चहइ चितव भरि आँखी[8] ॥४॥
दीन हीन हद लहन राम पद, जव जेहि मद नहिं राखी[9]।
कर रघुपति,लखि मुनि तिय गति,बाँधति तेहि मति तिय राखी[10] ॥५॥

---

१. पहली सतर राखी शब्द = रखी गई। २. दूसरी सतर राखी = राख।
३. तीसरी सतर लाखी = लाख में से। ४. चौथी सतर लाखी = लाह।
५. पाँचवीं सतर माखी = मक्खी। ६. छठी सतर माखी = छोभ हुआ।
७. सातवीं सतर सहसाँखी = इन्द्र। ८. आठवीं सतर आँखी = नेत्र।
९. नवईं सतर राखी = रखी। १०. दसवीं सतर राखी = रक्षावन्धन।

[८१]

बनी सब ही विधि रिषि रवनी ।
जब ब्रह्माण्ड अखिल नायक पद, रज तनु पड़ी कनी ॥१॥
लही न रुज दुख सही न रन्चउ, मरती दुःख घनी ।
किये न साधन कोष अन्न मन, अरु विज्ञान छनी ॥२॥
कर्म काल देश झंझट हट, आनँद कोष ठनी ।
अति कृपाल दारुन दुकाल किय रघुकुल-मनी मनी[1] ॥३॥
जाहि ध्यान भज शिव पूजत अज, पावन गंग बनी ।
पड़ि तेहि पद रज पाहन ते सज, गति लज मुनि अपनी ॥४॥
खाँगि न कछु अनुरागि राम पद, आपुहि गनी गनी ।
मुनि रवनी बस पद प्रभाव जस, नहिं अवनी अवनी[2] ॥५॥

[८२]

कृतज्ञिता मानउँ सीम चरेउ ।
माँगेउ मुनि तिय पद पंकज प्रिय, जेहि रज आपु परेउ ॥१॥
दृग जल मोचत सोचत किरपा, जेहि सन्ताप हरेउ ।
कहुँ प्रभु मुख लख हिय स्वरूप रख, कहुँ पद शीश धरेउ ॥२॥
पद राजीव जीव गुन मेटेउ, सन्चित कर्म जरेउ ।
बहेउ वासना रहेउ पास ना, प्रभु पद प्रेम भरेउ ॥३॥
फल प्रारब्ध लेख बद्ध शिर, पद रज परत टरेउ ।
अहं बुद्धि होइ शुद्धि भक्ति हरि, ममता सकल गरेउ ॥४॥
जरा मरन अपहरन चरन किय, चिन्मय देह खरेउ ।
जेहि मूरति मति युवति बरेउ शिव, तेहि पद किहेउ घरेउ ॥५॥

[८३]

सिय पुर पहुँचे गंग नहाई ।
बाहर ही पुर देखि रम्यता, सुख स्वरूप सुख पाई ॥१॥
बन बहु बाग बाटिका सुन्दर, नव पल्लव हरिताई ।
रंग विरंग सुगन्धित सुमनन, चञ्चरीक मँड़राई ॥२॥
कुसुमित बेलि चढ़ी बहु विटपन, वर्धत सुन्दरताई ।
लगे तरुन बहु अरुन पीत फल, स्वाद प्रसिद्ध बड़ाई ॥३॥

---

१. मनी = मना = मुकत । २. अवनी = आनेवाली ।

जहँ तहँ सरित सरोवर सुन्दर, मणि सोपान सुहाई।
चारु चारु रँग सरसिज विकसित, कुमुदिनि लहि तरु छाँई ॥४॥
बायु बजत पत मोर नचत शत, शुक पिक बुलबुल गाई।
लोवा सस हँस मृगगन रस वस, कूदहिं मनहुँ उड़ाई ॥५॥
सारी हरी बेलि रंग बहु, अंग प्रकृति पहिराई।
सम्बुल केश वेश तिय स्तन, बेल खड़े अँगड़ाई ॥६॥
खंजन नयन मयन मृग दृग, मादकता मीन लखाई।
त्रिन विछाइ मृदु हरि मन पथिकन, सब बिधि भाइ रमाई ॥७।

[८४]

जनकपुर बाहरहूँ रुचिराई।
सर सरिता बन बाग वाटिका, निरखत मनहिं चुराई ॥१॥
देखे विपुल पहीपति डेरा, सीय स्वयम्बर आई।
लिहे साथ बहु सखा समोपी, सुन्दर साज सजाई ॥२॥
विश्वामित्र मुनीश्वर ढूँढ़त, स्थल जहाँ टिकाई।
जहँ एकान्त छाया जल सुविधा, प्राकृत सुन्दरताई ॥३॥
सब सुपास युक्त अति अनुपम, देखी एक अमराई।
कोशिक कहेउ मोर मन रम यहँ, यहीं टिकिअ रघुराई ॥४॥
प्रकृति स्वामिनी जनु अगुवानी, विरचेउ थल ठहराई।
तुम सुजान मन मान राम तौ, आसन यहीं लगाई ॥५॥
बदा अबहि की रहन सदा की, गुरु आज्ञा समुझाई।
वशी प्रेम सिय सखिन नेम हिय, राम टिके तेहि ठाँई ॥६॥
रसिक शिरोमनि शील प्रेम धनि, बनि दूलह स्थाई।
एक रूप जग भूप सखिन श्रुति, रिचन हेतु निर्माई ॥७॥

[८५]

राजा जनक मिले मुनि आई।
विश्वामित्रहिं प्रथम दण्डवत, करि मुनिगन शिर नाई ॥१॥
राम लखन तेहि अवसर तहँ लखि, देह गेह विसराई।
रहे विदेह कहावत झूँठो, अब सो दशा लहाई ॥२॥
धरि धीरज राजा सीरद्ध्वज, बाह्य चेतना लाई।
श्याम गौर मूरति एकटक लखु, चखु चखु निज निधि पाई ॥३॥
एकटक लख नृप लाज न रख भग, ब्रह्मानन्द लजाई।
होइ चकोर शिरमोर ज्ञान लख, राम चन्द्र ललचाई ॥४॥

मुनिहिं पूँछ नृप छूँछ ज्ञान मदे, सुत नृप वा मुनिराई।
तव तप फल वा ब्रह्म रूप ढल, भल भव जिव उबराई ॥५॥
मुनि कह सच यह सुनत राम, दिय माया हास लुभाई।
विश्वामित्र कहेउ दसरथ सुत, मख रख असुर नसाई ॥६॥

[८६]

जिव गुरु लछिमन चयन न पाई।
जनमि राम जन बसन जनकपुर, दर्शन बेगि लहाई ॥१॥
मन्द मन्द मुसकाइँ लखन, मुनिगन लखाइ लरिकाई।
विनवहिं यहि मिस राम चलन दिस, चहूँ दरस दिखलाई ॥२॥
जनन लालसा लखन राम, उर लखन लालसा छाई।
भक्तवछलता हुलसि राम उर, आज्ञा गुर मँगवाई ॥३॥
नाथ लखन उर चाह लखन पुर, कहहु तो लाउँ लखाई।
गुर कह पुर न जाउ देखन फुर, आपुहिं आव दिखाई ॥४॥
लखन हृदय लालसा बसा रह, जिव दें राम मिलाई।
अस गुर कस न बसाइअ उर पुर, राम दाहिने लाई ॥५॥

[८७]

देखन नगर चले दोउ भाई।
रूप राशि दोउ वय किशोर, अविनाशि चन्द्र छबि छाई ॥१॥
चले संग बहु बाल अंग लखि, ढंग मनोहरताई।
एकटक लख चकोर नर, नारी झक झरोख ललचाई ॥२॥
लहैं नयन सुख चहैं दुरैं नहिं, कहैं दूसरे ताँई।
अस शोभा कोउ पढ़ेउ सुनेउ नहिं, नयनन पड़ेउ लखाई ॥३॥
चकित लखत अगनित अनंग छबि, बिथकित कह न रुकाई।
देह शिथिल सुधि गेह मिथिल सब, दिल प्रिय पथिक बसाई ॥४॥
जस यहँ तस वहँ पुर महँ सब ठहँ, सब कहँ दोउ दिखाई।
दृग पुरवासी दोउ निवासी, दासी बनि अनि डाई ॥५॥

[८८]

लखत चलत दोउ जनक नगरिया।
वेद रिचन युवतिन प्रत्यक्ष हित, ब्रह्म रूप दुइ धरिया ॥१॥
कर्म ज्ञान दोउ नयन लखन, नृप सुवन कटोरी करिया।
अमृत रूप अनूप पियत मन, स्वाद स्नेहू हिय धरिया ॥२॥

मयन निवास नयन ते टँरियौ, मूरति दोऊ ढरिया।
लखन श्वेत महँ रहन लगेउ, विश्राम राम किय करिया ॥३॥
जनु उपासना विना वासना, कण्टक कीन डगरिया।
आवत गुरु लिय राम ब्रह्म पिय, जिव तिय सगरी बरिया ॥४॥
युवति चहति नहिं होन सवति सिय, रति परकीय पकरिया।
गौर कुँवर बर चहैं उर्मिला, चाहैं सिया सँवरिया ॥५॥

[८९]

दशरथ सुवन मनोहरताई।
रूप अनूप अलौकिक शोभा, ब्रह्मानन्द भगाई ॥१॥
आनन सुभग काम भग देखत, कोहउ कोमलताई।
निरखि सरलता मद हट, लोभ लखत ओंठन मधुराई ॥२॥
नयनन आकर्षन विमोह हर, मत्सर अन्य भुलाई।
देखत त्रिभुवन भूप रूप, त्रै ताप निशेष नसाई ॥३॥
भव भय भगत धनुष शर कर लखि, पद संसृति बिनसाई।
बोल लेत मन मोल, डोल माया निरखत मुसकाई ॥४॥
आनन नित्यानन्द विलोकत, ब्रह्मानन्द लुकाई।
राम घुमाइ जनकपुर जिव गुर, परमानन्द लुटाई ॥५॥
दामिनि बरन लखन आकर्षन, घन श्री राम समाई।
जिव परमोच्च दशा सिय, कारन लछिमन राम मिलाई ॥६॥
दशरथ सुवन निरखि नहिं त्रिभुवन, जिव गुन जेहि नहिं जाई।
राम रसायन जिव मिलाइ गुरु, लछिमन ब्रह्म बनाई ॥७॥

[९०]

जनकपुर फैली तुरत खवरिया।
नगर लखन चल नृप सुत आये, विश्वामित्र सँघरिया ॥१॥
सुनि ललचाये देखन धाये, पुर नर नारि सगरिया।
जे जैसेहिं तैसेहिं न बिलोकन, तनिक सँवरिया सँवरिया ॥२॥
नर नारी एक बारी धाये, भरि मग दोउ कतरिया।
युवती धाइ झरोखन लागीं, फुरती चढ़त अँटरिया ॥३॥
मानहुँ चन्द्र युगल उदये निज, छबि दुति जग रबि हरिया।
राम लखन नर नारि लखन भे, सकल चकोर चकोरिया ॥४॥
दीन मीन जल दरस दीन हित, कस दोउ बन्धु कमरिया।
अमित रूप जल प्रकट निकट लहि, मग्न मछरिया नजरिया ॥५॥

[६१]

चकित चित चितवहिं राम नगरिया।
धवल धाम जनु शशि विराम, सुठि सड़क बिचित्र बजरिया ॥१॥
सेनप सचिव महल भल करते, सेवक टहल हजरिया।
बहु भट रक्षा करते पुर सजि, धनु शर तेग कटरिया ॥२॥
चित्र बिचित्र वसन शुचि पहिरे, टोपी कोउ पगरिया।
सुन्दर धनी काम रति मूरति, बनी नगर नर नरिया ॥३॥
हय रवि रथ सम ऐरावत कम, गज नहिं शालन भरिया।
राज महल वैभव नहिं सम्भव, वर्णन इन्द्र चकरिया ॥४॥
धनु मख शाला अद्‌भुत विरचित, कंचन मंच अँटरिया।
जग स्रष्टा बनि द्रष्टा सिय पुर, गनि आश्चर्य न परिया ॥५॥

[६२]

नृपति सुत निरखाति युवति अँटरिया।
झाँकिन झुकि कोउ ऊपर रुकि, चुकि नहिं भुँकि नयन कटरिया ॥१॥
नृपति सुवन लख भवन सुंदरता, वस्तु विकात बजरिया।
मलहिं हाथ युवती नहिं लहती, कोउ रघुनाथ नजरिया ॥२॥
फेंकहि रंग रुमाल हिलावहिं, ख्याल न करहिं सँवरिया।
भईं मगन अभिराम राम छवि, निज स्वरूप मद टरिया ॥३॥
पावन निज करि युवति सुवन बरि, मन उमंग सब हरिया।
राम जितन मन युवति जतन ठन, सीता बदन निहरिया ॥४॥
सुमन चूमि फेंकि भूमि पग, चूमहिं चलत डगरिया।
सुमन बाग इमि माँग सामना, करना जनक कुमरिया ॥५॥

[६३]

राम लखन गुरु पाँय पलोटत।
जिन दोउ पद पंकज मन अलि शिव, मुनिगन ध्यानन लोटत ॥१॥
सोवहु बार बार गुरु आज्ञा, रुके प्रेम रस घोंटत।
पौढ़े राम चरन सरोज हिय, लावत लखन डबोटत ॥२॥
रहत हृदय नित तवहुँ सभय चित, मनहुँ बार बहु टोवत।
मेटत राम कहा नहिं लेटत, भल अवसर नहिं खोवत ॥३॥
जब लगि लखन जात नहिं लेटन, राम न निद्रा होवत।
यहि असमंजस होइ सेवा बस, लखन रुकत मन रोवत ॥४॥

पौढ़त मन रख चरन प्रेम चखें, हृदय नयन नित जोवत।
अरुन-शिखा ध्वानि सुनि उठि बैठत, जागृत स्वामि न सोवत ।।५।।

[६४]

परम रम्यता नृप फुलवाई।
जहँ कैलाश समाज सहित हर, गिरिजा रहत छिपाई ।।१।।
बने बिटप शिव बेलि शैलजा, चातक सिद्ध सजाई।
कोयल बने तपोधन, शुक योगी गन हरि गुन गाई ।।२।।
सुर चकोर किन्नर मयोर बानि, मुनि मधुकर गुंजाई।
सुकृती सकल बने विहंग जल, बाग मनोहरताई ।।३।।
बसत बसंत बाग नित नव, पल्लव फल सुमन सुहाई।
सर सोपान बनाव मणिन, गिरिजा प्रभाव दरसाई ।।४।।
सब सुख खानि भक्ति जासु जहँ, ठन निज शक्ति मिलाई।
उतरि तहाँ कैलाश रम्यता, रामस-बन्धु लुभाई ।।५।।

[६५]

जाइ कि कहि लुभाइ फुलवारी।
जनु विदेह कहँ रखन गेह महँ, प्रकृति मोहनी डारी ।।१।।
बाहर तरुवर बिच सर तहँ घर, निकटहिं शैल कुमारी।
दोऊ बीच नगीच जाति एक, सुमनन पाँति किआरी ।।२।।
तिनके बिच बिच नाली हित सिँच, मणिमय मेंढ़ सँवारी।
जहाँ बड़े पथ सुघर परे कम, लागे सरो कतारी ।।३।।
बसत वसंत सदा फल सब तरु, लदा न कुरितु बिचारी।
तैसेहिं पुष्पित विटप सकल रित, बिहँग बोल तरु डारी ।।४।।
बिहरन मृग खग निशि दिन एक सँग, विकसन सुमन न टारी।
देखि रैन दिन एक सँग दिशि भिन, लहि शशि प्रभा तमारी ।।५।।
त्रिविध वायु बह शीत घाम चह, लता भवन विस्तारी।
प्रकृति लगन अति दृश्य जगन इति, रचि जगपति ललकारी ।।६।।

[६६]

चहुँ दिशि देखि न कोउ लखाई।
मालिन कहिं लग सुमन उतारन, कारन हर्ष न पाई ।।१।।
ताही समय सयानि सखिन सँग, सिय आई फुलवाई।
गिरिजा पूजन चतुर सखिन सँग, सीता मातु पठाई ।।२।।

अति सप्रेम पूजि सिय गिरिजा, चरनन गइ लिपटाई।
निज स्वरूप अनुरूप सुभग वर, माँगेउ मनहिं मनाई ॥३॥
गिरिजा नेम प्रेम वश होइ किय, तुरतहिं उचित उपाई।
गई रही देखन फुलवाई, सखि सो लखि तहँ आई ॥४॥
अति हर्षित तनु पुलकित गद्‌गद, कंठ नयन जल छाई।
पूँछत कारन हर्ष बतावन, पाव न शक्ति बताई ॥५॥
थोड़ी देर बाद बोलेउ, खोलेउ कारन हिचकाई।
श्याम गोर दो वय किशोर, देखे निधि सुन्दरताई ॥६॥
गिरा अनयन नयन बिनु वानी, शोभा किमि कहि जाई।
सखिन कहेउ दोउ नृप सुत होइहहिं, जे कल नगर लुभाई ॥७॥
कीन्हे स्ववश सभी हिय सूरति, मूरति प्रिय बैठाई।
अवशि देखियहि योग्य देखवे, सखियन बात बढ़ाई ॥८॥
देखन नृपति सुवन सीता मन, तव अतिशय ललचाई।
चली अग्र करि तेहि समग्र सखि, जेहि देखेउ दोउ भाई ॥९॥

[९७]

नारद बचन सिया सुधि आई।
मिलिहि तुमहिं वर जेहि लखि सुन्दर, मोहिहउ यहि फुलवाई ॥१॥
प्रेम पुनीत भाँति यहि सिय हिय, सखिन संग हरषाई।
चली लखन नृप सुवन मगन मन, प्रीति पुरातन छाई ॥२॥
कंकन किंकिन नूपुर ध्वनि सुनि, मन रघुनाथ डुलाई।
कहेउ लखन दुन्दुभी महन मन, जीतन विश्व बजाई ॥३॥
अस कहि तेहि दिशि तकेउ लखेउ मुख, सिय सत चन्द्र सुहाई।
मन विभोर लोचन चकोर, निमि ठोर तजेउ सकुचाई ॥४॥
हृदय सराहत निज न मताहत, ताकत सुन्दरताई।
मनहुँ विरञ्चि सकल निपुनाई, विरचत विश्व लुभाई ॥५॥
सुन्दरता जनु इन से सुन्दर, छबि इन से छबि पाई।
हिय अकाश अवकाश विश्वपति, इन प्रकाश हित लाई ॥६॥
धीरज धरि मन राम लखन भन, निज रघुवंश बड़ाई।
नहिं हिय पर तिय केहि कारन जिय, मम सिय वसिय लुनाई ॥७॥

[९८]

चितवत चकित न सिय लखि पाये।
निरखति चहुँ दिसि नयन कमल जसि, पकडन जाल बिछाये। १॥

कहुँ न देखि चिन्तित बिसेखि भइ, देर कि डेर सिधाये ।
लता ओट तब जोट चन्द्रमा, सखियन सीय लखाये ॥२॥
श्यामल गोर किशोर बयस जस, शोभा सीम सजाये ।
गौर न गहि श्यामल मूरति लहि, निज निधि नयन लुभाये ॥३॥
कलपन की कलपन चुकि पलकन, रुकि लोचन ठहराये ।
जनु चकोर छोरी छोरी मन, भोरी चन्द्र तकाये ॥४॥
लोचन मग मूरति मानत सग, आनत हृदय बसाये ।
शर्म धर्म छिप मर्म लौट नहिं, पट पलकन तेहि ताये ॥५॥

[९९]

नृप सुत लता भवन बहिराये ।
जनु घन पटल निकल पूरन शशि, द्वै एक संग सुहाये ॥१॥
दोउ बीर शोभा शरीर, पित नील कमल सरसाये ।
सुषमा को उपमा नहिं कोऊ, कोटिन काम लजाये ॥२॥
मोर पंख शिर कुसुम कली घिर, गुच्छन केश सजाये ।
घुँघुराले काले सुकेश, अलि मतवाले जनु छाये ॥३॥
भाल तिलक श्रम विन्दु सितारे, श्रवनन भूषन भाये ।
सरसिज नयन बान मनसिज धनु, भृकुटि चढ़ाइ चलाये ॥४॥
चारु चिबुक नासिक कपोल, मन मोल लेत मुसकाये ।
अरुन अधर बिधि बिरचेउ नहिं कर, मुख छबि जो न लुभाये ॥५॥
कंबु कंठ काम करि भुज उर, माल मणिन चमकाये ।
चुनत सुमन कर दहिन वाम धर, दोना धनु कँधियाये ॥६॥
मनहुँ विचार मार सुमनन सर, मार न सर करि पाये ।
केहरि कटि पट पीत उड़त हटि, सखि संयम मृग खाये ॥७॥

[१००]

रखि धीरज सखि बोलि सयानी ।
सीता सन कह जानि हृदय तह, बाँह खींचि निज पानी ॥१॥
नृपति सुवन जिन जित छबि त्रिभुवन, चतुरानन छिन आनी ।
राज कुमारि सँभारि सुरति लखु, पुनि रखु ध्यान भवानी ॥२॥
सकुचित खोलेउ नयन अपरमित, शोभा देखेउ खानी ।
नख शिख नयन निहारि चयन तजि, छोभेउ पितु पन ठानी ॥३॥

परवश लखि सीता सन कह सखि, परम सभीता बानी।
पुनि आउब यहि बेरिया काली, गूढ़ गिरा सिय जानी ॥४॥
धरि बड़ि धीरज सुता सिरध्वज, चलि रामहिं उर आनी।
देखन मिस खग मृग पलटत पग, निरखन राम लुभानी ॥५॥
जानि जात सिय मसि सनेह हिय, चित्र राम प्रिय लानी।
मानि सिया अवलम्ब प्रिया शिव, बिन बिलम्ब नगिचानी ॥६॥

[१०१]

एक गति हित पति शैल कुमारी।
जय शिव भामिनि जग शिव स्वामिनि,दुति दामिनि छबि न्यारी ॥१॥
आदि मध्य अवसान ज्ञान नहिं, तव प्रभाव श्रुति चारी।
जय सिरजन पालन संहारन, विधि विधान सक टारी ॥२॥
होहिं पूजि पद कमल देवि भल, सुर नर सकल सुखारी।
जय सुख सृष्टि वृष्टि कर जन पर, दृष्टि सुमंगल कारी ॥३॥
शक्ति समस्ति खानि मति निर्मल, बानि सुदानि भिखारी।
जय मंगल कर गनप विपति हर, सुर सेनप महतारी ॥४॥
विश्व विमोहति मूरति सोहति, मति जोहति कामारी।
जय बर दायनि दे बर भायनि, पायनि परी पुजारी ॥५॥

[१०२]

विनति प्रनति सिय सुनति भवानी।
भई प्रेम बस गले माल खस, गुनति सुजस मुसकानी ॥१॥
हाथ शीश धरि कह अशीश ढरि, विनय प्रनय हरषानी।
जेहि मन राँचेउ मिल बर साँचेउ, बाँचेउ तब मम बानी ॥२॥
सुन्दर श्याम धाम शोभा, तव मन लोभा मैं जानी।
अति सुजान करुणानिधान, मति तोहिं लुभान गह पानी ॥३॥
नारद बचन सदा सुचि साँचा, मम जाँचा ले मानी।
सिय हिय सरसेउ लहि जेहि तरसेउ, पद परसेउ बर दानी ॥४॥
सुनि बरदान प्रदान माल लखि, चलिं सखि हर्ष रगानी।
सँग चलि तुलसी बनि अलि हुलसी, रचि पुलसी बर पानी[1] ॥५॥

---

१. बर पानी = बर प्राप्त हेतु।

[१०३]

गुरु चल सुमन लहल दोउ भाई।
राम लुभान लुनाई सिय चह, लखन राम मन भाई ॥१॥
छल नहिं राखेउ हिय की भाषेउ, कौशिक से रघुराई।
सुमन पाइ पूजा मुनि किय, पुनि दिय अशीश हरषाई ॥२॥
सुफल मनोरथ होंहि दोउ सुनि, राम लखन सुख पाई।
करि भोजन मुनि विज्ञानी पुनि, कथा पुरानि सुनाई ॥३॥
दोउ बीते दिन हित संध्या किन, मुनि आज्ञा लिन जाई।
सिय मुख सम शशि उदित पुरब दिशि, लहि सुख मुख न घुमाई ॥४॥
कोक कमल दुख देत मलिन मुख, शशि किमि सिय सुख दाई।
संध्या नहिं करि सीय गुनन भरि, चल गुरु डरि बिलमाई ॥५॥

[१०४]

विगत निशा जागे रघुराई।
कहेउ लखन उइ अरुन विलोकन, कमल कोक सुखदाई ॥१॥
कह लछिमन प्रभाव प्रभु अरुनोदय लखाव प्रकटाई।
सकुचे कुमुद मलिन उडुगन नृप, तव आगमन सुनाई ॥२॥
जद्यपि सब नृप नखत चमक, तम निशि धनु सक न हटाई।
जग अकाश तव यश प्रकाश रवि, तम विनाश धनु पाई ॥३॥
कमल कोक मधुकर विशोक खग, निशि बीते हरषाई।
तैसेहिं तव जन सुख मनिहैं मन, प्रभु सन धनु भन्जाई ॥४॥
धनु विघटन तव भुज बल प्रगटन, उद्‌घाटन उपजाई।
राम कही तिय बार[1] सही किय जिव गुरु सिय अपनाई ॥५॥

[१०५]

शतानन्द कहँ जनक पठाये।
विश्वामित्र सँदेश जनक सुनि, दोऊ वन्धु बुलाये ॥१॥
परसत पग चल राम विलोकत, शतानन्द सकुचाये।
मातु उधारन लख कृतज्ञता, बहु बारन शिर नाये ॥२॥
शतानन्द पद बन्दि बन्धु दोउ, गुरु समीप बैठाये।
गुरु कह० चलिये सीय स्वयंबर, लेन पुरोहित आये ॥३॥

---

१. रघुनाथ जी ने सीता जी को अपनाने के लिये तीन बार इच्छा प्रकट की—१. पुष्प वाटिका में, २. संध्या समय, ३. अरुणोदय समय।

ईश सफल कर केहि कह लछिमन, जेहि अशीश प्रभु पाये।
बर बानी सुनि हरषे सब मुनि, आशीर्वाद सुनाये ॥४॥
रंग भूमि दोउ भाई आवत, पुरजन खबरि लहाये।
नर नारी बृध बाल युवा, गृह काज हुवा बिन धाये ॥५॥
राज सेवकन उचित आसनन, बैठाये सब भाये।
राज कुँवर आये तेहि अवसर, तन मनहर छबि छाये ॥६॥

[१०६]

कोटि अनँग दोउ सुभग सुहाये।
शरद पूर्ण चन्द्र निन्दक मुख, नीरज नयन लजाये ॥१॥
वशीकरन मनमथ मन चितवन, कुण्डल श्रवन डुलाये।
कल कपोल मृदु बोल लेइ मन, मोल मधुर मुसकाये ॥२॥
भृकुटि विकट मनहर नासिक दर, दुति दामिनी गिराये।
सुन्दर चिबुक अधर अरुणारे, भयेउ न जो ललचाये ॥३॥
काले कच घुँघुराले जनु अलि, मतवाले निवसाये।
भाल विशाल तिलक उर मणिमय, माल ज्योति झलकाये ॥४॥
वृषभ कंध चाल केहरि, भुज कोटिन करि बल पाये।
कटि तूणीर दहिन कर शर, धनु वायें काँध सजाये ॥५॥
नख शिख मञ्जु महा छबि दुइ रबि, दुति नृप नखत छिपाये।
हरषे जनक देखि दोउ भाई, आइ मुनिहिं शिर नाये ॥६॥

[१०७]

निज पन नृप मुनि कथा सुनाई।
राज कुँवर सँग मुनिहिं साथ लै, रंग अवनि दिखलाई ॥१॥
जहँ जहँ जाइँ कुँवर दोउ सुन्दर, सब कोउ चकित तकाई।
भल रचना मुनि नृप सन कहेऊ, जनक महा सुख पाई ॥२॥
सब मंचन तें एक मंच अति, विशद विशाल लखाई।
मुनि समेत दोउ बन्धु ताहि नृप, बैठाये लै जाई ॥३॥
शोभा सिन्धु अगाध बन्धु दोउ, तेज कि द्वै रबि आई।
उडुगन कुमुद नृपति भे हत दुति, सकुचित हर्ष गवाँई ॥४॥
कोकी कोक सुखी पुरजन, नृप स्वजन कमल विकसाई।
असुर उलूक वेष नृप छिप, खग कलरव मुनिन मचाई ॥५॥

[१०८]

द्वै राकेश सुदेश सुहाई ।
उडुगन नृपति मलीन भये अति, निज छबि तेज गवाँई ॥१॥
श्याम गौर शिर मौर सुँदरता, बल बीरता मिलाई ।
जाकी रही भावना जस तस, लख स्वरूप दोउ भाई ॥२॥
लखहिं भयानक कुटिल नृपति जे, असुर काल दरसाई ।
पुरबासिन नरभूषन नारिन, रूप श्रृँगार बनाई ॥३॥
जनक जाति प्रिय स्वजन रानि नृप, शिशु सम प्रीति सगाई ।
सुख सनेह जेहि सीय बिलोकइ, सकइ कि कोइ कहाई ॥४॥
हरि भक्तन देखे दोउ भाई, इष्टदेव सुखदाई ।
जिन दोउ एक रूप दरसाये, तिन अव-दशा बताई ॥५॥
विदुषन लखेउ विराट रूप, मुख कर पद पर न गिनाई ।
योगिन परम तत्व शान्त शुध, सम प्रकाश अधिकाई ॥६॥
जाकी जस रुचि कोउ न तस हुँचि, रूप लखेउ रघुराई ।
सर्वेश्वर हृदयेश्वर सियवर, एक स्वर सिद्ध सदाई ॥७॥

[१०९]

राम लखन लखि नृप हिय हारे ।
लखि रवि राम दीप भे लखि, राकेश लखन भे तारे ॥१॥
सकिहैं राम भञ्जि भव धनु अस, सब जनु हृदय विचारे ।
मेलिहि सिय जयमाल राम हीं, चह धनु टरै न टारे ॥२॥
अस विचारि निज निज गृह गवनहु, सज्जन नृपति पुकारे ।
नृप अविवेकी कह कस ब्याइहि, सिय कोउ जियत हमारे ॥३॥
नृपति सुजन कह जीति सकइ को, त्रिभुवन दशरथ बारे ।
इन दोउ नित्य शम्भु उर धारे, धनि हम भाग्य निहारे ॥४॥
तेहि अवसर सखि लै आईं सिय, सुन्दर सहज सँवारे ।
सुर हरषे विमान ते बरषे, सुमन बजाइ नगारे ॥५॥

[११०]

का बरनिय सिय सुन्दरताई ।
तेज रूप साँचा अनूप ढलि, छबि स्वरूप प्रकटाई ॥१॥
नारि प्रकृतिक नारि न मोहै, प्रकृति नियम स्थाई ।
रंग अवनि तिय मोहीं लखि सिय, रूप अलौकिकताई ॥२॥

जो सिय सुषमा होइ प्राकृतिक, उपमा प्रकृति बताई।
माँगे प्रकृति स्वामिनी सिय हिय, निज अँग ढँग विरचाई ॥३॥
एक रूप कोउ विरचि न पायेउ, विविध स्वरूप सजाई।
जल थल नभ चर जिव कोउ जड़ कर, अँग अनुहर कछु लाई ॥४॥
मधुप अवलि अहिनी अनंग धनु, कमल नवल अरुनाई।
खंजन शिशु मृग मीन चन्द्रमा, राका शरद उआई ॥५॥
शुक पिक कुन्द कली दाड़िम, दामिनि बिम्बक सु-पकाई।
श्रीफल केहरि कदलि कनक करि, अँग छबि कछु फबि आई ॥६॥
देव यक्ष गंधर्व नाग नर किन्नर, कुँवरि सुहाई।
जेहि घर शेष न छवि विशेष सिय, गनि चल वल अजमाई ॥७॥
उमा रमा शारद सुन्दरता, सब ब्रह्माण्ड मिलाई।
अंश अधूर कि उतर पूर, सिय छबि सु-दूर छुइ पाई ॥८॥
जेहि शोभा मुख तुल न ब्रह्म सुख, सो सिय देखि लुभाई।
गुरु न बन्धु लजि भजि विवेक तजि बरनेउ सोइ सुनाई ॥९॥

[१११]

भुइँ रँग सखि सँग सिय पगु धारी।
अतुलित छबि सँग गावैं सखि फबि, लखि मोहे नर नारी ॥१॥
कर जयमाल चाल गज तन पर, लाल रेशमी सारी।
उडुगन मध्य पूर्ण शशि उय किय, रंग भूमि उजियारी ॥२॥
सब नृप नयन चकोर विलोकहिं, एकटक पलक न टारी।
नृपन तकत तजि राम विलोकत, भई चकोरि कुमारी ॥३॥
पुरजन स्वजन मातु पितु गुरुजन, लजि विवेक उर धारी।
राम अनूप रूप हिय रखि सिय, सखि तन लागि निहारी ॥४॥
शशि सुवेश सिय घन दिनेश किय मुनिन राम दीदारी।
छबि शशि शोभा रबि सब लोभा, बिनवहिं ब्याह पुरारी ॥५॥

[११२]

आज्ञा जनक बन्दिजन पाई।
नृप समाज प्रन जनक राम, दोउ भुजा उठाइ सुनाई ॥१॥
धनु जु राहु शशि ग्रसेउ बाहु यश, हर गिरि मेरु उठाई।
जो कोइ तोरइ बरइ जानकी, विजई विश्व कहाई ॥२॥

एक एक नृप कर भाँट भनहिं वर, कुल यश मान बड़ाई।
उत्तेजित होइ तमकि दमकि उठि, चल धनु बल अजमाई ॥३॥
उठइ न धनु बैठहिं नहिं ऐंठहिं, अव लें शीश झुकाई।
ऐसेहिं करि नृप सब समाज भरि, बैठे धनु न हिलाई ॥४॥
करि विचार नृप दस हजार, बल एकहिं बार लगाई।
तिल भर उठेउ न धनु विरञ्चि जनु, सक उठाइ न बनाइ ॥५॥
रखत टेक पन तजि विवेक मन, जनक बोल अकुलाई।
द्वीप द्वीप भूपति सूर असुरउ, नृप तनु धरि भे आई ॥६॥
तिल नहिं धनु हिल सबहीं बल मिल, जग नहिं बीर लखाई।
जौ अस ज्ञनतेउँ पन नहि ठनतेउँ, कुँवरि कुँवारि रखाई ॥७॥

[११३]

माखे लखन वचन लग गारी।
रदपट फरकत नयनन दरसत, मानहुँ प्रलय बिचारी ॥१॥
बयनन तीख तिरीछे नयनन, राजा जनक निहारी।
बोले भूपति अज्ञानी मति, बानी कह न सँभारी ॥२॥
रघुकुल-भूषन लखि किय दूषन, जग विन बीर पुकारी।
है दम काँचे घट सम जग हम, लै उठाइ दै मारी ॥३॥
मूलक मेरु तूरि सक जौ नहिं, तौ नहिं कर धनु धारी।
का बल भाषउँ रज सम राखउँ, शिर गिरि लाखउँ भारी ॥४॥
देखन चह उठाइ पल महँ, धनु कहँ चढ़ाइ तुरि डारी।
डरउँ कि भरउँ न फल तोरन धनु, यह बनु मम लाचारी ॥५॥
करउँ सकल जेहि वल सो यहि थल, प्रकट समक्ष तुम्हारी।
राजन भे तुम भाजन तर्जन, सिरजन विश्व बिसारी ॥६॥
भुइँ कँप थर थर जनक जोर कर, देहिं मुनीश्वर तारी।
सखिन सहित सिय मुदित, राम पुलकित हित लखन बिठारी ॥७॥

[११४]

धनि लछिमन गुरु जीव सगाई।
जनक राज कहँ राम लखाये, मिस अपना रिस आई ॥१॥
शिव धनु रावन नहिं बानासुर, साहस कीन्ह उठाई।
ताहि उठाइ चढ़ाइ धाइ सौ, योजन कह लै जाई ॥२॥
कमल नाल जिमि कह तोरन, फोरन ब्रह्माण्ड गिराई।
मूलक मेरु तोरि सक जौ नहिं, कर नहिं धनुष धराई ॥३॥

यह सब करि सक राम कृपा हीं, रामहिं को बल पाई।
यहि भाषन जगदीश्वर आसन, राम जनक दरसाई ॥४॥
जनक बतावत राम भाव निज, विश्वामित्र भ्रमाई।
बीच नृपन गुरु लखन जतन किय, जनक वोध रघुराई ॥५॥
यह प्रकरन वन जीव लखन गुरु, बढ़ि हरि करन मिताई।
राम सुहाइ न निज जनाइ चह, गुरु द्वारा अपनाई ॥६॥
यह लछिमन उपकार जनक जेहि, सब प्रकार समुझाई।
बिदा होत कह राम तुहीं जेहि, काम जोग कोइ भाई ॥७॥

[११५]

विश्वामित्र सुअवसर पाई।
कहेउ राम सुठि उठि धनु भञ्जउ, जनक विपति जेहि जाई ॥१॥
सुनि गुरु बचन नाइ शिर चरनन, हर्ष विषाद न लाई।
सहज सुभाय उठाय ठवनि जेहि, लखि लजाय मृगराई ॥२॥
प्रात पतंग राम उदयागिरि, मंच उतंग लखाई।
विकसे सुजन सरोज भृँग दृग निकसे सुख मँड़राई ॥३॥
नृपन आस निशि नसेउ बचन कटु, नखत गये अलसाई।
सकुचित कुमुद मानि नृप कपटी, गये उलूक लुकाई ॥४॥
भये विशोक कोक पुर परि-जन, देव सुमन बरसाई।
सहज चले जस राम भले तस, नहिं वस गज सु चलाई ॥५॥

[११६]

जनक रानि बिलखानि लखाई।
उमड़ि प्रीति शिशु जग्य मुनी यशु, असुरन हनन भुलाई ॥१॥
कह सखि सन अस कोउ न भल जन, विश्वामित्र सुझाई।
रावन बान छुवा न धनुष, किमि बाल मनुष तुरि पाई ॥२॥
ज्ञानी नृपति सुठानो कुमति, न जानो विधि गति जाई।
बैठे सभा चतुर अति पर नहिं, नृपति कोई समुझाई ॥३॥
रानी आतुर लखि सखि चातुर, रखि उपमा दरसाई।
तेजवन्त कर अन्त न महिमा, निज लघु बड़ प्रभुताई ॥४॥
कुम्भज सिन्धु सूर्य मण्डल जग, अंकुश यश गज गाई।
लघु मन्तर बड़ देव निरन्तर, वश जग अनँग एकाई ॥५॥

कह हँसाइ संशय नसाइ धनु, अवशि तुरव रघुराई।
सुनत बयन हिय रानि सुनयन, प्रतीति प्रीत लहराई।।६।।

[११७]

राम विलोकि सीय अकुलाई।
कहँ कुलिशहुँ कठोर शिव धनु कहँ, कुसुमउ कोमलताई।।१।।
लज्जा वश संशय व्याकुलता, नहिं काहू कहि आई।
कीन्ह पिता पन बूझि न मम मन, समुझत हृदय कुढ़ाई।।२।।
गिरिजा शम्भु गणेश मनावइ, सुफल करहु सेवकाई।
होहि हरुअ धनु राम विलोकत, छुवत तुरत टुटि जाई।।३।।
पुनि पुनि निरखि राम कोमलता, मन न भरोस लहाई।
लखि न प्रत्यक्ष सहाय गही, अन्तर्यामी शरनाई।।४।।
उर पुर बसहु सदा सब जिव, पुरवहु जो सत्य चहाई।
मन क्रम बचन बनन चह दासी, सुखरासी रघुराई।।५।।
चितइ राम तन ठन सनेह पन, राम सुजान जनाई।
सिय लखि तकि धनु गरुड़ ब्याल जनु, बल विश्वास दिलाई।।६।।
तेहि छन लखन कठिन धनु भंजन, राम इशारा पाई।
दिशि गज कमठ कणीश कोल, होइ सजग न डोल चेताई।।७।।

[११८]

राम न सहि सक सिय बिकलाई।
जेहि एकइ रुचि पद सेवन सुचि, राम गई अपनाई।।१।।
मन लुभान सिय लख सुजान, विकलान कि प्रान गवाँई।
का वर्षा फल कृषि सुखानि, उर आनि न कल चल धाई।।२।।
गुरुहिं मनहिं मन शिवहिं सपरिजन, सादर शीश नवाई।
बिन बिलम्ब राघव प्रलम्ब भुज, लाघव धनुष उठाई।।३।।
उठत दमक धनु झुकत चमक, नहिं कोउ सक साफ़ लखाई।
होत खंड भेउ ध्वनि प्रचंड, सो सब जग परेउ सुनाई।।४।।
डोलेउ धरा धरा न धीर कोउ, लंक सशंक सवाई।
कारन भास न, लख अकास सब, करइ प्रयास जनाई।।५।।
धनुष खंड दोउ रहे सभी कोउ, जोउ राम महि डाई।
हर्ष मगन जग वर्ष गगन लग, सुमन निसान बजाई।।६।।

सूखत कृषि जनु पानि रानि, भुइँ डूबत जनक लहाई।
लखन मगन मुनि स्वाति नीर, चातकी जानकी पाई ॥७॥

[११९]

टूटे धनुष हर्ष अति छाई।
गगन मगन सुर भूमि लगन पुर, जन जय झूमि मचाई ॥१॥
बाजै नभ गहगह निसान, सुर बधु नचान गुन गाई।
ब्रह्मादिक सुर मुनिवर रघुबर, गुन कहि सुमन गिराई ॥२॥
झाँझ मृदंग शंख शहनाई, लोग सुढंग बजाई।
हय गय सोन सुभूषन मनिमय, पट धन धान्य लुटाई ॥३॥
शतानन्द तब आयसु दिय सिय, चली जहाँ रघुराई।
संग सखी सुन्दरी मनोहर, गावहिं गीत सुहाई ॥४॥
सीता कर जयमाल सुघर मेहि, विश्व विजय दरसाई।
निरखि राम हिय चित्र एक सिय, गति विचित्र ठहराई ॥५॥
लखि सखि चतुर श्रवन लगि आतुर, सिय सप्रेम समुझाई।
विलखु न सिय लखु राम चित्र हिय, तोर पवित्र बनाई ॥६॥
घूरति लखि हिय निज मूरति सिय, परमानन्द समाई।
बिन विराम जयमाल राम सिय, होइ निहाल पहिराई ॥७॥

[१२०]

शोभा राम आज अपार।
छबि सखीगन महाछबि सिय, संग सजत शृँगार ॥१॥
रुचिर उर जयमाल कर वर, विश्व विजय प्रचार।
प्रकृति सब माधुर्य सँग, ऐश्वर्य ब्रह्म सँभार ॥२॥
शरद चन्द विहाय हिय तम, धाय राहु सँहार।
करन तुलना राम चल लखि, हार छबि लिख हार ॥३॥
शिव न दिय हिय गम शोभा मार क्षोभा मार।
राम रूप अनूप छविमय, नित्य हिरदय धार ॥४॥
अंग अंग सुढंग रचना, विधि न सिधि सुविचार।
दरस सिय पिय अमिय पिय, अमरत्व हिय सञ्चार ॥५॥

[१२१]

पगु पिय लगु सिय सखि समुझाई।
गति गौतम तिय सुरति करति सिय, पगु न छुवति रघुराई ॥१॥

यह लखि तथा विलम्ब सौचि, जयमाल राम पहिराई।
सिय अभिलाषे उठ नृप माखे, क्रूर कुटिल तमकाई ॥२॥
वोलहिं लेहु छुड़ाइ सीय धरि, बाँधउ दूनउ भाई।
तोरे धनुष विवाह कि होइ, बिना रन हमहिं हराई ॥३॥
जीतहु समर सहित दोउ नृप सुत, आवै जनक सहाई।
साधु भूप कह मुख लगाइ मसि, कूप न कसि डुब जाई ॥४॥
बल वीरता कि धनु हिल नहिं तिल, सब मिल शक्ति लगाई।
सोई नीच कि लहेउ बीच वा मीच बढ़ाइ लखाई ॥५॥
जगत पिता रघुवीर विलोकउ, सीस तकउ जग माई।
लछिमन क्रोधानल परि जरि पल, मिटहु न सलभ बनाई ॥६॥
राम चले गुरु पहँ रखि मन महँ, सीय सनेह सुहाई।
केहरि लखन लखत नृप गजगन, गत छन मारि गिराई ॥७॥

[१२२]

लखु मन बानि जानि दोउ भाई।
दोउ पुरातन दोउ सनातन, दोउ जिव अमित मिताई ॥१॥
एक ईश एक ईश कोटि जिव, दोउ प्रबल प्रभुताई।
सब के मन की जानइ एक मन, सिय रघुवीर बचाई ॥२॥
एक दूजे नित संगी ईश्वर, एक अनन्त कहाई।
स्वामी सेवक दोउ समबन्धित ब्रह्म जीव प्रियताई ॥३॥
एक - आराध्य जीव गुरु दूजो, जिव साधना लगाई।
एक नित कोमल एक हित हिय भल, बाह्य कठोर लखाई ॥४॥
गुरु चलि डोले राम न बोले, नृपन करत कुटिलाई।
भरा राम हिय सच सनेह सिय, सुख सत लोक बराई ॥५॥
होइ छूँछ हिय सुझ विवाह कुछ, वा बुझ श्रवन सुनाई।
कारन आन कि राम जान, भूपन भगान भृगुराई ॥६॥
लखनउ जान न तबहुँ मान, यश राम पताक गिराई।
नृपन दीन नहि पुण्य छीन सहि, नयन तरेरि तकाई ॥७॥

[१२३]

यहि अवसर तहँ भृगुवर आये।
जनक न जाती शिव धनु थाती, टुटत सुनत उठि धाये ॥१॥

गौर शरीर विभूति त्रिपुंड, विशाल सुभाल सुहाये।
शीश जटा मयंक मोह मुख, कोह लालिमा लाये ॥२॥
भृकुटी टेंढ़ि सुमेंढ़ि सुभल दृग, कमल अरुन रिसियाये।
वृषभ कन्ध भुज उर विशाल, उपवीत माल चमकाये ॥३॥
बाँध तूणि दुइ काँध धनुष वर, कर कुठार दमकाये।
कुटिल नृपन हित मनहुँ शान्त चित, वृत्त सुबीर बनाये ॥४॥
उठे सकल भय विकल भूप कहि, पिता नाम शिर नाये।
जनक नाइ शिर सिय बुलाइ ठिर, आशिर बचन लहाये ॥५॥
विश्वामित्र मिले पवित्र पद, शिर दोउ बन्धु धराये।
कह दशरथ सुत लखि दोउ अद्‌भुत, छबि दृग राम टिकाये ॥६॥

[१२४]

भृगुपति पूँछेउ जनक पुकारी।
जानत हूँ पूँछेउ केहि कारन, नृपति भीड़ भेउ भारी ॥१॥
समाचार सब जनक कहेउ पुनि, तकेउ तोरि धनु डारी।
कह जड़ जनक दिखाउ वेगि, शिव धनु तूरन अपकारी ॥२॥
नतु जहँ लगि तव राज उलटि, डारिहौं भूमि मैं सारी।
सुनि हरषे अति कुटिल भूप, डरपे सज्जन नर नारी ॥३॥
उतर न देत जनक भयभीत, बहुत सिय सह महतारी।
आगे आइ राम बोले, उर हर्ष विषाद न धारी ॥४॥
नाथ तुम्हारइ दास होइअ कोउ, शिव धनु टुट जेहि नारी।
आयसु होइ सो कहिहि मोहिं, बोले रिसाइ भूपारी।
नहीं दासता शत्रु कर्म यह, करि मोहिं लड़इ करारी ॥५॥
सहसबाहु सम मोर शत्रु सो, बाहर आव निकारी।
नतु सँहारब सकल नृपन सुनि, आये लखन विचारी ॥६॥
परशुधरहिं अपमानत बोले, बहु मुसकाइ ढिठारी।
बहु धनुहीं तोरेउँ नहिं बोलेउ, यहि रिस कस न सँभारी ॥७॥

[१२५]

उत्तर प्रतिउत्तर न ओराई।
परशुराम संवाद लखन बन, जोग विनोद सदाई ॥१॥
दोषारोपण परशुराम करि, कोप प्रताप बताई।
उचित उतर मुसकाइ लखन तेहि, करते जोग्य हँसाई ॥२॥

बढ़त कोप आरोप करत अनि, वा प्रताप निज गाई।
लछिमन उत्तर देत अभय, रिस परशुराम अधिकाई ॥३॥
धनु तोरन आरोप उतर, बहु धनु तोरेउँ लरिकाँई।
अनि धनु सम नहिं शिव धनु उत्तर, आपुहिं टूट छुवाई ॥४॥
सहसबाहु भुज काटन परशु, दिखाइ बानि बतलाई।
लखन कहेउ न कुम्हड़ बतिया मैं, निरखि जनेउ बचाई ॥५॥
कौशिक से कह लखन जियत चह, कहि प्रताप समुझाई।
लखन कहेउ तुम्हरो प्रताप, तुम्ह बिनु न अन्य कहि पाई ॥६॥
परशु उठाइ कहा नहिं मारउँ, कौशिक शील सगाई।
लखन कहा सन्सार विदित जो, शील मातु दिखलाई ॥७॥
मारन परशु उठायेउ लोगन, हाहाकार मचाई।
लखन कहेउ नृप द्रोही मरतेउँ, ब्राह्मन होत बराई ॥८॥
कहेउ राम तव भ्राता पापी, तव सभ्यता न लाई।
लखन कहा धनु जुड़वाइय बैठिय होय पाँय पिराई ॥९॥
कहा न मारउँ दया करत, मोहिं भयेउ दया दुखदाई।
लखन कहेउ भल बचन दया दह, हृदय क्रोध ठंढाई ॥१०॥
बोले जनक हटावहु बालक, नतु यह प्रान गवाँई।
लखन विहँसि कह लखन न कोउ चह, मूँदन आँखि उपाई ॥११॥
लखन उत्तर प्रतिबार सुनत, बढ़ि परशुराम रिसियाई।
मारन चाहत हाथ उठत नहिं, बार बार पछिताई ॥१२॥
यहि विधि जिव गुरु लखन परशुधरु अति गरु गर्व हटाई।
परम अभय निज बल पद सरसिज, रामहिं सबहिं जनाई ॥१३॥

[१२६]

लखु रघुराउ सुभाउ सुहाई।
बार बार ललकार परशुधर, राम विनीत मनाई ॥१॥
को धनु भंजेउ, दास, आव विलगाव, राम बहिराई।
लखन करन उत्तर प्रति-उत्तर, रघुबर क्षमा मँगाई ॥२॥
भृगुपति कोप कृशानु लखन वच, आहुति परे बढ़ाई।
राम बचन कोमल शीतल जल, बरसत बहुत बुझाई ॥३॥
राम कहेउ हम हीं अपराधी, लखनु न धनु नियराई।
कृपा चाह कोप बध बाँधव, करिअ दास समुझाई ॥४॥

कहेउ लड़उ कह राम न सोहइ, सेवक स्वामि लड़ाई।
विप्र बराइ कोइ ललकारइ, समर तुरन्त भिड़ाई ॥५॥
देव दनुज भूपति भट कोउ होउ, कालउ रन न पराई।
विप्र वंश तव अस प्रभुताई, अभय कि सदय डराई ॥६॥
बचन सुनत वर समुझ परशुधर, ब्रह्म कि अवतरि आई।
कहेउ कि राम चढ़ावहु यह धनु, संशय मोर नसाई ॥७॥
देत चाप आपुही गयेउ चलि, मुनि भलि परिचय पाई।
होइ हरषित अति कर लग अस्तुति, जयति जयति रघुराई ॥८॥

[१२७]

जयति ब्रह्म रघुकुल अवतारी।
दहन दनुज बन अनल, मनुज जन, बनज भानु हितकारी ॥१॥
पालन विप्र धेनु सुर सज्जन, शालन खल व्यभिचारी।
अधम उधारन भव भय टारन, परन शरन उपकारी ॥२॥
जन रंजन सज्जन अघ गंजन, कोह मोह मद हारी।
विनय शील करुना गुन सागर, वचनागर अविकारी ॥३॥
सेवक सुखद अभय पद प्रद, अति विमद विरद दुख दारी।
गति मतंग दोउ छवि सुढंग, वपु अरि अनंग उर धारी ॥४॥
बहुत कहेउँ अनुचित विसारु चित, नित पद पूज्य पुरारी।
गयेउ मोह मद लखेउँ राम पद, मानद दीन दुखारी ॥५॥
भन्य विनय मिट क्रोध जन्य भय, लखत शरन्य सुखारी।
जयति जयति जगपति रघुपति कहि, भृगुपति विपिन सिधारी ॥६॥

[१२८]

गति भृगुपति नृप कुटिल डराये।
जंग उमंग भंग रंग भुँइ, गवँहिं असंग पराये ॥१॥
बर्षहिं सुमन निसान बजावहिं, हर्षहिं सुर गुन गाये।
पुर बासिन मिट शूल, बाजने सुख अनुकूल बजाये ॥२॥
थान थान मिलि युवति ठान, कल गान अपान भुलाये।
पुर नर मनहर सब मंगलकर, दर दर साज सजाये ॥३॥
सुख विदेह जनु वित्त मेह, अति रंक गेह बरसाये।
सिय सुख घन दुख निकरि भये मुख शशि चकोरि दरसाये ॥४॥

जनक मोद भर कौशिक पद पर, अब का कर बतलाये।
मुनि कह दशरथ कहँ बरात सह, करि आग्रह बुलवाये ॥५॥
नृप सुनाइ दूतन बुलाइ, समुझाइ तुरन्त पठाये।
सचिव बुलाइ सजाइ नगर, सरसाइ रजाइ सुनाये ॥६॥

[१२९]

सोधि सुदिन पुर गुनिन सजाई।
बाग बाट गृह हाट न कहुँ कोउ, पुरी विराट वचाई ॥१॥
कदली खंभ हेम पात फल, हरित मणिन विरचाई।
कनक कलित बनि बेलि ललित, असली नहिं भेद लखाई ॥२॥
माणिक मरकत कुलिश अँतरगत, मणिन सुनलिन खिलाई।
गुंजहिं भृंग विहंग बनाये, कूजहिं पवन उड़ाई ॥३॥
नील मणिन तरु आम गलिन लगि, कनक बौर लटकाई।
बंदनवारि ध्वजा सँवार, प्रति द्वार सुचौक पुराई ॥४॥
प्रतिमा सुर बनु दें अशीश जनु, दोउ कर सुढर उठाई।
मणिमय दीप रखे समीप लखि, दिग् महीप ललचाई ॥५॥
मनहुँ सकल साकेत संपदा, उठि आई रुचिराई।
जो सुख साज विराज नीच गृह, लखि सुरराज सिहाई ॥६॥

[१३०]

पहुँचे दूत अवधपुर आई।
देखेउ बाट हाट घर मनहर, जनक नगर अधिकाई ॥१॥
भूप द्वार पथ कहत मनोरथ, सुनि दशरथ बुलवाई।
करि प्रनाम दिय पाति भूप लिय, स्वयं सोहाति लखाई ॥२॥
पढ़ि हरषात सुपुलकित गात, नयन जल बयन रुकाई।
पाति हाथ यश सुतन माथ, हिय लखन साथ रघुराई ॥३॥
राम चरन रत सुधि शुभ तरसत, हरषत सभा सुनाई।
नित सुधि जोहत खेलतहुँ टोहत, मोहत भरत लहाई ॥४॥
पूँछत धाई सँग हित भाई, नृप चित पढ़ि दोहराई।
सुनि हरषे जल नयनन बरषे, सब निखे सुख पाई ॥५॥

[१३१]

मित न भरत चित हित रघुराई।
जानन राम खबरि पितु आई, हबरि खेल तजि धाई ॥१॥

लड़िकन बहुत प्रेम खेलन तेहिं, महँ अनि नेम नसाई।
भरतहिं हिय अँदेस राम तेहिं, सुनन सँदेस सिधाई ॥२॥
खेलन महँ तन मन बुधि बल जहँ, लगि सब बाल लगाई।
इन्हन परे चित भरत धरे, नहिं टरे राम प्रियताई ॥३॥
कहेउ न तुलसी किमि हिय हुलसी, खुल सो बात दृढ़ाई।
मोहिं लखि परत कि चित अस भरत, पवित्र सुचित्र बनाई ॥४॥
मम मन बाँचत नटिनी नाचत, राँचत सुधि सिरजाई।
तेहि गँभीर हित कमठ नीर, हिय अंड पीर दरसाई ॥५॥

[१३२]

निकट बिठाइ पूँछ नृप दूतन।
भइया कहउ कुशल मम बारे, श्याम गौर वय नूतन ॥१॥
धनुष बान हाथ कौशिक मुनि, साथ कि लख मम पूतन।
जनक राज किमि दोउ पहिचाने, बोचे अगनित धूतन ॥२॥
दूतन कहेउ सुनहु नृपमणि तव, भाग्य कि सक कोउ कूतन।
राम लखन सुत जिन तुल शीतल, रवि मलीन शशिहूँ तन ॥३॥
नृप सँग आये शैल उठाये हर, सुमेरु निज बूतन।
तिल भर हिल न शंभु धनु छुइ जनु, सब बल लागेउ सूतन ॥४॥
तेहि समाज महराज शंभु धनु, टुटेउ राम के छूतन।
भृगुपति आये राम लखाये, बल भागे जस भूतन ॥५॥
राजन राम अतुल बल जिमि तिमि, लखनउ तेज अनूठन।
नृप गज साँपत भय सब काँपत, केहरि लखनहिं रूठन ॥६॥
राजन तव सुत लखे तेज बल, सब जग लागत जूँठन।
बचन रचन मन नृपति मगन धन, लगे लुटावन मूँठन ॥७॥

[१३३]

नृप पाती वशिष्ट दिय जाई।
सादर दूत लिवाइ संग, विस्तार प्रसंग कहाई ॥१॥
हर्षित गुरु कह पुन्य पुरुष कहँ, जग महँ सब सुख छाई।
तुम सम पुन्य न गन्य अन्य जग, राम सरिस सुत पाई ॥२॥
तुमहिं तात शुभ दिवस रात अब, चलहु बरात सजाई।
नृप गृह जाइ बुलाइ रानि चिठि, जनक पढ़ाइ सुनाई ॥३॥

सुनि प्रसन्न सब कथा अन्य तब, नृप सुधन्य बतलाई ।
रानि प्रसन्न प्रमोद मन्न, बहु द्रव्य अन्न बँटवाई ॥४॥
समाचार वर लहि सब के घर, आनँद सँचर बधाई ।
सीता राम विवाह उछाह, जगत अवगाह कराई ॥५॥

[१३४]

पुरबासिन उत्साह समाई ।
यद्यपि अवध सुहावन अतिशय, मंगलमय विरचाई ॥१॥
मग गृह गली सँवारन लागे, द्वारन चौक पुराई ।
कनक कलश तोरन मणि माला, डोरन गुँथि लटकाई ॥२॥
अति विचित्र बाजार रँगायो, भीतिन चित्र बनाई ।
हाटक मणि मोतिन पचि फाटक, ध्वज पताक फहराई ॥३॥
बीथिन पूरी राखि न धूरी, कस्तूरी सिँचवाई ।
कदलि रसाल हरित मणि लाल जलज सनाल सरसाई ॥४॥
शोभा सोहन विश्व विमोहन, भूप भवन अधिकाई ।
बन्दी मागध भाँट सुयश भन, शुभ युवतीगन गाई ॥५॥

[१३५]

भूप भरत दोउ भाइ बुलाई ।
कहेउ सजउ रथ बाजि गजउ सथ, चलउ बरात बजाई ॥१॥
पुरजन परिजन सम्बन्धीगन, कहेउ बरात चलाई ।
भरत कहेउ साहिनी तुरत, सेनप बाहिनी सजाई ॥२॥
अगन्ति बरग सँवारे तुरग, गवन जिन पवन लजाई ।
सुसजित सुन्दर नाना कुंजर, एक एक मंदर नाँई ॥३॥
जीन जड़ाव ओढ़ाव बाजिगन, हौदा गजन बँधाई ।
बहुरँग सुढँग सजाइ अंग अँग, मणिगन कनक बिठाई ॥४॥
रथ अस मन्मथ अकह मनोरथ, जगह सारथी पाई ।
राजकुमार सवार बाजि रथ, सेनप समरथ साँई ॥५॥
शिविका सुभग बिठाये लोग, न हय गय जोग चढ़ाई ।
अनि बहु बाहन राखि समानन, चल सेवक समुदाई ॥६॥
बहुतन टोली करत ठठोली चल जनु होली आई ।
बाजहिं बाजन जस शुभ काजन, नाचन गावन भाई ॥७॥

[१३६]

सजि बरात पुर बाहर आई ।

हय गय ऊँट यान शिविका, झप्पान सुखासन भाई ॥१॥
राज कुमार सवार बाजि, रथ गजन स्वजन भट राई ।
उँट निसान शिविका सुजान द्विज, अनि झप्पान चढ़ाई ॥२॥
बन्दी भाँट मटक सुखपालन, पैदल कटक चलाई ।
हँसी मसखरी नाच गान, घंटा निसान घहराई ॥३॥
सजे अन्त दुइ रथ सुमन्त, लाये रवि यान लजाई ।
गुरु वशिष्ट एक पर बिठाइ, दूसर नृप चढ़ हरषाई ॥४॥
याचक दान विप्र मान दै, शम्भु गनेश मनाई ।
चलि बरात फहरात ध्वजा, घहरात निसान बजाई ॥५॥
त्रिविध बाय सब कहँ सुहाय, शुभ सगुन निकाय दिखाई ।
दधि घट भरा मीन लोवा बछ, सन्मुख गऊ पियाई ॥६॥
सब बरात यद्यपि लखात, सरसात सुखन समुदाई ।
तदपि बसा लालसा सबन उर, लखन लखन रघुराई ॥७॥

[१३७]

जानत जनक बरात सिधाये ।

सरितन सेतु बँधाइ हेतु, ठहरन बहु ठाँव बनाये ॥१॥
असन शयन बर बसन सम्पदा, सुरपुर सरिस जुहाये ।
आवत जिन बरात ठहरत निज, बिसरत सदन सुहाये ॥२॥
आवत जानि बरात निकट पुर, विकट निसान बजाये ।
सजि रथ हय गज बाजन बहु बज, चल अगवान लिवाये ॥३॥
कनक कलस परात थार अस, ओड़िया पात्र भराये ।
मंगल द्रब्य कनक मणि बसन, सुगन्ध असन फल लाये ॥४॥
बाहन उतरि हरष दोउ दिशि भरि, उपमा मिलत लखाये ।
पूरन चन्द विवाह अनन्द उमड़ि युग सिन्धु मिलाये ॥५॥
सुर तिय मञ्जुलि गावहिं अञ्जुलि, भरि सुर सुमन गिराये ।
जन अनुरागे बस्तुन आगे, धर नृप सकल लुटाये ॥६॥

[१३८]

करि पूजा सम्मान बड़ाई ।

अगवानन लै चले बरातिन, जहँ जनवास बनाई ॥१॥

ललित लोट मखमली मोट, पाँवड़े विचित्र सजाई।
कनक खम्भ मणि जड़ित रम्भ फल, बन्दनवार सुहाई ॥२॥
हाटक फाटक लगे महा मणि, बहु रँग चमक दिखाई।
रचना लखि विधि हाटक मणि निधि, रिधि कुबेर ललचाई ॥३॥
अति सुन्दर जनवास जहाँ, सब ही सुपास सुलभाई।
असन बसन सुख सयन सम्पदा, नीर वायु सुखदाई ॥४॥
जानी सिय बरात आई रिधि, सिधि प्रेरेउ सेवकाई।
देव लोक सुख भोग सम्पदा, मन चाहत सब पाई ॥५॥
चर्म-सीम वैभव न मर्म लहि, सब कर जनक बड़ाई।
सिय सनेह सम्भूत जानि, करतूत राम हरषाई ॥६॥
विश्वामित्र राम लक्षण रुचि, लखि पवित्र लै आई।
मिले राम गुरु परिजन पुरजन, दशरथ प्रान लहाई ॥७॥

[१३९]

चलेउ सरोवर प्यासा ठाँई।
प्रेम सरोवर राम प्यास जन, प्रेम न सकइ सहाई ॥१॥
राम समान सुजान न प्रेमास्पद कोउ देत सुनाई।
अन्तर्यामी गुन करुणा द्रव, विरहानल दव पाई ॥२॥
जस जस प्यासे प्यास तीव्र तस, शीघ्र द्रवत पहुँचाई।
प्यास भाव अनुरूप बनावत, रूप स्वभाव सुहाई ॥३॥
प्यासा जाइ सरोवर ठाँई, यह जग नियम लखाई।
नेम तुड़ाइ चलेउ रघुराइ, सुप्रेम विरद दरसाई ॥४॥
मणि फणि जल मिन शशि चकोर, घन मोर चहइ तजि न्याई।
स्वाति चातकहिं राम तात कहिं, उपमा प्रेम लहाई ॥५॥
मृतक शरीर प्रान भेंट तस, नृप समेट रघुराई।
दशरथ राम प्रेम परमिति जग, नति लखि ऊँच उठाई ॥६॥

[१४०]

शोभा अवधि राम सिय जानी।
दशरथ जनक पिता नाते दोउ, सुकृतिन सीमा मानी ॥१॥
रासी सुकृत हमहुँ किय बासी, जिन्ह विधि यहि पुर आनी।
देखेन दोउ विवाह अब देखिबै, जग उछाह सब सानी ॥२॥

बार बार सिय पुरी बुलाइव, प्रेम विवश नृप रानी।
लेन आइहइँ बन्धु दोउ, सब कोउ लहब सुख खानी ॥३॥
कोउ कह नृप दशरथ सँग रह दो, अनि सुत लखे बखानी।
एक कहा मैं स्वयं लखा सो, सुनउ न अन्य कहानी ॥४॥
भरत राम सम लछिमन रिपुहन, शोभा छवि बय बानी।
लखन राम शत्रुहन भरत के, सेवक से विलगानी ॥५॥
जनक पुरी नर नारि मनावहिं, गनप महेश भवानी।
चारिउ सुवन जनक नृप भवन, विवाहइँ बर दो दानी ॥६॥
छरे सुघर बहु राजकुवँर, आये कह गे अगुवानी।
हमरे उर निबहि जनकपुर, ब्याह सबन सँग ठानी ॥७॥

[१४१]

प्रमुदित मन बराति सब पुरजन।
सुख सजाव आनँद लगाव लहि, राम सहित हित भ्रातन ॥१॥
मंगल मूल लगन दिन रितु, अनुकूल महीना अगहन।
ग्रह तिथि नखत विचारि जोग विधि, पठइ दीन नारद सन ॥२॥
सोइ विचारी जनक ज्योतिषिन, लोग कहैं विधि गनकन।
धेनु धूरि शुभ मूरि महूरत, जनकहिं कहेउ विदुष जन ॥३॥
भरे अनन्द जनक बुलवाये, शतानन्द अरु सचिवन।
कहेउ नाह मंगल विवाह हित, वेगि सँवारन साधन ॥४॥
मंगल कलश शगुन शुभ साजे, लगे बाजने बाजन।
करहिं वेद ध्वनि विप्र, सुआसिनि गाव नटी लगि नाचन ॥५॥
चले लेन स्थलिय पहुँचि कह, चलिय नृपति सिरताजन।
दशरथ समय विवाह सुनात, उछाह गात गुरु जा भन ॥६॥
गुरु आज्ञा धरि कुल विधि नृप करि, चल सँग साधु समाजन।
भाग्य विभव अवधेश सुरेश, रमेश सिहै चतुरानन ॥७॥

[१४२]

लखन ब्याह चल सुर समुदाई।
निज सुख सुलभ लगि भुख दुर्लभ, राम विवाह लखाई ॥१॥
विमल गगन भरि रहेउ विमानन, जनु उडुगन नगिचाई।
नाचहिं गावहिं ढोल वजावहिं, डावहिं सुमन सुहाई ॥२॥

सुख सम्पदा प्रवेश नीच गृह, करत सुरेश लुभाई।
पुर नर नारिन चन्द्र लखत सुर, सुरतिय नखत लजाई ॥३॥
निज रचना न लेश क्लेश विधि, लखि महेश समुझाई।
यह उछाह सुख सिन्धु ब्याह, सीकर त्रिदेव प्रभुताई ॥४॥
देवन श्रम हट इच्छा उत्कट, प्रकट लखैं छवि छाई।
सुर समुझाई हर्ष समाई, शिव शह बसह बढ़ाई ॥५॥
रमा ससेत रमापति लेत, अनन्द राम सुघराई।
योग नींद लग रोग लहत, सन्जोग दरस रघुराई ॥६॥
चतुरानन दृग अधिक षडानन, शिव तिनहूँ अधिकाई।
सहस नयन को श्राप भयन बर, दयन मोद रुचिराई ॥७॥

[१४३]

दूलह राम रूप सुख सागर।
घन तनु तड़ित पिताम्बर उडुगन, मणि आनन आनन्द सुधाकर ॥१॥
शिर पर मणिमय मौर मनोहर, वैभव ठौर बनाव उजागर।
भ्रातन संग सवार बाजि बहु, राज कुमार सुघर गुन आगर ॥२॥
जेहि बर बाजि सवार राम लग, काम सजायेउ अश्व बना कर।
जीन जड़ाव लगाम सजाव, सुराग बजाव चलाव धरा पर ॥३॥
ठाम न पायेउ काम जलायेउ, चाहेउ जब मन वश्य करा हर।
राम चढ़ाइ बनाइ तुरंग जमायेउ रंग, अनंग गंगाधर ॥४॥
बाजि अनंग सवार सुढंग, रखै हिय राम उमंग अहंगर।
काम लगाम लिहे कर वाम, अकाम हिया कर राम सियाबर ॥५॥

[१४४]

कहि कि सिरात बरात बड़ाई।
सीकर सकृत त्रिदेव निहित सुख, सिन्धु चलेउ उमड़ाई ॥१॥
विश्व विभव हय गय रथ मणिमय, सुख सम्पदा सजाई।
स्वामिनि भगति लगति चलि प्रकृति, सजाइ बजाइ रिझाई ॥२॥
लखि मस्तक नति शशि मनोज रति, परमिति सुन्दरताई।
ते नर नारि जनकपुर हारि, सुगारि बरातिन गाई ॥३॥
जे बरदानी विश्व बखानी रखि कछु, निरखि चुराई।
दीन्हेउ अंश सुधांश लोकपति, वंश असुर समुदाई ॥४॥

लखे बरात तजे जग नात, टिकात धाम हरि पाई।
चन्द चकोर विभोर राम छवि, जोर न रबि विलगाई ॥५॥

[१४५]

दुलहा परछहिं राज दुवारे।

गज गामिनि दमकहिं बर भामिनि, दामिनि रूप सँवारे ॥१॥
वरन वरन बर बसन आभरन, मणिगन कनक बिठारे।
रमानन राकेश लखन भे, भूषन भेष सितारे ॥२॥
आरति दीप दिखावहिं आपुहिं, दूलह दृष्टि न डारे।
आप्तकाम लखि सीय राम भे, टारति दीय निहारे ॥३॥
रामानन चँद विकसित आनँद, लज न जलज दृग धारे।
लखि विनु वयन सुनयन सखिन मन, मयन चयन सब टारे ॥४॥
ब्रह्म सुसाजन साजन नयन, जिवाँजन सयन सिधारे।
भे भाजन नहिं ब्रह्म विभाजन, आपन अहं बिसारे ॥५॥
सोहित दोउ दिशि मन्त्र पुरोहित, मंगल हित उच्चारे।
गान निसान उड़ान अपान, अनन्द समान सभारे ॥६॥
करहिं निछावरि कोपर धरि धरि, मणि मुद्रा भरि सारे।
आनँद ब्यापा सब विनु नापा, आपा दुलहा वारे ॥७॥

[१४६]

मंडप दुलहा चले लिवाई।

सब ब्रह्माण्डन मिलि बर साधन, मंडप बन रुचिराई ॥१॥
यहि ब्रह्माण्ड लखैं शोभा सुर, अनि ब्रह्माण्ड बनाई।
छवि लखि विस्मित गुना अमित, मन गुना सुना विरचाई ॥२॥
खम्भा कनक अचम्भा चमक, बने ब्रह्मा समुदाई।
मनिगन जटित भानु शशि अगनित, मन्मथ नित निवसाई ॥३॥
चँदवा असमानी छवि खानी, विष्णु सहिष्णु सजाई।
सिय रघुराई पग छुइ जाई, हित हर भूमि सुहाई ॥४॥
आसन शेष गनेश कलश, भाजन सुरेश सुखदाई।
द्रव्य कुवेर हव्य अनपूर्णा, भव्य वरुण सब ठाँई ॥५॥
प्रकृति अलंकृति सब दिशि होइ अति, कृति लखाव सेवकाई।
ब्रह्मानन्द मन्द लखि परमानन्द सुमंडप छाई ॥६॥

[१४७]

मंडप आसन राम बिठाये ।
आनँद कोलाहल चारिउ दिशि, सुरन सुमन बरसाये ॥१॥
दशरथ जनक मिलहिं दोउ समधी, सुर गन कह हरषाये ।
सम समधी हम आजु लखे बिधि, जव से जगत बनाये ॥२॥
आरति करत राम मुख शोभा, वारति आपु सुभाये ।
न्योछावर धन मनि हाटक कर, कोउ कोउ मंगल गाये ॥३॥
देत पाँवड़े अर्घ बरातिन, सादर मंडप लाये ।
जनकराज बैठाये सब कहँ, सिंहासन न सुहाये ॥४॥
पूजे गुरु वशिष्ट कौशिक मुनि, वामदेम द्विज आये ।
निकट विलोकनि राम विप्र बनि, ब्रह्मादिकउ पुजाये ॥५॥
पूजे पुनि कोशलपति भल अति, ब्रह्म पिता मति भाये ।
पूजे जनक वरातिन सब कहँ, देव तुल्य समुझाये ॥६॥
बिधि हरि हर दिशिपति दिनपति जे, राम प्रभाव जनाये ।
बैठ वरातिन पाँतिन आनँद, माति न लखि कोउ पाये ॥७॥

[१४८]

शतानन्द कहँ लिय बुलवाई ।
कह वशिष्ट निर्दिष्ट समय भा, कुँवरि कहावहु आई ॥१॥
रानि सुनयन शतानँद बयन, सुनत कुल रीति कराई ।
सीय सँवारि समाज पुकारि मँडप चलि थारि सजाई ॥२॥
शचि ब्रह्मानी रमा भवानी, संग मिलानी धाई ।
मंगल गान करहिं को जान, न मति ठिकान हरषाई ॥३॥
सीय महा छबि बिच अंशन फबि, चल जहँ कुल रवि राई ।
आनँद भूप धरे छवि रूप, बनाव अनूप मिलाई ॥४॥
दशरथ हर्ष अथाह लखत सिय, रघुवर चाह सिराई ।
देहिं मुनीश अशीश नवावहिं शीश देव समुदाई ॥५॥
दोउ दिशि तिय नर देखत सिय बर, हिय भर आनँद पाई ।
वह सुख समय अजहुँ चित चहय, कि रमय मनोहरताई ॥६॥

[१४९]

दोउ कुल गुरु शुभ ब्याह कराई ।
सब कारज ब्यवहार सु-अवसर, श्रुति अनुसार सजाई ॥१॥

[१५२]

पाणिग्रहण सिय राम लखाई।

विधि हरि हर प्रमुदित दिनकर होइ, उठे उदित हरषाई ॥१॥
प्रेम मगन दशरथ नहिं समरथ, मन बुधि चित ठहराई।
त्यागि आप चेतना व्याप सिय, राम मनोहरताई ॥२॥
जनक सँभार न तनक[1], सार लखि, जेहि लगि जोग लगाई।
लहेउ चयन रानी सुनयन मन, निश्चिन्तता लहाई ॥३॥
वेद विधान दान कन्या किय, सिय रघुबर पकराई।
गिरिजा शिव लक्ष्मी हरि इव, हिमवान सिन्धु सौंपाई ॥४॥
बरस ब्योम सुर सुमन होम करि, भावँरि होन लगाई।
बसहिं राम सिय सहज सबहिं हिय, अवसर प्रिय सुन गाई ॥५॥

[१५३]

कुवँर कुवँरि कल भावँरि भाई।

जन्त्रित मन लखि पीत पिछौरी, ग्रन्थित चुनरि चुभाई ॥१॥
मणि खम्भन जगमगति मुरति दोउ, दिशि कोउ लखे लुभाई।
लखे सामने सियाराम, पीछे रति काम भगाई ॥२॥
ज्योति मध्य आराध्य मुरति लखि, सुरति साध्य एकठाँई।
जुड़े नाम प्रिय प्रान संग सिय, राम अभंग जपाई ॥३॥
घंटा शंख निसान बाँसुरी, तान बजै शहनाई।
यहीं बजत अस लगत गगन शिर, अनहत मगन सुनाई ॥४॥
हरन आवरन सप्त भाँवरी, आत्म ठाँवरी लाई।
निजानन्द ब्रह्मानँद बनि, परमानँद ब्याह समाई ॥५॥
संसृति नस जग आपहु खस, सिय राम ब्याह रस पाई।
आपु जगत लय सियाराम मय, द्रष्टा दृश्य एकाई ॥६॥

[१५४]

सिय सिर सेंदुर राम लगावइ।

जलज सनाल पराग लाल धरि, नेह भाल भरि लावइ ॥१॥
हाट केश तम बीच बाट सम, नाट नेह प्रकटावइ।
निज अनुराग पराग माँग भर, निर्भर आपु बनावइ ॥२॥

---

१. तनक = तनिक और तन का।

प्रकृति स्वामिनी बनी बनी बनि राम बना दरसावइ।
प्रकृति अंग जनु भगति रंग रँगि, राम सुढंग सुहावइ ॥३॥
जड़ता कारी चेतन डारी, भक्ति रंग विलगावइ।
ब्रह्म राम अनुराग जाम हिय, दाम राम ठहरावइ ॥४॥
सिया राम की नित्य प्रिया, जिव हिया राम पैठावइ।
जग असंग रति हरि अभंग, उपजै प्रसंग सुन गावै ॥५॥

[१५५]

एक आसन बैठे राम सिया।
प्रमुदित दशरथ जनक नृपति दोउ, त्रिभुवन सुख भरि पाइ जिया ॥१॥
भक्तन ज्ञानिन जोगिन जतिगन, एक सँग पूरन उमँग हिया।
शक्ति समेत निकेत जनक निज, ब्रह्म स्वरूप दिखाइ दिया ॥२॥
सब के मन बुधि चित्त मनोहर, रूप अनूप चुराइ लिया।
अहं विलीन सुरति भइ मुरति कि, द्रष्टा दृश्य स्वरूप किया ॥३॥
नित चह चाखेउ देखन माखेउ, अहमिति राखेउ बनि सखिया।
हृदय सेज बैठाइ राम सिय, जग लखाइ उनहीं अँखिया ॥४॥
धनि उन मानेउ निज सिय जानेउ, आपन गनेउ राम पिया।
आन न कोउ समान सिय जिन दिय,जन हिय प्रेम स्वकिय सतिया ॥५॥

[१५६]

क्या रँग दोउ सँग सिय रघुराई।
छवि शोभा उनहूँ लोभा थित, मन बुधि चित उपराई ॥१॥
कुँवरि मांडवी और उर्मिला श्रुतिकीरति बुलवाई।
भरत लखन शत्रुहन ब्याह, आज्ञा वशिष्ट करवाई ॥२॥
दूलह दुलहिनि चारि संग बनि, मंडप रंग जमाईं।
विभुन सहित जिव चारि अवस्था, इव स्वरूप प्रकटाई ॥३॥
क्रियन सहित फल पाव चार, उर धार स्वरूप सुहाई।
चारिहुँ दिसि जग सकल दीख नसि, चहुँ जोरी लसि भाई ॥४॥
कुँवर वयस सम भरत मनोरम, जे बरात महँ आई।
भयेउ ब्याह उपचार कुवँरि, परिवार जनक उपजाई ॥५॥
निज निज द्वारे कलश सँवारे, तहँ तहँ ब्याह लखाई।
अति उदार सिय राम प्यार रखि, निज जन बहु होइ जाई ॥६॥
जहँ जहँ जग उछाह ब्याह, निर्वाह ब्याह यहि छाई।
भयेउ प्रमोद विनोद ब्याह नित, जीव गोद सुलभाई ॥७॥

[१५७]

विषय त्याग मन सिखय सु-राजन ।

दाइज देत सीम तजि एक सजि, बाँटत जाचकगन जस भाजन ॥१॥
भर मंडप भल कनक रतन थल, अनि कोउ खप अस जतन न आजन ।
कंबल बसन बिचित्र पटोरे, नहिं पहाड़ थोरे बन गाँजन ॥२॥
गज रथ तुरग दास दासी थल, बाह्य जुटाये भल सव काजन ।
भूमि सुविस्तृत धेनु अनगनित, सकल अलंकृत नख सिख साजन ॥३॥
लगे पहार अपार जे मनियत, सार अनेकन गनियत नाजन ।
वस्तु अनेक न लेखा देवन, देखा माँग न वेषा लाजन ॥४॥
उबरा सो जनवास लिवाये, बाँटि रास भूपति सिरताजन ।
दुलह दुलहिनिनि नाम पड़ै सुनि, ध्वनि स्पष्ट बजनि लग बाजन ॥५॥

[१५८]

सखिन मुनीश्वर आयसु पाई ।

दुलह दुलहिनिन्ह गान करत तिन्ह, चलि कोहबरन्ह लिवाई ॥१॥
श्याम शरीर राम सुन्दरता, काम सहस्र लजाई ।
जावक जुत पद पंकज अद्‌भुत, मुनि मन अलि सुत छाई ॥२॥
धोती पीत उपरना मोती, कारवासोती भाई ।
बाहु सुसुन्दर भूषन मुन्दर, कर चित हर चमकाई ॥३॥
नयन कमल कल आनन छवि भल, लखि मन अचल लुभाई ।
भाल विशाल तिलक कमाल, छवि त्रिभुवन मौर बनाई ॥४॥
शोभा सीवँ राम नीवँ छवि, लखत ग्रीवँ तिरछाई ।
सो सीता छबि रामहुँ तेहि दबि, बरनै कबि समुझाई ॥५॥
राम गौरि लहकौरि कहइ, सिय सारद दौरि सिखाई ।
बनि तुलसी सखि कोहबर सुख चखि, कन्द छन्द रखि लाई ॥६॥
हास विलास सिया रघुवर कोहबर भव त्रास मिटाई ।
बड़ विनोद सिय संग राम पिय, बनि हिय मोद टिकाई ॥७॥

[१५९]

चलि कोहबर जनवास लिवाई ।

चहुँ बर कुवँरि सखीगन सुन्दरि, साज समाज बनाई ॥१॥
सुख समात नहिं सब बरात, ठहरात कुवँरि बर ठाँई ।
को समरथ कह सुख दशरथ फल चारि क्रियन सँग पाई ॥२॥

चारिउ दूलह दुलहिनि संग, सखिनि सुख सीम सजाई।
रिद्धि सिद्धि दासी बनि बासी, जहाँ करइँ सेवकाई ॥३॥
दशरथ लाल समुझि तिहुँ काल, न अस अनन्द सरसाई।
वह समाज रसराज जनकपुर, साज कीन्ह स्थाई ॥४॥
कुवँरि न सखि रनिवास बहुरि गइँ, उनहिं न भई बिदाई।
कुवँर कुवँरि सखि टरि बनि दूसरि, संग बरात सिधाई ॥५॥
कहउँ न मैं यह लहउँ गोसाईं, जिन बरनेउ चतुराई।
दै जनवास समाज बास, रनिवास न पुनि लौटाई ॥६॥
अवध जनकपुर चित्रकूट फुर, नित बस सिय रघुराई।
भक्ति भाव सखि रसिक चाव चखि, स्थल तिहुँ लखि जाई ॥७॥

[१६०]

सुख जेवनार अपार कहाई।
सिय रस सब विंजन जस रंजन, हिय कंजन रघुराई ॥१॥
छोड़ि समय गति पहुनाई मति, बस्तु प्रकृति प्रकटाई।
रिद्धि सिद्धि बहु गुना वृद्धि करि, दिशि चहुँ भरि भरि लाई ॥२॥
शची उमा शारदा रमा कर, भोजन बनन सहाई।
रुचि आकृष्ट जगत जो सृष्ट, रसोइँ सो इष्ट बनाई ॥३॥
चतुर सुआर परोस भरोस कि, मन गाँगे दोहराई।
देव नारि भोजन सँवारि, गावन लगिँ गारि सुहाई ॥४॥
सकल बरातिन वैठे पाँतिन, गारी भाँतिन गाई।
हँसत राव जे जौन ठाँव, गुन व्यंग गाव समुझाई ॥५॥

[१६१]

दशरथ हिय आनँद न अमाई।
सुत निहारि चारि दुलहिनि सँग, रँग सुदान उमड़ाई ॥१॥
निज अभिलाषा गुरु सन भाखा, तिन राखा हरषाई।
जै जोरी तै लाख बटोरी, नव गउ बहु दुधदाई ॥२॥
तिनहिं अलंकृत करि बाँटन हित, मुनि अगनित बुलवाई।
वामदेव देवर्षि वालमिकि, हर्षि आइ पहुँचाई ॥३॥
करत विनय मणि कनक द्रब्य दय, सुरभि सबय सौंपाई।
चले अशीशत रबि शशि रह जत, जोड़ी तत चहुँ भाई ॥४॥

पुनि जाचकन अनेकन रथ धन, मनिगन अन्न लुटाई।
चले प्रशंसत अति अनन्द रत, कीरति जुग प्रति छाई ॥५॥

[१६२]

राम विवाह उछाह अन्त नहिं।
शेष गनेश पाव पेश नहिं, ब्रह्मानी अरु उमाकान्त कहि ॥१॥
अवध ईश कह बार बार, कौशिक मुनीश धरि शीश चरन गहि।
जग नहिं नभ सुख कोउ सुलभ मैं,तव प्रसाद कृतकृत्य अलभ लहि ॥२॥
सुठि सुभाव प्रति दिन उठि माँगइ, दशरथ गवन न श्रवन जनक चहि।
नित आदर पहुनाई नव घर, मोद व्यवस्था निशि दिन बढ़ि रहि ॥३॥
शतानन्द कौशिक कह होइ इक, जनक मान लिय बिदा दुःख सहि।
बात खुलेउ पुर हर्ष तजेउ उर, चले सभी ढुर दुसह दुःख बहि ॥४॥
बिलखहिं एक से एक सिखहिं, किमि जिवन रखहिं प्रीतम वियोग दहि।
निज मन फनि प्रिय मूरति करि मनि,
सकल बनइ धनि जीवनि रहि महि ॥५॥

[१६३]

बसी बरात जहाँ जहँ आवत।
तहँ मेवा मिष्ठान जनक, पकवान समान पठावत ॥१॥
असन बसन बहु मोल कनक मनि, जनक न गनि पहुँचावत।
अवध रखत तनि ऊँच ढेर बनि, मनि परबत कहलावत ॥२॥
अतुलित गथ पच्चीस सहस रथ, सम करि पथ भेजवावत।
एक लक्ष हय दस सहस्र गय, सब बिधि कय सजवावत ॥३॥
महिषीं धेनु सु-रखीं देनु हित, वस्तु न कोउ गनि पावत।
दिहेउ विदेह न लखि निज गेह, सकल दिसिपति ललचावत ॥४॥
विविध सेज सब बस्तु भेज नृप, दशरथ नहीं जनावत।
नतु रघुकुलमनि सुर न रंक गनि, देत सबनि जो भावत ॥५॥

[१६४]

चलिहि बरात बिकल सुनि रानी।
फनि मनि अति हटि मीनन गति घटि, मनहुँ सरोवर पानी ॥१॥
पकरि पकरि प्रिय कुवँरि लगावहिं, हिय नहिं सहि विलगानी।
बिलखि बिलखि सखि पाहन हिय रखि, नारी धर्म सिखानी ॥२॥

जे मृग खग चहुँ कुवँरि मानि सग, ज्याये रोदन ठानी ।
गउ हुँकारि शुक कह पुकारि, चलिहौं कुमारि अगुवानी ।।३।।
गति दामिनि पहुँचीं पुर भामिनि, ठानिनि रुदन मोहानी ।
मनहुँ करुन रस बनत बरुन बस, मिथिला घरुन डुबानी ।।४।।
कुवँरि भाल प्रियता विशाल बर, निकलि काल दरसानी ।
प्रीतम प्रीति पुनीतम रीति, वियोग प्रतीति सिरानी ।।५।।
सँवरि बिदा जनु कुँवरि गये बरि, बच्छ पकरि बिकि जानी ।
लहि न रक्ष चिल्लाइ बच्छ, बँधि कक्ष धेनु रंभानी ।।६।।

[१६५]

बिदा करावन चल चहुँ भाई ।
अन्तिम लाहु सुदरस चाहु हित, दौड़े लोग लुगाई ।।१।।
पीर गँभीर हृदय तसवीर, चहूँ रघुबीर बनाई ।
नाहिंन ठौर टिकावन और, सुघर शिरमौर बसाई ।।२।।
हर्षि उठा रनिवाँस विलोकत, त्रास बिरह बिसराई ।
लाड़ लड़ावहिं मधुर जिवावहिं, बैठावहिं गुन गाई ।।३।।
भईं सशोक राम टोक कहि, पितु हितु बिदा पठाई ।
सौंपीं बरन सुतान करन दै, गहते चरन मनाई ।।४।।
छमा करवि अपराध सरवि, हिय धरवि न इन्हन ढिठाई ।
करन न रोष धरन नहिं दोष, बरन परितोष कराई ।।५।।
विरह वारि नयनन निहारि, किय राम विचारि उपाई ।
बिदा लहे पर चित न दहे, नित बैठि रहे रघुराई ।।६।।

[१६६]

सीय चलत पुर आरत भारी ।
राम देखि दूना सुख जो भा, सूना शोभा टारी ।।१।।
अपन प्रान निज सुख समान, सिय कवहुँ न आन निहारी ।
प्रान प्रान आनँद निधान, रघुवर सुजान सु-विचारी ।।२।।
जनक राज जानकी आज, मिल लाज तिलोक विसारी ।
मनहुँ पीर फुर धरि न धीर, उर चीर चाँहत बैठारी ।।३।।
समुझाने सव सचिव सयाने, माने धीरज धारी ।
साथ चलब हम सहि न सकब गम, शुक सारिका पुकारी ।।४।।

करुणा विरह न पुर जेहि नहिं रह, उर दह तह पैठारी।
उर सिंहासन प्रकटि दोउ जन, दासन दशा सँभारी ॥५॥

[१६७]

जनक राज चल सँग पहुँचावन।
भरि लाजन कह दशरथ राजन !, चह अब गृह लौटावन ॥१॥
दूरि पहुँचि लखि फिरन न रुचि, दशरथ रथ सकुचि रुकावन।
कहेउ नृपति तब सह न विपति अब, और दूर मति आवन ॥२॥
प्रीति माथ दोउ गहत हाथ, जनु साथ न कबहुँ छुड़ावन।
जनक कहत सम्बन्ध लहत, अति महत बड़ाई पावन ॥३॥
कौशिक पग तव जनक राज लग, सुग सौभाग्य लखावन।
मोहिं प्रसाद तव पाद प्राप्त, अह्लाद त्रिदेव लुभावन ॥४॥
मिलेउ राम कह आप्तकाम भेंउँ, लहेउँ धाम सुख पावन।
महत ब्रह्म सुख लहत जतन दुख, सन्मुख तोर तुलाव न ॥५॥
भरत लखन शत्रुहन मिलत दिल हिलत खिलत दृग सावन।
जनक निकेत चले सँकेत, प्रस्थान बरात जनावत ॥६॥

[१६८]

वास बरात बसत पुर आई।
दुलहा दुलहिनि निरखिनि जवहिनि, मग सुख सवहिनि पाई ॥१॥
राज साज सब सुख समाज, ध्वनि मधुर बाज शहनाई।
जनु सुख सम्पति उतरी सुरपति, भूपति अवध सजाई ॥२॥
पहुँचि निकट पुर नाद विकट सुर, बाजन गुर बजवाई।
सुनि पुर वासिन रानिन दासिन, रासिन द्रब्य लुटाई ॥३॥
नगर सगर सब वीथि डगर, धरि स्वर्ण गगर चमकाई।
सुगँध सींच सब नगर बीच, गृह नीच इन्द्र ललचाई ॥४॥
देखन आकर्षित जुटि हर्षित, बर्षित सुमन लखाई।
रोकत बर दुलहिनि अवलोकत, शिविक ओहार उठाई ॥५॥
मागध लायक बन्दी गायक, रघुनायक गुन गाई।
बढ़ेउ कोलाहल मोद थलहिं थल, जीवन तरु फल लाई ॥६॥

[१६९]

राज भवन तेहि समय सुहावा।
जनु उछाह सब विश्व नाह हित, दशरथ गृह प्रकटावा ॥१॥

मंगल सगुन सुँदरता सौ गुन, सुख सम्पदा समावा।
इन्द्र अयन लखि मयन शयन, सखि चित्त नयन रखि भावा ॥२॥
गावत भावत छबि ललचावत, नारिन भवन भरावा।
सकल सुमंगल सजि आरति भल, लजि गल भारति गावा ॥३॥
सब महतारी देंह बिसारी, आनँद भारी छावा।
राम रँगीं रस प्रेम पगीं, अस लगीं हृदय दरसावा ॥४॥
देहिं दान सनमान विप्र, को जान जो द्रब्य लुटावा।
कोउ न कहै भल उपमा चहुँ फल, कहहुँ सकल जौ पावा ॥५॥

[१७०]

सजी बरात द्वार नृप आई।
दुलहिनि बर माता लीन्हे कर, आरति परछति भाई ॥१॥
भूषन मनि धरि पात्रन भरि करि, न्योछावरि लुटवाई।
बर सँग चारि सवाँरि कुवाँरि, निहारि मातु सुख छाई ॥२॥
राम सीय कमनीय लखत छवि, तीय निमेष न लाई।
मुनि अनुशासन चारि सिँहासन, बर दुलहिनि बैठाई ॥३॥
मातु निहारहिं पलक न टारहिं, हारहिं नहीं थकाई।
उपमा मोद न बाँझ गोद सुत, रंक खोद मनि पाई ॥४॥
जोगी परम तत्व अति रोगी, अमृत स्वत्व जमाई।
मूक सुकबि भय सूर लहय जय, अन्ध लखय सब नाँई ॥५॥

[१७१]

लोक रीति सब जननि कराई।
ब्रह्म राम अभिराम तासु सिय, करहिं रीति सकुचाई ॥१॥
देव पितर पूजहिं सब बिधि, मन इच्छा सिधि सु-मनाई।
चहुँ जोरी कल्यान चाह, बरदान थाह हिय पाई ॥२॥
बोलि बराती नृप मन भाती, भूषन बसन दिवाई।
अति प्रसन्न हिय राखि राम सिय, चल दिय करत बड़ाई ॥३॥
जे बसाइ पुर बसन पाइ, पहिराइ बजाइ सु-गाई।
याचक भये अयाचक लहते, मन चहते अधिकाई ॥४॥
दास बजनिया भाँट नचनिया, बहु सम्पदा लहाई।
एक साथ गुन गाथ कहत, सब चले माथ नृप नाई ॥५॥

गुर ब्राह्मन नृप हर्षित आनन, भीतर भवन बुलाई।
सनमाने अन्हवाने बैठाने, बहु भाँति जिवाँई ॥६॥
पान देहिं दक्षिना कहे "नहिं" बिना न हाथ रुकाई।
देहिं अशीश मनाइ ईश, सुख नित अवनीश बढ़ाई ॥७॥
विश्वामित्र रीति प्रीति, मन जीति भवन पौढ़ाई।
लहि अभिष्ट गृह चल वशिष्ट, हिय सिय निजिष्ट रघुराई ॥८॥

[१७२]

करि सब काज नृपति तहँ आये।
जहँ बिठार बर बधुन चार, रनिवास निहार लुभाये ॥१॥
एक एक जोरी साँवर गोरी, ठोरी गोद बिठाये।
आदि देव वह अंश शक्ति सह, सेव आजु सुख पाये ॥२॥
बहुरि बधुन दुइ दुइ लै गोद, दुलारत मोद बढ़ाये।
वह समाज सुख महाराज, हिय सो विराज जो गाये ॥३॥
बरनेउ भूप विवाह रूप जेहि, जग न उछाह सुनाये।
सुनि बानी सुख लह रानी, तरु जानी सुकृति फलाये ॥४॥
सुतन समेत नहाइ नृपति, गुरु द्विजन बुलाइ जिवाये।
घरी पंच गइ राति करत, भोजन बहु भाँति भुलाये ॥५॥
मंगल गान सुआसिनि ठान, न मोरे मान बताये।
अँचइ पान स्रक सब लहान, स्थान गये हरषाये ॥६॥

[१७३]

शुचि हिय नृप लिय रानि बुलाई।
नयन पलक सम राखबि हर दम, बधुन घरे हम आई ॥१॥
श्रमित निंदाने लड़िकन माने, शयन ठिकाने लाई।
अस कहि नृपति रँगे मति रघुपति, शयनागार सिधाई ॥२॥
पलँग कनक मनि जटित न जग अनि, सुन्दर बनि दरसाई।
धवल विमल गद्दा मलमल डल, कोमल सींव सुहाई ॥३॥
उपबरहन तेहि सम न बसन गन, अन्य मनोहरताई।
तकिया रेशम बहु रँग चमचम, अनुपम अति सुखदाई ॥४॥
तेहि सनकारे राम बिठारे, सकल निहारे धाई।
रतन दीप गृह मनि महोप, टँगि स्रक समीप महकाई ॥५॥

आज्ञा पुनि पुनि भाइन सुनि, निज सेज सबुनि पौढ़ाई।
राखि राम पद हिय अति आनँद, अहमति मद विसराई ॥६॥

[१७४]

बताओ लाल हम से हाल सही।
पूँछ मात मुसकात राम, एकान्त नितान्त रही ॥१॥
किमि अघ खानि रिसानि ताड़का, दौड़ी खानि कही।
एक बान तजि प्रान लहेउ, स्थान तोर पनही ॥२॥
खल मारीच सुबाहु विकट दल, जिन्ह बल प्रकट मही।
सारे मारे जग्य सँभारे, मम बारे तुमही ॥३॥
जग दे गिल्ला कर्म अहिल्ला, हिल्ला कोउ न लही।
पद रज परी धरी प्रिय मूरति, तरी विदित सबही ॥४॥
शिव कठोर धनु तोर कोउ नहिं, जोर कि हिल तिल ही।
छिनु उठाइ तोरेउ प्रयास बिनु, गिनु अस जगत नही ॥५॥
तू कोमल अति आवत मम मति, मुनि रति गति निबही।
प्रभु मुसकाने मातु लुभाने, जाने अनि न चही ॥६॥

[१७५]

नीँदउ बदन सदन सुँदराई।
छबि सुषमा बढ़ि जागृत उपमा, चढ़ि निँद राम छिपाई ॥१॥
घर घर जागहिं नारी लागहिं, मंगल माँगहिं गाई।
रजनी राजति पुरी सुसाजति, अमरावति ललचाई ॥२॥
संग लहिनि सुन्दर दुलहिनि कर, गहिनि सासु सोइ जाई।
मणी प्रेम शिर फणी करत थिर, हिरदय चिर चिपकाई ॥३॥
पुर बासिन उर प्रेम उमड़ फुर, दरस प्रचुर कल पाई।
दुलहिनि उर बर हिय दुलहिनि घर, सोवत हर भल भाई ॥४॥
प्रेम परसपर सीता रघुबर, सुख हिय अनुचर छाई।
सोवत जागत जन मन माँगत, दोउ रागत दरसाई ॥५॥

[१७६]

सीख लहेउ मन भीख गुसाँई।
समुझन क्लेश न भेउ विशेष, बरनन दुइ देश मिलाई ॥१॥
उठे लखन निशि विगत श्रवन ध्वनि अरुण शिखा सुनि पाई।
राम जगे तब अरुण चूड़ बर, बोलन लगे सुनाई ॥२॥

लखन उठत ध्वनि अरुण शिखा सुनि, राम उठे ते गाई।
अरुण चूड़ अस श्रेष्ट राम हिय, लखहिं चेष्ट जगि जाई ॥३॥
ते ध्वनि खोलहिं ये बर बोलहिं, तोलहिं ते समुझाई।
का बर बोल राम उर मोल, लेइ खोल कठिनाई ॥४॥
अरुण चूड़ कर शब्द नृपति घर वरनन कबहुँ न आई।
ब्याह उछाह अथाह नृपति घर किमि निर्वाह घटाई ॥५॥
लखि अन्तरगति प्रेम विमल मति, देति प्रिया रघुराई।
कृपा लली मति दीन फली फल, पदावली कहलाई ॥६॥

[१७७]

रखि हिय पिय लखि एक सिय पाई।
जानि जगै पिय बोलि लगै सिय, यहि तेहि जिय पकड़ाई ॥१॥
अरुण चूड़ नहिं साधारण, कारण "बर" शब्द बताई।
तब लगि ते न कबहुँ बोले वहँ, जब लगि सिय नहिं आई ॥२॥
ध्वनि न करहिं ये बोलहिं बानी, खोलहिं अर्थ कहाई।
बर बोली कर अर्थ ब्यर्थ नहिं, पर सुन्दर सुखदाई ॥३॥
बोलन लागे जानन माँगे एक से अधिक रहाई।
ते सम वकता आनँद करता, धरता संग सुगाई ॥४॥
तिन्ह एक सीय अवश्य कीय, संगति सम तीय बुलाई।
ते मांडवी उर्मिला अरु श्रुतिकीर्ति प्रसिद्ध सगाई ॥५॥
पीछे सोई जागीं होईं, प्रथम सुपद मन लाई।
अरुण चूड़• बर तेइ शरीर धर, गावहिं राम सुहाई ॥६॥
अन्य रूप रख तिन्ह संशय लख, नारि कि पुरुष बनाई।
सेवा मूल समय अनुकूल न भूल किहेउ सेवकाई ॥७॥
सीता स्वामिनि अर्थ खोल, मन होइ अलोल रस लाई।
कृपा रंग स्वामिनि उमंग बनि, ढंग पदावलि गाई ॥८॥

[१७८]

बन्दउँ पद दोउ सिय रघुराई।
संभव करन असंभव उबरन, भव एकमेव उपाई ॥१॥
मूक होइ बाचाल कृपा जिन, अक्षर माल पिन्हाई।
पंगु चढ़इ कैलाश आश, पुरवइ अविनाश मिलाई ॥२॥

सूझ अन्ध बन्ध जड़ चेतन, सेतन सकइ छुड़ाई।
सिया राम मय जग देखइ, निज लेखइ नहिं विलगाई ॥३॥
कृपा प्रयोजन कैसेउ कोउ जन, भूखे भोजनदाई।
दीन हीन बलहीन भये, शरणागत कीन सहाई ॥४॥
दोउ आगर तारन भव सागर, लागर पार लगाई।
त्यागउ जनि हिय भागउ लागउ, सग माँगउँ अपनाई ॥५॥

—०—

॥ राम ॥

श्री रामचरितमानस पदावली

बाल काण्ड

(सत्संग प्रकरण)

॥ राम ॥

श्री सीताराम जी

हनुमान जी

[१]

जय श्री राम चरित मानस सर ।
सुलभ स्वरूप विश्वपति सियबर ॥१॥
शीतल कर न भाल बसि हिमकर, भूति मसान न शुचि गंगाधर ।
नहिं समाधि रोकइ मनसिज शर, करि विचार रचि धर मानस हर ॥२॥
द्रवि हिम वेद पुरान शास्त्र कर, उमड़ि तड़ाग संत मत तेहि पर ।
शंभु बृहत् अनुभव रस पुनि भर, भेषज भो अचूक संसृति ज्वर ॥३॥
जब जिव डसइ विषय जग विषधर, होत स्वस्थ जल पिये घूँट भर ।
मज्जत माया मकर नहीं डर, जनित अविद्या मल छूटै ढर ॥४॥
छुवत पुलक दृग प्रेम सरजु झर, बसन राम सिय हृदय अवध कर ।
राम कृपा अतिशय जिन्ह जन पर, मज्जत यहि सर तेइ सुकृती नर ॥५॥

[२]

मानस पुण्यारण्य विचरते, दुर्लभ मणि एक आज लही ।
योग अग्नि त्यागत तनु पूर्वहिं, सती सत्य शिव तत्व कही ॥१॥
जगत आतमा जगत जनक कहि, जगत हितैषी मानि रही ।
दै संदेश दिव्य जग जीवन्ह, योग अग्नि निज देह दही ॥२॥
भव प्रवाह महँ बही नहीं पुनि उमा रूप शिव चरन गही ।
पाइ सती सतसंग रंग रँगि, शिव पूजन मैं चली सही ॥३॥

[३]

सती सँदेश अर्थ कहौं गाई ।
देह भाव मन बुद्धि शिखर चढ़ि, चित्त चिता करु भाई ।
सोई चिता को भस्म मनोहर, शिव आतमा रमाई ॥१॥
अहं शीश पुष्प अति दुर्लभ, दो शिव शीश चढ़ाई ।
शीश चढ़ावत शब्द शिवोऽहम, द्वैतहि देइ मिटाई ॥२॥
इमि आतमा अभेद शम्भु कहँ, देखिअ जग समुदाई ।
जोइ कारन सोइ जनक जगत कर, हित स्वभाव जिमि माई ॥३॥

होत अभेद आतमा शिव तब, शिव आतमा दिखाई।
कारण जग अपनहिं कहँ देखत, जगत तुरंत नसाई॥४॥
अन्तरङ्ग लहि आतम स्थिति, पूजिअ शिव चित लाई।
अथवा लखि बहिरङ्ग जगत शिव, पूजिअ करि सेवकाई॥५॥
यही विधान राम पूजन को, शिव रामहिं एकताई।
रामहिं पूजत मिलत शंभु पद, शिव पूजत रघुराई॥६॥

[४]

प्रगटी तिरहुत त्रिभुवन रानी।
सगुन ब्रह्म को गुन निर्गुन की, शक्ति सुषुप्ति छिपानी॥१॥
सुख स्वरूप राम अहलादिनि, राम प्रिया जग जानी।
भक्ति मुक्ति सिद्धि अभिमत जन, सकल सद्गुनन दानी॥२॥
उद्भव पालनि लय जग कारनि, मूल प्रकृति महरानी।
लोकप बिधि हरि हर पद दायिनि, दुरसन राम दिलानी॥३॥
कबहुँ राम के संग विराजति, कबहूँ उनहिं समानी।
कहियत भिन्न न भिन्न अवस्था, तत्र तत्वज्ञ बखानी॥४॥
करुणा दया मया मय माँ करु, कृपा वाल अज्ञानी।
देहि प्रीति पद राम दरस नित, हिय बनु तनु रजधानी॥५॥

[५]

ठनि हिय प्रकटहु अवनि कुमारी।
तव स्वरूप ब्रह्म-विद्या हिय, तम अज्ञान तमारी॥१॥
सद्गुन सुमन वाटिका विरचहु, सुन्दर सुखद विचारी।
सहज रुचिरता जेहि आकर्षइ, सहजहिं लखन खरारी॥२॥
ललकि आत्म साधना धनुष मख, आवहिं अवध बिहारी।
अहं कठिन शिव धनु विभञ्जि तुम्ह ब्याहइँ आत्म हमारी॥३॥
सकल क्लेश लेश नहिं राखउ, दशा विदेह सँवारी।
पिय सँग निज नित दरस चेतना, राखउ चित्त सम्हारी॥४॥
कहियत भिन्न न भिन्न राम से, जैसी दशा तुम्हारी।
तैसिहि दशा करहु मम स्वामिनि, सिय अतिसय पिय प्यारी॥५॥

[६]

जनम दिन माँगउँ मातु उदार।
इच्छा पूरन भिक्षा पाये, बिना तजउँ नहिं द्वार॥१॥

दीजै मातु विवेक सकउँ जेहि, तजि तृन सम संसार।
तुम्हरेहिं जिमि रघुनाथ नाथ निज, करूँ अहर्निशि प्यार ॥२॥
अपने मन बुधि चित अहमित वश, न करि मानि गेउँ हार।
यातें इनमें करि प्रवेश तू, माता स्वयं सम्हार ॥३॥
नाथ योग सम भोग न मानू, विदित अनेक प्रकार।
राम वियोग दशा होवै मम, जल ते मीन निकार ॥४॥
लेन देन हित राम प्रेम सुख, कबहुँ भिन्न आकार।
कबहुँ रमउँ रामहिं अभिन्न लहि, तव स्वरूप आधार ॥५॥

[७]

पिय जयमाल अहं पहिनाऊँ।
भाव सुमन विज्ञान ताग गुहि, चेतन हाथ सजाऊँ ॥१॥
दृश्य प्रपञ्च जानि माया कृत, तेहि ते अब न ठगाऊँ।
तेहि नानात्व एक राम लखि, ताही सत्य समाऊँ ॥२॥
तन मन बुधि चित जानि पराये, तिन्ह ते अपन दुराऊँ।
हृदय अकाश प्रकाश राम रवि, जड़ निज गन्थि छुड़ाऊँ ॥३॥
एक अविनाशी जानि राम पद, अन्य विनाशी ठाऊँ।
रमे विश्व दृश्य राम पद, बनि मैं रमा रमाऊँ ॥४॥
को मैं कौन जनक जननी सुत, दारा हमरो गाऊँ।
राम रूप सब जानि सत्य अब, राम हमारउ नाऊँ ॥५॥

[८]

जनक भवन मति आजु बनो री।
त्रेता अगहन मास दिवस शुभ, जहँ सिय रघुबर व्याह ठनो-री ॥१॥
मणि मंडप एक संग विराजत, ज्योति सिंहासन दोउ जनो री।
द्वै स्वरूप बनि ब्रह्म चंद्र बिच, आकर्षत जनु विश्व मनो री ॥२॥
पीत बसन पिय सिय कहँ ढाँकत, रामहिं दुलहिनि ढँकत चुनो री।
अस हिल मिल निरखात जीव सखि, बनो बनी कहुँ बनो वनो री ॥३॥
राज समाज मनोहर मूरति, अवलोकत आनन्द घनो री।
स्वयं ब्रह्म द्वैत मूरति बनि, हरि अपान जिव द्वैत हनो री ॥४॥

[९]

सीता राम ब्याह अवलोकन, आजु जनकपुर उर मेरो बन।
सुख स्वरूप दोउ सुख मिलिब्या पेउ, ब्याह समय तेहि पुर के कन कन ॥१॥

लक्ष्मी वैभव सिद्धि सँवारे, उमा शृँगार कीन सद्गुन जन।
ब्रह्माणी ब्राह्मणन कंठ बसि, गई तथा जिह्वा गायक गन ॥२॥
भानु ज्ञान कुल रीति बतावत, चन्द्र प्रेम अनुरंजित आँगन।
सुर इन्द्रिन बैठे हिय अहमिति,बुधि निरखहिं हरि हर चतुरानन ॥३॥
विमल विवेक वेदिका राजत, दशरथ जनक वसिष्ठ शतानन।
बाजत अनहद नाद मधुर ध्वनि, रुचि बधूटि सुर नचहिं तृप्त मन ॥४॥
जोड़ी चहुँ सह क्रियन चारि फल, घूमत कलश चारि आश्रमन।
मुँदरी मणि अवलोकु राम सिय, सीता रामहिं मणि निज कंगन ॥५॥
राम समीप जानकी राजति, स्थिर होइ दामिनी मनहुँ घन।
ब्रह्म शक्ति दोउ सुख शृँगार छबि,बसि हिय जीव जिताव त्रिगुन रन ॥६॥

[१०]

मँगलमय आनन्द जनकपुर, आजु न जस विरञ्चि विरची।
दूलह ब्रह्म राम दुलहिनि सिय, प्रकृति रानि लखि प्रकृति नची ॥१॥
सकल विश्व वैभव सिंहासन, विश्व विमोहन दृश्य खँची।
रवि शशि नखत जड़े मणि मुकता, माणिक तम नहिं एक रँची ॥२॥
बैठे ताहि राम सीता सँग, अँग अस सब के हृदय जँची।
कामी हृदय कामना भागेउ, मुनि हिय ब्रह्मानन्द लची ॥३॥
भाव सखी शिशु भये जीव सब, गावत सुरपति नाच शची।
तजे योग-निद्रा हरि बुधि विधि, संहारन दृग शिव न बची ॥४॥
राम बिलोकत हिय सिय चित्रहिं, सिया राम मुँदरी नगची।
युगल स्वरूप समेटि सीम सुख, हिय फेंकी जग सुख बकची ॥५॥

[११]

लही अनुकम्पा जनक लली।
पछिले पहर ब्याह दिन दम्पति, देखेउँ स्वप्न भली ॥१॥
पुष्प वाटिका टहलत देखेउँ, मन्दिर एक थली।
पहुँचत मोहिं खसकेउ पट आपुहिं, मूरति लखेउँ हली ॥२॥
दायें सिय बायें पिय छबि शृँगार मनहुँ असली।
धनुष बान कर राम नीलमणि, सीता कनक कली ॥३॥
ललित अँग चितवनि चित चोरनि, सत्य कि मूर्ति ढली।
मन सन्देह होत लाड़िली, मोहिं दिखाइ चली ॥४॥

सब तें अधिक पुजारी जब, माला मम गले डली।
सिय मुसुकाइ कृपा संकेतत, संशय मोर दली ॥५॥
दायें सिया राम जी बायें, बात जो मोहिं खली।
दोउ प्रकटेउ अभिन्नता हिय सिय, कृपा अग्र निकली ॥६॥
दोउ मूरति अदृश्य भेनहिं मम, निरखत सुरति टली।
आगे आगे चलत मुरति लखि, सुरति भई अचली ॥७॥

[१२]

आज जनो मन सीय बनो री।
राम विवाह समय एकत्रित, जग उछाह आनँद जितनो री ॥१॥
शीतल ज्योति प्रकाश मनोरम, मधुर अनाहत ध्वनि बजनो री।
कुल गुरु दोउ श्वासा उच्चारन, राम मन्त्र चहुँ वेद धनो री ॥२॥
जड़ छुड़ाइ चेतन चुनरी लिय, बाँधि पिछोरी पिय अपनो री।
कंगन जग नग बस्तु व्यक्ति महँ, बनी बिलोकउँ राम बनो री ॥३॥
यहि आनन्द सरिस न चारि फल, शुभ उद्देश्य द्वैत इतनो री।
भिन्न न भिन्न राम सिय स्थिति, लहि सुख कौन कहै कितनो री ॥४॥

[१३]

जनक घर, कोहबर अवसर आज।
जहँ सुख सिन्धु रूप छबि शोभा, सीता राम विराज ॥१॥
सो सुख सुलभ अवधपति दम्पति, नहिं मिथिला महराज।
फल न तपस्या योग मिलन हित, परा भक्ति को काज ॥२॥
महा शक्ति सँग ब्रह्म विराजत, सकल आवरन त्याज।
अंग प्रत्येक दिव्य छवि सुषमा, मधुर मनोहर भ्राज ॥३॥
हास विलास विनोद मोद बहु, दोउ रसिक सिरताज।
हाव भाव चितवनि बोलनि, मुसुकानि ललित सँग लाज ॥४॥
उमा राम शारद सिय सिखवइ, रमा सँवारइ साज।
जूँठन ब्रह्मानन्द प्रकट आनँद जो सुधा सुनाज ॥५॥
सुनि सुख तिय भे चन्द्रकला शिव, पुनि जब त्रेता छाज।
विष्णु चारुशीला विरञ्चि श्रुति, रिचा सुसखिन समाज ॥६॥
सुख सोभा सौरभ सरकारन, मन मोहन अन्दाज।
परकीया सुख मग्न जीव सखि, लखि रुचि भव सुख भाज ॥७॥

[१४]

हाल कहूँ टुक पिया मिलन की ।
लखि अवकाश जगत मम स्मृति, प्रकटे पुरवै प्रेम दिलन की ॥१॥
पिय केवल चैतन्य रूप पर, मम अभीष्ट रखि घर न गिलन की ।
मम चेतन जड़ मिश्रित स्थिति, स्मृति कछु तन बुद्धि जिलन की ॥२॥
मिलन सकल करतूत पिया की, मैं स्तम्भित सुधि न हिलन की ।
पिय नहिं मैं वहि मिलन स्थिती, स्मृति परमानन्द खिलन की ॥३॥
निज जग स्थिति पुनरावृति भइ,स्मृति मोहिं पिय करन ढिलन की ।
तन रोमाञ्च प्रेम जल नयनन, हिय लालच पिय पुनः मिलन की ॥४॥

[१५]

सुरति म्यान असि दुइ न समाइ ।
काठ अहं फ़ौलाद राम असि, जिव एक ब्रह्म कहाइ ॥१॥
अहं काठ तलवार राखिये, माया पकड़ै धाइ ।
लखि तलवार राम फ़ौलादहिं, माया दूरि भगाइ ॥२॥
कौन किसिम तलवार म्यान महँ, माया रह न छिपाइ ।
अहं भाँफि कर सुरता घुसरै, रामहिं झाँकि पराइ ॥३॥
काम क्रोध मद लोभ मोह भ्रम, माया रूप बनाइ ।
ठगै सुरति मृग जल भरमावै, आवागमन नचाइ ॥४॥
राम कृपा लख सुरति अहं जव, माया मिली लुकाइ ।
त्यागि अहं तब सुरति राम रख, असि चेतन चमकाइ ॥५॥

[१६]

होउँ कि सन्त असज्जन कमवा ।
मन मूरख विचारु कहुँ सम्भव, धूप छाँह इक ठमवा ॥१॥
चहउँ कहावन सन्त बसावन, सर्वोपरि हरि धमवा ।
काम करत जो मरत डारिहैं, नरकहिं नौकर जमवा ॥२॥
काम क्रोध मद लोभ मोह हिय, पहिरउँ सन्तन जमवा ।
कौड़ी दाम न परमारथ पूँछउँ परमानँद जमवा ॥३॥
काम क्रोध मद लोभ मोह, घेरे सबेर से समवा ।
इनहिं भगावन पुनि नहिं आवन, राम गोहारन नमवा ॥४॥
जिव बुधि सकेउँ भगाइ न इन हम, बीते कोटि जनमवा ।
इन्ह नसाइबे जिव सुलाइबै अहं जगइबै रमवा ॥५॥

[१७]

मानस मानस मानस धरि कै ।
त्यागत जिव बुधि लागत नित सुधि, राम सिया यश फरि कै ॥१॥
अति करि स्वच्छ बारुणी बोतल, गंगा जल तेहि भरि कै ।
का अन्तर गुन वहि बहि चल जल, गंग कगारन ढरि कै ॥२॥
अन्तर स्वर्ण कि खानि निकाले, शुद्ध यतन बहु करि कै ।
तथा लौह भे स्वर्ण शुद्ध, संगत टुक पारस परि कै ॥३॥
नाम राम गुन गनि कबीर नहिं, गति डर मगहर मरि कै ।
राम सीय जस रस बस जेहि उर, डर नहिं भव रस टरि कै ॥४॥
राम चरित कीमिया बनावत, राम अहं जिव गरि कै ।
साधन समरथ सहज सद्य सिधि, कहत परीक्षित तरि कै ॥५॥

नोट :—पहिले मानस का अर्थ मनुष्य, दूसरे का हृदय और तीसरे का श्री राम चरित मानस है । दूसरी लाइन में "राम सिया" दीप देहली न्याय से "सुधि" के साथ और पुनः "यश" के साथ लगा कर अर्थ करने में सार्थक हैं ।

[१८]

स्थिर सुरति राम होइ जाइ ।
विलग होइ जिव बुधि अनेकता, बनि एक राम रमाइ ॥१॥
कर्म धर्म से मुक्त सर्वदा, करतापन बिसराइ ।
जस बिनु जाने जठर अन्न पच, नाड़िन रक्त चलाइ ॥२॥
रोवत गावत मृग जल धावत, पावत श्रमइ अघाइ ।
भ्रान्ति छोड़ि सब शान्ति होइ अब, चिन्तन राम समाइ ॥३॥
रामइ को सब कुछ रामइ दै, आपन कुछ न बचाइ ।
दुख सुख सम लखि आपु न कोउ चखि, रह उनसे विलगाइ ॥४॥
लानत[1] प्रीति बचावत आपुहिं, प्रीतम सौंपि न पाइ ।
नाम रूप गुन लहइ राम को, आपन इनहिं नसाइ ॥५॥

[१९]

जब चेतना राम मय होइ जा ।
पूरी परा भक्ति हित समुझब, साधन आँटा पोइ जा ॥१॥

१. लानत (उर्दू) = घृणित ।

भोग बासना सकल हृदय मल, मानब तबहीं धोइ जा।
सुखि संसार अपार भवार्णब, जानब अतिशय तोइ[1] जा ।।२।।
संसृति दूत काल आवत, पावत न ठिकाना रोइ जा।
काम क्रोध मद लोभ मोह, माया सेनापति सोइ जा ।।३।।
आपु सहित संसार दृश्य, माया प्रपञ्च सब खोइ जा।
प्रकृति धेनु पय देनु परमपद, शम यम नियमहिं नोइ जा ।।४।।
सद्गुन बनि ठनि जिव होइ धनि घनि,राम पिया होइ जोइ[2] जा।
जिव तिय मिलइ अभेद राम पिय, नाहीं कोई दोइ जोइ[3] जा ।।५।।

[२०]

कलि पावनावतार गुसाँई।

राम जन्म नक्षत्र बार तिथि, राम चरित कलि लाई ।।१।।
राम लखन रिपु दवन भरत के, चरित सरित अन्हवाई।
त्रेता रहत राम पुर बासिन, थित कलि जिवन दिवाई ।।२।।
काठ विराग लोह ज्ञानहिं जड़ि, नौका भक्ति बनाई।
नाम राम यश पतवारन, भव सरिता नाव चलाई ।।३।।
भव प्रवाह जहँ मिटत सरित जिव, सिन्धु ब्रह्म मिलि जाई।
मुक्ति निदरि तहँ ठहरि भक्ति गति, भिन्न अभिन्न रुकाई ।।४।।
लखि निज चरित तरत जिव कबि बढ़ि, त्रेता स्वयं सकाई।
राम कृतज्ञ भये तुलसी कबि, बालमीकि जन्माई ।।५।।
निज बन गवन चरित त्रेता करि, कबि तुलसी दरसाई।
परम रंक राम लहि पारस, तुलसो गहि लिपटाई ।।६।।
धनि तुलसी कृत राम चरित जेहि, अद्भुत पावनताई।
जग कलि कियेहु अवध त्रेता, अवसर रघुवर रहबाई ।।७।।

[२१]

यह जग नगर शीलनिधि राउ।

जस वह सत्य नारदहिं भासेउ, तस जग हमहिं लखाउ ।।१।।
पूर्व न रहेउ अन्त नहिं रहिगेउ, बीचहिं महँ दरसाउ।
दृश्य मगर यह नगर शीलनिधि, जेहि लखाउ ग्रसि खाउ ।।२।।

---

१. तोइ = तोय = पानी। २. पहिला जोइ = पत्नी। ३. दूसरा जोइ = दिखलाई पड़ना।

छिन महँ प्रकटेउ नगर शीलनिधि, राजा सचिव प्रजाउ।
लखहिं वंश आपन परम्परा, प्राचीनहिं सब ठाँउ ॥३॥
हरि नव माया दूरि निवारी, भा गायब गृह गाँउ।
विश्वमोहनी नहीं रमा रह, नारद एक हरि पाउ ॥४॥
माया पूर्व स्थिती अजहूँ, नारद हरि विलगाउ।
जौ समस्त माया निरस्त तौ, द्वैत कि कबहुँ टिकाउ ॥५॥
टुक नारद गति नित निज दुर्गति, समुझि न जीव हँसाउ।
राम भजन करि अर्पित आपउ, राम स्वरूप समाउ ॥६॥

[२२]

पिय पहुँचउँ साधना बताऊँ।
जिव चेतना विसारत आपन, राम चेतना लाऊँ ॥१॥
पकड़े जो कुछ जानि आपनो, स्मृति हाथ खसाऊँ।
पुनि निज जड़ आवरन एक एक, निकरत सूक्ष्म बनाऊँ ॥२॥
निज उपाधि सब त्यागि नाम गुन, जड़ता प्रकृति पराऊँ।
केवल करउँ चेतना अनुभव, तहँ निज कहँ ठहराऊँ ॥३॥
अगुन अरूप अवस्था पहुँचत, राम अहं बिठलाऊँ।
परिणत अहं होत राम जस, तस व्यापकता पाऊँ ॥४॥
वहँ पहुचत साधना समय टुक, पुनि सोइ हम सोई ठाऊँ।
कृपा डोरि सिय जीव चंग मैं, पिय उछंग पहुँचाऊँ ॥५॥
राम चरित नित पढ़त प्रीति हित, दम्पति कृपा कमाऊँ।
राम लक्ष्य भेदन जिव शर सिय, धनु तेहि कृपा चढ़ाऊँ ॥६॥

[२३]

लखि दुख प्रेम प्रकट रघुराई।
व्याकुलता डूबत गज लखि मति, गति अनन्यता पाई ॥१॥
यहि गति होत व्यक्ति व्यक्त, अव्यक्त लहत विकलाई।
गज गति होन सामुहिक समुझत, अवतरि दुःख दुराई ॥२॥
दुष्टन दलत देत दीनन सुख, गहि श्रुति धर्म चलाई।
देत विविध सुख निज दासन जस, भाव लालसा लाई ॥३॥
जिनकी रहै भावना जैसी, तसि मूरति दिखलाई।
विदुष विराट जोगि ज्योति जन, इष्ट स्वजाति सगाई ॥४॥

तनु सरोज मुख चन्द्र ओज लखि, कोटि मनोज लजाई।
थल जल नभ चर लखि स्वरूप निज, लहि जिव भाव भुलाई ॥५॥
कृपा दया शरणागत रक्षा, छमा, अमित प्रभुताई।
प्रकटि जनायेउ निराकारहूँ, सद्गुन इन्हन रहाई ॥६॥
यश विस्तारत तारत भव नर, बादहुँ गुन गन गाई।
लीला रूप अनोखे भूखे, तोषे धाम बसाई ॥७॥

[२४]

राम मिलन पात्रता गुनउँ अस।
जल डूबे पर रहत जियत कहँ, वायु मिलन हित आकुलता जस ॥१॥
एक दिशा दुख दुसह दिशा एक, पावन जीवन अन्तर्गत रस।
दुःख असह्य मिटावन एकइ, राम भरोसा गहन सुमिरि जस ॥२॥
गज द्रौपदी पात्रता स्थिति विकट, निकट आश्रय हरि एक बस।
स्थिति अर्थ अहं टुक राखत, अर्पित अधिक राम होत बस ॥३॥
राम लखन प्राकृत नयनन फल, जिव लहि सहज रूप निज नित हँस।
लहिअ सो स्थिति विना परिस्थिति, बिकट विहाल विकलता अति फँस ॥४॥
गुरु शिक्षा भिक्षा रघुनन्दन, तन मन बुधि चित परे भाव लस।
अहं जो बचत बसाउ राम बनु, भिन्न अभिन्न प्रेम रस सर्वस ॥५॥

[२५]

सीता प्रेम कहउँ जस मति गति।
भिन्न न भिन्न राम गति जाको, पिय रस हित रख कछुक अहम्मति ॥१॥
राम चलत बन हठि सँग लागेउ, त्यागेउ सुख घर ससुर पिता अति।
राम वियोग सँयोग सकल सुख, लागेउ कोकि चाँदनी बरसति ॥२॥
बन के दुख अति दुसह सुनाये, लखे सुहाये पिय संग सिय सति।
राम चन्द मुख चन्द चकोरी, सहज सिकोरी मन चोरी रति ॥३॥
चंदनि रह न चन्द तजि तद्यपि, पिय चाहति पसन्द किय साँसति।
राम दुरायेउ रहइ नित्य सँग, निज पद चिह्न राम पद निरखति ॥४॥
विभव विमोहन दाँव मृत्यु डर, ठाँव न हृदय पाँव नित रघुपति।
सीता -बसत राम नित सीता, जपत सुभीता दोउ अनन्य मति ॥५॥
सीता अपनहिं भूलि नित्य, चरणाम्वुज राम सनेह निहारति।
रघुमति मति मग गति न विलोकति, फिरि फिरि सिय मुख विधु निज वारति ॥६॥

राम प्रान सिय प्रान राम पिय, लगति मोरि मति तकति न सम्मति ।
सिया राम तनु राम सिया जनु, मति सो एक बनु छाँड़ि द्वैत लति ॥७॥

[२६]

दीन दयाल न ख्याल भुलाई ।
बिरद विशाल सम्हाल वेगि करु, जन बिहाल अकुलाई ॥१॥
जिय दुख तिय रुख लखि विशेष तनु, गयेउ निःशेष घुलाई ।
घूरति मनहुँ अस्थि की मूरति, खाली खाल झुलाई ॥२॥
आयो बीच सितम्बर नम्वर, पड़े बिमार जुलाई ।
रोग न घटत लटत तनु दिन दिन, मर्म न रोग खुलाई ॥३॥
पियत न फल रस जियत कर्म वस, अन लखि आव हुलाई ।
घटत रक्त यहि वक्त लगत तनु, जनु सित वस्त्र धुलाई ॥४॥
विश्ववास विश्वास मोर, नहिं तुलत भक्ति बगुलाई ।
तुम अवलम्ब विलम्ब त्यागि, तुलिहौ निज गुन अतुलाई ॥५॥

[२७]

घुस लिय राम अहं घट मोरी ।
करुणा कृपा दया द्रवि दुख जन, घट महँ मुख करि थोरी ॥१॥
जो अनुभूति न साधन कीन्हेउ, लीन्हेउ जनम करोरी ।
राम चरित मानस नहाइ सो, दीन्ह लहाइ किशोरी ॥२॥
माया भगत जो लगत राम निज, लागत आव बहोरी ।
निज तजि राम राम तजि निज लख, चख सुख दुख झकझोरी ॥३॥
हरि यह दुविधा करु सिय सुविधा, मति निज आनँद घोरी ।
लगत भिन्न पिय नित अभिन्न हिय, माँगउँ सिय कर जोरी ॥४॥

[२८]

पिय मोहिं लै चलु गगन अँटारी ।
दुख अति परे सकल सुख, परमिति, नित्य निवास तुम्हारी ॥१॥
पिया बढ़ाइ प्रेम कर गहि मोहिं, खींचेउ सुरति सम्हारी ।
चढ़ेउ गगन मम नगन चेतना, जाते जगत बिसारी ॥२॥
जग जिव बोलत मन नहिं डोलत, बिनु सम्बन्ध विचारी ।
चढ़त गगन गति पवन मगन हति, सुरति बचाइ हमारी ॥३॥
चेतन रूप अनूप भूप जग, छबि अँग भेउँ बलिहारी ।
मुरति सुरति कहुँ सुरति मुरति रति, बर्णन बानि भिखारी ॥४॥

पिय अद्वैत द्वैत मोर रति, मति भेउ विलग गँवारी।
मिलन उमंग प्रेम चंग नित, चढ़वै संग खरारी ॥५॥

[२६]

रे मन नर तन समुझि गरजि ले[1]।
माया मुक्ति सशक्ति युक्ति करि, निज आनन्द गरजि[2] ले ॥१॥
भव द्वारा जित भोग उपस्थित, स्थित जानि फरजि[3] ले।
निकरे माया परे प्राप्त निज, आनँद मानि फरजि[4] ले ॥२॥
भव स्थिति दुख दुसह अपरमिति, जानइ परम हरजि[5] ले।
दुख भव सम्भव निज किय अनुभव, भव सुख क्यों न बरजि ले ॥३॥
तू मति आगर सुख भव सागर संसृति जानि मरजि[6] ले।
तू नहिं धावत अपनहिं आवत, पावत भागि लरजि[7] ले ॥४॥
करत परीक्षा भव बिय इच्छा, दीक्षा गुरू भरजि[8] ले।
राम रमत नित भव थित तजि चित, निज हित मानि अरजि[9] ले ॥५॥

[३०]

मम "मैं" गलन ललन सु-निहारी।
भीतर आव न जाव बाहरो, बर्णन बाणी न्यारी ॥१॥
मैं रह जब हूँ वह मैं तबहूँ, कबहूँ नहिं निरुवारी।
उपमा खोजत लहेउँ मुरति सिय, भइ जनु सुरति हमारी ॥२॥
चलन गगन की ओर अवध अवलोकन सुरति सँभारी।
नृप दशरथ के सविधि महल हल, भेउ सँयोग सुत चारी ॥३॥
जगत भगत भा लखन लखन, शत्रुहन स्वर्ग सुख टारी।
मुक्ति भुलाई भरत लखाई, राम सुभक्ति सँवारी ॥४॥
जागृत स्वप्न सुशुप्ति मिटेउ चित, सँटेउ तुरीय सँचारी।
जीवन्मुक्ति सो परा भक्ति गति, भिन्न अभिन्न खरारी ॥५॥

[३१]

जानेउँ राम गरीब निवाज।
हारे सब तरकीब बनाव, नसीब गरीब लिहाज ॥१॥

---

१. पहिला गरजि = ग़र्ज़ = अभिप्राय। २. दूसरा गरजि = गर्जना। ३. पहिला फरजि = फ़र्ज़ी = ख़याली = कल्पित = असत्य। ४. दूसरा फरजि = फ़र्ज़ = धर्म। ५. हरजि = हर्ज़ा = हानि = नुकसान। ६. मरजि = मर्ज़ = रोग। ७. लरजि = लर्ज़ना = काँपना। ८. भरजि = भर्जना = भूनना। ६. अरजि = अर्ज़ी = प्रार्थना।

हारे सब प्रकार टारे निज, अहंकार आवाज।
सुनत राम आव काम, परनाम करत गजराज ॥२॥
वाढ़त रुज जल काढ़त देखेउँ, टहल ने कोउ इलाज।
तकेउँ सरन दुख हरन दीन जन, पन पालन रघुराज ॥३॥
बन सँयोग तन हरन रोग गन, जोग न समन समाज।
करुणाकर दुख हर चाकर, साँकर रघुवर तव आज ॥४॥
सदय हृदय नित राम उदय, करुणा श्रुति बदय विराज।
लखि पन नाँचेउ, पद मन राँचेउ, हित साँचेउ सिरताज ॥५॥

[३२]

हिय जु राम बनि सिय बनि जातो।
लहत सिया यह संत जो हद बद, गदगद गातो गातो ॥१॥
हानि खानि पय त्रिगुन सानि, नहिं माया भातो भातो।
तौ सँयोग भोग भव खातो, गिरत न संसृति खातो ॥२॥
प्रकृति जनित सुख राग न लातो, हत न कर्म फल लातो।
राम भजन सुख चहत न घातो, काल लहत नहिं घातो ॥३॥
शरणागतो लगावत छातो, मतो न दुर्गुन छातो।
काम क्रोध मद माया जातो, होत बोध भगि जातो ॥४॥
यहि सम्वन्ध कन्ध दिन रातो, राम सहज चित रातो।
तुम्हरो होइ कृपा जन माँ तो, बन न अविद्या मातो ॥५॥
जग भवाग्नि जानि अति तातो, माँगउँ माता तातो।
सीता राम पार भव हातो, करु निज नेह न हातो ॥६॥
पीपर तरु उतने नहिं पातो, जनम लहे दुख पातो।
मति न अभिन्न भिन्न हूँ ना तो, पति रति दे सिय नातो ॥७॥

[३३]

भजति मति सियपति सीय भई।
भामिनि राम मोरि स्वामिनि सिय, यामिनि यही कई ॥१॥
कृपा अनुग्रह सीता विग्रह, करुणा नित्य मई।
माता मया दया हृदया, कृपया निज भाव दई ॥२॥
जग लंका फँसि भोग न पंका, नसि शंका भजई।
दारुन विपति न होइ कबहूँ नति, रति रघुपति तजई ॥३॥

क्रोध बन्धु सुत काम अन्धु, मद रावन होइ विजई।
राम चहत, नहिं कहत दहत, ज्ञानाग्नि अहं निजई ॥४॥
कोटि काम अभिराम राम तनु, बाम बसत सजई।
नित्य राम रम गति लखि निज कम, बिधि हरि हर लजई ॥५॥
भजत निरन्तर रखि अन्तर कहुँ, अभ्यन्तर मिलई।
एक जग जुरिया आनँद कुरिया, बसि तुरिया खिलई ॥६॥

[३४]

स्वप्न पथिक जी से भा भेंट।
आराधना राम साधना, मोर बतायेउ श्रेष्ट ॥१॥
राम नामँ श्वासा जपते, जगते मन लेइ समेट।
राम नाम लय राम चेतना, होइ सोइ निज मेट ॥२॥
राम चेतना जागइ त्यागइ, जग निज भागइ पेट।
तिन के संग भंग जग नाते, आपुहिं जाहिं लपेट ॥३॥
यह साधन कट भव बाँधन चट, लाँछन संसृति गेट।
कनककशिपु माया भट बनि झट, नरसिंह विकट चपेट ॥४॥
चित्रकूट चित राम करत वृत, काम क्रोध आखेट।
वायुयान सब साधन पहुँचन, राम यही राकेट ॥५॥

[३५]

न्हाइ ले जिव सखि ज्ञान सगरवा।
जड़ता जाड़ जड़ाइ बैठ अलसाइ न द्वैत कगरवा ॥१॥
विरति विवेक हाथ दोउ मलि आवरन स्वरूप रगरवा।
मिटै महा मल घोर अविद्या, माया जनित सगरवा ॥२॥
सागर ज्ञान बसइ एक आगर, राम सुनाम मगरवा।
अति विख्यात लखात न आवत, पकरत अहं टँगरवा ॥३॥
खात बासना करत नास ना, आपु बसाव नगरवा।
भक्ति खिलावत प्रेम पिलावत, पीन अनन्द लगरवा[1] ॥४॥
सगर नहान वहान द्वैत, अद्वैत लगाब झगरवा।
भिन्न - न - भिन्न सगर जल भरि भल, सिय थल लाइ गगरवा ॥५॥

---

१. लगरवा (उर्दू) = लागर = कमज़ोर = क्षीण।

[३६]

गहन सुकहन तत्व हनुमान ।
निज अनुभूत कहहुँ कछु जस हिय, राम प्रसूत सुज्ञान ॥१॥
राम अंश लक्ष्मण जिनके शिव, तिनके हनुमत जान ।
राम योग नित लय सेवा वृत, गुन गुरु ज्ञान प्रदान ॥२॥
एक सँग एक रँग योग उमँग एक, बसन हृदय स्थान ।
एक प्रलयंकर, एक भयंकर, तीसर लंक दहान ॥३॥
सेवत लखन राम हनु जन, हर हर हित कर विष पान ।
लखन निषाद शम्भु काशी गुरु, हनु सनकादि महान ॥४॥
हनु स्वरूप अनुरूप राम रुचि, राम कहूँ विलगान ।
आपु लड़न रावन, सहाय सह हनन कहन भगवान ॥५॥
होइ ब्यापक हरि जन स्थापक, लायक राम समान ।
अन्तर्यामी सम अनुगामी, रुचि जन बिना बखान ॥६॥
नित्य करत हनुमान गाथ, रघुनाथ सरित अश्नान ।
कोउ बनि आवत कबहुँ सुहावत, सुनन हृदय पैठान ॥७॥
अर्थ बतायेउ भाव कहायेउ, मोहिं जेहि रहेउ न ज्ञान ।
सत्य न जानत तुछ अनुमानत, कुछ दिय हृदय प्रमान ॥८॥
राम और हनुमान होड़ कहुँ, जोड़ सुनिय नहिं आन ।
सेवक चह सुख्याति स्वामि कह, मोहिं सेवक बलवान ॥९॥

[३७]

राम नाम राकेत, चढ़ि साकेत पहुँचि ले ।
नर तनु तासु निकेत, लहि यहि बार न हुँचि ले ॥१॥
जग सुख चमकत रेत, मृग जल जानि सँकुचि ले ।
राम नाम भव सेत, उतरन जपन सुरुचि ले ॥२॥
राम नाम मनि लेत, जगमग जग न घुमुचि ले ।
काल कर्म गुन बेंत, नाम अक्षर रद कुँचि ले ॥३॥
फल प्रारब्ध समेत, कागद जप कर नुचि ले ।
पावन करने हेत, प्रथम गनि नाम सु-सुचि लें ॥४॥
नर तन साधन खेत, राम नाम जप लुचि ले ।
हृदय वासना जेत, अक्षर करन उलुचि ले ॥५॥

जग जलते लखि चेत, जग सीमा उड़ि उँचि ले।
राम नाम करि हेत, परमानन्द समुचि ले ॥६॥

[३८]

महिमा महान मय महादेव।

जय अविनाशी मृत्यु विनाशी, सब सुख राशी सुखकारी ॥
जग लयकारी भव भय हारी, त्रिगुन-निवारी त्रिपुरारी।
करुणा धारी पिय विष भारी, मंगलकारी अविकारी ॥
जीव दुखारी जतनन हारी, आइ पुकारी तव द्वारी।
सब ही के दुख हर हर जो सेव ॥१॥
जय रूप अंड सब शिला खंड, जेहि मारकंड गति अमर चीख।
मन मोह कसत कैलाश बसत, मुनि मुक्ति हँसत जेहि मुक्ति सीख ॥
हित नाश मूल जन तीन शूल, जाकर त्रिशूल अति नोक तीख।
अव करु विधान दुख देन त्रान, करुणानिधान मैं माँग भीख ॥
तू औढरदानी एकमेव ॥२॥
जय चन्द्र भाल गल मुंड माल, उर भुज विशाल शिर गंग लसै।
शिर जटाजूट कहि अहि लँगूट, मन मोद लूट यह रूप बसै ॥
तन सित कपूर मन काम दूर, अति भक्ति चूर मति राम रसै।
आनन प्रकाश कर द्वन्दु नाश, गिरिजा सकाश मँद मन्द हँसै ॥
ते धन्य ध्यान धर राखि टेव ॥३॥
महिमा अपार दीनन अधार, संसार पार कर जो जोहै।
विधि हरि समर्थ तव ज्ञान अर्थ, खोजते व्यर्थ जग जड़ टोहै ॥
जय जिव ढारस तू सति पारस, कर मति सा रस सुवर्ण लोहै।
भक्त आकर दे मोहिं चाकर, हर गहु कर जब कुकाल कोहै ॥
हे हर भव सागर तारि देव ॥४॥

[३९]

रह नैहर सासुरे रहनवा।

नैहर सम सुख ससुरे हूँ जिव, सखि जौ लहन चहनवा ॥१॥
देह गेह अर्थात् स्थितो, बन जस उन्हन ढहनवा।
जीव सखी तौ कष्ट मरन, पश्चात रहन न लहनवा ॥२॥
राम चरित मानस सर तत्पर, डुबुकी लेइ नहनवा।
जीव निषाद देत दीक्षा गुरु, लछिमन मन्त्र गहनवा ॥३॥

क्रिया कलाप सपन जग करि, नहिं हर्ष विलाप सहनवा।
लाभ प्रशंसा होइ न प्रफुल्लित, हानि न दुःख दहनवा ॥४॥
बनि पायक रघुनायक सुमिरै, ध्यान सुनाम कहनवा।
करैं प्रदान धाम राम महँ, नित आनन्द महनवा ॥५॥
चह निज लय करि निराकार, जग दुख सुख बनै पहनवा[1]।
कर अहिवाती प्रथम स्थितो, दूजो सती बहनवा[2] ॥६॥

[४०]

मिलन राम प्रीतम मम होई।
अहं पलँग चेतन बिस्तर पर, राम गोद मैं खोई ॥१॥
राम पिया जागत अस लागत, जाउँ उनहिं जस सोई।
मैं जागउँ जग देखन लागउँ, पिय भागइँ इतनोई ॥२॥
जग निवास करि त्रास दिखावहिँ, सकल आस मम धोई।
कबहुँ हँसावत प्रेम जनावत, पावउँ माँगउँ जोई ॥३॥
मूरख दुष्ट धूर्त रुष्ट कहुँ, सन्त सुखद अतिसोई।
सिद्ध करन निज विघ्न करै जनु, भूत रूप धरि कोई ॥४॥
करइ जो सिद्ध भूत जस जानइ, सब तनु भूत धरोई।
तैसेहि सिद्ध हेतु राम पद, राम लखै जित जोई ॥५॥
रामइ सखा राम शत्रु कोउ, स्थिति हँसै न रोई।
द्रष्टा राम चेष्टा स्थिति, कबहुँ न सुख दुख ढोई ॥६॥
यही ज्ञान विज्ञान भक्ति, सब दृश्य राम ले टोई।
सत्ता सत्य राम द्रष्टा लखि, आपु कुदापु मिटोई ॥७॥

[४१]

पिय जग जियन रहन दिन थोरे।
गुरु पण्डित मम ब्याह करायेउ, तुम्ह ते पूँछि पछोरे ॥१॥
देखा गयेउ न सुना ब्याह अस, जस पर माथे मोरे।
बिन पिय आये ब्याह भयेउ तिय, मरतहँ पिय कहुँ ओरे ॥२॥
कृपानिधान सुजान राम, करुणानिधान सब ठोरे।
दीन निवाज लिहाज ब्याह करि, आपन बिरद न बोरे ॥३॥
तुम जो कहहु कि रहहु संग मम, मैं बस नित तव कोरे।
तव अभिलाषी दरस न चाखी, आँखी किमि तिय फोरे ॥४॥

---
१. पहनवा = पाहन = पाषाण। २. बहनवा = वहन करना = ढोना।

दरस दिखाइ निवास नेत्र करु, राम श्याम सिय गोरे।
अचल रहैं यह मूरति सूरति, तूरति निज तव जोरे ॥५॥

[४२]

राम प्रानहूँ प्रान हमारे।
तन मन बुधि चित पैठि देहली, अहमिति बैठि निहारे ॥१॥
निज स्थिति जग जीव परिस्थिति, सकल करत उजियारे।
हम हमार सार सब ही को, पर सब ही ते न्यारे ॥२॥
चहउँ जो कौन बिलग अपने ते, निफल होंहि बँटवारे।
जौ हठ करउँ तो लखउँ रहउँ मैं केवल राम सहारे ॥३॥
जहँ लग मैं तहँ लग माया, मैं मिटै अहम्मति द्वारे।
यह सीता स्थित मिश्रित, अद्वैत द्वैत भव पारे ॥४॥
जो भुवनेश्वर परमेश्वर, लय किये सृष्टि विस्तारे।
सो सर्वेश्वर अवधेश्वर हृदयेश्वर प्रान अधारे ॥५॥

[४३]

लख हिय कोहबर पिय सँग प्यारी।
दशरथ सुत आनन्द राम युत, सुख सिय जनक कुमारी ॥१॥
एक ब्रह्म आनन्द रूप ऐश्वर्य भूप अविकारी।
एक शक्ति तेहि नहिं विभक्ति, माधुर्य प्रकृति अधिकारी ॥२॥
मिलि आनन्द समुद्र सिन्धु सुख, मोद विनोद प्रसारी।
तेहि प्रसंग कोटिन अनंग मद, भंग वृत्ति सन्सारी ॥३॥
अन्तर्मुख भइ वृत्ति लखत तिन, स्मृति वाह्य विसारी।
नाम जपन भेउ सपन विलोकत, नाम रूप निज धारी ॥४॥
राम लखत सीता स्वरूप भेउ, सीता राम निहारी।
जीव सखी नहिं लखी विलग दोउ, रूप आपु भइ वारी ॥५॥

[४४]

मिलन चली मम सुरति सजनवा।
जग नैहर परिहरि सुख सम्पति, दौलत द्रव्य खजनवा ॥१॥
आपन जानत सब आनत करि, विस्मृति अगिनि यजनवा।
पिया नाम स्मरन रूप गुन, करि भरि शक्ति भजनवा ॥२॥
राम चरित मानस सर मज्जन, मानस मैल मँजनवा।
वस्त्र हीनता रंग दीनता, अभरन अगुन सजनवा ॥३॥

चूड़ी अचल सुगन्ध अनिच्छा, नयनन प्रेम अँजनवा।
राम सजन मम सजन भयेउ यह, आनँद हृदय रँजनवा ॥४॥
मन समीर थिर थल सुज्योति थिर, अनहद बजै बजनवा।
मिली राम पिय खोलेउ जब हिय, घूँघट अहं लजनवा ॥५॥

[४५]

मटकी[1] सुरति खुलति मुख मटकी।[2]
गले अहम्मति घूँटति घट की[3], मुँह खुलि गेउ तनु घटकी[4] ॥१॥
पिया मिलन निश्चय रद कट की[5], डरि भज माया कटकी[6]।
भागे काम कोह मद भट की[7], मति पुनि मोह न भटकी[8] ॥२॥
मूँदे विविध इन्द्रियन फटकी[9], माया निकट न फटकी[10]।
साहस करइ न खोलन पट की[11], एक बार गइ पटकी[12] ॥३॥
बसन असंभव अवगुन षट की[13], गे जब वे मन खटकी[14]।
मन ते उनहिं निकालन झटकी[15], बुद्धि विवेकी झटकी[16] ॥४॥
रामानन्द चाँदनी चटकी[17], मिलि अकाश घट चटकी[18]।
बनि परमातम आतम चटकी[19], लव न देर अस चटकी[20] ॥५॥

[४६]

अदभुत सपन अपन लखि पाई।
एक चेतना दुइ तनु सम धरि, एक सँग भुँइ दुइ ठाँई ॥१॥
मेडिकल कालेज करन स्मरन, नव निज प्रथम पढ़ाई।
सीट रिजर्व करत होस्टेल की, समय पहुँचि हुँचि जाई ॥२॥
जमादार होस्टेल कमरा रिजर्व दो व्यक्ति टिकाई।
निज सम्बन्धी एक रोगी, दोउ देखे, घिना घिनाई ॥३॥

---

१. मटकी = प्रसन्नता के भाव दिखलाये। २. मटकी = मिट्टी का छोटा घड़ा। ३. घट की = घट से घूँटते हुये। ४. घटकी = घड़ा। ५. कट की = कट को शब्द किया। ६. कटकी = छोटा कटक, लश्कर। ७. भट की = सेना पति, वीर। ८. भटकी = इधर उधर नहीं मारी फिरी। ९. फटकी = छोटा फाटक। १०. फटकी = पास नहीं आई। ११ पट की = किवाड़ को। १२. पटकी = गिरा दी गई। १३. षट की = छा की। १४. खटकी = विश्वास हट गई। १५. झटकी = झटके के साथ। १६. झट की = जल्दी की। १७. चटकी = फैली। १८. चटकी = चिटक कर फूट गई। १९. चट की = चाट ली। २०. चटकी = जल्दी की।

होस्टेल सुपरुडन्टाहि सोचेउँ, जाउँ रिपोर्ट कराई।
तव लगि अपनी सुखद परिस्थिति, यहँ तनु सुधि समुझाई ॥४॥
होस्टेल तनु चेतना उठा कर, यहँ तनु लाइ बसाई।
विपति परिस्थिति तजि सुख स्थिति, आपन सुरति लहाई ॥५॥
वेदान्ती जो उपर चढ़न तनु, रूप कला बदलाई।
खुलेउ रहस्य चेतना तनु की, बदलन सपन सिखाई ॥६॥
जग तनु सग नहिं धाम राम के, जिव तन नित सुखदाई।
जग तनु विसरन बसन धाम तनु, लीला लीन कहाई ॥७॥

[४७]

छलन पिय मुनि तिय दोष लयो।
राम कहेउ तव दोष अहिल्या नहिं, जस किहेउँ कयो ॥१॥
बदनामी कह अन्तर्यामी चेष्टा हेतु भयो।
तू बनि कारन गुन विस्तारन, मम पद रज लगयो ॥२॥
तव शुभ कथा व्यथा हरते जग, पापिन जतन दयो।
मम पद जोग लोग लोक तिहुँ, भव रुज तुरत हयो ॥३॥
माँगत छमा अहिल्या रघुवर, तेहि पद शीश नयो।
अधम उधारन भाव उभारन, राम न परन नयो ॥४॥
राम सुभाव लुभाव जीव जब, ज्ञान नयन चितयो।
चरित सरित अश्नान राम के, केहि अघ नहिं बितयो ॥५॥
बानि जानि रघुनाथ माथ जिव, चाह न जग उभयो।
राम चरन पंकज पराग अनुराग हृदय उदयो ॥६॥

[४८]

जागु री मेरी सुरति सबेरवा।
दुख सुख लुटत सपन दिन तम निशि, सुतत तु भयेउ अबेरवा ॥१॥
सतगुर सूर्य प्रकाश ज्ञान, हिय तम न नाश लग देरवा।
रहु न पाश गहु सत प्रकाश, दहु आश न मनु तनु बेरवा ॥२॥
बहु ग्रन्थन पढ़ि बातन बढ़ि बढ़ि, सुनि नहिं परइ बखेरवा।
जेहि पायेउ तेहि तोहिं बतायेउ, अपनहिं हिरदय हेरवा ॥३॥
माया सवति मनावति मिलन न, द्वार अविद्या घेरवा।
जीव थहावत हेरि न पावत, परत हमहिं तुम फेरवा ॥४॥

राम केन्द्र जिव चह गजेन्द्र इव, बाह्य बुलावइ टेरवा।
जीव सखो पिय राम लखी, सिय टारि रखी भ्रम भेरवा ॥५॥
जब लगि आपा जोर लगावइ, जिव न राम लख डेरवा।
राम लखावइ आपुइ पावइ, बनइ राम जब चेरवा ॥६॥

[४९]

तब सम्भव जिव राम मिलाई।
जब माया व्यवधान स्वामिनी, सिय कर कृपा हटाई ॥१॥
सिया राम तव लखिअ भिन्न नहिं, करुणा जीव कराई।
करुणा गुन सीता जानिय, करुणानिधान रघुराई ॥२॥
विस्मृति देह काम कोह की, स्वयं बनाव विदाई।
केवल चेतन रहत सकल मल, विविध वासना जाई ॥३॥
निज चेतन चेतना राम चेतन, समीप जब आई।
तब दोउ मिलत होत अनुभव सो, आनँद परे कहाई ॥४॥
मिलन पूर्ण दोउ होइ नहिं पुनि, चेतना देह लौटाई।
आवागवन समाप्त कीन्ह चहु, मिलन न छोड़ै ठाँई ॥५॥

[५०]

प्यारे! तव सत्ता सच पाई।
इन्द्रिय जन्य जगत सब अरु हम, भ्रम मन माया जाई[1] ॥१॥
तव करुणा प्रदत्त प्रेम जब, ज्ञान संग जिव आई।
तब जग मैं नसात केवल, बचात तव चेतनताई ॥२॥
जब तव मूरति वसति नयन, देखत तुमहीं जग छाई।
सुरति जाति जब अभ्यन्तर तब, मैं भें तुहीं लखाई ॥३॥
भजन ध्यान तव भक्ति ज्ञान दै, केवल यही सिखाई।
जग आपन दोऊ मन आसन, प्यारे तोहिं विठाई ॥४॥
ज्ञानानन्द मिलन हित भ्रम नित, जग चित थित विसराई।
मोल लेन प्रेम तव प्रीतम, अहमति दाम लगाई ॥५॥

[५१]

नित मम मति बसु रति प्रिय जोरी।
मन अभिराम किशोर राम सँग, सिय सुख धाम किशोरी ॥१॥

१. माया जाई = माया द्वारा उत्पन्न

राम रंग घन श्याम वाम सिय, अंग दामिनी गोरी।
मुख लखि ब्रह्मानँद लजाय एक, सुख निकाय जग छोरी ॥२॥
शोभा आनँद धाम एक, छबि, सुख सब ठाम बटोरी।
रंक ज्ञान कहते समान छबि, रति अरु काम करोरी ॥३॥
एक अहलाद एक अहलादिनि, एक गति एक मति बोरी।
दोउ नित्य तिन भृत्य जिवहु जब, लगि असत्य जिय ठोरी ॥४॥
दोउ लखत जिव बुधि न बसत तब, बनत सिया मति मोरी।
राम लखत सुधि राम रखत एक, निज सिय बुधि होइ भोरी ॥५॥

[५२]

बिनु तव सम्भव भव न तराई।
जुग अथाह जिव गज प्रवाह भव, ग्राह लड़त लखि पाई ॥१॥
काम क्रोध मद लोभ मोह, मत्सर प्रति लहर लिवाई।
बुद्धि विभोर भवँर भव सागर, नर तनु नाव फँसाई ॥२॥
नाम सुरति पतवार स्वाँस नहिं, होइ सवार सु-चलाई।
ताते नौका विमुख बहत प्रभु सँग मौका न लहाई ॥३॥
माया जनित मोर मन बुधि चित, किमि माया विलगाई।
माया जन्य महूँ भव झाँकेउँ, ताकेउँ तब शरनाई ॥४॥
तू ही माया परे एक, सो तरे लेहु अपनाई।
जग तूं ही खोइ मैं नाहीं कोइ, तू ही मैं होइ जाई ॥५॥

[५३]

प्यारे, तोर झलक मैं पायेउँ।
तुम्हरेहिं कृपा तुम्हारेहिं बल तें, अनुभव तुहीं लहायेउँ ॥१॥
पार करत ब्यापार विदेशी, तन मन बुधि चित आयेउँ।
अहं थान निज पहुँचत प्रीतम, तोहिं तेहि केन्द्र लखायेउँ ॥२॥
जगमय प्रकृति करत विश्लेषण, सत्ता तोर दिखायेउँ।
जगत प्रकृति तव प्रकृति, चेतना, जिव तव चेतन जायेउँ ॥३॥
अपनी प्रकृति नियन्ता तू ही, तेहि हौं जीव नचायेउँ।
माया प्रकृति स्वतन्त्र होंहु जिव, जाउँ तुमहिं अपनायेउँ ॥४॥
तव गुन गायेउँ तोहिं लुभायेउँ, पायेउँ तोहिं जेहि चाहेउँ।
तोहिं जब पायेउँ आपु नसायेउँ, तोहिं महँ मैं खोइ जायेउँ ॥५॥

जद्यपि जड़ की रूप बिगड़ पर, नहिं अस्तित्व नसाई।
यही प्रकृति जड़ यहू विकृति, चेतन निज राम बनाई ॥३॥
यहि विधि चेतन राम बिना, कोउ अन्य नहीं दरसाई।
जानन ज्ञान लखन विज्ञान, अकर्षन भक्ति कहाई ॥४॥
साधन सत्य चलन लय मारग, आलय निज लखि पाई।
सब पड़ाव स्थिति अपूर्ण, एक पूर्ण राम पहुँचाई ॥५॥
निज रामहिं अवकास बास करि, माया जीव सताई।
यह भय मिटय लखय निज चेतन, चेतनता रघुराई ॥६॥
यहि स्थिति नहिं बाध्य परिस्थिति, तन रह जा कि सिराई।
उच्च अवस्था परम व्यवस्था, रामइ कृपा कराई ॥७॥

[५७]

राखु दुराय न सिय रघुराई।
तोहिं छन दुरत लखत मन फ़ुरसत, माया तुरत चुराई ॥१॥
भोग देत निज रोग हृदय मिँज, जोग कुनरक कराई।
बुद्धि उपज वासना युद्धि करि, कोटि न शुद्धि धराई ॥२॥
वृत्ति निवृत्ति कराउँ युक्ति पर, प्रकृति प्रवित्ति चराई।
जेहि चह छोड़न मुख कहँ मोड़न, गोड़न ताहि गिराई ॥३॥
चहउँ बोध पर काम क्रोध, अवरोध न तनिक धिराई।
कबहुँ न निज बस कटउँ कुकुर कस जो कोइ आ नियराई ॥४॥
टाँग भोग अष्टाँग जोग कह, किन्तु लोग इतराई।
करनी संसृति परनी नर तनु, तरनी भव न तराई ॥५॥
जरा जोर अब समय थोर, मन मोर विभोर डराई।
शरन राखु आचरन माखु नहिं, ताखु धरइ उबराई ॥६॥

[५८]

खिन्न न बन कछु जग न लहायो।
तव अभ्यन्तर चलै निरन्तर, नाम जौन जग जायो ॥१॥
जासु सत्यता भास सत्य जग, जिमि रजु अहि ठहरायो।
जिव तव प्रान बसै मन्तर जेहि, अन्दर वही समायो ॥२॥
यहि विधि जग वश राम नाम वश, स्वाँस प्रान वश आयो।
सकल विश्व सुख बृक्ष नाम बिय, तव हिय सहज सजायो ॥३॥
सुरति बोउ श्वास दोउ, अक्षर प्रिय नाम जमायो।
नामी रूप अरूप कोउ दोउ, संग निजानँद लायो ॥४॥

बोइ न पायो तपहिं लहायो, तरु सुख समय सुखायो।
चेती करइ नाम नित खेती, सेती सुख सरसायो॥५॥

[५९]

खेव नइया हमार रघुरइया।
सुरति युवति के माँग अहम्मति, सेंदुर भगति भरइया॥१॥
खेवत रहेउँ नाव साधना, बहु बासना धरइया।
भार नाव मँजधार चार अंगुल भव जल अँदरइया॥२॥
बड़े उतंग तरंग भोग भव, पवन उमंग परइया।
साधन नाव चहै डूबन मैं, कूदन विषय चरइया॥३॥
करुणा सिन्धु दीन बन्धु मम, अहं हाथ पकड़इया।
साधन नाव चलावन लागेउ, आइ लगेउ किनरइया॥४॥
नाथ साथ सुख हाथ गाथ नहिं, कहन माथ ठहरइया।
राम परम अभिराम भये करि, अहं विराम घरइया॥५॥

[६०]

साधो, अस नर नाव चलावो।
नौका देह कर्ण इन्द्रिन से, प्रथम स्वयम विलगावो॥१॥
सुरति करति नित विरति भोग अति, हति मन गति ठहरावो।
मन कर पाथ स्वाँस अवरोधन, नामहिं साथ लगावो॥२॥
सुनत नाद अहलाद सुरति, अन्तरगति सँभरि चढ़ावो।
तब जग विस्मृति रहि एक स्मृति, आपुहिं चेतन पावो॥३॥
यहि तम नाशन आतम आसन, आपन अहं लखावो।
होइ न निज बल, यह किरपा फल, राम सुभक्ति रिझावो॥४॥
चेतन आतम ही परमातम, अनुभव राम करावो।
तब कहुँ निज सुधि कहूँ राम बुधि, माया सीम नँघावो॥५॥

[६१]

स्थिति सहज स्वरूप सुहाई।
माया प्रकृति परे भव उबरे, संसृति करे न आई॥१॥
मेटति जीव उपाधि, जीव यहि, सहज समाधि समाई।
मोहिं न शक कि यही होइ परिपक, दशा समाधि कहाई॥२॥
यही सम्हार समाधि अपार अखंड पुरार लगाई।
यही विमल मन नारद जेहि बन, तुरत समाधि सजाई॥३॥

सब साधन बल राम दरस हल, ताकर फल यह पाई।
जहँ लग जानिय साधन ठानिय, मानिय यही सिराई ॥४॥
चेतन शुद्ध निकेतन आतम, सेतन सन्त लहाई।
द्वैत विरोध समान न क्रोध, निजानँद बोध सदाई ॥५॥
देह अतीत प्रतीत न सुख दुख, रिपु नहिं मीत लखाई।
जग निज स्मृति चेतन स्मृति, कोउ कृति रह न कराई ॥६॥
यह निरबान सु-भक्ति मान सँग, शक्तिमान रघुराई।
मोहिं स्थिति सुझ अस जनि कोउ बुझ, मति जस समुझ सुनाई ॥७॥

[६२]

साधन आत्म स्थिती लायो।
तब मानिअ साधना सफल गल, माया फन्द छुड़ायो ॥१॥
भाँवत निजानन्द स्थिती, शाश्वत कछु न खँगायो।
यही स्थिती सही पहुँचि लख, निज सुख घर लौटायो ॥२॥
भोग विशाल नटिनि माया भ्रम, इन्द्रजाल फैलायो।
तन मन बुधि जित प्राकृत प्रकटित, इच्छा जीव फँसायो ॥३॥
तन मन बुधि चित अहं चेतना, छोर रखित पकरायो।
छोर छुड़ाइ उनहिं उबराइ, भावार्णव भीर भगायो ॥४॥
चौकन्ना विवेक होइ भिन्ना उनि पुनि उतरि न आयो।
प्रकृति पराई रति फल खाई, संसृति सजा न पायो ॥५॥
प्रकृति झुँठाई महँ सति पाई, गति न उपज विनसायो।
सोई आपन राम स्थापन, निज जड़ प्रकृति दुरायो ॥६॥
राम दरस दृग सरस ज्ञान वा, आत्म प्रकृति विलगायो।
अहं माथ पद विश्वनाथ, थिति सिद्धि हाथ कहलायो ॥७॥

[६३]

जिव निज राम रूप सँभार।
राम चरित रूप अनूप साँचा, रूप ढाँचा ढार ॥१॥
विष्णु रूप लहेउ जटायु, न सो उपायु बिसार।
सीय स्थिति हित सुरक्षित, अहं रावन मार ॥२॥
पूर्ण रूप बचा न सक, अनुरूप युक्ति विचार।
वरन वारिज चरन हरि निज हृदय रेखन धार ॥३॥

करत रन जौ अहं रावन, बन न करन सँहार।
शरन आये अहं नासत, स्वयं राम उदार ॥४॥
मन न बुधि चित रखि, अहं हित, राम पिय सिय प्यार।
राम चिन्मय अहं चित मय, बुद्धि मन आकार ॥५॥
अंड किट प्यूपा दशा पुनि, तितलि रूपा सार।
अंड खँड हरि कीट जिव, प्यूपा समाधि निखार ॥६॥
प्रकृति माँ सम्बन्ध काटे, नार जिव भव पार।
बीज पितु शिशु होतु पितु सम, विदितु सब संसार ॥७॥

[६४]

सिय राम लखउ खेलैं होली।
गुरु अनुग्रह साधन संग्रह, विग्रह दरस नाम मोली ॥१॥
सीत घाम सुख दुख विराम, श्वासा न वाम दाहिन डोली।
अनहद बाजै ज्योति विराजै, तेहि भल छाजै दोउ टोली ॥२॥
राम अंग पिचकारि रंग, प्रिय भ्रात संग बहु हमजोली।
कर्म जोग वैराग्य लोग, रँग डार्लाह ज्ञान नीर घोली ॥३॥
सिय जी हाथ रंग पिचकारी, सखिन साथ रँग भरि झोली।
भक्ति विमल मति शरनागति रँग, जल सनेह जिव मल धोली ॥४॥
घेरि चहुँ दिसि रंग डार हँसि, भिगि कुढंग नसि जिव चोली।
बरजोरी कर अहं मरोरी, ग्रन्थी जड़ चेतन खोली ॥५॥

[६५]

हरि बिगड़ी जन दीन बनाई।
आँवँ विडाल शिशुन महभारत, भरदुल अंड बचाई ॥१॥
बिना कहे निज जन सहाय, अनि थकि वाल टेर लगाई।
निज करुणा से द्रवत दीन अति, सकै न जो गोहराई ॥२॥
चन्द्रहास प्रहलाद प्रथम, दूजे गज द्रौपदि आई।
तीसर उपमा नारि अहिल्या, यमला अर्जुन भाई ॥३॥
चन्द्रहास कहँ लिखा देन विष, विषया कुवँरि दिलाई।
जन प्रहलाद मारने हित सब, निष्फल कीन उपाई ॥४॥
गज द्रौपदी थके निज सब बल, टेरे कीन सहाई।
नारि अहिल्या यमला अर्जुन, गति दिय दया समाई ॥५॥

राज दीन्ह सुग्रीव विभीषन, रहे देश बहिराई।
विरद गरीव निवाज राम, जन दीन लिहाज लहाई ॥६॥

[६६]

कुलहे[1] सुमौर सिया दुलहे मुरतिया।
कहि किमि पाऊँ निज रूप में समाऊँ, पुनि पुनि चढ़ि जाऊँ करि
उतरि जुरतिया[2] ॥१॥
छबि मन आवै चित आनँद समावै, निज रूप ठहरावै सब
स्मृति दुरतिया।
लौटि पुनि आऊँ मुख दुलह लखाऊँ, पुनि ह्वै विभोर जाऊँ रखि
पाऊँ न सुरतिया ॥२॥
घन बन ससि मन दामिनी गिराव हँसि, चित्त वृत्ति नसि मसि
नयन घुरतिया।
बाह्य लखि द्वैत मति हिय रखि आपु सति, भिन्न अभिन्न गति
सिय की ढुरतिया ॥३॥
दुलहे को अंग अँग अमित अनंग ढँग, अहं बसायो सँग आपने तुरतिया।
जोग जप जाग नहिं ज्ञान जग भाग जस, सिय दुलहे की अनुराग
से फुरतिया ॥४॥

[६७]

लीन मीन जिव जल दुइ ठाँई।
मल भव भोग युक्त जल कै भल, नेह सुरति रघुराई ॥१॥
जग जल भव माया सम्भव जिव, जोग कहाइ डुबाई।
सुरति निरत स्मृति स्वरूप निज, राम तरन भव गाई ॥२॥
भव जल जग अरु जीव आवरन, दोउ निज प्रकृति बनाई।
दोउ होत सोइ एक दूसरे, सम्भव नहिं विलगाई ॥३॥
राम प्रेम जल नाम जाप, स्मृति सरि चरित नहाई।
ताकर अन्त रूप स्थिती, निज वा राम एकाई ॥४॥
तन इन्द्रिन अनुभूत जगत, इन्द्रिन भे विलग बिलाई।
तन मन बुधि चित अहं आवरन, निकरि स्वस्थिती पाई ॥५॥
प्रकृतिं प्रपञ्च उक्त आवरन, जग चेतना बसाई।
भव जल डूबन कहिअ ऊबरन, इन चेतना हटाई ॥६॥

---

१. कुलहे = कुलाह अर्थात् कुलाह पर बँधा हुआ साफ़ा या पगड़ी।
२. जुरतिया = जुरात = साहस।)

यह जड़ चेतन ग्रन्थि छुड़ाई, संसृति रोग दवाई।
माया मुक्ति सुयुक्ति योग, विज्ञान भक्ति कहिलाई ॥७॥

[६८]

सुरति चलै पति राम रहलवा।

दुख सुख साँसति संसृति आफ़ति, मिट नँघि अहं जहलवा ॥१॥
छोड़ि राम मति जगत लखति, वतैं निज अन्य टहलवा।
यहि अपराध बाँध जा हथकड़ि, तन जेहि कैद कहलवा ॥२॥
अहं जेल देह ठेल बहु, हिय लखि खेल दहलवा।
एक देह से दुसरे बदली, आवागमन लहलवा ॥३॥
भर्ती जेल बहुत आवर्ती, धर्ती चहल पहलवा।
हम हमार याद मिटि म्याद, जिवा आरोप बहलवा ॥४॥
उलटि देख लहु थिति विशेष, प्रीतम अवरेख सहलवा।
बिनु वेदना भेद-ना निज, चेतना सुज्ञान महलवा ॥५॥

[६९]

पिय में समाइ चलि हमरी सुरतिया।

अनहद सुनते श्वासा जपते, नासिक अग्र घुरतिया ॥१॥
मन संकल्प विकल्प खींचड़ी, देर न रहत चुरतिया।
सुरति उतरि निश्चय सुकर्म करि, पिय पहँ जाति तुरतिया ॥२॥
कर्म करत इन्द्रियन चेतना, रखि पिय बहु न दुरतिया।
जानि परत कछु आपु सुरति कर, बहु कर पिया पुरतिया ॥३॥
मृग जल भव रस नदी हृदय बस, लख अस भई झुरतिया।
पिया हटे ही हिया हलन कर, काम कुक्रोध जुरतिया ॥४॥
कबहुँ विलग होइ कबहुँक पिय खोइ, द्वैत-अद्वैत फुरतिया।
कहुँ पिय हम जोइ कहुँ हम पिय होइ, आपन चेत मुरतिया ॥५॥

[७०]

पिता नाम धर तासु लाज कर।

गुन निर्वाह चाह पितु तोंहि सो, तेहि अनुसार सुनाम तोर धर ॥१॥
अन्तर्यामी राम प्रेरणा, अनुसारइ पितु नाम धरै बर।
बल परियाप्त देत आशा कर, अन्तर्यामी होन अग्रसर ॥२॥
नाम अनुसार कर्म धार, अजहूँ विचार आशा न राम टर।
पूर्ण न करि सक अंश करै, आशा न चूर्ण कर लहि शरीर नर ॥३॥

राम भक्ति आचरत कठिन व्रत, नारि सती सम तजत किहेउ हर ।
शठ मरतहुँ हठ करु राखन मठ, हृदय राम लागतहुँ काम शर ।।४।।
जाप नाम विश्राम राम नित हृदय ठाम आनन्द आपु घर ।
विश्वनाथ वति[1] उमानाथ गति, जौ मति उमानाथ रति[2] अनुसर ।।५।।

[७१]

करते कृपाल कृपा परि गे लखाई ।
स्थिति हमरे अहं परे जब, ठहरति युक्ति बताई ।।१।।
मम अकाज रघुराज न सहि सक, उर प्रेरणा चलाई ।
जो नहिं सिद्धि मोर बुद्धि ते, ठीक सुअवसर आई ।।२।।
राम सुभावं कृपा लगाव तेहि, सबहिं भये असहाई ।
भये सजग अस समय दीख मग, कृपा राम अपनाई ।।३।।
हृदयं प्रेरि कोउ काज करावत, कहुँ कोउ स्वयं बनाई ।
कबहुँ जिवहिं उर करत प्रेरणा, कारज सिद्ध कराई ।।४।।
अहं परे सब देह धरे उर, बसत सुहृद रघुराई ।
अवसर दुख सिय राम लखत मुख, कोउ रुख सुख पहुँचाई ।।५।।

[७२]

दो निज रूप सहज सँभार ।
जगत मानी परम दानी, धरम राम तुम्हार ।।१।।
सकल साधन फल अराधन, तव दरस सुख सार ।
ताहु फल जिव रूप निज ढल, सहज किहेउ प्रचार ।।२।।
जागि तन मन बुद्धि चित, चेतना त्यागि विकार ।
काल कर्म परे प्रकृति गति, रोग संसृति पार ।।३।।
मगन निज आनन्द गन नहिं, बाह्य सुख दरकार ।
भय न छीनन उदय निज सुख, नित सुभाव हमार ।।४।।
जगत अरु जग सुख विनाशी, ते न मम अनुहार ।
रहै तिन्ह संगति हमारी, भूल यहि धिक्कार ।।५।।
मम तुम्हारी गुन न न्यारी, नित्य सुख व्यापार ।
रमउँ रामइँ चेतना, अपना न रहि संसार ।।६।।
(आधारित :–मम दरसन फल परम अनूप ।।
जीव पाव निज सहज स्वरूपा ।)

---

१. वति = वत् = समान, तुल्य । २. रति = भक्ति = प्रेम ।

[७३]

जानहि सुख अलि कोहबर भलि कै।
सो बरनेउ तुलसी लखि बनि सखि, पुष्प बाटिका चलि कै ॥१॥
राम संग बनि बालक खेलेउ, साथ भंग नहिं टलि कै।
ध्यान अवस्था संग ब्यवस्था, लख न कोउ अस गलि कै ॥२॥
आयेउ राम संग बाटिका, रंग कहेउ सब हलि कै।
कंकन किंकिनि ध्वनि सखि बनि, स्वामिनि पछियानि निकलि कै ॥३॥
शोभा रघुबर जाते कोहबर, कह पद ते शिर थलि कै।
पुष्प बाटिका बरनत शिर से, मति थिर कटि न सँभलि कै ॥४॥
केहरि कटि सुख सुधि समान, अतिशय अपान सब अलि कै।
किमि नीचे कटि मति तुलसी हटि, बरनै अलि भलि ढलि कै ॥५॥
बिदा भये सिय तुलसी नर हिय, पछिताते कर मलि कै।
मिलेउ जात बन बनि तापस जन, दिन वियोग जस खलि कै ॥६॥

[७४]

मिथिला प्रकटी आजु किशोरी।
शक्ति आदि पूजित शिवादि, अहलादि राम हित मोरी ॥१॥
विद्या रूप सुघर अनूप, जग भूप राम प्रिय जोरी।
जग कारन दुख धूप निवारन, भव तम कूप अँजोरी ॥२॥
करुणा मया दया हृदया, जग स्वामिनि बनि तिय चोरी।
जड़ चेतन जिय ग्रन्थी छोरी, बनी जनक प्रिय छोरी ॥३॥
जगन्नाथ रघुनाथ दरस बस, हाथ मातु एक तोरी।
बिनु तव दया न सुलभ भया कोउ, कीन्हे जतन करोरी ॥४॥
तू गति दायक करु मति लायक, अति जगनायक बोरी।
तव दाया स्वामिनि उबराया, माया गह न बहोरी ॥५॥

[७५]

प्रिय पुर मम उर सिय प्रकटाई।
भूमि अहं धड़ प्रकटि जानकी, घूमि न जड़ अपनाई ॥१॥
रूप प्रकाश ब्रह्म विद्या, अवकाश न भ्रम तम पाई।
हिय चेतना एक राम पिय, जगत आपु बिसराई ॥२॥

निज पद चिह्न अभिन्न राम पद, ताही सुरति जमाई।
विपदा वैभव जगत सम्पदा, चित से सदा दुराई ॥३॥
सदा राम पद चित्त रहत, कहुँ कदा आपु ठहराई।
होत अभिन्न राम रंग, कर भिन्न संग सेवकाई ॥४॥
कवहुँ सभीता नहिं सुख रीता, जीता राम रमाई।
भव बीता जानिअ जब सीता, रूप जीव होइ जाई ॥५॥

[७६]

सुरति जौ राम पै ठहरावै ।
तौ जिव बिगड़ी कोटि जनम की, आज ही बनि जावै ॥१॥
करम रेख तम जनम जनम कर, ज्ञान प्रकाश मिटावै।
भोग बासना निजानन्द स्थिती आस ना पावै ॥२॥
जो सर्वोच्च दशा जिव कबहुँक, तनु तजि चह पहुँचावै।
सो तनु अछत बहत न जात कहुँ, जीवनमुक्ति लहावै ॥३॥
हानि लाभ अपमान सुयश गति, नहिं परमान छुआवै।
जिव निज भूलइ राम चेतना, उतना राम बनावै ॥४॥
अहं सेज मिलि कवित भेज कवि, सूर श्याम कहलावै।
निज समूल जिव भूल, राम अनुकूल तासु मुख गावै ॥५॥

[७७]

गेउ मन निरखन राम विवाहू ।
शोक समुद्र निकास सुलभ, जल-निधि हुलास अवगाहू ॥१॥
दुलह वेश राकेश बदन सुख, मिटि कलंक जिति राहू।
अंग अंग छबि शत अनंग दबि, बनेउ बाजि रति नाहू ॥२॥
रूप विलोकत गति अनूप जिव, निज स्वरूप लहि लाहू।
राम विलोकन काम शीश चढ़ि, जिव बैठन बनि साहू ॥३॥
राम रूप लखि भे विदेह रखि, राम रूप जेहि चाहू।
जेहि देखिय पुर तेहि रघुबर उर, मिटा जीव दुख दाहू ॥४॥
प्रकृति भूप श्री राम रूप लह, लखिय हृदय जेहि काहू।
पंच चतुर्मुख भे एक मुख सुख, चारि भुजी दुइ बाहू ॥५॥
वरनन शेष गनेश गम्य नहिं, मगन उमेश उछाहू।
राम हृदय सिय राम विलोकिय, निज हिय दोउ निर्वाहू ॥६॥

॥ राम ॥

श्री रामचरितमानस पदावली

अयोध्या काण्ड

श्री राम बन गवन प्रसंग

(भाव प्रकरण)

॥ राम ॥

श्री गणेशाय नमः

श्री सीतारामाभ्यां नमः

श्री हनुमते नमः — — श्री गुरुवे नमः

—: वन्दना :—

वन्दउँ प्रथम चरन लछिमन के।
मूर्ति विराग प्रसद्ध जगद्गुरु, प्रतिनिधि सब जीवन के ॥१॥
निति संगी हरि जिव अपनावन, दक्ष निबाहन पन के।
चातक चतुर पियत आज्ञा जल, स्वाती सियवर घन के ॥२॥
केवल जिनकी कीन्ह सिफ़ारिश, मानत नृप त्रिभुवन के।
उन्ही उर्मिला नाथ निहोरउँ, दानी मोहिं निर्धन के ॥३॥
जिन अनन्त के अंश शेष नित, गायक हरि गुन गन के।
संग राम सिय होइ प्रसन्न हिय, बसहु बटोही बन के ॥४॥

राम वाम दिशि सोहति नीके।
आप्तकाम लखि भयउ राम जेहि, रम्य सुता अवनी के ॥१॥
जासु कृपा बिनु सुलभ न सपनेहुँ, दर्शन विश्व धनी के।
चरण कमल रज शिर धरि विनबउँ, अति प्रिय राम बनी के ॥२॥
भक्ति स्वरूपा अहलादिनि मन, राम त्रिलोक मनी के।
जगत जननि करुणा स्वभाव सिय, हरु दुख भव रजनी के ॥३॥
पिय देवर सँग कीन्ह पूर मन, मग वासिन भवनी के।
सोइ स्वरूप हिय बसह करौं मैं विनय राम रवनी के ॥४॥

चरण कमल वन्दउँ सिय पिय के।
करुणामय प्रभु अन्तर्यामी, पूरक शुचि रुचि हिय के ॥१॥
पूर्ण ब्रह्म अविनाशी एक रस, दानी भक्ति अमिय के।
बिनु तव कृपा कठिन भव बंधन, निज बल छोरि सकिय के ॥२॥
ज्ञान स्वरूप अमान मान प्रद, तारक गौतम तिय के।
मोह निशा सुषुप्त जीव बिनु, तुम्हरी दया जगिय के ॥३॥

मृग तृष्णा जस भ्रमत दुखी मृग, मग्न होत लखि दिय के।
कानन पथिक प्रकाश दरस तस, हरहु प्रकृति भ्रम जिय के ॥४॥

(उपर्युक्त वन्दना के क्रम तथा आशय श्री राम चरित मानस जी के निम्न लिखित चौपाई पर निर्धारित हैं :—

अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहुँ लखनु सिय रामु बटाऊ॥
राम धाम पथ पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहुँ मुनि कोई॥)

राम चरन रति जो चहै, अथवा पद निर्वान।
राम चरित सँग सो करै, तेहि पदावली गान॥

[२]

श्री राम कथा रसिक गण अब भगवान श्री राम के प्रातः काल जागने पर श्रेष्ठ कुक्कुटों द्वारा किये गये अनुमानित मधुर गान का रसास्वादन करें :—

धनि हरि तुम्ह धनि जन तुम्हरे।
भक्त वछलता हरि व्रत जन व्रत, हरि सेवा सम्हरे॥१॥
सुरसा के मुख जान को नहिं भय, काज न हरि बिगरे।
राम काम बिनु पूर भये, मैनाक नहीं ठहरे॥२॥
प्रबल अग्नि प्रज्वलित पूँछ निज ताको भय न करे।
हर्षित यह उर आनि स्वामि रिपु, यहि विधि नगर जरे॥३॥
होइ युवराज स्वामि सेवा वश, दूत को काज करे।
निज पितु रिपु हित पिता मित्र सों, मन वच कर्म लरे॥४॥
कोशल-राज जो सीम सुखन को, पावत रुदन करे।
तव सुख कारन निज आजीवन, बन दुख शीस धरे॥५॥
तुम्हरो भजन ध्यान जीवन धन, तेहि बिनु मनहुँ मरे।
दास हृदय एक आस सदा प्रभु, रहो अनन्द भरे॥६॥
नहिं भय यम को नहिं त्रिताप को, नहिं प्रलोक बिगरे।
एकइ ध्यान जनन निशि वासर, सेवा धर्म सरे॥७॥
नरसिँह रूप कराल विलोकत, बिधि शिव श्रीहुँ डरे।
पञ्च वर्ष बालक जन बिनु भय, डेरा गोद करे॥८॥
माँगहु बर बहु करत याचना, तब जन माँग करे।
जेहि पितु साँसति किहेउ ताहि कहँ, माँगेउ भव उधरे॥९॥

ऋषि दुर्वासा अम्बरीष हित, कृत्या प्रगट करे।
चक्र सुदर्शन ऋषि धाये नृप, व्रत उपवास धरे ॥१०॥
मानत एक भक्ति को नातो, हरि अस जानि परे।
भक्तहु हरि तजि काहु न जानत, अस परमान भरे ॥११॥
एकइ उर अभिलाष जनन्ह हरि पद रज शीस परे।
पद रज लागि तुमहुँ हरि तिन्हके, पीछे रहत खरे ॥१२॥

(इस पद में भविष्य में होने वाली घटनाओं का भी वर्णन है जो अहिल्या और गीधराज के स्तुतियों की भाँति सिद्धि प्राप्त अवस्था में कहे जाने के कारण असंगत नहीं हैं।)

[३]

तदनन्तर "बंदि मागधन गुन गन गाये।" 'मागधन' शब्द में मागध तथा सूत का संकेत है। राज्याभिषेक के समय "बरनै सारद सेष स्रुति, सो रस जान महेस॥" के वर्णन से मिलान करने पर बंदी शारदा, मागध शेष और सूत श्रुति अनुमानित होते हैं। उनके अनुमानित गुण गान का रसास्वादन कीजिये :-

(बंदी रूप शारदा जी द्वारा गुण गान)

चित् स्वरूप रघुवंश विभूषण।
भरत प्रेम, भन्जन भव दूषण ॥१॥
लखन विराग, ज्ञान को संगी।
रिपुहन जोग सु-प्रेम अभंगी ॥२॥
करि करुणा अवनी पगु धारे।
अवनि सुता सह अंशन्हि सारे ॥३॥
पद रज लगि पाषानउँ तारे।
उड़ि लगिहइँ तनु कबहुँ हमारे ॥४॥

(मागध रूप शेष जी द्वारा गान)

ललित चरित जोइ जोइ प्रभु करिहइँ। कौन है अस जो सुनि नहिं तरिहइँ ॥१॥
भक्त वछलता बान चढ़ाये। विरदावलि धनु रहत उठाये ॥२॥
रावणादि निशिचर सब दहिहइँ। दीन देव मुनि आनंद भरिहइँ ॥३॥
जहँ जहँ भक्त बसहिं लव लाये। करुणानिधि मिलिहइँ तहँ धाये ॥४॥

(सूत रूप श्रुति गान)

भाग्यो श्रुति लखि आश्रय नाहीं। पाप प्रचण्ड बढ़हिं छन माहीं ॥१॥
श्रुति के सेतु पालने कारन। जेहि प्रभु किय पग कंटक धारन ॥२॥
सोइ प्रभु को पग हिय मम धारे। मोहि हारे को एक सहारे ॥३॥
भव बूड़त अवलंब एक गति। दीन जनन्ह को सोइ सीतापति ॥४॥

विश्वामित्र जी को भगवान श्री राम पहुँचा कर जब लौटने लगे उस समय विश्वामित्र जी न विह्वल हुये और न लौट कर श्री राम का अवलोकन किया जिसे ऐसे ही समय किये गये अंगद जी की प्रक्रिया "अंगद हृदय प्रेम नहिं मोरा। फिरि फिरि चितव राम की ओरा॥" के विपरीत होने के कारण नीचे के चार पदों में उस कारण का समाधान :—

[४]

अवध इन्द्रजालिक इक आयो।
कल बल छल करि नृपति शीस पर अति चातुरी ठगौरी डायो ॥१॥
इन्द्रनील मणि माणिक उज्वल सहसन बरष कठिन तप पायो।
साधु वेष जादूगर के वश होइ सोइ नृप छिन माहिं गँवायो ॥२॥
जनक राज पारिख मणि माणिक पाइ पता निज दूत पठायो।
सेन समेत चढ़े दस स्यन्दन साधू लिये द्रव्य मिलि पायो ॥३॥
साधू द्रव्य हृदय निज मेल्यो चहत न निज उर तें बिलगायो।
बिधि चोरी किय ग्वाल बाल बछ यह तो उरगराय उरगायो ॥४॥
जिमि यदुपति बिधि देन सिखावन स्वयमहिं बाल बच्छ ह्वै जायो।
तिमि दोउ रघुसुन दोउ प्रेमिन हित निज दोइ भिन्न रूप प्रकटायो ॥५॥
रूप इन्द्रजालिक दोउ देखत जानत सत्य जो उर बैठायो।
दशरथ सकल बराती निरखत सोइ एक रूप जो नित मन भायो ॥६॥
यातें चतुर इन्द्रजालिक निधि पाइ न ब्याह नेग ललचायो।
राम लखन सों बिछुड़त एकहु बार न घूमि नयन तिन्ह लायो ॥७॥

विश्वामित्र जी श्री राम को लौट कर कैसे देखते जब उनका मन राम रूप, भूपति भगति और व्याह उत्साह में मग्न था :—

राम रूप भूपति भगति, ब्याहु उछाहु अनंदु।
जात सराहत मनहिं मन, मुदित गाधिकुलचंदु ॥

विश्वामित्र जी के हृदय के राम रूप, भूपति भगति और ब्याह उत्साह का दर्शन अब आप पृथक पृथक करें :—

[५]

राम रूप (जिसके हृदय में सीता जी का चित्र है)

श्यामा चित्र श्याम उर खींचो ।
लै दल फूल निकट मुनि आहत, विकट प्रेम शर हिय सिर नीचो ॥१॥
छिपवत छिप न प्रगट वह दीखत, अँकुरित बीज प्रेम जनु सींचो ।
पावन प्रेम सीय पात्र हरि, धरि मुनि हिय नयनन पट भींचो ॥२॥

[६]

भूपति भगति (पद ३ से संगति लगाइये)

देखेउ फणि जेहि मणि लै भागे ।
इत उत तकत न टिकत कतहुँ दृग, ढूँढ़त कछुक निमेवन त्यागे ।
साज सुखी पर आकृति दुखमय, मानहुँ मृग हिय शर के लागे ॥१॥
मुकुटउ मणि कंठउ मणि माणिक, उर मणिमाल, अँगूठिन लागे ।
केहि मणि लागि बिकल अति खोजत,जनु वह मणि जेहि हिय ते तागे।२।
नयनन्हि नीर बसत नहिं ढरकत, जिमि धन कृपिन रखत डर खाँगे ।
रहत चलत कतहूँ नहिं बिथकत, तीव्र लालसा जनु कोउ जागे ॥३॥
गान रंग महँ मन न रमेउ कछु, मनहुँ अखिल जग सुख तुछ लागे ।
पूंछत जेहि तेहि राम मणी कहँ, मानहुँ ताही रस मन पागे ॥४॥
झाँवरि चलनि बोलि बावल को, ताकनि भनहुँ कतहुँ मन टाँगे ।
नयनन नीर प्रेम तेहि दरसत झाँकनि झुंकनि विरह जनु दागे ॥५॥
सूखे होंठ कछुक मुख खोले, मानहुँ मन बुधि कहँ चित त्यागे ।
चिंतामणि सुषुप्ति खोइ जिव, ढूंढ़त फिरत ताहि जनु जागे ॥६॥
देखत राम प्रान लौटेउ तनु, दस इन्द्रिन सँग दसरथ रागे ।
सोइ दसरथ को भगति लाइ हिय, मुनि कौशिक कौशलपुर त्यागे ॥७॥

[७]

व्याह उत्साह (अधिक सनेहँ देह भै भोरी)

निरखति रघुपति प्रीति न थोरी ।
प्रेम स्वरूप भईं जब सीता, देहँ भई तब भोरी ॥१॥
बैदेही तब नाम भयो सत, चिन्मय रूप भयोरी ।
चँदिनि चंद विराजत एक सँग; कौन सकै कहि दो री ॥२॥

प्रेमास्पद प्रेमी दोउ नागर, उर केहि भाँति मिलो री।
कहियत भिन्न भिन्न नहिं भासत, ईश्वर शक्ति मनो री ॥३॥
प्रीतम बास दिहेउ सिय निज हिय, पिय हिय चित्र सियो री।
सिय भइ राम, राम सीता भो, कोउ कह पृथक कहोरी ॥४॥
छबि समुद्र सोइ रूप राम को, जो मनु देखि परो री।
सोई बीज भक्ति दशरथ बढ़ि, ब्याह उछाह बनो री ॥५॥
उपर्युक्त रूप राम सिय, कौशिक धरेउ हियो री।
चितवत दोउ नित पूर्णकाम भो, किमि एक राम चितो री ॥६॥
यह सुख भोग विराग योग फल, शंकर सीख दियो री।
खोजत निधि निरखत करुणानिधि, महँ लखु जनक किशोरी ॥७॥

श्री राम चरित मानस को गोस्वामी जी ने बताया है कि :—

एहि महँ रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति **भगति केर पंथाना** ॥

तो अब बाल काण्ड के अन्त पर यह विचार प्रकट करने हेतु कि मानस जी का कौन सा सोपान (काण्ड) श्री राम भक्ति के किस पंथान (साधन) से सम्बन्धित है हम पहिले स्वयं श्रीराम द्वारा कहे गये भक्ति पंथ के साधनों का उल्लेख करते हैं :—

भगति के साधन कहउँ बखानी। सुगम **पंथ** मोहि पावहिं प्रानी ॥
१. प्रथमहिं **विप्र चरन अति प्रीती**। निज निज कर्म निरत **श्रुति रीती** ॥
२. यहि कर फल पुनि **विषय विरागा**। तब मम धर्म उपज **अनुरागा** ॥
३. श्रवनादिक **नव भक्ति** दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं ॥
संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा ॥
४. गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। **सब मोहि कहँ** जानै दृढ़ सेवा ॥
५. मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा ॥
काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर **बस** मैं ताकें ॥
६. वचन कर्म मन मोरि गति, भजनु करहिं **निःकाम**।
७. तिन्ह के हृदय कमल महुँ, करउँ सदा विश्राम ॥

[८]

अब हम मानस जी के प्रत्येक सोपान (काण्ड) में श्री राम भक्ति के विभिन्न सात अङ्गों (साधनों) में से क्रमशः एक का दर्शन कराते हैं—

निरखहु ग्यान नयन चित लाई।
मानस सप्त काण्ड भक्ती के, सीढ़ी सप्त सुहाई ॥१॥

विप्र चरन अति प्रीति बाल महँ, दशरथ केरि दिखाई
प्रान समान रामं भिक्षा दै, कौशिक संग पठाई ॥२॥
पहिले रथ बैठाइ विप्र कहँ, आपु चढ़ेउ शिर नाई।
मिथिला-पति हूँ छाँड़ि सिंहासन, कौशिक मुनि मिल धाई ॥३॥
जो सुख सुयश लोकपति चाहत, विप्र कृपा कह पाई।
भानु प्रताप छलत विप्रन भे, निशिचर कुल समुदाई ॥४॥
राम ब्रह्म ब्रह्मण्यदेव निज, इहाँ स्वरूप जनाई।
प्रजा समेत **बेद** रीति चल, कौशल मिथिला राई ॥५॥
विषय विराग, राग रघुपति पद, भरत चरित महँ गाई।
काण्ड **अयोध्या** उभय लोक सुख, भरत तुच्छ दिखलाई ॥६॥
तीन गुनन्ह सिधि त्रिन सम त्यागेउ, मन बच क्रम बरियाई।
राम चरन अनुराग अहेतुक, साधन श्रेष्ठ बताई ॥७॥
काण्ड अरण्यहिं अत्रि सुतीक्षण कुम्भज कथा सुनाई।
मन क्रम बचन सु-भजन नेम दृढ़, प्रेम कथा तिन्ह गाई ॥८॥
यही काण्ड राम कह शबरी, **नवधा भक्ति** सुहाई।
निज तें अधिक देन मान्यता, संतन्ह कहँ समुझाई ॥९॥
किष्किन्धा हरि हनूमान कहँ, अर्थ अनन्य बताई।
राम रूप सचराचर सेवई, जानि गुरू पितु भाई ॥१०॥
सुंदर काण्ड राम गुन बरनेउ, कपि सिय सन पुलकाई।
खोजत सिय रनिवास लंकपति, **काम न रंच सताई** ॥११॥
लंकापति के सुभटन मर्देउ, लंका दीन्ह जलाई।
बिनु मद हनुमत कार्य कहेउ यह, सीतापति प्रभुताई ॥१२॥
विना मान हनुमान जानि हरि, हिय तेहि रहे **बसाई**।
जन रक्षा कपि कुशल जानि निज, आयुध दीन्ह दुराई ॥१३॥
लंका अग्नि परीक्षा सीता, निज धारणा लखाई।
मन बच कर्म एक राम गति, सब **कामना** हटाई ॥१४॥
हृदय जानकी बसत राम नित, त्रिजटा राम सुनाई।
रावण हिय सिय राखइ तौ लौं, मारत हरि सकुचाई ॥१५॥
लोमश मिस हरि **प्रेम** काग को, **मन बच कर्म** दिखाई।
अष्ट याम हरि बसन काग उर, उत्तर कहेउ गोसाँई ॥१६॥

बंदउँ तुलसी के चरन, जिन्ह कीन्हो जग काज।
कलि समुद्र बूड़त लख्यो, प्रगट्यो सप्त जहाज ॥

उपर्युक्त दोहा के प्रकाश में विचार करना है कि यह बाल काण्ड रूपी जहाज किस बल का आश्रय लेकर जीवों को तारता है। इस काण्ड का बल है :—

अस प्रभु दीनबंधु हरि, कारन रहित दयाल।
तुलसिदास सठ तेहि भजु, छाड़ि कपट जंजाल॥

[६]

चित हित रघुपति नहिं पहिचाने।
तौ व्याख्या करि बाल काण्ड की, बिरिथहिं व्यथा कमाने॥१॥
पावन हू पावन ह्वै जेहि छ्वै, तजत भूमि चढ़ि याने।
ताको तू तनिकहुँ नहिं ताकत, तो सम कवन अयाने॥२॥
रवि सों निकरि अनगिनित किरनें, नित जग करत पयाने।
मरण काल तेहि एक पकरि जिव, रवि बिचरत देवयाने॥३॥
सो जिव पावत परम धाम हरि, दिन तजि प्रान सयाने।
पित्रयान निशि करि पयान लहि, देव लोक लौटाने॥४॥
तैसेहि रविकुल-रवि चरनन तें, कृपा दया रज साने।
झरत दिवस निशि परन सोइ जन, रहत दैन्य उर आने॥५॥
ज्ञान नगर सों प्रेम नगर हरि, जात धरहिं जे ध्याने।
जैसे अवध नगर से मिथिला, राम चरन विनु त्राने॥६॥
ते हरि कृपा विप्र तीय सम, जात अचल सुख थाने।
पग पनही सह काम ध्यान धरि, विनु रज लहि लौटाने॥७॥
तीन लोक कर लीक सुन्दरी, गौतम तिय जग जाने।
सोइ पाहन होइ तीब्र वेदना, सहति को शक्ति बखाने॥८॥
द्रव्य सकल जग पाइ मूल्य एक, नयन तजत सकुचाने।
सब इन्द्रिय जेहि जड़ भइँ एक संग, दुख तेहि करु अनुमाने॥९॥
कीचड़ बूंद परत धोये बिनु, छिनु भर मन नहिं माने।
जग सुन्दरी शरीर अहर्निशि, बीट बिहँग लिपटाने॥१०॥
जग उपहास सकल सम्भावित, मृत्युहु से बड़ि जाने।
गोतम तिय जेहि पुत्र शतानँद, सहै कि सो अपमाने॥११॥
जग अपकीर्ति मातु कुलगुरु की, ग्लानि सिया जब जाने।
आवन राम शंभु धनु टारेउ, धनुष यग्य जेहि ठाने॥१२॥
करुणानिधि सुधि सिय हिय की लहि, हर्षित कियो पयाने।
मातु पिता प्रिय बन्धु सखन को, विरह न कछु उर आने॥१३॥

विश्वामित्र मित्रता विसरेउ, अथवा कहन भुलाने।
करुणानिधि जब आपुहि पूंछेउ, तब सब कथा बखाने ॥१४॥
धीर-धुरन्धर धीरज त्यागेउ, ऋषि तिय दुख सुनि काने।
पद रज डारन मुनि जब लागी कह, चरन सरोज छुवाने ॥१५॥
दुर्लभ भक्ति मिलत जो माँगे, करि प्रयत्न तेहि लाने।
विनु माँगे भेउ सुलभ अहिल्या, राम कृपा हुलसाने ॥१६॥
बनै दीन लहु कृपा राम को, बिनु कामना बिकाने।
दीनबन्धु श्री राम कृपा बल, सब भव सिंधु लँघाने ॥१७॥
राम कृपा सोइ बाल काण्ड कर, दृढ़ जहाज जिय जाने।
चढ़ु मन पार होहि अबहीं भव, ऋषि तिय तोहि प्रमाने ॥१८॥

[१०]

माया जिव किय बद्ध प्रकटि निज सप्तावरने।
जनमे तुलसी दास मुक्त जिव तिन्ह ते करने ॥१॥
बिरचे मानस सप्त काण्ड जिन्ह करि अनुसरने।
भेदिय सप्तावरन छोड़िये भव भय डरने ॥२॥

[११]

पञ्च भूत महँ गगन केर गुन चारिहुँ राजे।
तैसेहि मानस प्रथम काण्ड गुन छहूँ विराजे ॥१॥
सगुन ब्रह्म को कृपा सगुन भइ प्रथम काण्ड महँ।
दीन ताड़का दीन अहिल्यहि मुक्त कीन्ह जहँ ॥२॥
सोइ कृपा केवटहिं सहित परिवार उबारेउ।
काण्ड दूसरे तरे सकल जिन प्रभुहि निहारेउ ॥३॥
त्रितिय काण्ड मारीच निशाचर दीन जानि अति।
निज पद राम दीन जौन मुनिहूँ दुर्लभ गति ॥४॥
चौथे रुदन विलोकि राम तारहिं समुझायेउ।
ज्ञान देइ पुनि भक्ति दीन बिरहाग्नि बुझायेउ ॥५॥
पञ्चम सिंधुहि निज स्वरूप हठि बोध कराई।
दर्शन करि जल जन्तु सकल भव निशा सिराई ॥६॥
षष्टम राम दीन हितकारी।
कीन्हे मुक्त निशाचर झारी ॥७॥

सातवँ दीन मीन सम, भरत समेत समाज।
दरस वारि सिंचि जिवित किय, सीय सहित रघुराज ॥८॥

पाणौ महा सायक चारु चापं। नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥

"महा सायक चारु चापं"

[१२]

घातक दोउ हरि बान नयनवा।
सब के मारे फिरि जग जनमत, इन्ह मारे मिट आवगमनवा ॥१॥
जो गति कोटि जनम जप तप मख, लहत ज्ञान अरु योग करनवा।
सो गति इन्ह के लगत लहत जिव, अनायास भव होत तरनवा ॥२॥
सब के शस्त्र धार किहुँ तीखे, भेदत अनमय कोश बिरनवा।
यद्यपि कुसुम बान तेहि कोमल, छेदत मनमय कोश मयनवा ॥३॥
द्विज शिव श्राप प्रभाव अधिक सोउ, सहस जनम गति अधो करनवा।
सप्तावरन किन्तु ये दोउ धँसि, काटत जिव को भाव अपनवा ॥४॥
एक निर्वाण एकरस सुख दै, कर लय जीव ब्रह्म निर्गुनवा।
दूजो देत नित्य नव रस सुख, सगुन ब्रह्म पद हृदय धरनवा ॥५॥
राम नयन के दोउ इशारे, एक चलत है भ्रुकुटि चढ़नवा।
दूजो करुणा रूप सियं धरि, चलत अहेतुकि कृपा सयनवा ॥६॥
दोउ "महा सायक" हरि दायक, दोउ के एकै चाप नयनवा।
चतुर शंभु तुलसी हिय में बसि, "चारु चाप" किय ताते बयनवा ॥७॥
जाको दूजो जतन नहीं जग, सो आवत इन्ह दो के सरनवा।
पावत अवशि मनोवाञ्छित गति, यइ दोउ राखत हरि के परनवा ॥८॥
राम चरित सर उद्भव वारिज, सुख मकरन्द मधुर करि पनवा।
चातक भेउ मन पियन राम सिय, स्वति वारिधर कृपा झरनवा ॥९॥

[१३]

धनुहियाँ काहे गुमान भरी।
जरि तोरा जानौं जाति पहिचानौं, ऋषि दधीच पँजरी ॥१॥
विशुकर्मा निर्माण बज्र संग, तोर पिनाक करी।
कुंठित बज्र मेघनाद रण, टूटि पिनाक परी ॥२॥
तोर बिसात सोई किधौं दूजो, अँकड़त काँध धरी।
राम प्रभाव बध्यो जेहि वश में ब्रह्मा शंभु हरी ॥३॥

बोल्यो चाप दाप नहिं मेरे तोहिं किमि देखि परी।
मरणशील गति मोर न जानै, नहिं इति मति हमरी ॥४॥
हम ब्रह्मांड अखिल नायक के, अहैं नित्य सँघरी।
प्रगटत छिपत हमहुँ सँग उनके, अँग की एक लरी ॥५॥
जिमि अवतरत राम रघुकुल में, पुरुष पुरान हरी।
तिमि दधीच अस्थि प्रगटन मम, प्रथम न जन्म धरी ॥६॥
पर उपकार हेतु हम तीनहुँ, जानत जन्म हरी।
किहेउ विभाग इन्द्र शिव निज महँ, जानत जग सगरी ॥७॥
बज्र बिध्वंस करत दैत्यन कर, त्रिपुर पिनाक करी।
अजहूँ सिय कहँ राम मिलन हित, टुटि द्वै खण्ड परी ॥८॥
जा कर-कंज धरन शिर शिव मत, लाभ न कछु दुसरी।
सोइ कर मोहिं धरत नित रघुवर, को सरवरि हमरी ॥९॥
सोवत हूँ अपने सिय बिच बन, मोहिं श्री राम धरी।
हरि मन बान चलाइ दुष्ट दलि, रहौं भक्त पहरी ॥१०॥
मेरे मन इच्छा न रङ्ग कछु, हरि चह सोइ करी।
मननशील मुनिगन मिलि तातें, सारङ्ग नाम धरी ॥११॥
धनि रघुबीर धन्य तव आयुध, कीरति जग बिखरी।
जय सारङ्गपाणि सारंग सर, राखेउ सुधि दुबरी ॥१२॥

[१४]

संबन्ध :—

जेहिं जेहिं जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं ॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यह ओर निबाहू ॥

सुनत कथा गिरिजा मुसुकानी।
जनमउँ जोनि राम स्वामो तहँ, स्वामिनि सीता रानी ॥१॥
पूंछति पतिहिं नाथ किमि सम्भव, यह नातो जड़ प्रानी।
कहेउ शंभु जिमि कृपा समर्थहिं, सुलभ भुशुण्डि भवानी ॥२॥
राम सीय दर्शन बिनु पूँछेउ, नात सकहि किमि ठानी।
शिव कह पुलकि नयन जो दीखत, सीय राम मय जानी ॥३॥
पशु खग मृग कूकरो केलि कहँ, जित जिव बस्तु जहानी।
राम सीय संबन्ध सुखद उन बिन परमउ पद ग्लानी ॥४॥

[१५]

सब बल तें बड़ एक जग माहीं ।
मानस पुण्यारण्य विचरते, देखे दशरथ पाहीं ॥१॥
कर्म प्रभाव अकाट्य कहत जग, व्यापत है सब काहीं ।
करि उपकार गीध सम हिंसक, परमधाम कहँ जाहीं ॥२॥
पर उपकार जन्म भरि कीन्हे, भानुप्रताप अथाहीं ।
द्विज के श्राप एक लघु त्रुटि तें, निशिचर होइ जनमाहीं ॥३॥
द्विज सों द्रोह पेट भरि कीन्हे, रावण त्रिभुवन माहीं ।
आशुतोष आशिष ताके शिर, काटत ही जमि जाहीं ॥४॥
जा बल आशिष फलित ईश अरु, तनु तजि लौटिय नाहीं ।
सोई योग तनु त्यागि सती हठि, लौटि शंभु कहँ ब्याहीं ॥५॥
जाकी प्रबल धारणा ऐसी, लागी माया ताहीं ।
माया ते शरणागति बल अति, जिव छोड़ाउ छिन माहीं ॥६॥
शरणागति रहस्य उपदेशेउ, राम विभीषण काहीं ।
सब आसा तजि एक आस रखु, सम्बन्धित हरि ताहीं ॥७॥
साधन बहुतन बल अब तौलिय, एक नृप दशरथ माहीं ।
मनु अरु अपने रूप माहिं जेहि, घटित भये एक ठाहीं ॥८॥
विषय त्यागि तप करि सहस्र गुन, सतहत्तर वर्षाहीं ।
मनु मन राग विषय न मिटेहु करि, सगुण ब्रह्म दर्शाहीं ॥९॥
भोग विशाल व्यवस्था कीन्हेउ, हरि सुरपति पुर ठाहीं ।
तबहुँ न मिटेउ भोग वासना, नृप दशरथ मन माहीं ॥१०॥
सात सप्त नारिन ब्याहेउ अरु, राम प्रगट गृह माहीं ।
मन चकोर तदपि राखेउ विधु, आनन कैकेइ काहीं ॥११॥
नृप वासना कटन कहँ कारण, भइँ रुचि सब एक ठाहीं ।
बनेउ प्रबल अभिलाष राम, युवराज होहिं देखताहीं ॥१२॥
यह अभिलाष तुरत नहिं पुरयेउ, राम गये बन काहीं ।
अन्तहुँ राम रटत न धाम चलि, सुरपुर राउ सिधाहीं ॥१३॥
ज्ञान पाइ स्थान अमर पद, होत सुलभ सब काहीं ।
रामहुँ दिहे ज्ञान दृढ़ निवसेउ, दशरथ सुरपुर माहीं ॥१४॥
सिंहासन आसीन राम लखि, सीमित सुख सब काहीं ।
पर दशरथ जी होइ विभोर सुख, बसे सिंधु सुख माहीं ॥१५॥

रमत दिहेउ शिक्षा इच्छा सब, करि विचार मन माहीं ।
राखउ एक मेटि औरन्ह कहँ, तेहि सम केहु बल नाहीं ॥१६॥
शर्त होहि यह एक नित्य सों, राम सरिस कोउ नाहीं ।
एक स्पृहा राम भक्ति उर, होइ कोइ नव माहीं ॥१७॥
जन अभिलाष बली किमि सबतें, होत रहस्य कहाहीं ।
जन कर रुचि आपन करि राखत, राम समर्थ सदाहीं ॥१८॥
सकल नियम अपने प्रभु तोड़त, जन रुचि शुचि यदि पाहीं ।
हाँता अपनहुँ प्रण करि राखत, नाँता जन रुचि ताहीं ॥१९॥
होइ बलिदान दान जग जीवन, निज जीवनी मिसाहीं ।
देत अमर संदेश अजहुँ नृप, पुण्यारण्य बसाहीं ॥२०॥

[१६]

सब रस से रस एक अधिकाई ।

भव रस जन्म देत रस दूजेहि, हरि रस मिलि रुकि जाई ॥१॥
ग्रन्थ अरु अनुभव ज्ञान वृक्ष महँ, फल वैराग्य लगाई ।
तेहि फल कर फल राग राम पद, दरस ताहु फल भाई ॥२॥
राम दरस फल रामहि लीला, जब फल होइ प्रगटाई ।
लीला फल महँ रस अनन्त सोउ, नित नव बाढ़त जाई ॥३॥
तेहि रस महँ रस एक रुचै जो, जन राखत अपनाई ।
यहि रस बल ते मिटत बासना, कारण देह नशाई ॥४॥
निज चरित्र रस चखन कुशलता, दशरथ दीन्ह लखाई ।
यहि रस अमर भये न भये बसि, सुरपति की अमराई ॥५॥
याही रस पृथ्वी पर प्रगटन, हरि अवतरते आई ।
याही रस चाखन हरि माखन, चोरि अहिर घर खाई ॥६॥
यहि रस हीन जानि सत लोकहिं, सनकादिक चहुँ भाई ।
आवत पियन मृत्यु लोक कहँ, पिइ लौटत हर्षाई ॥७॥
ऋषि शुक जनमत छाँड़ि मातु पितु, भागि चले वन ठाँई ।
हरि चरित्र रस गृह पिञ्जर लखि, ललकि परे लौटाई ॥८॥
श्रवन सहस दस याही रस बस, वर याँचेउ पृथुराई ।
राम संग हनुमान न गवने, रहि यहि रस लौ लाई ॥९॥
यहि रस चाखन अरु बाँटन सुख, सुलभ न हरिपुर पाई ।
पाइ ब्रह्म पद बालमीकि मुनि, भे जग आइ गोसाँई ॥१०॥

[१७]

बूझत भरत कवन तू भाई ।
जेहि थे राउ राम प्राण सो, तू न कैकई माई ॥१॥
बिसमित ह्वै सब सखीं सहेली, पूछहिं कैकेइ ताँई ।
राम तोहिं भरतहुँ ते प्यारे, कैसे भे रिपु नाँई ॥२॥
कैकेइउ शिर भूत ऊतरे, बिलखि बिलखि पछिताई ।
याँचति विधिहिं मीचु या तुरतहिं, महि बिचु जाइ समाई ॥३॥
बार बार तेहि राम प्रबोधत, काह न कछु प्रगटाई ।
जग आधीन ईश दोषी नहिं कोऊ कहत लखाई ॥४॥
देव काज संकोच राज पद, भ्राता भरत बिहाई ।
बनेउ सत्य संकल्प राम कर, कैकेइ मति कुटिलाई ।५॥
जाकर हिय कोमल कुसुमहुँ तें, कुलिशहुँ तें कठिनाई ।
सो कैकेइ हिय बनेउ बज्र सम, माँगत बर हठि लाई ॥६॥
सकइ न छुइ मति जौन शारदा, बसत तहाँ रघुराई ।
सो मति फेरइ बसइ जो तेहि महँ, रोकि न कोउ सकाई ॥७॥
कैकेइ करतब हेतु अपनहीं, सोइ कुघाव रघुराई ।
छुवत पिरात कहत जड़ सब जे, जननि दोष ठहराई ॥८॥
कौशल्या कहँ भरत मातु कह, नहिं कैकेइ भुलाई ।
कैकेइ राम जननि करि हेरत, बछ जिमि धेनु लवाई ॥९॥
करि कदाचि निज चाम पानहीं, पितहिं उरिन होइँ जाई ।
अचल अयश कैकेइ तें यश लहि, रिनियाँ राम सदाई ॥१०॥

[१८]

दोषी राम उमा नहिं भायो ।
बर मँगाइ बौराइ कैकेई, जिन्ह निज काम बनायो ॥१॥
कैकेइ अचल अयश हो जेहि महँ, क्या सोइ रहेउ उपायो ।
सर्व समर्थहिं और न सूझेउ, पूँछत शम्भु बतायो ॥२॥
कैकेइ ब्याहत पिता दशरथहिं, शर्त अटल ठहरायो ।
कैकेइ पुत्र राज्य अधिकारी, होइ न दूजो जायो ॥३॥
शर्त ज्ञान कैकेइ हृदय महँ, बीज समान समायो ।
राम प्रेम शुचि हिय उपजेउ जब, बीजहिं गहिर दबायो ॥४॥
सोई बीज उपारन कारन, मिस मंथरा उठायो ।
निज संकल्प सींचि अंकुरित करि, फूलत फलत बढ़ायो ॥५॥

पिता प्रतिज्ञा हीन दोष दलि, बर मिस यश लौटायो।
सुत ममता बासना कैकेई, विटप समूल ढहायो ॥६॥
नई रीति यह नहिं सियबर की, जन हित अयश कमायो।
नारद सती सुकंठ विभीषण, गरुड़ भुशुण्डि दिखायो ॥७॥
ग्रहत अशुद्ध स्वर्ण जिमि पारिख, शुधि हित ताहि जलायो।
तैसेहि राम सुजान अहं जन, जारत राख मिलायो ॥८॥
सहज शुद्ध महँ केहु अशुद्ध कर, कैसे होइ समायो।
राम भक्त-वत्सल जन शुध करि, निज महँ लेत बसायो ॥६॥

[१६]

प्रीति क रीति अपार अनोखी।
न्यारी एक एक तें अद्भुत, एक एकहिं ते चोखी ॥१॥
प्रीति रीति नागर रघुनायक, घटि बढ़ि सकहिं न जोखी।
रीति प्रत्येक प्रताप कुँभज होइ, भव सागर सक सोखी ॥२॥
मन बच कर्म, प्रीति सोई शुचि, प्रेमी पात्रन घोषी।
स्वारथ फल चहुँ छाँड़ि प्रेम सच, अनि सब धोखा धोखी ॥३॥
प्रेमास्पद वियोग महँ जीवन, धिक् कह कोउ सरोषी।
कोउ वियोग दुख झेलत देखन, रामहिं नयन झरोखी ॥४॥
चातक प्रेम अनन्य परीक्षा, प्रेमास्पद नहिं दोषी।
रीति प्रीति कैकई अगम मति, जो रामहिं अति दोषी ॥५॥

[२०]

दशरथ जी और कौशल्या जी की भाँति कैकेई जी की अनुमित तपस्या और वरदान का वर्णन तथा कैकेई जी के अपने करतूत के पश्चात्ताप पर भगवान श्रीराम द्वारा उनको प्रवोध प्रदान करना :—

सरयू पुलिन नलिन मधि भाई।
तप स्वरूप तेजोमय मूरति, अचल चित्र जिमि छाई ॥१॥
सन्मुख सीताराम विराजत, पूछत ताहि मनाई।
देवि तुरन्त सुनावहि हम कहँ, जो रुचि मन महँ लाई ॥२॥
कहति देवि दोउ सुनहु लाड़िले, चित नित रह तुम ताई।
करउँ सोइ बरु मम जग बिगरै, जो कछु तुमहिं सोहाई ॥३॥
मेरे हाथ पाँव इन्द्री मन, बुद्धि चित्त लगि साँई।
तुम्हरेहिं प्रेरे कर्म करहिं सब, नट के पशु की नाँई ॥४॥

सुत वित लोक ईषना तीनहुँ, होइ निशेष मिटि जाँई।
बाढ़इ प्रीति युगल पद पंकज, नित नव होइ अधिकाई ॥५॥
प्रभु तोषेउ सुनि बचन तासु उर, अनुपम भक्ति बसाई।
सेवा मातु लेब हम तुम से, जेहि तव अहं नसाई ॥६॥
अति उत्कृष्ट भक्ति पथ गवनत, जब कैकेइ सकुचाई।
राम प्रबोधेउ ताहि कथा कहि, निज सन्तोष बताई ॥७॥

[२१]

अनुपम भगति भरत किमि पाई।
पूछति शिवा नाथ बीजहिं बिनु, बृक्ष न कबहुँ सुनाई ॥१॥
कह शिव जिमि निज उत्पति कारन, विधि न लहेउ बहु धाई।
कारन पद्मनाभ अपने गुन, भरत न सके थहाई ॥२॥
लागत गुन विपरीत मातु कर, भरत बहुत पछिताई।
भक्त शिरोमनि भरत न बूझेउ, दूजो किमि लखि पाई ॥३॥
"जानहिं राम कुटिल बरु मोहैं, लोग राम रिपु नाँई।"
माँगत भरत त्रिवेनिहिं "रति हिय, सीय राम अधिकाई" ॥४॥
ऐसेहिं कैकेइ कुटिल कहत सब, द्रोही राम बताई।
नहिं भइ सती अवध नहिं बिलँबी, धायेहु बनहिं लवाई ॥५॥
बैठन राज सचिव गुरु परिजन, मातु सबहिं समुझाई।
मेटेउ भरत बचन इन्ह सब कर, राम दरस हित धाई ॥६॥
मातहिं परिजन सखी पूजिता, ऊँच नीच बतराई।
राम काज केहु सीख न मानेउ, नाहिन विपति डेराई ॥७॥
राम दरस की नित्य लालसा, त्रिन सम भरत दुराई।
लौटन सीय राम जब गुरु कह, जो बन भरत बसाई ॥८॥
राम काजु जौ होइ गये बन, राज किहे बिनसाई।
प्रानहुँ तें प्रिय राम जाहिं बन, मातु हृदय हठ लाई ॥९॥
गुन प्रत्येक जिनके कारन सुत, भक्त शिरोमनि भाई।
जाको भक्ति आलौकिक भाषेउ, भरद्वाज हरषाई ॥१०॥
उन सगरे गुन गन कर सागर, लखेउँ कैकेई माई।
एक दुइ कहि संकेत किहेउँ कछु, सकल कि बरनि सिराई ॥११॥
प्रेम मार्ग यहि चलइ सूरमा, प्रथमहिं शीश गँवाई।
यहि पथ को अथ होत वहाँ ते, अहमिति जहाँ नसाई ॥१२॥

[२२]

कैकेइ मान मान अपमाना।

मानहिं वृद्धि होत प्रेम कर, इहाँ भयो अवसाना ॥१॥
मान प्रेम कर कुशल अंग इक, जानु नागरी ठाना।
नागर हूँ तेहि हानि न मानत, नमत प्रेम पहिचाना ॥२॥
प्रेम त्रुटी यहि होत निवारन, नवल प्रेम निर्माना।
बलि बलि प्रिय पर जाति नवेली, राधहिं कृष्ण दिवाना ॥३॥
सीता प्रेम अनूठा रसिको, मानहिं नहीं ठिकाना।
मन जो होइ मान तहँ ठहरे, मन प्रिय हाथ बिकाना ॥४॥
कृश शरीर विरहानल तड़पत, रावन बन्दीखाना।
मुक्त भये प्रिय दर्शन पावत, भइ कटु बचन निशाना ॥५॥
जो सुनि पाहन हिय जतुधानिन्ह, हूँ पसीजि थर्राना।
स्वामिनि सिया सुनेउ नहिं विचलेउ, पिय हिय की रुचि जाना ॥६॥
कारन पूँछत राम बतायेउ, बन लछिमन अपमाना।
तव हिय तेहि सङ्कोच जलत लखि, प्राश्चित किय निर्माना ॥७॥
यह प्रकाश सिय राम प्रेम कर, जो कर हिय स्थाना।
निरखत आनँद होइ निरन्तर, तम अज्ञान नसाना ॥८॥

[२३]

जग के आदि अन्त के बीच।

फल कठोर तप एकइ याञ्चेउ, राम विरह में मीच ॥१॥
भोग स्वर्ग अपवर्ग जगत कर, मध्यम उत्तम नीच।
देह यान करि आत्म भाव सब, फँसे प्रकृति के कीच ॥२॥
स्यंदन दस इन्द्रिन हय दसरथ, मन लगाम सक खींच।
प्रेम स्वरूप राम को पितु भेउ, भक्तिहिं रक्तहिं सींच ॥३॥

[२४]

ऐश्वरि भूलि मधुरि लपटाने।

अखिल विश्व नायक दर्शन लहि, लइके तिनहिं जगत लौटाने ॥१॥
दश सहस्र वर्ष जगतीतल, दरस परस लहि जिव हरषानें।
निज हित सबै जग्य जोग कर, परहित-रत दशरथ हम जाने ॥२॥
ऐश्वरि-युक्त पूजि रामहिं जन, चाहत भुक्ति मुक्ति सब पाने।
बिनु ऐश्वर्य शुद्ध माधुरि रस, मीन एक दशरथ ठहराने ॥३॥

शेषहिं सकल कहत हरि संगी, समय समय रह तेउ विलगाने ।
लखि फणि मणि बिनु भरत पटकि फण, दशरथ सुत फणीश भे आने।४।।
सुख कहँ सकल जीव जग याँचत, दुख याँचइ कहिये बौराने ।
"सब दुख दुसह सहन" नृप माँगेउ, राम होहिं जनि नयन ओटाने ।।५।।
दुख परिभाषा ज्ञान अग्र गणि, किये पवन सुत राम सुहाने ।
निज जीवनी सत्य किय दशरथ, छाँड़ि प्राण जब राम दुराने ।।६।।

[२५]

त्रिविध ईषना परे भवित फल, कैकेइ खायो गूझो ।
प्रेम समर महँ नाम अमर एक, दशरथ जो तेहि जूझो ।।१।।
सेवा स्वामि प्राण न्योछावर, वेहि लछिमन बिनु सूझो ।
रहनि सहनि निर्बहनि प्रीति की, कौन भरत बिनु बूझो ।।२।।
नहिं अस्तित्व पृथक प्रेमास्पद, रिपुहन जिमि खबूझो ।
देश विवेक बसति कौशल्या, जग प्रपञ्च जेहि खूझो ।।३।।
करहि सुतन्ह बलिदान सुमित्रा, रामहिं, केहु न अरूझो ।
सेवा राम अघाइ न हनुमत, रक्षक जन शठ मूझो ।।४।।

[२६]

जेहि जेहि रूप भूप भग प्रान ।
ग्रसन ताहि घर काल कैकेई, रूप उचित अनुमान ।।१।।
भूप सहज रुचि बसत राम महँ, प्रान न राम समान।
तिन्ह कर हरन मरन से दारुण, श्रोता सुनहु सुजान ।।२।।
भूप कोक कैकेई चन्द्रमा, दीन्हेउ शोक महान ।
भूपति ह्वै तब लवा लुकानेउ, झपटेउ रानि शचान ।।३।।
ताल बृक्ष जब भूप कैकेई, दामिनि गिरे ढहान ।
भूप कल्पतरु नष्ट करन हित, करिनि कैकई ज्वान ।।४।।
भूपति फणि कर मणि कैकेई, हरेउ युक्ति बरदान ।
मीन भये नृप उलचि राम जल, कैकेइ किय बे-जान ।।५।।
नहिं रहि रानि नहीं नृप दशरथ, करि गे प्रेम प्रमान ।
पुनि पुनि तेहि रस चखत चखावत, मन नहिं तनिक अघान ।।६।।

[२७]

साधो एक सम्बन्ध सँभार ।
अतिशय कठिन शीश जेहि प्रेमी, निज कर लेइ उतार ।।१।।

जगत पिता को पिता बनन महँ, मोहिं होत एतबार।
सब सुख बेंचि मोल आनँदघन, लेइ कहाइ गँवार ॥२॥
अथवा कहहु दुसह संकट बन, जेहिं नहिं पारावार।
धँसि बसि गोद उठाइ ब्रह्म सुत, लहइ मोद मुद सार ॥३॥
कटे पख जो दशा गीध की, सुत बन पठवत बार।
दशरथ भयो, पुत्र हरि लह, वसुदेव कु-कारागार ॥४॥

[२८]

प्रभु अनुहरत कौशिला माता।
अगुन ब्रह्म कहँ देन दिव्य गुन, विरचेउ मनहुँ विधाता ॥१॥
प्रिया हरन प्रभु पीर बिसरि गे, लखि छिन भिन गिध गाता।
मातहिं लखन राम सिय भूलेउ, दरस भरत के पाता ॥२॥
राज देत वन दीन्ह कैकेई, रामहिं भई सोहाता।
कौशल्यहुँ कोउ कबहुँ न देखेउ, सवतिहिं कछुक कोहाता ॥३॥
भरत मातु कहँ प्रथम मिले हरि, जिमि बन तें लौटाता।
लखन राम सिय वनहिं मातु भल, भरत सोच दिन राता ॥४॥
जिमि कपीश लंकेश आदि प्रभु, मान भरत सम भ्राता।
मानति मातु सकल इन्ह प्रिय करि, जिमि रघुनाथहिं नाता ॥५॥

[२९]

समता सर्व अंग प्रगटानी।
राम गवन बन हेतु भरत सुख, हिय कौशिला लगानी ॥१॥
शतरूपा के रूप ब्रह्म दिय, जो विवेक वरदानी।
भरत रूप जनु सोइ आवत लखि, पुलकि ललकि लपटानी ॥२॥
यह विमातु को प्रेम झूंठ सच, ग्रन्थि न रहि अरुझानी।
स्वाभाविक पय सुत सनेह जब, देखि परी टपकानी ॥३॥
पिता कहे बन जान, न गवनहिं, नातु मातु बड़ जानी।
जौ विमातु पितु कहेउ जान बन, तौ कि सकइ हठ ठानी ॥४॥
राम जाहिं बन अन्त पोच नहिं, सोच भरत अकुलानी।
स्थिति सुनत जनक विवेक-निधि, निज गति लगी छोटानी ॥५॥
प्रथमहिं मिले मातु कैकेई, राम बनहिं लौटानी।
सो देखे लवलेश क्लेश नहिं, ईर्षा द्वेष न मानी ॥६॥

अवधि राम बनवास तीव्र असि, जियत पार किय रानी।
जनु विवेक समता रक्षित की, देन राम सहिदानी ॥७॥

[३०]

प्रेम नगर की प्रेम होड़ सब दौड़ देखने आये।
अपने अपने भाव अश्व चढ़ि, प्रेम वीर दो धाये ॥१॥
तेइस सहस वर्ष तप के श्रम, जिन कहँ रहे कमाये।
स्वाभाविक इक प्रेम अकेला, एक विवेक मिलाये ॥२॥
लक्ष दोहूँ कर राम सनेही, भरि सक अश्व उड़ाये।
दोनों कुशल दोहूँ मति आगर, राघव के दोउ भाये ॥३॥
युक्त विवेक सवार भक्ति को, कुछ आगे बढ़ि जाये।
निज विवेक आदर करने कहँ, दूजे काहिं सिखाये ॥४॥
चौदह वर्ष वियोग खन्दकहिं, अस कहि अश्व कुदाये।
बिनु विवेक खन्दक वियोग गिरि, अपनो प्रान गँवाये ॥५॥
प्रेम वीर संयुत विवेक तौ, पहुँचि चित्रकुट पाये।
शुद्ध प्रेम अपनैता रामहिं, लंका लौं पछुवाये ॥६॥
प्रेम रूप आइना भरत महँ, प्रथम रूप लखि पाये।
"गयेउँ न संग न प्रान पठाये" यह कहि कहि पछिताये ॥७॥
निर्णय कर्ता प्रेम दौड़ कर, निर्णय राम जनाये।
युक्त विवेकहिं पायँ पड़े, दूजे हित बचन सुनाये ॥८॥
निज कर खाल खैंचि निज तनु की, पग पानहीं बनाये।
तबहुँ न उरिन शुद्ध प्रेमी तें, कहि प्रेमिन समुझाये ॥९॥
प्रेम पूर्ण साधन स्वतंत्र, बिनसात ज्ञान मिलि जाये।
आपुहिं समुझत मोहिं जीव फिरि, किमि मो कहँ ललचाये ॥१०॥
बिनु चाहे बिनु तीव्र लालसा, बिनु व्याकुलता आये।
प्राकृत नयन दिव्य मम दर्शन, कबहुँ न जिव करि पाये ॥११॥

(उपर्युक्त पद में महारानी कौशिल्या के विवेक-युक्त प्रेम और महाराज़ दशरथ के प्रबोध-हीन प्रेम की तुलना की गई)

[३१]

प्रेम शिखर पर मिलत हैं दोऊ।
भक्त वछल श्री राम कौशिला पुत्रवत्सला ओऊ ॥१॥

नित कर मिलन देखियत ऐसे, आज मिलन नव होऊ।
दूनहुँ ओर प्रेम उमड़त जनु, आये बहु दिन कोऊ ॥२॥
विधि कर नियम काल गति मेटेउ, प्रौढ़ सुतहिं पय चोऊ।
मातु न होइ विषाद राम मुख, सुख दरसत क्षण सोऊ ॥३॥

[३२]

रघुबर नीके तुम कहँ जानी।
तुम ब्रह्माण्ड अखिल के नायक, तुम हमरो वरदानी ॥१॥
तुम्हरो विश्वरूप हूँ देखेऊँ, सो नहिं अजहुँ भुलानी।
जग महँ कठिन तुमहिं सुत पाइब, सोउ सुलभभेउ आनी ॥२॥
ऐसो कौन काज तुम्हरो बन, गये बिना जेहि हानी।
निराकार होइ करत काज सब, करहु न का अब मानी ॥३॥
हाँ सुत सुरति आइ करते यह, हम हीं दो के लानी।
माँगेउ जल बिनु मीन राउ गति, हौं विवेक बौरानी ॥४॥
क्षमा करहु सुत बसहु महल ही, माँगउँ बर लौटानी।
जौ वियोग आवश्यक तौ हम, बनहिं जान दोउ ठानी ॥५॥

[३३]

रघुबर मातु अलग लइ बोले।
यद्यपि अचल कोटि हिम गिरि सों, मातु प्रेम से डोले ॥१॥
तुम्ह से मातु दुराव नहीं हम, तुम्हरेहि दूध के ओले।
हमरे दर्श आश सिद्ध मुनि, बने विटप गिरि गोले ॥२॥
ब्रह्मा विष्णु महेश परम पद, हमरेउ देत न जो ले।
हमरे दरस आस चातक होइ, रहत चक्षु मुख खोले ॥३॥
सेवा संग निहाल होन हित, ब्रह्मा जी शिव भोले।
सकल देव निज अंश प्रतीक्षा, करत न कबहुँ अलोले ॥४॥
दशा सबन की दुसह मातु री, हिय न शक्ति जो ढोले।
दिन तो जेहि तेहि भाँति बिताऊँ, राति न सो जेहि सोले ॥५॥
दस सहस्र बर्ष रहनो मोहिं, तिन्ह चौदह का मोले।
इन्ह की जगह चौथहूँ पन महँ, हम तुम्हरेहि सँग होले ॥६॥
दीन्हेउ आयसु सुनत सान्त्वना, राम सजीवन घोले।
चौदह वर्ष दर्श रघुबर से, मातु हाथ निज धोले ॥७॥

[३४]

रघुबर एक बात मम मानइ ।
सुरति मोरि बलि जाउँ न भूलेउ, इहै देउ मोहिं दानइ ।।१।।
बाहर अण्ड कमठ जल भीतर, सेवइ जिमि निज ध्यानइ ।
अवध अण्ड प्रिय जन, वसते बन कमठ राज तिमि जानइ ।।२।।
निकसेउ अर्ध प्राण आवइ फिरि, सुरति पाइ सुधि कानइ ।
दरस आस तो प्रेमी जीवइ, कृपासिंधु अस भानइ ।।३।।
आवत कोउ सँदेश भेजिये, अवकाशहिं सुधि आनइ ।
मृतक अवध बासी तौ जी हैं, तुम हम सब के प्रानइ ।।४।।

[३५]

अवधि बितन दिन रखिबो ध्यान ।
तुम करुणाकर धर्म धुरन्धर, आरति हरन सुजान ।।१।।
पुरबासिन हय गय खग मृगहूँ, तुम सम प्रिय नहिं आन ।
अवध बसत जिव कोउ न जानउँ, जेहि के तुम नहिं जान ।।२।।
तुम्ह लौटत नित दरस लालसा, जलसा तिलक महान ।
यहि जादू सब जिअहिं अवधि लगि, आव न मरहिं बिहान ।।३।।
तुम अकाम राम हम जानिअ, तद्यपि कृपानिधान ।
बीते अवधि प्रथम दिन आवहु, राखहु सब के प्रान ।।४।।

[३६]

पिय गेउ सुनेउ बुलावा आवा ।
करत विचार सीय दाहिन अँग, असगुन फरकि जनावा ।।१।।
समाचार कहँ चहुँ दिशि चितवत, मृगी देखि जनु दावा ।
पितु आज्ञा बनबास मानि चल, बिदा जननि करवावा ।।२।।
समाचार यह पाइ सासु गृह, चलेउ विलम्ब न लावा ।
जनु जोगी भव भोग पीठ दै, परमारथ कहँ धावा ।।३।।
महारानि बनते जोगिनि भइ, सो न सोच उर आवा ।
पिय सँग प्रान देह दुहुँ जायँ कि, केवल प्रान लुभावा ।।४।।

[३७]

सासु समीप बैठि सिय जाय ।
हृदय विदारन सुनी वारता, नीचे मुख लटकाय ।।१।।
यद्यपि धर्म प्रेम मिश्रित तउ, विरह अग्नि लपटाय ।
दाहक सती योग अग्नि सम, दृग दिय अश्रु सुखाय ।।२।।

पद नख लिखत कछुक धरनी जनु ध्यानाकृष्टि कराय।
व्यक्त करन चाहत अपनो रुचि कछुक सुअवसर पाय॥३॥
अथवा व्योम विदीर्ण दुसह दुख, लखि सिय जग की माय।
चाहत निज संकल्प सियन तेहि, दुख वश सियो न जाय॥४॥

[३८]

सिय अंग सीम कोमलताई।
कुसुम तेहि अनुहारि माँगे, दिय न कल्पलताइ॥१॥
प्रकृति हेरी सृष्टि, कमल गुलाब सकल हिताइ।
पाइ नहिं अनुरूप पूजेउ, सिय अधीश्वरि पाइ॥२॥
जाइ नव नवनीत बूझेउँ, तू कि सिय समताइ।
कहेउ कोमल तस न पिघलेहुँ, कतहुँ अग्नि सताइ॥३॥
मिलेहुँ कछु उपमा मिलायें, प्रकृति चिन्मयताइ।
राम पंकज बाह्य पँखुरी, सीय अन्दरताइ॥४॥
सिय न सुख अन्यत्र यहि लगि, कतहुँ सुख बहुताइ।
राम अंक निशंक राजति, मन बिलोकु घताइ॥५॥

[३९]

राम सँग सिय बन चलन चहै।
जदपि विचार सार पातिव्रत, सिय कहँ सोउ न कहै॥१॥
अति सुकुमारि कठिन कानन मग, जौ केहुँ विधि निबहै।
तौ बन बसब दिवस चारिहुँ सिय, सब समुझत न सहै॥२॥
सिय निश्चय मन समुझि कौशिला, दुसह दवाग्नि दहै।
ताहि बुझावन सिय समुझावन, रामहिं मातु कहै॥३॥
जाको अंश उमा दारुण तप, करि शिव संग लहै।
सो संग राम छाँड़ि बन दुख डरि, कस रखि प्रान रहै॥४॥
प्रीतम प्रेम धर्म पातिव्रत, धीरज धारि गहै।
पति शिख निज शरीर हित तजि तेहि, सेवा गंग नहै॥५॥

[४०]

पिय सिख हितकर सब लगि जानि।
निहित देह सुख रहित संग सुख, समुझि सीय अकुलानि॥१॥
पति बन दुख अरु रहनि तपस्वी, स्वयं महल ठटि रानि।
सिय कहँ लगो मनहुँ मेटनि जग, तिय पातिव्रत कानि॥२॥

प्रेमास्पद सेवा न होइ जेहि, जियब अकारथ मानि।
या सँग देह प्रान दोउ जइहइँ, नहीं प्रान लिय ठानि।।३।।
सकल दुःख जग मिलि समान नहिं, लव वियोग पिय हानि।
यह जिय धरि हठि चलेउ राम सँग, तजि जग मन नहिं ग्लानि।।४।।
भागत भानु प्रभा को छेक सक, चंदिनि चंद सिरानि।
भक्त विभवत होइ राम कहुँ, सिखइ गई सिय बानि।।५।।

[४१]

एकहिं एक विलग नहिं कोऊ।
निराकार दोउ एक होइ राजत, साकारहु एक दोऊ।।१।।
मन के दिये परस्पर कर्महु, एक दूजेहिं ते होऊ।
सिय बन चलनि मेटि पिय आयसु, जानिय पिय रुचि सोऊ।।२।।
मनु के शर्त पूर्ण दर्शन जेहि, ब्रह्म न राखेउ गोऊ।
बर केवल सुत ब्रह्महिं माँगत, कहेउ अवन सँग सोऊ।।३।।
प्रभा पृथक बरु होइ भानु तें, चन्दिनि चन्द विछोऊ।
पृथक राम सीता स्व शक्ति से, नहीं कल्पनहुँ होऊ।।४।।
जिन्ह कर दर्शन मुनिन जतन बहु, एकहिं कारन होऊ।
मिल तिन्ह गिरा समर्थ अर्थ बिनु, निज उदारता खोऊ।।५।।

[४२]

सिय सुख ग्रँथित राम पद संग।
सुख दुख सीम अवध कानन दोउ, भेदेउ नहिं तेंहि रंग।।१।।
बन मग चलत देह सुख भूलेउ, थकि न भयेउ मन पंग।
प्रीतम पद अति प्रेम पलोटत, छिन छिन नव नव ढंग।।२।।
प्रेम धारणा विजई देखियत, प्रेम प्रकृति के जंग।
सोइ सिय जासु कृपा मिथिलापति, मन भेउ तनहिं असंग।।३।।
श्रम भ्रम बनत निरखि पिय मुख जिमि, पाप नहाने गंग।
सोइ मुख सुमिरि राम विछुड़ेउ भइ, निडर दशानन खंग।।४।।
सिय हिय निवसत नित रघुनन्द, सीता सुरति अभंग।
दै सोइ सुरति बसहु हिय पिय संग, एकइ मोर उमंग।।५।।

[४३]

जगत असम्भव एक लखाइ।
रामहुँ तजे राम जन रामहिं, तजि नहिं कबहुँ सकाइ।।१।।

पड़ै बज्र अथवा शरीर के, टूक टूक होइ जाइ।
होइ प्रलय पर पुनः सृष्टि होइ, राम भक्त प्रगटाइ ॥२॥
देइ प्रलोभन भुक्ति मुक्ति हूँ, कोउ न सकइ भड़काइ।
रेख लेख पलटै विधना की, टेक न जन पलटाइ ॥३॥
सीतहिं सिख गृह रहन हेतु दिय, सासु ससुर रघुराइ।
पिय वियोग विष बयन मृदुल घट, लखि सिय गइ घबराइ ॥४॥
जग सम्बन्ध अवध सुख निश्चित, पिय वियोग दव पाइ।
द्रवि तुरन्त बन चली राम सँग, गृह दुख पात्र बिहाइ ॥५॥

[४४]

पतिव्रत भक्ति भाव एक रंग।
भक्तहिं स्वामि जगत पतिवर्तहिं, पुरुषतु एक पति अंग ॥१॥
त्रिभुवन सुख दिशि एक प्रलोभन, सकल दुःख प्रिय संग।
दूजेहि सकल भाँति हित मानत, प्रथमहिं ते मन भंग ॥२॥
हिय अकाश प्रिय सुरति निरंतर, चढ़ती रहति पतंग।
प्रिय प्रसन्नता हित जग वर्तत देखि मुनिहुँ मन दंग ॥३॥
होइ सूरमा बिरला कोई, इमि कर प्रकृतिहिं जंग।
सेवक सेव्य सु-भाव व्याप्त करि, स्वारथ होइ असंग ॥४॥
सिय बन अरु अशोक वाटिका रहनो विमल प्रसंग।
नारिन्ह चलन अनुसरन भक्तहिं, सफल ढारि गेउ ढंग ॥५॥

[४५]

मैं शरीर जड़ तुम प्रिय प्रान।
जिवित मोहिं राखन जौ चाहौ, दिये रहौ संग दान ॥१॥
राम चन्द्र सीता सु चन्द्रिका, बिनु तेहि केहु न दिखान।
रजनी कहुँ अस्तित्व प्रभा मम, तुम जौ उदय न भान ॥२॥
तुम पिय वारि तरङ्ग तासु मोहिं, विलग न कोऊ मान।
शब्द आपु अर्थ जानिय मोहिं, तुम्ह महँ रहौं समान ॥३॥
शक्ति मोहिं अपनो जानिय पिय, सकल परे भगवान।
मोहिं करुणा कहँ हृदय धारि पिय, करुणा बनेउ निधान ॥४॥
तुम्हरे अंशहुँ अंश वत्स-श्री, चिह्न दियो स्थान।
तुम्ह प्रिय शील प्रीति मति आगर, तजि मोहिं चहत भगान ॥५॥
जानत हौ सम्बन्ध मोर निज, तुम पिय परम सुजान।
मोहि मिस सिद्ध कार्य वपु धारन, होइ कि रहेउ भुलान ॥६॥

सुनि सिय विनय सदय सियवर सिय, कहेउ संग बन जान ।
उपर्युक्त किय नियम प्रकृति के, प्रकृतिनाथ परमान ॥७॥

[४६]

हम कहँ का आयसु महरानी ।
चन्द्रकला अलि सिय सों पूछति, हिचकत सिसकत बानी ॥१॥
प्रीतम प्रिया प्रीति आस्वादन, महँ रति हम अलि मानी ।
सुख बिहाय सो जीवन हित हम, कुछ अवलम्ब न जानी ॥२॥
कोहबर तुम दोउ प्रीति भाव पर हम अलिगन ललचानी ।
तुम दोऊ सँग रहन नित्य हम, सब अपने मन ठानी ॥३॥
तुम्हरे संग प्रान भेजतिउँ, किन्तु एक उर ग्लानी ।
सेवा बिनु तुम दोउ किमि रहिबो, यही बनेउ अकुलानी ॥४॥
जल भरि नयन सीय राम मुख, देखेउ दृष्टि लजानी ।
कहेउ राम दोउ गुप्त युक्त अलि, रंग महल ठहरानी ॥५॥

[४७]

दै आज्ञा सुत बनहिं पठाई ।
आदिहिं सृष्टि मोह ते हारत, अब विवेक जय पाई ॥१॥
दै वरदान विवेक अलौकिक, तबहुँ समुझि कठिनाई ।
दै द्वै बार दरस कौशल्यहिं, ब्रह्म विवेक दृढ़ाई ॥२॥
हारे मोह पोच नहिं तनिकहुँ, न्यून न प्रेमहिं आई ।
कौशल्या को राम प्रेम रह, दिन दिन नव अधिकाई ॥३॥
मातु हृदयँ सिय राम लखन बसि,इमि रह दृगन समाई ।
गवन सत्य या झूठइ दुविधा, लौटेहिं राम नसाई ॥४॥

[४८]

गई न संग न प्रान पठाई ।
कहते राम मातु कौशल्या, तेहि संकोच लजाई ॥१॥
थर थर काँपि न गिरी बे सुधी, सुधि बनबास लहाई ।
उलटेहिं करइ विचार विविध विधि, आशिष दै समुझाई ॥२॥
सहज सनेह मातु को मानहुँ, रोग विवेक मिटाई ।
अथवा जनेउ नहीं, प्रगटेउ सुत, सत्य भई कठिनाई ॥३॥
सरिस राम सुत मातु कहन महँ, प्रगटत निजी बड़ाई ।
भक्तिमती कौशिला न सो कहि, निज दीनता दिखाई ॥४॥

यथा समय दूनहुँ उपयोगी, प्रेमिन कथा सिखाई।
एकइ व्यक्ति दोऊ अपनावत, जस उपयोगी पाई ॥६॥
रामहिं प्राप्त करन उपयोगी, प्रेम विवेक हटाई।
प्राप्त भये रीझत विशेष सोइ, प्रेम विवेक मिलाई ॥७॥

[५१]

लछिमन लग सग एक रघुवीर।

जनु विराग सर्वाङ्ग गुनन सह, धारेउ भक्त शरीर ॥१॥
मातु पिता गुरु बन्धु स्व परिजन, छोड़त तनिक न पीर।
नव व्याहित आश्रित पतिनिहुँ हिय, लगेउ न स्नेह समीर ॥२॥
राज्य धर्म नहिं लोक कानि भय, नहिं भय यमपुर भीर।
बहु निचोरि रघुबीर न पायउ, आस परम पद नीर ॥३॥
देखेउ सही स्वप्नवत सारे, सुख संसारहिं वीर।
विश्व सुन्दरी बनी सुपनखा, पाइ डगेउ नहिं धीर ॥४॥
नित जागृत सद्गुन धन ईश्वर, लगि सिय राम फ़कीर।
जीवमात्र आचार्य करहु मोहु, उनहीं दामनगीर ॥५॥

[५२]

सुतहिं सुमित्रा सत्य सिखावइ।

मातु पिता जग सकल स्वारथी, रामहिं सुहृद बतावइ ॥१॥
जग सब लोग बने के साथी, बिगड़े मुँह न दिखावइ।
परमारथ पथ के सब बाधक, साधक स्वार्थ लखावइ ॥२॥
परमारथ स्वरूप सीतावर, एक तिन्हइ सुत धावइ।
मृगतृष्णा प्रपञ्च जग जानइ, तेहि नहिं मन भरमावइ ॥३॥
सीताराम नित्य सेवा कहँ, सुत निज धर्म बनावइ।
सियाराम मय सकल जानि जग, सबतें प्रेम बढ़ावइ ॥४॥
राग रोष ईर्षा विमोह मद, सपनेहुँ वश नहिं आवइ।
पुत्रवती मैं भइउँ तोर हिय, राम भक्ति किय ठाँवइ ॥५॥

[५३]

भक्तहिं केवल राम सगाई।

जीवाचार्य बर्ति आचरण, लक्ष्मण जिवहिं जनाई ॥१॥
रामहिं के सम्बन्ध मानियत, रिपुता तथा मिताई।
नृप निषाद भेउ मित्र भरत कहँ, मारन शस्त्र उठाई ॥२॥

रघुपति कीरति विमल पताका, जब कहुँ लखेउ झुकाई ।
तब अपनो पुरुषार्थ प्रगटि तेहि, चौगुन चंग चढ़ाई ॥३॥
परम बली निर्बली सिद्ध भेउ, मेघनाद लहि घाई ।
राम प्रताप शपथ तेहि मारत, कीर्ति प्रताप बढ़ाई ॥४॥
रघुपति कीर्ति भार धारत शिर, रहत सतर्क सदाई ।
सिय रामहु रामेश्वर बन्दत, निज शिर नहीं झुकाई ॥५॥

[५४]

लछिमन राम प्रीति किन लखु मन ।
लछिमन राम नेह निर्भर जस, तैसेहिं रामहुँ लगन लखन सन ॥१॥
लछिमन सेवत राम भाँति यहि, निज शरीर जिमि अविवेकी जन ।
तत्पर राम लच्छिमन रक्षा, गोलक नयन करत जिमि पलकन ॥२॥
मातु पिता पत्नी संग तजि जिमि, राम संग गवने लछिमन बन ।
लछिमन शक्ति लगे तिमि उन सँग, निश्चित जान कियो आनंदधन ॥३॥
रिपुहिं खिझाइ छोड़ाइ आपु पर, शक्ति किहेउ रामहिं निर्भय रन ।
शक्ति घात लछिमन सोवाइ सुख, वहन राम किय पीर लच्छिमन ॥४॥
दशा अभिन्न राम सिय यद्यपि, देखिय कबहुँ भिन्न दोऊ जन ।
राम लखन अखण्ड प्रीति सँग, एकइ ब्रह्म धरेउ जनु द्वै तन ॥५॥

[५५]

लछिमन मिलन उर्मिला त्यागी ।
राम सीय प्रेम वश भूलेउ, किधौं परम वैरागी ॥१॥
चौदह वर्ष वियोग देन दुख, का कछु दयहु न लागी ।
किधौं पाइ कछु दोष उर्मिलहिं, मन तिन्ह तें गा भागी ॥२॥
बसि विचार कैलाश शिखर शिव, गूढ़ रहस्यहिं दागी ।
विलग न दोउ, लछिमन उर तें नित, उर उर्मिला सुलागी ॥३॥
अद्वितीय रघुपति सेवा के, जैसे लछिमन रागी ।
सिय सेवा समुझिये उर्मिला, तैसेहिं परम सुभागी ॥४॥
सिय सेवा निज भार धरन पिय, बनहिं जात हिय माँगी ।
पिय सेवा सहयोग सोउ नित, जेहि पिय नित रह जागी ॥५॥
नित्य सुषुप्ति दशा कारण ते, सासुन्ह के सँग लागी ।
चित्रकूट सिय दरस लालसा, सपनेहुँ नहिं हिय जागी ॥६॥

इन्ह सेवा श्रुति कीर्ति मांडवी, दरस सिय त्यागी।
सियहिं त्यागि सिय सहचरि सेवा, रस राखेउ हिय यागी ।।७।।

[५६]

राम कथा की रसिक उमा प्रिय पतिहिं सुअवसर पूँछि रहेउ री।
किन श्रुतिकीर्ति उर्मिला माँडवि, चित्रकूट सुख जाइ लहेउ री ।।१।।
भरत संग गवने पुरबासी, जिन्ह राखे दुख अमित सहेउ री।
शुक सारिकउ बन्द पींजरन, राम सीय विरहाग्नि दहेउ री ।।२।।
मिथिलापति रानिन मुनि जन सँग, धाइ राम सिय खोज लहेउ री।
सीताराम दरस अभिलाषिन, कैकेइउ बन राह गहेउ री ।।३।।
ते नहिं गईं नहीं सिय सखि गन, कारण गूढ़ न जाइ गहेउ री।
यहि रहस्य गुह्यतम शिव तब, छिन विभोर होइ उमहिं कहेउ री।।४।।
रसिकराज सँग रसिककिशोरी, रमत अयोध्या नित्य रहेउ री।
रंग महल महँ नचत संग अलि, मचत रंग नहिं जाइ कहेउ री ।।५।।
तीनहुँ बहिन सीय सखि गन मन, बसत तहाँ किमि बनहिं बहेउ री।
सुख स्वरूप नवनीत सकल सुख, सेवत अनि सुख लागु महेउ री ।।६।।
प्रभु अहलादिनि सिय आराधइ, भाव सखी सुख कोउ चहेउ री।
ब्रह्मानंद बनेउ सीकर सुख, रंग महल बह छिद्र तहेउ री ।।७।।

[५७]

करि पिय की सुरतिया बे सुरति भई।
जनकसुता उर्मिला विरह पिय, दीखति जिव बिनु मुरति नई ।।१।।
होइ विदेह निज नेह सँभारेउ, किहेउ चेतना लखन मई।
पिय अर्धंग संग पैठि करि, पति सिय सेवा दोउ कई ।।२।।
पिय गृह लौटे लौटी निज तन, मनहुँ दीर्घ मूर्छा बितई।
प्रान पठाइ संग पिय जीवति, प्रेम योग जिव सीख दई ।।३।।
बिछुड़त राम कौशिला सीता, जो उपाय नहिं हृदय लई।
कार्यान्वित सो किहेउ उर्मिला, जुग जुग कीरति जगमगई ।।४।।

(कौशल्या जी ने कहा था "गई न संग न प्रान पठाये" और श्री सीता जी ने कहा था "की तनु प्रान कि केवल प्राना"। उर्मिला जी ने पति के संग प्रान भी पठाया और शरीर सुरक्षित रहा जिसमें पुनः लौट आईं)

[५८]

वैराग्य वीर धनि लखन लाल ।

एकान्त दुखी वैराग्य हाल, सुख लहेउ पहिरि जेहि चरित माल ॥१॥
सँग मातु पिता गुरु बधू बन्धु, बस महल जहाँ रस मोह जाल ।
बन गवनत अब प्रकटेउ कि राम, तजि मुक्त सबहिं ते सर्व काल ॥२॥
जिन सिया राम पद रज निरखत, भे भरत अनुभवत हर्ष हाल ।
कानन मग गवनत तिन्ह पीछे, उड़ि उड़ि इन्ह लागत वही भाल ॥३॥
सिय राम चरन के चिह्न बीच, निज पग धारत सभीत चाल ।
रक्षा हित मानहुँ ज्ञान भक्ति, ढालते चलत वैराग्य ढाल ॥४॥
किय क्रोध पराजित निज स्वभाव, छुटि गयेउ परशुधर बजब गाल
सूर्पनखा घन नादहिं प्रतीक, दलि काम हटायेउ जगत साल ॥५॥
सिय राम सहित जेहि हिय धारित, शिव भक्त सुतीक्षन भरतलाल ।
किय अनुभव सती सत्य इन तिन, जिन सेवहिं विधि हरि चन्द्र भाल।६।
सुधरेउ जेहि शिक्षा अल्प संग, गुह बालितनय सुग्रीव हाल ।
तेहि प्रतिनिधि जिव गुरु ते सवाल,कब सियवर सँगकरिहउ निहाल ॥७॥

[५९]

हत जिमि सूर हिरदय घाउ ।

विगत मूर्छा संग सैनिक, करन कहत उपाउ ॥१॥
राम विरह अमोघ सायक, हत वही विधि राउ ।
वेगि लावनि जिवनि औषधि, निज सचिव समुझाउ ॥२॥
रथहिं सम्पुट मूरि कै त्रै, लखन सिय रघुराउ ।
बन थलहिं लै जाइ गिरि सरि, वायु वारि दिखाउ ॥३॥
प्रीति गृह पितु मातु परिजन, कोंपलहिं उपजाउ ।
भय करिन केहरि असन दुख, धूप मति मुरझाउ ॥४॥
प्रकटि सन्जीवनि जतन यहि, दिवस चौथे आउ ।
देइ अंक पिआइ नैनन्हि, मरत मोहिं जिआउ ॥५॥

[६०]

रथ लै नृप जब सचिव पठायो ।

परिकर के सहयोग महल चढ़ि, राम लखन हित धायो ॥१॥
रथ पीछे अगनित नर नारी, लखेउ जात पछिआयो ।
अपनहिं भाव रूप बहु दौरेउ, मनहुँ राम लौटायो ॥२॥

उड़त धूलि आशा लौटन लघु, जिमि रथ जात दुरायो।
धूलि संग चेतना चलेउ नृप, लखि न मूर्छि भहरायो ॥३॥
सचिवन सम्मत तब परिकर नृप, गृह कौशिला लिटायो।
विविध उपाय राम मातु करि, मूर्छा नृपति मिटायो ॥४॥
भूपति रानी मन एक सँग होइ, तब रथ संग सिधायो।
राम लखन सिय बिरह बधिक शर, वपु मृग गिरेउ बिधायो ॥५॥

[६१]

विरह अग्नि हिय नृपति जलाइगे।
मैं तैं तिनकउ जलेउ न तप तें, भ्रम बन भस्म मिलाइगे ॥१॥
प्रगटि चरित रवि हरिजन हिय सर, प्रेम सरोज खिलाइगे।
मन्द अग्नि हिय राम मिलन रुचि, बुझते फूँकि जिलाइगे ॥२॥
सूरति धूमिल राम लखन सिय, मूरति हृदय बनाइगे।
राम प्रेम बिनु झूंठों सब जग, जिव अनुभूति जनाइगे ॥३॥
वेद पुरान शास्त्र पढ़ि जेहि बिनु, जीवन वृथा बिताइगे।
अपने चरित पढ़ाइ प्रेम सोइ, हरि पद जीव हिताइगे ॥४॥
ब्रह्म जानि हित करन राम सों, प्रेम निकिष्ट सिखाइगे।
अपने रामहिं प्रेम अहेतुक, दशरथ करन दिखाइगे ॥५॥
दशरथ सत्य प्रीति पूजे इमि, इतना राम रिझाइगे।
कहेउ चाम पितु पनहीं नहिं करि, जीवन वृथा सिझाइगे ॥६॥
रमते विश्व राम तनु पनही, पद नृप प्रान समाइगे।
विश्व रूप राम प्रेम तेहि, नृप होइ प्रान रमाइगे ॥७॥

[६२]

दुख दम्पति मोहिं कहि नहिं जाई।
राम दुखहिं अनुमानि शोच कर, राम बने दुख याई ॥१॥
तात बात गात मुख सूखन, घोर घाम बिनु छाँई।
कंटक काँकर पूर्ण बिषम मग, सहनि सीय दोउ भाई ॥२॥
असम भूमि पर शयन रयन बिनु तकिया सेज तुराई।
असन कंद मूल अंकुर फल, भल जल थलहुँ दुराई ॥३॥
शोच प्रगाढ़ बनेउ स्मृति दोउ, लखन सीय रघुराई।
स्वयमहिं अनुभव करहिं पथिक दुख, एक बनि एक चित लाई ॥४॥

खान स्वाद तिन भये राम के, पथ श्रम दुख समुदाई।
कीट भृंग रंग उपमा लघु, प्रियतम चेष्टा आई ॥५॥

[६३]

आजु अवध दामिनी दह्यो।
प्रिय अभिषेक कल्पतरु पुष्पित, फलते छार भयो ॥१॥
अवध अनन्द उदधि विकसित बन, बनज तुषार जल्यो।
अथवा मीन अवध वासिन्ह जल, अनतहिं चल्यो बह्यो ॥२॥
तलफत बिलपत छिन नहिं बिलमत, चहुँ दिशि चितइ रह्यो।
जात बनहिं सिय राम लखन चढ़ि, रथ कहँ पकरि गह्यो ॥३॥
सुत कर धर्म कठिन यम मानहुँ, लै सतिभान चल्यो।
लौटावन सँग पुरवासी सावित्री विपिन हल्यो ॥४॥

[६४]

सागर गुन बन राम जवाई।
आनँद अमृत दुःख हलाहल, प्रकटे मथन कराई ॥१॥
सकल देव मय रानि कैकई, चेरि दैत्य समुदाई।
राम बास बन वर्ष चारि दश, मन्दर अति गरुवाई ॥२॥
नृपति प्रीति कैकइहिं वासुकी, कच्छप राम धराई।
वारिधि विश्व अगाध दुःख सुख, तेहि कहँ कौन मथाई ॥३॥
राज सुकंठ विभीषन वैभव, शवरी मुनिन मिलाई।
निकसे मणि गन बिकसे उडुगन, हिय अकाश जग छाई ॥४॥
प्रगट्यो सीय राम चरितामृत, आश्रय अम्मरताई।
आनँद स्वाद प्रेम गुण वारुणि, नित नव मादकताई ॥५॥
जग दुख समिटि हलाहल प्रगटेउ, रूप विरह रघुराई।
ताहि पियन ब्रह्मांड सकल शिव, जनमे अवधहिं आई ॥६॥
निरखि राम बे-सुधि वियोग सुधि, सुख समाधि सुलभाई।
शिक्षा लेन पियन विष के मिस, शिव समस्त रह धाई ॥७॥

[६५]

वासिन अवध जिवनि बिलगानी।
राम गवन बन समय जगत कहँ, प्रगटेउ तिन्ह बिलखानी ॥१॥
थलचर जीवत प्राणवायु लहि, जलचर पावत पानी।
केवल राम संग लहि जीवहिं, अवध नगर के प्रानी ॥२॥

सो सुख सुलभ अवध बासिन सब राम रहे रजधानी।
बिछुड़त राम सकल तड़पत जिमि, मीन वारि उलचानी ॥३॥
मीनराज दशरथ तन त्यागेउ, अन्य रहे पछिआनी।
चित्रकूट लौटे आश्वासन, आवन अवधि बिहानी ॥४॥
सुरति समाधि आस दर्शन प्रिय, जिये प्रान पन ठानी।
धन्य अवध वासी जिन्ह जीवन, राम राउ सिय रानी ॥५॥

[६६]

भजन हेतु रघुनाथ चरित सब, मरन समय हित एक सुहाई।
मुनि तिय तारन गीध उधारन, रावन रन मारन समुदाई।
स्तुति शिव विरन्चि वेद मुनि, सकल राम कहँ ब्रह्म दृढ़ाई ॥१॥
विश्व विमोहन सुन्दरता हूँ, एक पत्नी ब्रत करत सदाई।
सोउ छबि खानि एकान्त बास सँग, तेरह वर्ष सहर्ष दुराई ॥२॥
सदाचार यह आज्ञा गुरु पितु मातु, प्रीति बन्धुन बहुताई।
शरणागत वत्सलता ऐसी, जन हित अपनहिं ढाल बनाई ॥३॥
प्रीति रीति देखी जब जूठे, जानि बेर शबरी गृह खाई।
अघी निषाद नीच सन जोड़ी, सखा प्रीति ऐश्वर्य मिटाई ॥४॥
यह सब चरित प्रीति जोड़न हरि, तोड़न मोह सुलभ एक पाई।
छोड़त गृह पितु मातु जातु वन, मुख सरोज मुकत कुम्हिलाई ॥५॥

[६७]

"नव गयंदु रघुवीर मनु, राजु अलान समान।"
रघुनाथ जी का मन कब से और कैसे गयन्द बना सुनिये :—
करुणामय अवसर के देखत, लेत आपनो रूप बनाई।
मीन कमठ सूकर नर-केहरि, वामन परशुराम भयदाई ॥१॥
एकहुँ वपु भावना अनेकन्हि, के अनुसार रूप दिखलाई।
काहू सुखमय रूप मनोहर, काहुहिं मनहुँ काल दुखदाई ॥२॥
रूप सोई पर होत कोटिहूँ, कबहुँ लेत निज रूप छिपाई।
कबहुँ रूप एक ही, अंग प्रति, विविध रूप जनु देइ दिखाई ॥३॥
कटि केहरि जिव अहं विदारत, लेत चाल गज चितहिं चुराई।
वृषभ कंध करि कर भुज दण्डन्हि, बल लखात अरु सुन्दरताई ॥४॥
कम्बु कण्ठ राकाशशि आनन, शुक नासा कच अलि समुदाई।
रंग नीरधर नीरज लोचन, मोचन शोच राम मुसुकाई ॥५॥

भूप सहस दस मिलि न टारि सक, तेहि धनु तोड़न लखि कठिनाई।
बल प्रतीक गज चाल चले हरि, तेहि तोड़न मृणाल की नाँई ॥६॥
रघुनन्दन गज चाल रीझि कर, गजगामिनि भइँ नारि सुहाई।
सजि समाज दशरथ नृप पहुँचे, राम भाव गज अवधहिं लाई ॥७॥
राज्य अभिषेक करन मिस राखेउ, मधुर अलान बाँधने ताँई।
नव गयन्द मन राम त्यागि तेहि, चलेउ भागि बन अति हर्षाई ॥८॥
अवध नारि नर करिनी करि बनि, चल बन मनहुँ तड़ाग लखाई।
मन अब चलहु बेगि बन बनि करि, जहँ तोहिं सब सुपास सुलभाई ॥९॥

[६८]

श्याम शरीर सलोनो री सजनी।
आनन छबि बिखरी कानन महँ, पूर्ण चन्द्र जनु शरद की रजनी ॥१॥
बयस किशोर भोर अम्बुज से, नयन खुलन की मधुर सी लजनी।
मन तजि लोभ छोभ भोग सुख, लिहेउ ललित नित उनकी भजनी ॥२॥
टुक मुसुकाइ मोहिं जब ताकेउ, भूलि गइउँ अपनो सज धजनी।
नव गयन्द वन राम गवन लखि, मन अनुगमन कीन्ह बनि गजनी ॥३॥

[६९]

पूर्ण सावधान रघुबर मन गवनत बन प्रिय अवध बिहाई।
व्यापक रूप प्रमाणित हित तिन, अवसर उचित मनहुँ विधि पाई॥१॥
मिलनि प्रीति मुसुकानि रूप छबि, नित्य स्वभाव मनोहरताई।
मुख शोभा सोइ चितवनि बोलनि, जग जनाव तिन्ह स्थिरताई ॥२॥
वर्ष-अन्न देत विप्रन कहँ, निज ब्रह्मण्य रूप दरसाई।
सुख स्वरूप निज रूप लखायेउ, गुर पद पदुम परत हरषाई ॥३॥
दान मान जाचक संतोषन, सूचत सियबर दीन हिताई।
प्रिय वाणी सब जन समुझावन, प्रकटत ब्रह्महिं जोव मिताई ॥४॥
सौंपन दासी दास करन कहि, सार सँभार मातु पितु नाँई।
प्रकटत राम प्रेम सेवक अरु, सेवक सेब्य भाव महिमाई ॥५॥
सबहिं छाँड़ि बन चले तीन जनु, तीनहिं नित्य प्रमान बताई।
राम ब्रह्म मायेश्वरि सीता लखन जीव, ते बिश्व बनाई ॥६॥
तेहि अवसर लै मिलन लालसा, दीनउ मन गेउ तन खिसकाई।
विपिन पन्थ छवि ध्यान तिनहुँ जन, दीन राम दीनहिं मुसुकाई ॥७॥

[७०]

तन श्री अवध प्रान श्री राम ।
गवनत राम अयोध्या श्रीहत, कानन बनत ललाम ॥१॥
लाल श्वेत रक्त कन पुरजन, अचल मूर्छि बे-काम ।
जहँ तहँ परि दरार हिय विदरेउ, सीमा सिकुड़ेउ घाम ॥२॥
विटप बेलि रोम जे बिकसित, पुलकित दरस अराम ।
ते मुरझाइ भूमि झुकि लागे, विरह ग्रीष्म खर धाम ॥३॥
अस्थि भवन बिनु साज दीख जनु, हैजा उजड़ो ग्राम ।
ब्याकुल हय गय पशु मृग खग जूं, तनु मसान के ठाम ॥४॥
सरयू सरि मलीन अल्प जल, कीचड़ मिला निकाम ।
अवध नेत्र नेत्रजा अश्रू, निकसेउ निकसत राम ॥५॥

[७१]

मम हिय अजहुँ कौशिला भाखइ ।
यद्यपि घटना त्रेता युग की, बिते वर्ष कइ लाखइ ॥१॥
"मधुर खान कहि सुनत बास बन, सुधि न खिलावन राखइ ।
सो करि छमा अबहिं आवहि सुत, मातु जानि जनि माखइ ॥२॥
तब तें ताकत राह तुम्हारो, धरेउँ मधुर नहिं ताखइ ।
शीतल करन कलेजा मम सुत, बेगि कलेऊ चाखइ" ॥३॥

[७२]

सिय सुधि मातु बिसरि नहिं पाती ।
सुरति प्रगाढ़ स्वयं सीता भइ, निज सुधि भइ विसराती ॥१॥
पकड़ै पाँय धाय सासुन्ह कर, जब कोइ परइ लखाती ।
बुझति दीप बाति टारन चल, बरजन सुनि लौटाती ॥२॥
भये सुरति बन गइउँ राम सँग, साथी लखन सोहाती ।
पेखन सीता राम लखन नित, अनुभव कर मति माती ॥३॥
द्रष्टा दृश्य स्वयं बनती जौ, निज सुधि कहुँ लौटाती
नतु सिय राम लखन मूरति बनि, अपनेहिं रहेति भुलाती ॥४॥
उदाहरण जग बनब दूसरो, कीटहि भृंग सुनाती ।
सुनेउँ न चारि रूप जिव वर्तै चतुर्व्यूह की भाँती ॥५॥

[७३]

रघुबर अवध छाँड़ि जनि जाय ।
मम हिय कानन सुलभ सुहावन, तीनों तहँ बसु आय ॥१॥

गंगा यमुना दूनहुँ संगम, स्थल सांति सुभाय।
सब देवन सब तीर्थ धाम तनु, साकेतहूँ सुहाय ॥२॥
काम क्रोध मद लोभ आदि बहु, केहरि बस तेहि ठाँय।
इन सब के तुम सहज अहेरी, करहु अखेट अघाय ॥३॥
हृदय कमल बसिये तीनहुँ जन, कमल बदन हिय-राय।
कानन सुलभ होत ठौरहो, क्यों तेहि जाय बराय ॥४॥
बूढ़े अवधी हृदय विनय सुनि, सदय हृदय रघुराय।
दुजो रूप तिहुँ बसे तासु उर, सो हर्षेउ ठहराय ॥५॥

[७४]

चलेउ राम तौ हमहिं न छोड़ो।
प्रान बुद्धि मन चलेउ जो तीनहुँ, तन किमि रहै निगोड़ो ॥१॥
बारेहिं ते निज नेह शील छबि, वश करि नातो जोड़ो।
गृह परिजन परिहरे नात एक, ताहि नाथ किमि तोड़ो ॥२॥
दीन पुकारत पुरजन यहि विधि, चले सबहिं मुँह मोड़ो।
रथ पकड़न धावत नहिं मानत, लागत पायँन रोड़ो ॥३॥
आर्त नाद सुनि दुख दीनन लखि, राम रुकायो घोड़ो।
बहु समुझाइ कहेउ आवन बदि, बिते अवधि दिन थोड़ो ॥४॥
पुरजन कहेउ न तजउ नाथ तउ, हम सम तुमहिं करोड़ो।
हमरे तो सौभाग्य एक तुम, राखउ चाहे गोड़ो ॥५॥
प्रेम विनय सुनि कृपासिंधु मन, करुणा पीर मरोड़ो।
रथ धीमे करि चले सवन्हि सँग, प्रेम जितेउ प्रन होड़ो ॥६॥

[७५]

अब आगे न जाउ रघुराई
सुकुमारता सीम तुम तीनहुँ, तापर सीय थकाई ॥१॥
शिशिर ग्रीष्म वर्षा बीतै भल, मानउ मोर उपाई।
नतरु दुःख सुधि पाइ अवधपुर, काहु न प्रान बचाई ॥२॥
कै तुम बेगिहि बनहु त्रिविक्रम, दोउ लेउ बाँह उठाई।
बायें सीय दाहिने लछिमन, एक डग पहुँचो ठाँई ॥३॥
कै तुम तीनहु लघु बनि बसियो, मेरे नयनन आई।
दायें नेत्र बसहु सीता संग, बायें लछिमन भाई ॥४॥

तीनों रितु तहँ भल सुपास अरु, रक्षा रहनि सुहाई।
निमिष निमिषं निमि सेवा करिहइँ, अपनो जानि सगाई ॥५॥
ग्रीषम घाम वायु धूरि से, ऊपरी पलक बचाई।
तासु बरवनी वनो ओरवनी, जल बौछारि बराई ॥६॥
शीतल वायु शिशिर बचनो हित, पलकैं दोउ दुलाई।
गोलक गुलगुल गद्दा तकिया, मनहर कोमलताई ॥७॥
तिन्ह पायन्ह परि आँसुन धोयो, राम लियो उर लाई।
प्रेम विवश तेहि बसे नयन, वन दूजो रूप पठाई ॥८॥

[७६]

पशु अनकत सिय राम बिदाई।
हय गय पुर पशु तथा केलि मृग, भागि चले समुदाई ॥१॥
छूटे दौरि सहज सँग लागे, बाँधे चले तुराई।
पिंजरनि पंछी छाँड़ि अन्य सब, पुर तजि चले उड़ाई ॥२॥
पुर बाहर समीप सियबर जहँ, पुरजन रहे जुटाई।
पशु खग मृग तहँ पहुँचि मूर्तिवत, भे चेतना मिटाई ॥३॥
नयनन नीर सकल मोचत जनु, मोम हृदय सब पाई।
दर्शन शीतल जमें, गये अब, विरह अग्नि पिघलाई ॥४॥
छाँड़ि स्वर्ग अपवर्ग सकल सुख, बनि पशु अवध बसाई।
जेहि लगि, सुख स्वरूप सोइ छोड़त, सोचत धैर्य नसाई ॥५॥
नयनन तिन्हन बैठि रघुनन्दन, चन्दन बचन सुनाई।
मैं तुम्हरो तुम्हरेहि सँग रहिबौं, कछु दिन बनहिं बिताई ॥६॥
मूँदे नयन बसे जगबन्दन, स्यन्दन चले दुराई।
खोले पलक झलक नहि पायेउ, क्रन्दन करत फिराई ॥७॥

[७७]

राम चले मुनि वेश बनाई।
मुक्त बसन भूषन राजोचित, तनु छबि सहज लखाई ॥१॥
मनहुँ मुनिन मन बनि आभूषन, बसे राम तंनु आई।
आवत राम प्रत्यक्ष विलोकन, निज निज तनु लौटाई ॥२॥
छबि समुद्र, राम आवरण, छुटे छटा छिटकाई।
स्त्री पुरुष अचर चर बाँटहिं, दुहुँ दिशि सिय प्रिय भाई ॥३॥

मनहर मुख सुन्दर कोमल तनु, चितवनि चित्त चुराई।
सहज स्वरूप, निवारि तीन फल, देत सहज सुघराई ॥४॥

[७८]

लखु मन रघुबर अवध बिदाई।

राग विषाद रोष नाहीं मन, सुख सन्तोष सदाई ॥१॥
अस प्रबन्ध सब कर करि चलि भे, मनहुँ यहीं लगि आई।
अपने नित्य बास गवनत अब, उचित व्यवस्था पाई ॥२॥
अथवा अवध नृपति कुल इनकी, आवत चली हिताई।
हर्षित गृह प्रस्थान करत अब, कछु दिन रहि पहुनाई ॥३॥
बहत बारि मीन सिय बहि चलि, तजि सर अवध सुखाई।
नागराज लक्ष्मण सँग लागे, फणि जिमि मणि पछिआई ॥४॥
श्रुति प्रतिपाद्य सत्य तीनहुँ जनु, निजहिं प्रमान बनाई।
पद्म पत्र श्रुति कथित-असँगता, जग कहँ प्रकट लखाई ॥५॥

[७६]

राम सीय लछिमन चल संग।

सिरजन पालन लय कर मानहुँ, विरचेउ सुखकर ढंग ॥१॥
राम भानु सिय हिमकर लछिमन, अग्नि सँवारे अंग।
तीनउँ चले जीव त्रिभुवन के, तारन करि भव भंग ॥२॥
लखि लखाइ राम हिय जोतत, बोवत प्रीति अभंग।
सीता सींचि बढ़ावत नव द्रुम, मति रँगि भक्ति सुरँग ॥३।
लखन निरावत निरखि मोह मद, वाञ्छा कोह अनंग।
निरखत जरहिं दोष निर्मूलहिं, जैसे अग्नि पतंग ॥४॥
बाढ़ें भक्ति कल्पतरु सेवहिं, सम शबरी शरभंग।
मनु को कह मनुजाद वारिचर, थलचर तरे विहंग ॥५॥

[८०]

किमि पटतरिअ प्रकृति कोउ अंग।

प्रकृति मातु सीता लखि एक एक, होति मनहिं जब दंग ॥१॥
शिर जट जूट श्याम महँ राजत, ग्रँथित सुमन बहु रंग।
घन अवकाश भानु उडु उडुपति, निरखत छबि बसि संग ॥२॥
छबि समुद्र शशि प्रकटि दोष बिनु, मुख शोभा कुछ ढंग।
करुणा असित कृपा सित रँग जिन्ह, दोउ दृग यमुना गंग ॥३॥

तीनों रितु तहँ भल सुपास अरु, रक्षा रहनि सुहाई।
निमिष निमिषं निमि सेवा करिहइँ, अपनो जानि सगाई ॥५॥
ग्रीषम घाम वायु धूरि से, ऊपरी पलक बचाई।
तासु बरवनी वनो ओरवनी, जल बौछारि बराई ॥६॥
शीतल वायु शिशिर बचनो हित, पलकैं दोउ दुलाई।
गोलक गुलगुल गद्दा तकिया, मनहर कोमलताई ॥७॥
तिन्ह पायन्ह परि आँसुन धोयो, राम लियो उर लाई।
प्रेम विवश तेहि बसे नयन, वन दूजो रूप पठाई ॥८॥

[७६]

पशु अनकत सिय राम बिदाई।
हय गय पुर पशु तथा केलि मृग, भागि चले समुदाई ॥१॥
छूटे दौरि सहज सँग लागे, बाँधे चले तुराई।
पिंजरनि पंछी छाँड़ि अन्य सब, पुर तजि चले उड़ाई ॥२॥
पुर बाहर समीप सियबर जहँ, पुरजन रहे जुटाई।
पशु खग मृग तहँ पहुँचि मूर्तिवत, भे चेतना मिटाई ॥३॥
नयनन नीर सकल मोचत जनु, मोम हृदय सब पाई।
दर्शन शीतल जमे, गये अब, विरह अग्नि पिघलाई ॥४॥
छाँड़ि स्वर्ग अपवर्ग सकल सुख, बनि पशु अवध बसाई।
जेहि लगि, सुख स्वरूप सोइ छोड़त, सोचत धैर्य नसाई ॥५॥
नयनन तिन्हन बैठि रघुनन्दन, चन्दन बचन सुनाई।
मैं तुम्हरो तुम्हरेहि सँग रहिबौं, कछु दिन बनहिं बिताई ॥६॥
मूँदे नयन बसे जगबन्दन, स्यन्दन चले दुराई।
खोले पलक झलक नहिं पायेउ, क्रन्दन करत फिराई ॥७॥

[७७]

राम चले मुनि वेश बनाई।
मुक्त बसन भूषन राजोचित, तनु छबि सहज लखाई ॥१॥
मनहुँ मुनिन मन बनि आभूषन, बसे राम तंनु आई।
आवत राम प्रत्यक्ष विलोकन, निज निज तनु लौटाई ॥२॥
छबि समुद्र, राम आवरण, छुटे छटा छिटकाई।
स्त्री पुरुष अचर चर बाँटहिं, दुहुँ दिशि सिय प्रिय भाई ॥३॥

लखि ब्रह्माण्ड अखिल नायक कहँ, अपने वेश बनात।
नर नारायण बने सिसुपा, तरु बट हर हरषात ॥२॥
राम बसें नीचे मेरे हर, प्रेरेउ हिय बैठात।
गुह अनुमानेउ हरहिं सिसुपा, रामहुँ कहेउ सोहात ॥३॥
नरनारायण दै अवसर निशि, पुनि शंभुहिं सकुचात।
राम सुजान जटा हित माँगेउ, बटहिं क्षीर उठि प्रात ॥४॥
बास बास मग बने शंभु बट, चित्रकूट लहरात।
साक्षी ऋषिन सिंसुपा स्थल, अजहुँ युगल दरसात ॥५॥
प्रीति रीति गिरिजापति रघुपति, कहत न मोहिं बनिआत।
हरि पद पय हर जटा जटा हरि, हर बट पय सरसात ॥६॥
नर नारायण निज तप बल दुख, जिव नहिं लखेउ ओरात।
छुये राम पद रज देखेउ जिव, हरिपुर जात बरात ॥७॥

[८३]

जौ मन मल धोवन नहिं जानी।
करनि निषादराज चेतइ अरु, गुरु बसिष्ठ की बानी ॥१॥
जमत जन्म कोटि कालिमा, व्यसन वासना सानी।
रहनि निषादराज धोइ ले, यही जन्म जिय ठानी ॥२॥
हिंसक वृत्ति नृपति निषाद मन, पाप करत नहिं ग्लानी।
निज पुर निकट राम सुधि पायेउ, दिहेउ मूल फल पानी ॥३॥
करि दंडवत विलोकेउ रामहिं, बड़ो भाग्य निज जानी।
धरनि धाम धन रामहिं सौंपेउ, सेवक अपनहिं मानी ॥४॥
केवल इतनहिं राम स्नेह जल, मल अघ सकल धुलानी।
शुद्ध पात्र पाइ लक्ष्मण निशि, तत परमार्थ बखानी ॥५॥
बहु बिधि कर्म धर्म तपचर्या, वर्ष सहस्रन ठानी।
विश्वामित्र स्वच्छ हिय लागन, पात्र बसिष्ठ न मानी ॥६॥
सोइ बसिष्ठ मिल धाइ निषादहिं, सीम स्वच्छता जानी।
सब धर्मन फल राम नेह जल, कहेउ करइ मल हानी ॥७॥

[८४]

जिब हिय जिव गुरु ज्ञान जगाई।
जेहि आचरत भरत सम गुह कहँ, निज हिय राम लगाई ॥१॥
दुख सुख भोग कर्म निज कृत फल, कारन अन्य न भाई।
यह दृढ़ जानि जाहि बिधि होइ सक, सब कर करहु भलाई ॥२॥

मिलन वियोग मित्रता रिपुता, जन्म मृत्यु समुदाई।
स्वर्ग नर्क गति राउ रंक अति, मिथ्या स्वप्नहिं नाँई ॥३॥
जग व्यवहार झूठ जानि जनि, केहु देउ दोष बड़ाई।
मोह निशा सोवत जागइ अब, रवि विवेक उदिताई ॥४॥
पाइ प्रकाश विषय विराग करु, दे भ्रम सकल भगाई।
परमारथ एकइ मन बच क्रम, प्रीति चरन रघुराई ॥५॥

[८५]

उचित न तुलन पात्र हरि चरितन।
प्रतिभा पात्र काण्ड भिन्न अँग, राम चरित पूर्णाङ्ग राम तन ॥१॥
भिन्न भिन्न अंग भिन्न भिन्न रस, बड़ अरु छोट न कोउ एक एकन।
भिन्नास्वादन हित लोचन सिय, मधुप मराल मोर चातक बन ॥२॥
सेवा विविध प्रकार करन हित, तोषन राम भाँति बहु स्वादन।
पात्र प्रत्येक लखिअ तेहि अन्तर, लघुता नहिं उदारता पात्रन ॥३॥
हँसत राम कहुँ निरखि चतुरता, कबहुँक हँसत सरलता रीझन।
भेंटत भरत सरिस निषाद-पति, कपि-पति प्रिय सम भाइ भरत मन॥४॥
हिय अकाश हरि समता सोहत, जहँ बस विविध भक्त मन उडुगन।
दूरि बड़ो लघु निकट छोट बड़, लखत जानि जनि भ्रम पड़ु लड़िकन॥५॥

[८६]

लक्ष्मण कर अमृत उपदेश।
भ्रम भुअंग नहिं डसै सुनै जो, नित सुख करइ प्रवेश ॥१॥
सुख दुख कारण जानि कर्म निज, उपजइ राग न द्वेश।
कर्म करे श्रुति निहित रहित फल, जो सौंपइ विश्वेश ॥२॥
अथवा राम कार्य जानि कर, तजि अहमिति आवेश।
या सब कर्म प्रकृति कृत मानइ, अपनहिं विलग विशेष ॥३॥
अनुभव कर जो जग जामिनि महँ, सत्य नहीं लवलेश।
स्थिति वस्तु व्यक्ति सब सपना, झूठ रहन जग देश ॥४॥
राम ब्रह्म सत्य परमारथ, सेब्य, सुहृद हृदयेश।
जगि विवेक, तजि विषय, राम भजु, जिवहिं लखन सन्देश ॥५॥

[८७]

प्राण राखिबो तुम्हरे हाथ।
दीन वारि हीन मीन जिमि, नृप कह दीनानाथ ॥१॥

नारि कहे प्रिय सुतहिं दिहेउ बन, सुनि ऐसो मम गाथ।
अयश जगत, नशाय स्वर्ग अरु, नरकहुँ ठोंकै माथ ॥२॥
बिगड़ी पितु की पुत्र सम्हारत, तुम समरथ रघुनाथ।
तुम तिहुँ लौटे बनइ सकल विधि, नहिं तो भयउँ अनाथ ॥३॥
सीतल हृदय होइ लखि सिय पर, सिय कि जिअइ बिनु नाथ।
तीनहु लौटे जिअहिं तीन जिन, जिअन दरस तव साथ ॥४॥

[८८]

सुनि सुमंत्रसन पितु के बैन
शिथिल शरीर हृदय पितु दर्शन, जल भर राजिव नैन ॥१॥
लौटन सीय राम समुझायेउ, सिय कह करुणा-ऐन।
किमि सम्भव दिन प्रभा भानु बिनु, शशि बिनु चाँदनि रैन ॥२॥
पियहिं निरुत्तर करि सुमंत्र कहँ, कहेउ सँदेसा दैन।
पिय बिनु मोहिं जग सुखद न कोउ लग, ससुर सासु पितु ऐन ॥३॥
लखनहु कहेउ पिता सन कहनो, ऐसे कछु कटु बैन।
जासु कहन बरजेउ सुमंत्र कहँ, तुरत राम दै सैन ॥४॥
नृप रह केहेउ लखन सीता अरु, रामहिं आवन लैन।
नृप हिय प्रीति लखन सिय मेटेउ, राम प्रेम जेहि पैन ॥५॥

[८९]

रघुबर जानत हौं तुम कौन।
सोइ श्रुति वाक्य सत्य पुनि सोई, राम कहौ तुम जौन ॥१॥
एक मात्र सत्य ज्ञानिन तुम, भक्तन आश्रय भौन।
सत्य यज्ञ तव विरहागिनि परि, पुरजन होइहहिं हौन ॥२॥
रघुकुल तथा अयोध्या वासिन, एक अवलम्बन सौन।
यह विचारि लौटहु पुर रघुपति, आरत आरति दौन ॥३॥
पुनि पद गहि समँत्र बिलखानेउ, जैसे बलि पशु छौन।
जासु श्वास श्रुति सो समर्थ हरि, भयो प्रेम वश मौन ॥४॥

[९०]

जीवन सचिव जतन हरि कीन।
पितु सँदेश कहनो आज्ञा दै, मृत्यु तासु हरि लीन ॥१॥

निज स्वरूप समुझायेउ बाँधन, देश काल जेहि हीन।
ज्ञान वारि सींचेउ जनु मरते, दरस वारि बिनु मीन ॥२॥
बहुरि ताहि सेवा समुझायेउ, निज मन पोषन पीन।
सब बिधि नृपति सम्हारेउ होहिं न, मम वियोग जेहि दीन ॥३॥
आज्ञा जानि सुसाहिव सेवा, चलेउ सचिव बल छीन।
रथ जोरे हय चलहिं न मारग, राम दरस मन लीन ॥४॥

[६१]

रामहिं केवट दीन दिखाई।
गंगा पार नाव पर नंगा, कटि उरु वस्त्र ढकाई ॥१॥
उद्यम शिथिल बैठ मन मारे, मानउ विधिहि मनाई।
आवइ कोइ उतारि द्रब्य लहि, लड़िकहिं लेउँ जिआई ॥२॥
लखि करुणामय करुणा उमड़ेउ, गंगा तट रह धाई।
सचिव विषाद निषाद बैठ रह, सीय लखन पछिआई ॥३॥
पिय हिय की सिय जाननि हारी, मरम तुरत ही पाई।
बेगि बैठि बुद्धि केवट के, निज मति दिहेउ सुहाई ॥४॥
माँगेउ राम नाव केवट सन, सो बैठेउ अड़िआई।
कहइ तुम्हार मरम मैं जानउँ, पद रज शिला उड़ाई ॥५॥
उड़इ नाव मम होइ मुनि पतिनी, किमि पुनि करउँ कमाई।
निश्चय पार होन जौ चाहउ, तौ पद लेहु धुलाई ॥६॥

[६२]

लछिमन केवट बचन बिचारेउ।
विधि हरि शंभु मर्म नहिं जानहिं, केवट ताहि निहारेउ ॥१॥
राम मर्म एक जान जानकी, केवट मति कि सम्हारेउ।
गौतम तिय गति सुरति सोई पद, परसन हाथ पछारेउ ॥२॥
सेवा चरन लालसउ सिय को, जेहि कह चरन पखारेउ।
यह जिय जानि सिया जब छोड़ेउ, लखन प्रभाव प्रसारेउ ॥३॥
तब केवट कह धोय पाँय प्रभु, चाहौं पार उतारेउ।
उतरि पार यह मोर बीनती, मोहिं कछु देन बिसारेउ ॥४॥
दशरथ शपथ बिना पग धोये, लछिमन के शर मारेउ।
नाथ न नाव चढ़इबइ तुम कहँ, यह है टेक हमारेउ ॥५॥

[६३]

मूरख केवट की रस बानी।

करुणाऐन राम बिहँसे हित, सीय लखन कहँ जानी ॥१॥
पद जयमाल काल नहिं परसेउ, ऋषि तिय गति उर आनी।
पद रज धोइ नाव बैठावन, सिय मति रघुपति मानी ॥२॥
संकट अर्थ जो डरत रहेउ, नौका आकाश उड़ानी।
सो कस उतराई नहिं चाहै, जौ पद पाव धुलानी ॥३॥
शपथ खाइ डर मृत्यु न राखइ, राखइ अपनी कानी।
यह स्वभाव लक्ष्मण निज प्रेरेउ, राम हृदय अनुमानी ॥४॥
क्रमशः सीय लखन मति ही से, केवट वाक्यहिं सानी।
जानि सोई क्रम चितयेहु तिन्ह कहँ, राम मधुर मुसकानी ॥५॥
बहुरि राम जब मणि मुँदरी, उतराई देनी ठानी।
धनी लखन प्रेरेउ न लेन तेहि, यहि विधि भक्ति दिलानी ॥६॥
करुणामय प्रेरित सिय लछिमन, प्रेरेउ केवट बानी।
यहि प्रकार सियबर की करुणा, केवट बनी कहानी ॥७॥

[६४]

राघव केवट की रुचि राखी।

पितु सौगन्द अटपटी बानी, सदय हृदय नहिं माखी ॥१॥
ब्रह्म लोक एकै डग पहुँचेउ, गङ्ग उपस्थित साखी।
सोइ लघु सरि उतरन हित सोइ प्रभु, नौका माँगन भाषी ॥२॥
लौ प्रज्वलित लाल लछिमन शर, लाल तरेरे आँखी।
बिच नीलिमा ललित पद परसन, केवट मन भेउ पाँखी ॥३॥
हर हिय कर सेवन जेहि सेवत, स्मशान तन राखी।
जाकर ध्यान हृदय धारन हित, जतन करहिं मुनि लाखी ॥
सफल योग बल जनक सुनयना, जेहि रस कहँ सक चाखी।
सोइ पद धोवन केवट चाखत, मधु परिजन मिलि माखी ॥४॥
रुचि लखि पग पखरावन आतुर, स्वयं राम अभिलाषी।
आख्याइका भयो यह रघुबर, करुणा को परिभाषी ॥५॥

[६५]

सिय की महिमा की नहिं ओर।

कहेउ गंग जग सब कोइ जानइ, मैं कह थोरइ थोर ॥१॥

सुरसरि कहेउ होत लोकपति, ताकैं जाकी ओर।
सत्य सो साखी कपि सुकंठ भेउ, नृपति विपति निशि भोर ।।२।।
कहेउ देव सरि सीतहिं सेवत, सकल सिद्धि कर जोर।
सत्य बरात अवध पति यहि तें, अति सुख भयेउ विभोर ।।३।।
गिद्ध गयो साकेत विभीषन, नृप किय अवध किशोर।
जासु कृपा मारीच राम मुख, लख खुद पद तल कोर[1] ।।४।।
दिहेउ चीन्ह मिस चीर कपिन, हरि चिट्ठी तिनहिं निहोर।
जेहि लखि अपनाये सीतापति, कपि कुल कहँ बरजोर ।।५।।
पूर्व कि हनूमान करते रण, यातुधान अति घोर।
लखेउ युक्ति करि हनूमान तन, भयो अजेय कठोर ।।६।।
राम कहेउ शिव सीतहिं सेवहु, जौ चह दर्शन मोर।
सिय महिमा असीम ब्रह्म जेहि, इच्छा मुट्ठी छोर ।।७।।

[९६]

धनि धनि निषाद पति भूरि भाग। सिय लखन राम पद धूरि लाग।।१।।
एकहिं पद रज जेहि एक लाग। पिय लोक गई तिय लहि सुहाग।
तीनहुँ पद रज अनेक लाग। तेहि त्रिभुवनपति रति कस न जाग ।।२।।
शिव मुनि गन जेहि हिय बसन माँग। करि योग यग्य जप तप विराग।
तिहुँ मूरति आगे आंखि लाग। तेहि गुह कहँ विश्व न कछू खाँग ।।३।।
तजि गृह कुटुम्ब जंजाल राग। पछिआनेउ हरि जिमि मणिहिं नाग।
बरबस लौटेउ गृह रहेउ त्याग। हित मिलन प्रतीक्षा नित्य जाग ।।४।।
प्रिय दरस छुटे जो दृश्य त्याग। रखि श्रवन वयन अनकन सुराग।
रोकेउ विमान हरि जाहि लाग। हिय लाइ बुझायेउ विरह आग ।।५।।

[९७]

विपिन चले त्रिभुवन सिरताज।
सँग जग जननि जगत गुरु दोऊ, सजि तपसी मुनि साज ।।१।।
जिव उद्धारन दुष्ट सँहारन, दीन सम्हारन काज।
श्रुति-पथ पालन कुपथहिं टालन, डालन-नीवँ सुराज ।।२।।
जन दुख मोचन वारि विलोचन, विलँब संकोचन लाज।
हृदय लगावन ताप मिटावन, दरस खिलावन नाज ।।३।।

---

१. कोर=प्रान्त, भाग

जाहू मारत ताहू तारत, डारत मुक्त समाज।
सहत दुसह दुख हित जन के सुख, मुख आनन्द विराज ॥४॥
करत युक्ति निज दरस भुक्ति हिठ, सागर जिव रघुराज।
अभिनय क्रोध बोध सागर, निज देत गरीब निवाज ॥५॥

[६८]

मनुआँ राम रतन ले मोल।
जगत जननि चल वाँय जगत गुरु, दाँय बजावत ढोल ॥१॥
रतन जतन हिय हाथ गहन हित, प्रथम गहे को खोल।
गिरत अहंता ममता तेहि लखि, मन होइ जात अलोल ॥२॥
निज इच्छा जल सरिता रघुवर, इच्छा सिंधुहिं घोल।
हरि इच्छा मोती चुगि हंसा, जिव नित करइ कलोल ॥३॥
जड़ चेतन कर कठिन ग्रन्थि यहि, रतन अँजोरे खोल।
रतन प्रकाश अँधेर अविद्या, तुरत हृदयँ ते डोल ॥४॥
सञ्चित प्रखर रत्न तेज जर, हो क्रियमाण अडोल।
प्रारब्धउ बन्धन प्रभाव तेहि, बाँध न जिव होइ झोल ॥५॥
लखन विराग भक्ति सिय संपुट, प्रकटत रतन अमोल।
लहन ताहि तुरतहिं उपाय करु, जिव तजि टालमटोल ॥६॥
प्राकृत वस्तु धर्म कर्म मिलि, जुटहिं रत्न नहिं तोल।
"मैं तुम्हरो रघुनाथ आज तें" रतन बिकत यहि बोल ॥७॥

[६९]

(मुनि रघुबीर परसपर नवहीं। बचन अगोचर सुखु अनुभवहीं॥)

भगत और भगवान लरे।
त्रेता काल प्रयाग अखाड़ा, दूनउँ बदि उतरे ॥१॥
दोउ रियाज़ चढ़े निज साधन, बुद्धी पेंच भरे।
एक दूजेहिं कहँ ऊँच उछालत, चाहत रहन तरे ॥२॥
भरद्वाज रघुनन्दन दोऊ, प्रेम स्वभाव खरे।
दोऊ दक्ष लक्ष निज जानत, करि बल लिपटि परे ॥३॥
एक दूजेहिं पद पकरन चाहत, आपन रखत परे।
पद उठाइ एक शीश धरन चह, एक शिर चरन धरे ॥४॥
कबहूँ कर्म भूमि लरते कहुँ, बचन अकाश लरे।
कबहुँ अगोचर इन्द्रिन होइ दोउ, मन मल-युद्धि करे ॥५॥

नमनि प्रशंसनि पलटि पैंतरनि, लखत भाव निखरे।
आत्म विभोर प्रयाग निवासी, सुनै सो भव उबरे ॥६॥
शिष्टाचार बहाना दोऊ, भरि निज शक्ति लरे।
भक्त और भगवंत बराबर, जोड़ी हैं उतरे ॥७॥

[१००]

नाथ कहिय हम केहि मग जाँव।
भरद्वाज सों अति विनीत हरि, पूंछत करि निज दाँव ॥१॥
मुनि हँसि कहेउ सुगम मग तुम कहँ, दहिन जाव या बाँव।
त्रिभुवनपति कहँ सुविधा चहुँ दिशि, सब उनहीं के गाँव ॥२॥
दिये संग मुनि तबहिं चारि बटु, प्रकट न जिनके नाँव।
जे बहु जन्म सुकृति अति कीन्हे, हरि सँग पावन ठाँव ॥३॥
तिनहुँ करन कृतारथ पूंछेउ, राम कौन मग जाँव।
नाहित पंथ दिखावन ही सँग, रहेउ निषादन राँव ॥४॥
दरस समीप संग सुख चाहन, जनमन राखेउ चाँव।
लौटे आज्ञा राम शीश धरि, हिय धरि उनके पाँव ॥५॥
जन के हिय जनमन रुचि की सुधि, राम हृदय नित ठाँव।
सुधि लहि मन विश्वास एक दिन, हमरउ आइअ नाँव ॥६॥

[१०१]

अनुपम फल दरसन रघुराई।
सप्तावरण भेदि जीव कहँ, निज स्वरूप दरसाई ॥१॥
जन्मन के बासना बीज वसि, मन महँ रहे छिपाई।
अवसर पाइ प्रभाव दिखावत, भरतहि हरिन बनाई ॥२॥
विबिध वासना रूप अनेकन, एक मिटइ सौ आई।
जिव प्रकृतिस्थ तिनहिं भोगन हित, अगनित योनिन जाई ॥३॥
राम रूप सौन्दर्य अनूपम, आनँद की अधिकाई।
निरस होत वासना बीज सब, नहिं अँकुरहिं जल पाई ॥४॥
नहिं जग रवि प्रकाश गम जहँ पर, योग ज्योति धुमिलाई।
ज्ञान दीप पर्याप्त प्रकाश न, रवि कुल रवि छवि छाई ॥५॥
जिव अनाथ दृढ़ जानि दरस फल, रमानाथ रहु धाई।
करुणानिधि कृपालु पुरिहँइ रुचि, निज करुणा बरियाई ॥६॥

मन बन मग चल राम निरन्तर, लखइ जो ध्यान लगाई।
त्रेता नहिं, कलि ध्यानावस्था, तुलसी उनहिं भिटाई ॥७॥

[१०२]

सखि सुधि नहिं कहि जात बयनवा।
सुन्दरता शिकार कर जिव मृग, नेज़ा नयन पयनवा ॥१॥
बन मग विहरत जिव जे नियरत, घायल सकल भयनवा।
ब्रह्म ज्योति जनु सुलभ सलभ होइ, मग जिव निकर गयनवा ॥२॥
काल सँघारे होइ अचेत जिव, कर निश्चिन्त शयनवा।
इन्ह मारे रह मरेहुँ चेतना, इन्ह कर दिवस रयनवा ॥३॥
देह गेह जग सुधि बिसारि मन, इन्ह सँग करत पयनवा।
चले छुड़ावत भव बन्धन जिव, अपनी भक्ति दयनवा ॥४॥

[१०३]

गोसाईं तव राम प्रेम अति धन्य।
गुप्त प्रेम तापस प्रसंग लिखि, पवनज कीन्हेउ नग्न्य ॥१॥
सीमा देश काल उल्लंघन, किय प्रसंग हिय जन्य।
हिय गृह बैठि मिलेउ तुलसी कलि, जाते राम अरन्य ॥२॥
जा कहँ मिलन हेतु ऋषि मुनि गन, करत उपाय नगन्य।
रंक सो ध्येय परस हित पारस, तुलसी भक्त अनन्य ॥३॥
राम लखन हिय ललकि लगावत, सिय भेउ शिशु निज जन्य।
शरन पवित्र प्रेम शरनागत, देखउ भये शरन्य ॥४॥
राम दरस भूखो अति तुलसी, जब से किहेउ वरन्य।
सुधा सुनाज लखन सिय सह लहि, अग्र सुभागन गन्य ॥५॥
बँधे विषय जग देश देह जड़, रहेउँ काल को हन्य।
जन तें अधिक राम प्रेम चखि, सुधा भयउँ चैतन्य ॥६॥
तुलसी तुम पारस तव प्रीतिहु, छुवै जो हिय कोइ अन्य।
प्रेम शून्य लौह हिय हू हो, सिय पिय प्रेम हिरन्य ॥७॥

[१०४]

बन मग राम तुलसी मिलत।
राम त्रेता कलिहिं तुलसी, प्रेम संगत सिलत ॥१॥
एक दूजेहिं गाढ़ गहि भुज, तनिक नाहीं हिलत।
दो भुजग जनु पाइ निज मणि, एक दूजेहिं लिलत ॥२॥

देह सर पंकज रोमावलि, दोउ पुलकित खिलत।
एक दूजेहिं हिय गगन जनु, रवि उदित होइ पिलत ॥३॥
रंक होइ पारस बिलोकत, इक अमृत लहि जिलत।
दोउ प्रीति सुगंध हिय धुस, वासना मल छिलत ॥४॥

[१०५]

राम क्यों बटोही इष्ट जानै न जहनवा।
कहिये गोसाईं नहिं करिये बहनवा ॥
कौन चिह्न देखि करि किह्यो पहिचनवा।
कौन गुन राम हित पारस भयनवा ॥१॥
जन्म भूमि पास ही ते बन को गवनवा।
कीन्हेउ राम लोगन सों सुन बाल-पनवा ॥
बन्यो सम्बन्ध सोइ इष्ट कै गहनवा।
डूबि कै प्रसंग भूल्यों ताहि को लिखनवा ॥२॥
देखत स्वरूप मोर कर्षि गेउ परनवा।
हर्षि चित्त वित्त तेहि किह्यो पहिचनवा ॥
राम के बटोही रूप नहिं आवरनवा।
पहरा न बहु पट तन न गहनवा ॥३॥
एक एक अंग छबि खुलि मैदनवा।
छोरि सुधि मन बुधि किह्यो मो नगनवा ॥
एक रूप दोउ छुटे निज आवरनवा।
तेहि महा भाव सुख सके को बरनवा ॥४॥
राम न छेदाम पास कीन्हेउ सो बरनवा।
मोहिं निष्काम जानि राम जी धरनवा ॥
रंक भये स्वामि मोहिं पारस करनवा।
रूप सोइ सुधा क्षुधा छोड़ै न परनवा ॥५॥

[१०६]

पवनज परत न अर्थ लखायो।
तापस कथा प्रत्येक शब्द, समुझाइअ अपनहिं गायो ॥१॥
राम क़था के रसिक शिरोमणि, सद्गुन बर सिय पायो।
अलखित गति तापस प्रसंग की, और को सक समुझायो ॥२॥
यमुना पार दरस रघुनन्दन, जन्म भूमि जन धायो।
भाव वेश तुलसी "तेहि अवसर", पहुँचेउ छबि ललचायो ॥३॥

विरह अग्नि राम के तापित, "तापस" ताहि कहायो।
सर्व श्रेष्ट हरि विरह तपस्या, ताते "एक" गिनायो ॥४॥
लीला नित्य राम कर तुलसिहि, सत्यहि परेउ दिखायो।
तुलसी हिय की नहीं कल्पना, "आवा" शब्द बतायो ॥५॥
कीट भृङ्ग न्याय ते हरि जन, नित हरि ध्यान समायो।
भाव होत राम सम "लघु बय", "तेज पुंज" व "सुहायो" ॥६॥
मन वुधि परे दशा तुलसी की, "कवि-अलखित गति" गायो।
"मन क्रम बचन राम अनुरागी", जानउँ सोइ जनायो ॥७॥
"इष्ट देव" तब राम बटोही, चित्रकूट दरसायो।
मूरति हिय पहिलेहिं तें राखी, "पहिचानेउ" लखि भायो ॥८॥
सीय विह्वलता अति लाघवता, धनुष उठाइ चढ़ायो।
छूते कोउ न उठावत देखेउ, टूटेहिं सबहिं दिखायो ॥९॥
जन तुलसी उठाइ भूमि तें, हिय अति वेग लगायो।
हौं हुँ उठावत लखेउँ न सियबर, शब्द न लिखेउँ उठायो ॥१०॥
रामानन्दी साधू वैष्णव, वैरागी कहिलायो।
"वेष विरागी" कहि आगन्तुक, सम्प्रदाय बतलायो ॥११॥
जगदाचार्य धनी जेहि किरिपा, "पारस" भयो सुहायो।
लछिमन पग किमि परै न तुलसी, सोउ न कस लिपटायो ॥१२॥
जेहि जेहि भाव राम सीता कहँ, भजत भक्त लौ लायो।
जन को भाव सोइ जोगवत यहि, सिय "शिशु" तुलसि लखायो ॥१३॥
"प्रेम" स्वरूप गोसाईं रघुवर, "परमारथ" बनि आयो।
मिलन स्नेह हर्ष युक्त दोउ, देखत हिय न अघायो ॥१४॥
प्रेम मूर्ति तुलसीहिं "दंडवत", किय निषाद को रायो।
"राम सनेही" गुह कहँ भेंटेउ, तुलसी हर्ष समायो ॥१५॥
राम छाँड़ि अनि कछु नहिं चाहै, सो "पारस" रघुरायो।
जन्म को "भूखा" दरस अन्न भेउ, तुलसी "मुदित" लहायो ॥१६॥

[१०७]

रघुवर पग न आगे परत।
बढ़त आगे धमे बल थक, मनहुँ प्रेमहिं लरत ॥१॥
उतरि तब यमुना नहाने, प्रीति तेहि जनु डरत।
मिलन किय संकेत तीनहुँ, नमि पुनः अवतरत ॥२॥

निकटवासी नारि नर सब, धाइ दर्शन करत।
मनहुँ ग्रीषम पात सूखे, उड़े वायू झरत ॥३॥
मनहुँ निकर चकोर लखि शशि, तीन धीर न धरत।
दरस अनुपम दाह जनमन, लखत तिनके हरत ॥४॥
रूप अमृत यही भूखो, पान महँ होइ निरत।
तुलसि करुणासिंधु भेंटत, राम अजहुँ न टरत ॥५॥

[१०८]

दशरथ सुवन लखन हुलास।
तनु करिन जनु जरत ग्रामन, लखेउ वारि सुपास ॥१॥
तन भवन-तजि चले अहिगन, चक्षु लखि मणि पास।
चक्षु जल मन मीन त्यागेउ, दरस वारि विलास ॥२॥
युवा बालक बूढ़ दौढ़े, रंक लखि धन रास।
शलभ जीवन सुलभ पायो, आज परम प्रकास ॥३॥
लहेउ मनहुँ चकोर योगिन, शशि हृदय आकास।
राम पद रज स्वाति मेटेउ, चातकन जन प्यास ॥४॥
जन चकोरन देखि धावत, नहीं ताँता नास।
यमुन तीर अकास रुकि शशि, राम पुरयेउ आस ॥५॥

[१०९]

मिलि रघुवीर न तोड़उ आस।
भजत भेउँ मैं वर्ण तुम्हरेहिं, मरउँ तुम्हरेहिं प्यास ॥१॥
तुम करुणाकर सकल हमारे, तुम सुप्रान मैं लास।
मेरो जल जानिये निरन्तर, बहत बिरह तव आँस ॥२॥
तुम जो कहउ प्रिय मोहिं दया करि, बाम प्राण दिय वास।
मोहिं विराट से काम नहीं कछु, द्विभुज चेरि मैं खास ॥३॥
तीनहुँ नहिं तौ एकइ रहिये, आज से हमरे पास।
नाहित यमुना प्रान त्यागिहइ, मानेउ जनि यह हाँस ॥४॥
नमन करत पुनि राम लखन सिय, कहेउ करउ विश्वास।
द्वापर आइ करब नित लीला, करि तव गोद निवास ॥५॥

[११०]

धनि धनि मगवासी नर नारी।
कृपासिंधु कृतकृत्य दीन किय, अपनी विरद विचारी ॥१॥

कबहुँ ध्यान आवत जोगिन जो, मानस शंभु विहारी।
सो स्वरूप नयनन देखन भे, मगवासी अधिकारी ॥२॥
मग महँ कहत कल्पतरु जामेउ, डरौं असंगत भारी।
नहिं समर्थ दे दरस राम सिय, देइ तुच्छ फल चारी ॥३॥
कहे पुण्य फल दोष देखियत, सो कर स्वर्ग सुखारी।
योग ज्ञान देत ब्रह्म सुख, तुलै न इन्ह दीदारी ॥४॥
त्रिभुवन-दाता राह लुटावत, निज दर्शन छवि न्यारी।
कृपा अहेतुक राम बटोही, भयेउँ स्वरूप पुजारी ॥५॥

[१११]

सखि सक नोके निरखि न नैन।
सुन्दरता तमाल नव निकसेउ, दो कमाल के कैन ॥१॥
ग्रन्थिन जटा सुमन सित कैधों, घन उडुगन उदयैन।
नीचे जटा छटा मुख कै शशि, शरद पूर्णमा रैन ॥२॥
दोउ दिशि दामिनि दमकत कैधों, दो जन कोउ अनि हैन।
तनिक बिलोकत भा अकाम हिय, छाँड़ि भगेउ रति मैन ॥३॥
हम हमार बिसरेउ हिय निरखेउ, जब उन नयनन पैन।
हिय महँ एकइ वह समाइगे, बनिगे चित के चैन ॥४॥
जीति हृदय करि प्रीति पागली, मोहिं कछु कहेउ न बैन।
मन बुधि चित अहमिति ऊपर नित, सनकारेउ निज शैन ॥५॥

[११२]

गुन यमुना मन राम सराहत।
मुख ते लछिमन सीय सुनावत, तबहुँ न पावत राहत ॥१॥
रवि तनया को विरह वेदना, रहि रहि हिरदय दाहत।
पुनि प्रनाम मिस दरस प्रेमिका, किय शीतलता चाहत ॥२॥
विरह अग्नि हिय शान्ति पिघलि सरि, पुलिन धैर्य चलि ढाहत।
दरस पुनः पद रोपि राम जनु, बहत प्रेम जल थाहत ॥३॥
मिलन बचन दिय सह सिय लछिमन, सुनि वियोग मम डाहत।
राम दरस संजीवनि मोहिं दो, पीर वियोग कराहत ॥४॥

[११३]

रघुबर रवि तनया गुन गावत।
हिय की प्रीति हिये रहि जावत, कुछ बैनन बतलावत ॥१॥

यदपि लखन सिय अधिकहिं बूझत, राम जौन समुझावत।
गूंगे को गुड़ स्वाद बतावन, सम न राम कहि आवत ॥२॥
राम ध्यान मग्न लछिमन जो, शंभु न शीश नवावत।
राम सीय संग रामेश्वर, जब पुष्पक नियरावत ॥३॥
राम प्रेम मय लखि रवितनया, सहज प्रीति मन भावत।
पलटि प्रनाम करत तेहि लछिमन, हर्ष न हृदय अमावत ॥४॥
राम प्रीति की रीति अनोखी, लखि चखि पुनि ललचावत।
रस अनुपम बरनन बाहर मोहिं, तेहि लिखि पद दोहरावत ॥५॥

[११४]

अनुपम प्रीति दोउ बन जात।
दोउ भ्रमर आसक्त कमल दोउ, एक दूजेहिं की बात ॥१॥
राम भ्रमर मुखारविन्द सिय, फिरि फिरि निरखत गात।
सीय भ्रमर रघुवर चरणाम्बुज, प्रति पग लखति उठात ॥२॥
अनुभव करत पीर एक दूजेहिं, अपनो रहत भुलात।
रहत प्रफुल्लित लखि एक एकहिं, जैसे बनज प्रभात ॥३॥
यद्यपि दोउ कोमल विशेष, उपमा से कमल लजात।
गात न झुलसत तात बात लगि, लक्षहिं लखि हुलसात ॥४॥
पुण्यवान कोउ द्रुम डारी झुकि, राम छाँह ठहरात।
नाँह काँध बाँह सीता धरि, बिलमनि अनि छबि मात ॥५॥

[११५]

चल डर सियबर सिय सुकुमारी।
धीरे पग डग छोटे डारें, अनुहरि अवनि कुमारी ॥१॥
दाहिन वाग राम पद चिह्न संग, सिय पग धरति सम्हारी।
वाम दहिन सँग दहिन वाम सँग, उत्तर उचित विचारी ॥२॥
दोउ के दोउ पगन्ह चिह्न शोभा, सँग उपजी छवि न्यारी।
जोगवन जाहि वायु रासित चल, बर्षइ घन न बिगारी ॥३॥
सिय पग हित कोमल बराइ भुंइ, कठिन चलहिं त्रिशिरारी।
निज पग सेवत नेम राम लखि, सिय निज नेम विसारी ॥४॥
पिय पग रेखन विच डरि पग धरि, पति निश्चिन्त सँवारी।
उन्ह पद अंक लखन दाहिन कै, चल रुचि राखि हमारी ॥५॥

[११६]

श्रम कन सजत श्याम तनु भाल ।

नहिं साकेत सो पुष्प वाटिका, लखि सिय भई बिहाल ॥१॥
निरखन पुनि लालसा रही मन, बन मग किहेउ खियाल ।
श्रम कन निरखि कहाँ श्रम सिय कह, पिय जनि करहु मलाल ॥२॥
श्याम शरीर लसत बन मारग, श्रम सीकर सित जाल ।
जोइ निरखइ फँसि मन पंछी सोइ, छूटइ भव श्रम साल ॥३॥
मनहुँ मधुर मूरति नीलम पर, जित तित सित मणि माल ।
झलकत आतम स्वरूप जीव जेहि, निरखि सुमिरि सोइ हाल ॥४॥
[illegible] सुघनी श्वेत सुमनन की, चढ़ि जनु विटप तमाल ।
शरणागत को भाव दिखावत, गावत राग ध्रमाल ॥५॥
तारागन जनु उदित ब्योम भेउ, रंजित रजनि रसाल ।
अथवा जनन बिठाइ ब्रह्म भेउ, शोभित हृदय विशाल ॥६॥

[११७]

बन मग सीय थकित जब होवत ।

करुणा निधि बुधि लहि सुधि सिय की,
बटु तर बिलमि समय कछु खोवत ॥१॥
शय्या तुरत बनावन भावन,
किसलय कुसुम लखन लखि ढोवत ।
सीता लखन थकान राम लै,
सिय उछंग निज शिर धरि सोवत ॥२॥
सीता शीश सेव लछिमन पद,
छवि अहीर पथिकन गो नोवत ।
तिन्ह छिपि क्षीर सिंधु वासी हरि,
लच्छि शेष एकटक होइ जोवत ॥३॥
नैनन्हि इन्हइ सदइ राखन हित,
पूर्व दृश्य दृग अश्रुहिं धोवत ।
पुनि उठि जात बिलोकि बिकल सब,
बिटिया बिदा होत सम रोवत ॥४॥
समुझि विवशता धरि धीरज मन,
मूरति मधुर हृदय महँ गोवत ।
ब्रह्म सुखहिं अनुभवहिं चक्षु चखि,
छबि मिष्ठान प्रीति रस मोवत ॥५॥

[११८]

अवसर आजु लड़े दोउ नयन।
एक एक देख अन्य वह देखत, लज्जा लहे न चयन ॥१॥
दूनहुँ प्रीति स्वरूप समाने, भये मूर्ति विनु बयन।
राम हृदय जानकी विराजति, सिय उर सियबर शयन ॥२॥
दर्शन चखत चक्षु भूलेउ चित, को हम अपना हयन।
सिय कहुँ राम होत कहुँ सीता, रामहुँ ऐसेहिं भयन ॥३॥
प्रीति रीति बासना रहित दोउ, लेश गन्ध नहिं मयन।
यही सही सुख अंश लेश लहि, मगन शयन नार अयन ॥४॥
धन्य भाग्य चित्र तेहि अवसर, विषय चित्त होइ गयन।
सिया पिया मम हिया मिलन यह, बनी रहै दिन रयन ॥५॥

[११९]

धन्य भूमि जहँ रघुबर पगु धर।
धन्य देश ग्राम बन गिरिवर, जिन्ह मज्जेउ सो धन्य सरितवर ॥१॥
जे देखे जिन्ह देखे रघुबर, धन्य विहंग मृग ते नारी नर।
जिन्ह तरु तर विश्राम राम कर, बैकुँठउ न जुटत तिन्ह पटतर ॥२॥
गिरि बन ग्राम भये अति सुन्दर, प्रकृति किहेउ जनु जानि ब्रह्मवर।
पत्थर पिघले पाइ भूमि घर, चुम्बत चरन राम तेहि अवसर ॥३॥
छाया करत चलत घन ऊपर, कोमल भूमि होत जहँ पग पर।
वायु सुगन्धित शीत मन्द तर, चलत लखत हर्षित विधि हरि हर ॥४॥
मन बिछाइ हिय प्रेम सेज तर, तोसक मृदुल प्रपत्ति साजि कर।
सह सिय लखन बिठाइ सियावर, सेवा करत सवन दृग जल ढर॥५॥

[१२०]

हिय प्रिय पथिक सबइ किय बास।
पायो भाव लखन सिय सियवर, चित चितये अनयास ॥१॥
लछिमन भाव जाहिं संग लागे, रामहिं लखन हुलास।
दरस लालसा बँधेउ डोर जनु, दर्शन राम विलास ॥२॥
सीता भाव लाइ लोचन मग, हृदय एकान्त सुपास।
तन मन परे राम सों रम ते, चित वाञ्छित रचि रास ॥३॥
राम भाव उर करुणा धारे, प्रिय श्रम भये उदास।
बट के छाँह बिछाइ लाइ जल, विनवहिं करहु निवास ॥४॥

लखन भाव फणि मणि लखि धायेउ, नेह न भेउ हिय ह्रास।
हृदय राम-ह्रद प्रान मीन सिय, राम भाव श्रम नास ॥५॥

[१२१]

बटोही राम प्रान कर चोर।

राज बसन भूषन मनि पहिने, रह स्वरूप चित छोर।
उनके त्यागे स्वाभाविक छबि, प्रानहिं लेत निचोर ॥१॥
सब के प्रान लिये जिव लोटत, इन लिय नहीं बहोर।
जैसे बिन्दु समात सिन्धु जल, कोउ न सकै ढँढोर ॥२॥
सबके कछुक लेत है बाढ़त, त्यागत होत है थोर।
दोहूँ दशा रहत ये एक रस, जिमि समुद्र को छोर ॥३॥
देवराज राम छोरन बलि, बढ़ जिमि अदिति किशोर।
माया ते छोरन जिव छबि प्रभु, बढ़ेउ बिपिन बेजोर ॥४॥
जेहि शरीर श्यामता लहेउ घन, देखत नाचत मोर।
राकाशशि छबि अंश जासु मुख, निरखत निकर चकोर ॥५॥
सकल विश्व छबि कर शरीर जेहि, चिन्मय एक बटोर।
लखि जिव मोर चकोर शरभ तेहि, शरभँग शबरि अँजोर ॥६॥
सीय लखन अँग दुति दामिनि सों, दमकत दूनउ ओर।
मनहुँ लखावत राम नील मणि, चल जिव करन निहोर ॥७॥
श्याम शरीरहु दामिनि दमकत, हँसत कपोल सिकोर।
चितवनि चोरि चित्त जीव ले, सनकादिनि दृग कोर ॥८॥

[१२२]

त्रिपथ लखि सियपति एक भये।

कर्म ज्ञान उपासना मिलि, भक्ति रंग रये ॥१॥
राम रवि लखि त्यागि तम भ्रम, सत स्वरूप लये।
तीन मारग लहन लक्ष्यहिं, त्यागि भेद दये ॥२॥
जन उपासकं संग लागे, जात प्रभु चितये।
ज्ञानि जन सोइ राम हिय लखि, भये राम मये ॥३॥
कर्म काण्डी • छाँह बट तर, डासि पात . नये।
लाइ जल विश्राम विनवत, जाब निशि बितये ॥४॥
कर्म ज्ञान उपासना भे, तू न मन बुझये।
भक्ति बिनु केहु साधना नहिं, कबहुँ हरि रिझये ॥५॥

[१२३]

सिय सँग राम लखत खग मृग बन ।
सकल विश्व सौन्दर्य समिटि जिन, छबि सुमेर कर होत एक कन॥१॥
राम नयन चकोर सीता शशि, सीता चातक राम स्वाति घन ।
कबहूँ नहिं अघाइँ दोउ देखे, छबि लावण्य अंग एकउ तन ॥२॥
तदपि सराहत चलत सुन्दरता, बिटप बेलि मृग बोल विहँग गन ।
तारन तिनहिं निहारत तिनहीं, चकित मनहुँ साँचुइ प्राकृत जन ॥३॥
जिनहिं राम सिय कोउ निहारे, भये मुक्त छूटे भव बन्धन ।
जे देखे प्रिय पथिक मनोहर, बसे रामपुर संग जीवन-धन ॥४॥
अजहुँ जिनहिं उर मूरति प्यारी, बसति सुपथिक राम सिय लछिमन ।
जानिअ तिन नित बसत राम सँग, प्रकृति जगत नहिं रहत एक छन ।५।

[१२४]

किमि भे लखन धनी विख्यात ।
किहेउ यज्ञ तप तीरथ व्रत कोइ, नहिं कोइ दान सुनात ॥१॥
सकल यज्ञ जप श्रेष्ट कहावत, नाम न राम सोहात ।
लिय प्रसंग वश सोउ बारेक जिमि, रावण कहेउ कोहात ॥२॥
देव महीसुर नहिं आराधेउ, पितहिं कहेउ कटु बात ।
किमि बनि धनी गरीब पुण्य दै, राम जोड़ावत नात ॥३॥
होइ निशङ्क पुण्य निज बाँटत, सो नहिं कबहुँ ओरात ।
राज प्रभाव शिव कहेउ राम सिय, युगल चरन जलजात ॥४॥
किये कठिन साधन ऋषि गौतम, ब्रह्मलोक जेहि जात ।
पापी तीय सिधारेउ तहँ ही, रज कन एक छुवात ॥५॥
धोवत चरन परसि रज केवट, पित्तर स्वर्ग बसात ।
पुण्य अनन्त लखन जिन ऊपर, पद रज भेउ बरसात ॥६॥
राम सीय बन मारग चलते, लखन तिनहिं पछिआत ।
रज पद युगल लखन तन लागेउ, मम मन तिनहुँ लगात ॥७॥
("लाल लाड़िले लखन हित हौ जन के ।....धनी धन तुलसी से निर्धन के ॥" विनय से सम्बन्धित)

[१२५]

रुकि गये राम छाँह बट तरु तर ।
ग्रसित तीन गुन जिव आकर्षन, मानहुँ ब्रह्म स्वरूप तीन धर ॥१॥

सीता श्वेत ज्योति तम नासति, लखन अरुण रज गुनहिं नाश कर ।
राम श्याम सत कहँ विलीन कर, गुणातीत जेहि होहिं नारि नर ।।२।।
छबि श्रृँगार शोभा त्रिभुवन कर, सीता राम लखन स्वरूप वर ।
लसत स्वेद कन ललिल जाल तन, लावण्यता मधुर विच रुचिकर ।।३।।
उर विशाल सूचत उदारता, भुज विशाल जो पहुँच विश्व भर ।
नयन विशाल शील धाम जो, जोगवत रुचि मन जीव चराचर ।।४।।
कटि खीनी न समाइ दोष जन, नाभि गँभीर न नेह कमी डर ।
बोल सुमधुर मोल लेत हिय, चितवनि चोरति चित्त वृत्ति कर ।।५।।
मुसकनि मन्द देत ढारस जिव, हाँस करत परिहास प्रकृति-टर ।
कोमल त्वचा लिये लालिमा, कमल लाल लक्ष्य दृग मधुकर ।।६।।
जासु प्रभाव काल नित डोलत, स्थिर सो भेउ जरनि जीव हर ।
बैठे तिनके पुर वासिन के, इत उत भागन मन बुधि परिहर ।।७।।
रस आस्वादन ब्रह्म करन हित, जो अगम्य मन बुधि बिधि हरि हर ।
नारि समानि प्रश्न मिस सिय करि, माध्यम किय प्रवेश मोहन खर।।८।।
नयन धनुष चढ़ाइ निज सीता, तिय गन मन बनाइ तीखे शर ।
बेंध्यो राम पाइ परकीया रस अलभ्य कृतकृत्य नारि वर ।।९।।

[१२६]

सुन्दरता की मचि गइ शोर ।
बनिता बन्धु संग सुनि आवत, बन मग अवध किशोर ।।१।।
वय किशोर पार सुन्दरता, त्रिभुवन सुषमा छोर ।
एक बार जो इन कहँ ताकेउ, लखेउ न जगत बहोर ।।२।।
सुनि सन्देश निकट मारग के, ग्रामन भई बटोर ।
कब आवहिं हम. तैसेहि धावहिं, करहिं प्रतीक्षा ज़ोर ।।३।।
देखत रामहिं भे सन्यासी, तजि गृह काज करोर ।
राम देखि लौटेहु गृह निशि दिन, रामहिं ध्यान विभोर ।।४।।
राम श्याम घन निरखि नाचते, आतम सुख जिमि मोर ।
मग अकाश भे उदय तीन शशि, लखि छबि भये चकोर ।।५।।
आनन कान्ति धँसी हिय भीतर, मन भयो शलभ अँजोर ।
ध्यान मग्न भे पुर नर नारी, बूझइँ साँझ न भोर ।।६।।

जिन कहँ पथिक ताकि कहुँ लीन्हे, प्रेम दृगन की कोर।
ते बिकाइ होइ गये राम के, मिटि गे भ्रम मैं मोर ।।७।।

[१२७]

धनि धनि मति मग बासी नारी।
रसिकराज राम रस चाखन, अनुपम युक्ति विचारी ।।१।।
निरखत लगे सु-सगे आतमा, मति नहिं होति चिन्हारी।
तब जोड़न सम्बन्ध राम सों, माध्यम सीय सँवारी ।।२।।
चतुर सीय जेहि दृग मग रामहिं, लाइ हृदय बैठारी।
सोइ नयनन मग मन मग तिय गन, किय पिय पै पैठारी ।।३।।
जो सम्बन्ध सीय राम सों, तिनहूँ निज उर धारी।
अन्तर यही कि मिलन राम सिय, रस मानेउ हितकारी ।।४।।
रस स्वरूप राम आस्वादन, परकीया मति न्यारी।
राम श्याम वारिज मति मधुकर, ग्राम तियन बलिहारी ।।५।।

[१२८]

रामचन्द्र मुख चन्द्र सोहात।
मूरति मोहनि लखि दृग रोहिनि, मति नर नारि मोहात ।।१।।
परम समीप सुहृद मग वासिन, लागत बिनहिं चिन्हात।
राम चन्द्र लखि सकल कुमुद मुख, स्वाभाविक विकसात ।।२।।
श्याम शरीर अकाश उदित नित, विच घन केश लखात।
क्षीण न होत कालिमा नाहीं, अविचल छबि दिन रात ।।३।।
स्रवत सदैव प्रेम रस अमृत, जिव पी पुनि न नसात।
माया तम निःशेष नसावत, दृग मग ज्योति समात ।।४।।
लखन सीय दुहुँ दिशि दिब दर्पण, छिटकावत छवि जात।
अहमिति छाया भितरउ दायेउ, लखन राम सिय नात ।।५।।

[१२९]

नयनन राम बटोहिया बसि गे।
लखन राम सिय चरण त्रिविक्रम, हृदय भूमि महँ धँसिगे ।।१।।
कृपा प्रेम छबि बटे डोर तिन, जाल बिहँग मन फँसिगे।
शुभ अरु अशुभ कर्म धान्य जिव, संचित सगरौ ग्रसिगे ।।२।।
मान अपमान लाभ हानि सुख, दुख बुधि बिहँसि बिनसि गे।
उनके निरखत जगत वासना, हृदय गाँटि से खसिगे ।।३।।

तिहुँ चेतना बेलि जब शाखा, अहमिति तरु पर लसिगे।
मैं अरु मोर पात माया बहु, तेहि अनयास झुलसिगे ॥४॥
बवँरैं सुरति प्रेम सेवा से, कर्म भाव गुन कसिगे।
ललित प्रेम सिय राम लखन बँधि, भव कटु बन्ध निकसिगे ॥५॥

[१३०]

लखउ रे मन राम बटोही रूप।
वस्त्राभूषण रहित आवरण, सकल स्वरूपन भूप ॥१॥
नयन अन्य रूप नहिं देखहिं, लखि यह रूप अनूप।
शब्द प्रछोरि बयन इन हिय रखि, फेंकेउ श्रवनन सूप ॥२॥
तन सुगंध बनमाल सूँघि इन, तुछ भे मृगमद धूम।
कर परसत शिर सुख सूखत रस, काम बासना कूप ॥३॥
नयन प्रेम रस चाखत भूलेउ, रसना रस भव पूप।
फाँसि कीट मन भृंग बटोही, राम किहेउ तद्रूप ॥४॥

[१३१]

मन बन राम चले नित जात।
चित्त प्रदेश प्रकाश प्रेम मति, दृष्टि द्वैत दरशात ॥१॥
आनन चन्द्र नेत्र खञ्जन मृग, तन छबि जलद लजात।
मुसकनि मधुर नसावत सब दुख, चितवनि सुख सरसात ॥२॥
बोलनि अपनावत संकेतन, संशय करत निपात।
मिलनि मनहुँ बिछुड़े बहु दिन के, अपने अति सग नात ॥३॥
अहंकार सम्भव द्रुम दुहुँ दिशि, छाया करत झुकात।
सुमन भाव झरि पथिक पगन तर, पथ कर मृदुल सोहात ॥४॥
सुमिरत नाम नटत श्वासा खग, बुधि मृगि तकि नगिचात।
चित्र रेख चित बनेउ लेख, तजि देश काल की बात ॥५॥

[१३२]

पथिक राम सिय लखन लखाई।
मग बासिन बासना तजेउ हिय, बसि गै प्रिय सुघराई ॥१॥
अम्बरीष श्राप दुर्वासा, लेहि जन्म दस आई।
नृपहि मुक्त किय वही जन्म हरि, निज शिर श्राप चढ़ाई ॥२॥
बन मग राम चलत निरखेउ तिन, भव मग रहे सिराई।
उपर्युक्त हरि कृपा कोटि गुन, राम कृपा अधिकाई ॥३॥

सीमा देश काल तोरि सोइ, राम कृपा जग छाई।
राम धाम लह अबहुँ कबहुँ जो, राम पथिक उर लाई ॥४॥

[१३३]

दीनन दुख न राम लखि पाई।
देखि दीन मुख विधु, करुणासिंधु, राम चलेउ उफनाई ॥१॥
लखन सीय सीमा दूनउँ दिशि, गे करुणा पिघलाई।
करुणा सरि तिहुँ मिले त्रिवेणी, मग नर नारि नहाई ॥२॥
तिन्ह के पाप पथिक त्रै लै तिन्ह, उर निज भरी लुनाई।
भव पथिकन बरबस अधिकारी, पथ निज धाम बनाई ॥३॥
भव पथिकन अघ तिहूँ पथिक लै, पायउ दुःख अघाई।
सीता हरे व्यथित सिय सियवर, शक्ति लगे लघु भाई ॥४॥
करुणा की मूरति सिय रघुबर, लछिमन तिन परिछाँई।
भव मग लह विश्राम अजहुँ जिय, राम पथिक जेहि झाँई ॥५॥

[१३४]

होत बिके मन जन रघुबर के।
दर्शन देइ मोल लीन्हे मन, बिके भाव किंकर के ॥१॥
राम पथिक लखि बन मग वासी, मन न केहू तिय नर के।
जो स्वतंत्र रहि गयो बिके बिनु, रूप मोहिनी खर के ॥२॥
गये बिकाइ भये कठपुतली, राम धनी के कर के।
नहिं दायित्व भोग कर्म फल, अमृत और जहर के ॥३॥
एक भरोसा आस एक रुचि, बाहर भीतर घर के।
दै मन मोल लिहेउ जो मूरति, लखिय नित्य जो भर के ॥४॥

[१३५]

महिमा जापक राम दिवाकर।
अनि सब साधक महिमा उडुगन, तिन यश करत उजागर ॥१॥
सुनिये विविध भाव मुनि गन जब, राम मिलत उन जाकर।
भिन्न मिलनि अनुरूप साधना, लखिय राम बुधि-आकर ॥२॥
सब मुनि साधन सफल कहत निज, निरखि राम सुख सागर।
राम वालमीकि पद लखि कह, धन्य पुन्य फल पा कर ॥३॥
बिदा होत राम सन माँगेउ, सब कोइ छूँछे गागर।
वालमीकि नाहीं कछु याचेउ, आप्तकाम जनु सागर ॥४॥

राम मंत्र जिव सुलभ ब्रह्म, जो रमत रूप सचराचर।
राम नाम जपि भये ब्रह्म सम, अघ स्वरूप रतनाकर ॥५॥

[१३६]

राम नाम जपि ब्रह्म होत जिव।

सब सुख खानि जानि उपयोगी, जपत निरन्तर उमा सहित शिव ॥१॥
अग्नि अंश अघ जले शुद्ध जिव, जिमि जलि दधि माखन निर्मल घिव।
भानु अंश तम नाश अविद्या, विकसत ज्ञान प्रात जिमि राजिव ॥२॥
चन्द्र अंश तिहुँ ताप नाश होइ, नित सुख रह बुधि मन तन पार्थिव।
जिव बुधि त्यागि आतम स्थिति महँ, निज सुख शान्ति रहिय दिन रातिव ३
नाम बीज नामी चरित्र तरु, उपजि लखाव तासु गुन जातिव।
नामी कहँ दृढ़ाइ जापक जिय, नाम मिलावत जीव तासु पिव ॥४॥
नामी नाम अभेद नाम अरु, जापक एक होत जिमि जल हिव[1]।
जापक जीव ब्रह्म नामी इमि, वालमीकि जिमि होत ब्रह्म इव ॥५॥

[१३७]

जब जहँ निज ऐश्वरि उघरै।

हँसि माया कहवावत माधुरि, बिगड़ी जेहि सुधरै ॥१॥
माया राम मोह सब कोऊ, ऋषि मुनि सुर सगरै।
सेवक राम बचत दाया वश, जापक एक न डरै ॥२॥
रूप माधुरी राम लखन लखि, जनक विचार करै।
निगम नेति वर्णित कि ब्रह्म द्वै, अनुपम रूप धरै ॥३॥
विश्वामित्र करत अनुमोदन, बुधि हँसि राम हरै।
नृप दशरथ बालक कह जिन बल, मख निर्विघ्न सरै ॥४॥
पूँछत राम वालमीकि सों, डेरा कहाँ करै।
जहँ न होउ उत्तर ऐश्वरि खुलि, जात बात विगरै ॥५॥
मन मुसुकाइ राम किय माया, मुनि न प्रभाव करै।
उलटि हँसत मुनि वर्णत ऐश्वरि, जहँ कर राम घरै ॥६॥
राम नाम जापक मति माया, रामहुँ ते न टरै।
जापक भये अभिन्न राम, माया किमि राम छरै ॥७॥

[१३८]

वालमीकि मन आनँद भारी।

जपत नाम नामी प्रत्यक्ष भे, सह सिय लखन खरारी ॥१॥

---

१. हिव = हिम

नाम बीज निकलेउ तरु रामायण निचोड़ श्रुति चारी।
तेहि स्वरूप फल लगे चक्षु चखि, वालमीकि बलिहारी ॥२॥
अग्नि बीज "र" राम प्रगट भे, ईंधन कर्महिं जारी।
नाश अविद्या भो प्रकाश आ("ा") लक्ष्मण तरुण तमारी ॥३॥
चन्द्र बीज शीतल सीता "म" त्रिविध ताप जिव हारी।
नाम के रूप तीनहूँ सार्थक, जिव आत्मा लयकारी ॥४॥
नाम बीज बय तरु जमाव जो, राम चरित सुख कारी।
लखन राम सिय दरस जासु फल, तासु विश्व आभारी ॥५॥

[१३९]

रस न विरञ्चि विरचि श्रुति पायेउ।
बीज बेद ओऽम बीज लै, बीज प्रचेता जायेउ ॥१॥
समय पाइ हिय भूमि बोइ तरु, रामायण उपजायेउ।
गुन स्वभाव भक्त वत्सलता, राम लखन सिय गायेउ ॥२॥
तरु चरित्र फल लगे रूप त्रै, प्रेम सुनयनन खायेउ।
विरचि ब्रह्म रस हिय प्रयोग प्रिय, बालमीकि तनु भायेउ ॥३॥
प्रिय दर्शन अनुभूति भूति सुख, निज सुख एक बनायेउ।
विहरत पुण्यारण्य राम जस, रस ब्रह्मानंद पायेउ ॥४॥
(सीताराम गुणग्राम पुण्यारण्य विहारिणौ।
बन्दे विशुद्ध विज्ञानौ कवीश्वर कपीश्वरौ ॥)

[१४०]

राम बसन हिय इमि रहिये।
श्रवन कथा दृग दरस लालसा, रसना गुन कहिये ॥१॥
सूंघै घ्रान प्रसाद नमित शिर, लखि गुरु द्विज चहिये।
विश्व रूप हरि कर सेवा कर, पद तीरथ बहिये ॥२॥
राम मंत्र निज जपै चहै वस, राम प्रीति लहिये।
दोष रहित सब के हितकारी, दुख सुख सम रहिये ॥३॥
नित हरि शरण बचन प्रिय लागत, सत्य सदा कहिये।
एकइ गति सम्बन्ध एक ही, पर हित दुख सहिये ॥४॥
हरि कर गुन निज दोष, विलोकइ, हरि भरोस गहिये।
स्वर्ग नर्क अपवर्ग राम लख, कबहुँ न कछु चहिये ॥५॥

विरह चरण चढ़ि शिखर प्रेम गिरि, कीन्ह ध्वजारोपण सनेह सति ।
अस प्रगाढ़ प्रेम नहिं सुनियत, ज्ञान भक्ति अज्ञान घोर लति ॥२॥
भरत राम कहि मुक्त होत जिव, दशरथ यह गति लहेउ न लखि क्षति।
रामहुँ दिहे ज्ञान दृढ़ त्यागेउ, गति अभेद वाञ्छित मुनीद्र यति ॥३॥
राम रूप ध्यान होइ स्थिर, लगेउ समाधि विचित्र प्रेम मति ।
राम सीय लछिमन चित निरखत, चेत न कहूँ अन्य तिन्ह निवसति॥४॥
रावण निधन स्वर्ग उत्सव बड़, दुन्दुभि बाजत कोलाहल अति ।
टुटेउ समाधि लंक चलि दशरथ, निरखेउ बंधु सीय सह रघुपति ॥५॥

[१४४]

रामहिं कहेउ मधुर कछु खाहु ।
माँगन बिदा गये ढिग माता, कीन्ह नेह निर्बाहु ॥१॥
लघु अवकाश सो मधुर न खायेउ, रखेउ न माता चाहु ।
मातु भाव किय मधुर मूल फल, राम जहाँ जहँ जाहु ॥२॥
भरद्वाज मुनि वालमीकि आश्रम, गृह शबरी माँहु ।
गृह मिष्टान्न से अधिक मधुर किय, कन्द मूल फल काँहु ॥३॥
रामहिं अर्पण करत मधुर वह, पायउ चाखन लाहु ।
द्रौपदि शाकहुँ भयो तुष्टिकर, क्षुधा बुझावन दाहु ॥४॥
शाक कीन संतुष्ट एक दिन, सात सो यह सप्ताह ।
शाक ऋषिन यह भरत लाल कहँ, जग पोषन भर्ताहु ॥५॥

(भगवान श्रीकृष्ण द्वारा द्रौपदी का शाक चखने से शिष्यों सहित ऋषि दुर्वासा की क्षुधा एक दिन के लिये तृप्त हो गई और माता कौशल्या द्वारा भगवान श्रीराम को केवल मधुर अर्पण के भाव से उनको बनवास में अर्पण किये गये कन्द मूल फल अत्यन्त मधुर हो गये तथा विश्व भरण पोषण करने वाले भरत जी की क्षुधा लगभग चौदह वर्ष, अर्थात् सात सौ सप्ताह, के लिये समाप्त ही गई)

[१४५]

तहीं अवध जहँ बस रघुराई ।
दोउ सम्बन्ध सीय राम सम, देत अभिन्न दिखाई ॥१॥
अवध छाँड़ि राम निवसे जब, चित्रकूट गिरि छाई ।
आनँद शोभा पुरी रुचिरता, गिरि प्रवेश किय धाई ॥२॥

सरयू छबि प्रविसेउ मन्दाकिनि, उपवन बन महँ आई।
पुरवासिन हिय भयो भील हिय, सोई राम प्रियताई ॥३॥
गिरि पशु खग मृग राम दिखावहिं, परिचय पूर्व मिताई।
मानहुँ सोइ जे रहे अवध अब, गिरि पहुँचे सुधि पाई ॥४॥
श्रीहत भयो शरीर अयोध्या, मनहुँ प्रान विलगाई।
किय प्रवेश चित्रकूट गिरि, जब तहँ राम रमाई ॥५॥
चित्रकूट राम के छोड़े, प्रविसेउ पञ्चवटाई।
चौदह वर्ष राम के लौटे, निज तनु महँ लौटाई ॥६॥
कहुँ गरिमा गहि होइ तीरथ थल, निज तन राम बसाई।
कबहुँ राम पद रज बनि लागत, संसृति जीव नसाई ॥७॥
सप्तावरण पार साकेत सो, राम धाम सुखदाई।
अन्तर्यामी तन बसते सोउ, मस्तक अवध सदाई ॥८॥
राम नित्य बस नगर अयोध्या, अथवा सिय हिय ठाँई।
सीता हृदय अयोध्या एकइ, कहते लगत ढिठाई ॥९॥
(जहाँ रघुनाथ जी बसते हैं वही स्थल अयोध्या जी का माहात्म्य नहीं प्राप्त कर लेता, प्रत्युत वह वस्तुतः श्री अवध ही होता है)

[१४६]

लखु मन प्रेम महिमा भूरि।
राम सँग बन कठिन मारग, सीय लागत रूरि ॥१॥
मोह बहिनिन सखिन सासुन, सुख महल न विसूरि।
सेविकनि तजि स्वर्ण पात्रन, पिअनि वारि अँजूरि ॥२॥
मधुर असन विहाइ अवध, सिहाइ बन फल मूरि।
तजन रेशम गहन वल्कल, हर्ष हिय भरि पूरि ॥३॥
मृदुल सेजहिं स्वच्छ त्यागन, लहन आसन धूरि।
कठिन दुख सिय परम सुखमय, प्रेम पावन चूरि ॥४॥
सहज सुखद बयारि त्रिविध, निहारि निशि शशि पूरि।
देत सौ गुन सुख पिया सँग, दुःख जब पिय दूरि ॥५॥
प्रेम महँ मन चूर जाकर, दुःख ताक न घूरि।
राम प्रेम लखाव महिमा, सिय कहत कवि सूरि ॥६॥
सकल रस संसार मिलि कर, प्रेम रस बिनु झूरि।
राम तोषण प्रेम भरि मन, नित्य रहइ हजूरि ॥७॥

[१४७]

निरखु मन दोऊ संग खड़े ।

दोउ अवलोकनि परस्पर, जिवनि रस उमड़े ॥१॥
दोउ मुख मुसकानि कमलनि, खिलनि खुलि पँखड़े ।
पान कर दोउ नयन मधुकर, जनु सनेह जड़े ॥२॥
निर्निमेष विलोक कबहूँ, दोउ नयन लड़े ।
हिय विलोकत बन्द करि कहुँ, नयन पट सिकड़े ॥३॥
छबि प्रवृत्ति निवृत्ति माया, वृत्ति जिव जकड़े ।
जिव निरखु चित नित करन हित, ग्रन्थि भव टुकड़े ॥४॥
राम सीता सुधि सुभीता, लहन चित्त गड़े ।
दोउ अनुकम्पा कमावइ, बृत्ति पद पकड़े ॥५॥

[१४८]

इन्ह की अद्भुत सुन्दरताई ।

वन मग जात राम लखि तिय एक, दूजेहिं दशा बताई ॥१॥
इनहिं बिलोकत काम न उपजेउ, प्रत्युत गयेउ नसाई ।
इन्द्रिन सकल काज निज छोड़ेउ, गोलक गईं बसाई ॥२॥
निरखनहूँ पायेउँ नहिं मन भरि, आतम सुरति समाई ।
कहाँ गये बाहर नहिं सूझहिं, हिय दें अजहुँ दिखाई ॥३॥
इनहिं बिलोकि अन्य कछु देखन, दृगन दीन्ह बिसराई ।
अब लगि मनहुँ इनहि ढूंढ़त रहि, तृप्ति भये निधि पाई ॥४॥
दृष्टि भई लय सुन्दरता, मन मुग्ध मनोहरताई ।
दशा करत संकेत न कहि सक, गूंगे ने गुड़ खाई ॥५॥

[१४९]

भई बजइ मधुर घन बाजनवा ।

सरिता सुरति समीप मँदाकिनि, चित्रकूट चित कानानवा ॥१॥
फटिक शिला अति शुभ्र विमल हिय, किञ्चित कपट न छाजनवा ।
जटा मुकुट शिर हाथ बान धनु, बैठे जिय सिय साजनवा ॥२॥
निर्निमेष मृग नयन विलोकहिं, नासिकाग्र छबि आननवा ।
क्रोध सिंह काम करि बिथकित, भये छाँड़ि निज भावनवा ॥३॥
श्वास समीर मन्द शीतल "म", "रा" सुगन्ध जेहि साननवा ।
दोउ जग सुख समेटि जोरि कर, परेउँ राम पद पावनवा ॥४॥

लखन विराग बाँह गह एक सिय, भक्ति गहन कहँ धावनवा।
कृपा अश्रु जल शिर पर बरसत, राम श्याम घन सावनवा ॥५॥

[१५०]

विहरत चित्रकूट रघुराई।
खग मृग बन गिरि राम विलोकत, राम रूप गिरिराई ॥१॥
सकल विश्व से सिमिटि सुँदरता, प्रकृति प्रगटि गिरि छाई।
मुनि सुर सिद्ध बने खग मृग अलि, निरखन हित सेवकाई ॥२॥
चित्रकूट तरु बेलि सुमन फल, खग मृग सरि रुचिराई।
छबिमय बनेउ राम निरखत जेहि, सुखमय अवध भुलाई ॥३॥
मृग सुहरावत गहत डारि द्रुम, स्पर्शन सुखदाई।
करत प्रशंसा सिया लखन से, अमृत वचन सुनाई ॥४॥
राम अंग निरखत अनंग रति, ब्रह्मांडन समुदाई।
बनि भिल भिलनि कामहूँ कामहिं, रति हूँ रति बिसराई ॥५॥

[१५१]

नासिकाग्र कामद गिरि गनु मन।
जहाँ बसत सिय राम बिलोकन, अविचल आसन टीला लछिमन ॥१॥
निर्निमेष निरखन प्रमाद तजि, समुझु कठिन तप निद्रा त्यागन।
राम ब्रह्म रति ब्रह्मचर्यता, अहंकार घन-नादहिं मर्दन ॥२॥
राम सीय "रा" "म" अटूट गति, झूला श्वास प्रत्येक झुलावन।
मति विनम्र आसन कोमलता, डोरी प्रेम अनूप सजावन ॥३॥
अनहद सुनन मधुर ध्वनि बोलनि स्वामिनि स्वामि दूरि से अनकन।
अस कामना बुद्धि नहिं लावन, जेहि महँ होइ राम कछु सकुचन ॥४॥
आज्ञा पालन सोइ पद सेवन, अर्पन कर्म भोग अहलादन।
राम करइँ सोइ उचित जानि चित,लखन भाव प्रिय सिय सियपिय वन५

[१५२]

सखि सब अचरज मोहिं लखात।
चित्रकूट निवसे जब से ये, सँग प्रिया लघु भ्रात ॥१॥
देखि श्याम वपु मोर नचत जनु, जानि मेघ बरसात।
आनन लखत चकोर चद्र जनु, शरद पूर्णिमा रात ॥२॥
विकसित होत कमल रातिहुँ लखि जैसे भानु प्रभात।
अलि मँडराइ गुंजगान कर, निरखि चरन जलजात ॥३॥

विटप पल्लवित पुष्पित फल लगि, नित बसंत दरसात।
मानउ सेवा करति प्रकृति इन्ह, सजि शृंगार नव सात ॥४॥
नारि मृगी खग करिनि सिंहनी, छोड़े शिशु नव जात।
परम प्रेम से इनहिं बिलोकत, सकल बिसारे नात ॥५॥
और कहूँ केहि मुनिहुँ मण्डली, दर्शन हित मँडरात।
इनहिं देखि तिन्ह खिलत कमल मुख, बिनु देखे मुरझात ॥६॥
मेरी दशा सुनहु सब इन्द्री, तृप्ति भईं लखि गात।
इनके दर्शन मन-बुधि-मय जिव, आतम रूप समात ॥७॥

[१५३]

चित्रकूट रघुनन्दन दर्शन, आये सुर मुनि भील निकाय।
सुर स्वारथ मुनि परमारथ हित, दर्शन केवल भील लुभाय ॥१॥
सुर चाहैं संहार राक्षसन, मुनिजन मन मुक्ती ललचाय।
भील भीलनी हृदय प्रेम रस, उमड़ेउ छबि लखि सहज सुभाय ॥२॥
सुर मुनि चाहत बिना दिये कछु, भील देन चह बिनु कछु पाय।
बिना दाम सेवा रघुबर लें, निकट राखि तौ हिय हुलसाय ॥३॥
बहु जन्मन की दरस लालसा, पूर्ण जानि ते गे हर्षाय।
पुलकावली प्रेम जल नयनन, स्थिर जनु गे चित्र बनाय ॥४॥
देब विनय भे रुट राक्षसन, पुष्ट इरादा मिलि मुनिराय।
किन्तु भये सन्तुष्ट भीलनी, भीलन सेवा प्रेम अघाय ॥५॥

[१५४]

लखइ मन, भील भीलनी नेह।
दर्शन चाव भाव भरि इनके, दृग बरसत जस मेह ॥१॥
दर्शन मन लवलीन बिसारे, सकल कार्य निज गेह।
हम हमार भूलि दुःख सुख, सब भये मनहुँ विदेह ॥२॥
इनकी एकटक निरखन रामहिं, हिय चकोर लग ठेह।
इनकी सेवा रीति सिखावत, मान सुसेवक खेह ॥३॥
इनकी सेवा रीति निरखि बनु, भील बिना संदेह।
चित्रकूट बसि हरि सेवा करि, सुफल करइ निज देह ॥४॥

[१५५]

सिय राम बसे धनि चित्रकूट।
जिय प्रकृति जानि स्वामिनि निवास। सब शक्ति सहित प्रगटेउ विलास॥

मनहर तरु तिन्ह पर बेलि बास । पल्लवित सुपुष्पित करत हास ॥
बट बने खड़े हर खुले जूट ॥१॥
नीचे बट वह वेदी ललाम । जहँ प्रति दिन बैठत सिया राम ।
अस सघन पात नहिं आव घाम । अति रम्य देत रामहिं विराम ॥
सिय तासु सँवारत टूट फूट ॥२॥
नाचत मयूर लख मृग चकोर । कलकंठ कीर कलरव न थोर ॥
बह त्रिविध वायु जस नित्य भोर । अनुरन्जित बन झरनन सु-शोर ॥
परमानँद राजत खूंट खूंट ॥३॥
नित रितु बसंत सुखमय सँवार । मन मुनिन मग्न जहँ कहुँ निहार ॥
कुसुमन तें अनुपम दोउ शृंगार । बन स्थल सिय पिय नित विहार ॥
भीलनी बनी सुरपति बधूट ॥४॥
जहँ सुख अनन्द नहिं काम गन्ध । जहँ पहुँचत टूटत प्रकृति बन्ध ॥
पावत प्रकाश जहँ ज्ञान अन्ध । पग धरत जीव चल काल कन्ध ॥
मन बसि तहँ नित्यानंद लूट ॥५॥

[१५६]

सुनउ रे सखि अचरज सकल लखात ।
जब तें चित्रकूट गिरि ठहरे, नृप सुत सँग तिय भ्रात ॥१॥
सहज बैर सब जीवन त्यागेउ, कोउ न कोउ कोहात ।
वाहू ते अचरज इन कहँ तजि, काहु न काहु मोहात ॥२॥
याहू ते अचरज यह सजनी, मन कहुँ अनत न जात ।
मूरति वसी रहत नयनन नित, तऊ लखन ललचात ॥३॥
दिन महँ केहु मिस जाइ निरखिये, काटे कटत न रात ।
मधुप मराल लालसा चातक, रखि सखि उठिये प्रात ॥४॥
जो गति मोरि लखउँ पिय की सोइ, पूछत मोहिं न बात ।
इन तीनहुँ कहँ निरखे जब से, दूजो कोउ न सोहात ॥५॥
पशु खग मृग की यही दशा सखि, का सयान नवजात ।
बृक्षउ फूले फले इनहिं लखि, झुंकत सुमन बरसात ॥६॥
जग के आकर्षन सब बिसरेउ, इनके हृदय समात ।
जानि पड़त वह मम मन बोलत, मैं तैं भइउँ भुलात ॥७॥

[१५७]

धनि चित्रकूट की पुण्य भूमि ।
जहँ त्रिभुवन पति भगवान राम । लिये संग शक्ति ललना ललाम ॥

तजि बैभव सुख साकेत धाम। रमि रहे आइ लोकाभिराम ॥
मन करइ प्रदक्षिण घूमि घूमि ॥१॥
जिन्ह चरण कमल रज कण प्रतेक, निष्पाप अहिल्या कर अनेक ॥
नंगे पग रघुबर दिहे टेक। गइ शिला पिघलि जनु मोम सेंक ॥
मन आव प्रशंसा खूमि खूमि ॥२॥
जहँ पशु मृग हित नित हरित घास। फल मधुर मिलत जहँ अनायास ॥
जहँ करत प्रकृति सौन्दर्य हास। झरना सर सरिता जल सुपास ॥
हरि निकट चलत करि दूमि दूमि ॥३॥
जहँ दिब्य लखत सब बन पहार। सुन्दर तमाल चंपा चनार ॥
सरिता सर सुन्दरता अपार। जो बनेउ राम सिय नित विहार ॥
जहँ भरत चले मग झूमि झूमि ॥४॥
जेहि बनेउ राम सिय चरण अंक। जेहि सुमिरि गीध लह पद निशंक ॥
मंदाकिनि भइ जेहि लिपटि बंक। जहँ रहत न कोऊ भक्ति रंक ॥
मन चलइ भूमि तेहि चूमि चूमि ॥५॥

[१५८]

चित्रकूट नित निवसत राम।
अवध जनकपुर चित्रकूट त्रै, नित्य राम के धाम ॥१॥
मुनिगन सुलभ अयोध्या, मिथिला सखि उपलभ्य ललाम।
चित्रकूट स्थल विहार, सिय राम जगत अभिराम ॥२॥
प्रहरी पुरुष अवध मिथिला महँ, सखी करइ सोइ काम।
चित्रकूट छूट जिव पहुँचइ, हरि पहँ आठों याम ॥३॥
मिथिला अवध विशेष योग्यता, होये पाइअ राम।
किन्तु अपेक्षित चित्रकूट, लालसा दरस निष्काम ॥४॥
तुलसिदास निरखेउ अरु मामा, प्रागदास जिन्ह नाम।
मन्दाकिनी नहात प्रात, बनि साधू मिले गुलाम ॥५॥

[१५६]

सघन घन दामिनि अचल भई।
मन्दाकिनि तट फटिक शिला छबि, सिय प्रिय संग लई ॥१॥
पुष्पित फलित हरित विटपन तर, अनुपम छटा छई।
स्वयं शृंगार शृंगार महा छबि, की किय भाँति कई ॥२॥
नाना रँग सुमनन आभूषन, लखि मनि मान गई।
घटित अंग सिय निज कर कमलन, राम पिन्हाइ दई ॥३॥

शुक पिक गावत सरित बजावत, बहु मयूर नचई।
त्रिविध वायु दृश्य सुमनोहर, प्रकृति अनन्द मई ॥४॥
मायाधीश्वरि सिय तेहि अवसर, आनँद रंग रई।
मेलेउ पिय पद दरस आस मम, माला नित्य नई ॥५॥

[१६०]

चित्रकूट राम के बसिगे।

निर्गुन तुच्छ उड़ेउ, स्वरूप गुन राम सीय हिय हँसिगे ॥१॥
मुनिगन सीता राम लखन लखि, अभिमत पाइ हरसिगे।
ललित रूप दायक निज स्थिति, जे मुनि सुने तरसिगे ॥२॥
राम प्रताप भानु उदये हिय, माया मोह झरसिगे।
राम कृपा घन सद्गुन सारे, हिरदय भूमि बरसिगे ॥३॥
ज्ञान विटप शिर ललित लता हरि, भक्ति सवनि के लसिगे।
खग श्रद्धा विश्वास, कीट संशय भ्रम गम गहि ग्रसिगे ॥४॥
चित्रकूट चित प्रेम प्रगटि, मन्दाकिनि बढ़े सरसिगे।
उपजे हिय तरु भाव राम सिय, लछिमन निरखि निवसिगे ॥५॥

[१६१]

गवन राम बन कहेउ सुहावन।

अबधिन दुख न तरस या तुलसी, मगन दरस मग पावन ॥१॥
भरद्वाज कह तेहि अनर्थ, हिरदय सब विश्व दुखावन।
संगत किमि विपरीत भाव दोउ, उमा चहै समुझावन ॥२॥
विश्व भरन पोषन भरतहिं दुख, भेउ तहि विश्व जतावन।
नतरु जीव जग तारन कारन, वनै वि विश्व सतावन ॥३॥
लघु प्रभाव तेहि नाश सकुल भेउ, विश्व रुलावन रावन।
बड़ प्रभाव तिन उबरन जिव गन, तेहि प्रसंग मन भावन ॥४॥
अजहुँ चेत करि रूप माधुरी, खर सुपनखा लुभावन।
अथवा सुनि प्रसंग भव तरहीं, नर नारकी अपावन ॥५॥
नेह वारि विरहाग्नि अवध, सिय राम दरस घन जावन।
हृदय जुड़ावत मग वासिन, बरसेउ कानन लगि सावन ॥६॥
शिव कह वन छवि राम सुहावन, भा मोहि तोहि भ्रम डावन।
प्रथम दुखद कृतकृत्य तुमहुँ तेहि, तुलसि सुहावन गावन ॥७॥

□ □

॥ राम ॥

श्री रामचरितमानस पदावली

अयोध्या काण्ड

श्री राम बन गवन प्रसंग

(सतसंग प्रकरण)

॥ राम ॥

श्री सीताराम जी

हनुमान जी

(१)

सिया जू युगल पदुम पद पास ।
चञ्चरीक चित कृपा दृष्टि तव, पावइ अचल निवास ॥१॥
प्रीतम प्रिया प्रेम माधुरि रस, सत आनन्द विलास ।
सोइ मकरन्दहिं चखै चेतना, अन्य कामना नास ॥२॥
स्वामिनि स्वामि चरित्र अनूपम, कृपा अनुग्रह बास ।
सोइ सुगन्ध कृतकृत्य सकल विधि, गुन्जगान कर तास ॥३॥
राम प्रिया जग जननि जानकी, करुणानिधि को खास ।
जन्म दिवस करि कृपा अहेतुक, मेटहु भव को त्रास ॥४॥

[२]

सुख सरिता मम हृदय सुखानो ।
सुकृत मेघ जे सुख जल बरसत, माथे नभ न दिखानो ॥१॥
चिन्ता नदी तहाँ परिपूरन, कुकरम घन घहरानो ।
सम सन्तोष कूल ढहिं चाहत, शोक कुनीर बहानो ॥२॥
हृदय गुहा गृहिणी सँग रघुबर, लखि करुणा पिघलानो ।
सुख सम्पादन साधन सपने, मेरो बुद्धि पठानो ॥३॥
निज सुख सरिता नित प्रवाह हित, सुख जल मूल बनानो ।
युगल चरण कर ध्यान निरन्तर, नाम श्वास प्रति आनो ॥४॥
जागृत समुझेउँ सार ज्ञान, हनुमत दशशीश बखानो ।
सजल मूल सरिता प्रसंग सोइ, होइ प्रत्यक्ष दरसानो ॥५॥

[३]

सरयू सीय अवध रघुराई ।
तरुण तमाल विटप सम रघुवर, सीता बेलि सुहाई ॥१॥

सादर मज्जन होत विमल मति, कलुष सकल धुलि जाई।
उपज लालसा युगल दरस की, विरह रहै उर छाई ॥२॥
उड़ि जो परै देह बालुका, स्मृति देइ जगाई।
लागि कबहुँ सिय राम चरन होइ, मोहिं स्पर्श कराई ॥३॥
कहुँ एकान्त बैठिअ करार जौ, देखन जल बहुताई।
सिय रघुबीर चरित प्रसङ्ग तौ, प्रति तरङ्ग कह गाई ॥४॥
अन्तरङ्ग जब होइ वृत्ति सुनि, दोउ हिय देइँ दिखाई।
हिय भेउ अवध अवध सिय सियबर, को मैं गयेउँ भुलाई ॥५॥

[४]

सिफ़ारिश सिय पिय से को सुनावै।
छाँड़ि उर्मिला प्राणनाथ कहँ, दूजो दृष्टि न आवै ॥१॥
अपनो विनय सकल रस सूखो, सपनेहुँ प्रभुहिं न भावै।
को करुणा रस बोरि आपने, करुणानिधिहिं रिझावै ॥२॥
सेवा करत कबहुँ चरणाम्बुज, को दृग विन्दु चुवावै।
पूछे कारण दशा दीन की, गहवर बयन बतावै ॥३॥
सेवा पुण्य भक्ति आचरण, धनी को और कहावै।
दै अपनो धन मोहिं रंकहि जो, सब बिधि सबल सजावै ॥४॥

[५]

अञ्जनि नन्दन जन हिय चन्दन, बिनती एक हमारी है।
सब कहँ अगम सुगम प्रभु तुम कहँ तुम्हहीं सकहु सँवारी है ॥१॥
जाकर मूल्य नहीं जग तप मख, आश्रित कृपा खरारी है।
सुलभ सोउ तव कृपा बिलोकनि, मुनि अनुभविन विचारी है ॥२॥
भ्रातन्ह मध्य सीय सँग सियबर, चाहउँ करन दिदारी है।
पद सेवा तुम लगे राम के, तव पद धरउँ लिलारी है ॥३॥

[६]

मन कहुँ मूर्ति करुणा हेर।
द्रवहि दीनहिं हेतु-बिनु जो, ढुरहि जो बिनु टेर ॥१॥
बाँधि जिव मृग गुनन्हि माया, करत नित्य अहेर।
जो निकटतम आतमा जेहि, मुक्ति करत न देर ॥२॥
उदय सद्गुण जासु किरपा, अस्त त्रैगुण केर।
हाथ आवत नाथ अग जग, जिव न आवै जेर ॥३॥

देखि सुनि पढ़ि बूझि विदुषन, कथित गुनगन ढेर।
प्रिया रामहिं करन घोषित, मन बजायो भेर ॥४॥

[७]

साधो साँचुइ देहु बताई।
कवने रूप ब्रह्म जीवन कर, अवगुन चित्त न लाई ॥१॥
कउनिहु योनि कतहुँ अघ अनुचित, जिवहिं न घृणा दिखाई।
एकहिं बार कहत मैं तुम्हरो, हृदय लियो लिपटाई ॥२॥
लागे पायन्ह देखि जीव कहँ, कौन जात अकुलाई।
गहि भुज लेत लगाइ हृदय जिमि, रंक महा निधि पाई ॥३॥
अशरण शरण विरद है का को, जो नहिं केहु लौटाई।
आदि अन्त लौं को सँभाल कर, केहि न बानि दुचिताई ॥४॥
केहि ऐश्वर्य त्यागि भालु कपि, निशिचर सखा बनाई।
केहि के धाम पारषद बानर, संतन राम लखाई ॥५॥

[८]

अद्भुत बहुत बिलोकेउँ आज।
कहत न बनत सुनत अति अचरज, समुझत आवत लाज ॥१॥
मानस पुण्यारण्य विचरते, राम गरीब-निवाज।
दिहेउ ज्ञान जो भयउ तुरत ही, पूर्व मान्यतहिं गाज ॥२॥
उनके चरित मध्य जिमि उनकी, ऐश्वरि माधुरि साज।
तैसेहिं जगत नाट्य मञ्च पर, नटत एक रघुराज ॥३॥
योग ज्ञान विज्ञान नाट्य महँ, ऐश्वरि राम विराज।
लोभ मोह जड़ता की लीला, रह माधुरि को राज ॥४॥
ऐसा नाट्य रचेउ मायापति, आपुइ सकल समाज।
तदपि एक दुसरे कहँ वर्तत, जिमि कपोत कहँ बाज ॥५॥
कोउ कह सत्य झूंठ कह कोऊ, कोउ कह दोउ विराज।
सकल दृश्य द्रष्टा एक रघुबर, सुनेउँ सत्य आवाज ॥६॥
रहा जगत नहिं है नहिं होनेउ, अहै शीलनिधि राज।
विश्वमोहिनी मोहे सब कहँ, आवत नहिं केहु काज ॥७॥
होइ सभीत अति चरन गहत हौं, जिमि नारद मुनिराज।
तुमहिं छाँड़ि दूसर नहिं देखउँ, भक्तवछल सिरताज ॥८॥

[९]

स्वर्ण निशा कब अइहै पवनसुत, जब तुम आइ जगावहुगे।
भ्रातन सीय सहित रघुनायक, आये जनहिं जनावहुगे ॥१॥
सम्भ्रम उठत लखत जीवनधन, पद राजीव गहावहुगे ॥
स्वामी स्वामिनि वरद हस्त मम, शिर करि कृपा धरावहुगे ॥२॥
सामग्री सेवा न निरखि कछु, तुम करि जतन जोहावहुगे।
पद पखराइ दीन हार्थाहि से, नार्थाहि मधुर खवावहुगे ॥३॥
बिदा समय जब आन निछावर, करन चहउँ समुझावहुगे।
करुणाकर कर जोरि मनावत, मम हिय अचल बसावहुगे ॥४॥

[१०]

गङ्ग जमुन के सन्धि हो, आसनहिं लगइबै।
प्रान अपानहिं बन्धि हो, आतमहिं जगइबै ॥१॥
जगत वासना गन्धि हो, तजि दूरि भगइबै।
कर्म बीज हूँ रन्धि हो, जिव तेहि न भोगइबै ॥२॥
गुरु शिख आशिष कन्धि हो, भ्रम नाहिं ठगइबै।
राम रूप अनुसन्धि हो, नहिं कछू खँगइबै ॥३॥

[११]

करुणाकर अब न करउ देरी।
मोहि साधन धाम शरीर दियो, तेहि छूटन आइ गयेउ बेरी ॥१॥
अबलौं नहिं लक्षहिं साधि सकेउँ, हौं अन्त उपाय इहै हेरी।
अपनी ही दया अपनी ही मया, अभिलाष करउ पूरन मेरी ॥२॥
तजि नाथ फ़लक देउ एक झलक, जौ लौं छाँड़ि खलक न पलक भेरी।
रघुनायक हो बरदायक हो, सुखदायक हो सुनिये टेरी ॥३॥

[१२]

सिया जू अजहूँ नाथ न आये।
बानि बिसारन शील नाथ की, मनहुँ सुरति बिसराये ॥१॥
कीधों कहन मरुत सुत भूलेउ, नाथ खबरि नहि पाये।
लखन लाल नहिं कीन्ह सिफ़ारिश, चित किधों नाथ न लाये ॥२॥
मेरे अवगुन किधों सिंधु सम, देखि नाथ घबराये।
करुणा अंग तुमहि नहिं बूझेउ, निश्चय नहिं ठहराये ॥३॥

जनक लली अति भलो जनहिं हित, किमि रहि सकउ चुपाये।
छमा करबि स्वामिनी उरहना, तुमहिं न मैं गोहराये ॥४॥
करि करुणा स्वामिहिं समुझाइअ, जिव हीनता बताये।
दीनहिं लागि रिझाइ नाथ झट, निज सँग लाउ लिवाये ॥५॥

[१३]

गोसाईं तुम्है बंदउँ बारहिं बार।
कलि जिव बूड़त घोर भवार्णव, तुम भेउ काढ़नहार ॥१॥
योग यग्य वैराग्य ज्ञान सब, करि सक जिव उद्धार।
कर्णधार इन नौकन्हि बोरेउ, दम्भ पखंडन्हि भार ॥२॥
बेद शास्त्र सम्मत गढ़ि नौका, सप्त किहेउ तैयार।
सप्तावरण समुद्र सात भव, करन एक एक पार ॥३॥
संयुत ज्ञान विराग भक्ति दृढ़, नौका दारु को सार।
राम नाम अरु चरित राम के, नाउ के दोउ पतवार ॥४॥
केवट राम पवन अनुकूलो, ताके पवन कुमार।
करतब जीव बैठनो बोहित, तुलसी विरचनहार ॥५॥

[१४]

केहि श्रृङ्गार सियबर मिलिये।
का को बसन कौन आभूषन, केहि सुभाव चलिये ॥१॥
बोलनि चितवनि चलनि कौन सी, का सुमिरिये हिये।
कौन सुगंध कौन दृग अन्जन, तजन न का भुलिये ॥२॥
समता बसन सूत सत्य को, ममता मल धुलिये।
हरि पद राग रङ्ग स्थाई, रङ्गि पहिरि खिलिये ॥३॥
सेवा स्वामि सुगंध बासिये, जो जग सब भिनिये।
इच्छा मान कुबास न व्यापै, जो प्रीतम खलिये ॥४॥
श्रद्धा चूड़ि भरोसा सेंदुर, शिर ललाट मलिये।
पिय हिय सुरति सो हार मनोहर, उर नित झिलमिलिये ॥५॥
राम नाम घुंघरू बाजै जब, श्वास श्वास हिलिये।
कर्णफूल हरि कथा विराजै, इच्छा हरि ढलिये ॥६॥
हर्ष शोक भय मुक्त मुखाकृति, गुन मुसुकान लिये।
पिया दरस की आस सुअंजन, खंजन नयन किये ॥७॥

लचकनि कमरि दीनता चलनो, बोलनि जितनि हिये।
तुलसि अली सिख ढली मिलन पिय, रङ्गमहल हलिये ॥८॥

[१५]

साधको "हम" अण्डा फोड़ो।

याके जाये भये बहुत दिन, प्रलयहुँ नहिं तोड़ो ॥१॥
भक्ति युक्ति सेइये कमठ सम, सुरति नहीं छोड़ो।
गरमी नाम देन पलटन हित, जगतहिं मुख मोड़ो ॥२॥
भीतर लखन सत्य "हम" अण्डहिं, कर दिवाल गोड़ो।
फूटे अण्ड प्रत्यक्ष विलोकिअ, सिया राम जोड़ो ॥३॥
हम टूटे हटि गये मोहादिक, काम क्रोध रोड़ो।
अमर डगर अब चलिअ अभय चढ़ि, राम कृपा घोड़ो ॥४॥

[१६]

साधो ! प्रेम नगर मम ठाऊँ।

दीखत यहाँ रहत यहँ नाहीं, यह काया कर गाऊँ।
मैं तो उड़ि उड़ि रहूँ वही सर, मानस जाकर नाऊँ ॥१॥
प्रीतम प्रिया प्रेम अति मधुरो, रस तेहि प्यास बुझाऊँ।
मानस सर उनहों गुन मोती, चाउ ते चुनि चुनि खाऊँ ॥२॥
पीते खाते स्वाद जो पाते, ताही के गुन गाऊँ।
माया अन्न खाइ नहिं निज तन, ताके जाल फसाऊँ ॥३॥

[१७]

कहँ लौं कहौं राम गुन गाई।

ज्ञानी चाहत होन राम सोइ, बसइँ भक्त उर आई ॥१॥
दोऊ मार्ग अन्त रामइ मिल, फ़रक सरल कठिनाई।
एकहिं जग भासत मिथ्या एक, जगत राम होइ जाई ॥२॥
ज्ञानी साधन करत निरन्तर, कबहुँ ब्रह्म होइ पाई।
भक्त भक्ति भगवंत एक ही, फिरि का साधन भाई ॥३॥
स्वयम साध्य साधक बनि बैठे, साधन स्वयम सजाई।
राम बानि यह जानि मूढ़ मन, अजहुँ न भक्ति लुभाई ॥४॥

[१८]

भक्ति मूल साधन त्रै पाई।

नाम कथा सतसंग रसिकगन, अपनेहिं इष्ट सुहाई ॥१॥

स्वयं राम निज नाम कथा अरु, रसिक संत समुदाई।
ऐसो जानि मानि तीनहुँ सम, ठानहु प्रीति दृढ़ाई ॥२॥
अथवा नाम राम गाथा सिय, संत लखन मन लाई।
इन तीनहिं स्मरण प्रेम ते, भक्ति सुलभ होइ जाई ॥३॥
नवधा भक्ति अन्य षट लक्षण, इन तीनहिं ते आई।
अथवा होइ प्रसन्न करुणानिधि, जन हिय देहिं बसाई ॥४॥

[१९]

साधो ! निज गति कहउँ सुनाई।
आपन सुख स्वरूप बिसराये, सुखउ दुःख की छाँई ॥१॥
पिता ब्रह्म माया पुत्री गुन, से मम कीन्ह सगाई।
निज ब्रह्माण्ड सरिस पुर रचि कर, तेहि मोहिं वसन पठाई ॥२॥
सुख साधन पर्याप्त पुरी तेहि, सुखमय सेज बिछाई।
निज कर छाया छत्र यंत्र अस, सक प्रभु सन बतुआई ॥३॥
कछु नहिं कमी जाहि लगि बाहर, को हो निर्भरताई।
मैं ही भयो दुःख निज कारन, फाँसी गले बँधाई ॥४॥
पतनी प्यारी लगी सगी मैं, पितु कर चेत भुलाई।
पितउ जानि मोहिं सुखी सयानो, निज कर छत्र हटाई ॥५॥
अल्पहि समय बाद मम भार्या, मैके सगे बुलाई।
मंत्री बुद्धि मैनेजर मन करि, चित मम चित्र बनाई ॥६॥
विषय वासना विषम बारुणी, मोहि पिलाइ सुलाई।
मम प्रतिबिब अहं गद्दी सजि, तन पुर राज चलाई ॥७॥
बैरी द्वैत स्वप्न तेहि घेरेउ, विविध अनीक बनाई।
लड़त निरन्तर हारत जीतत, हानि लाभ बँधि भाई ॥८॥
माया मलकिनि मातु जानकी, सुधि मम पितहि जनाई।
तिन करुणा करि मोहिं जगावन, सतगुरु तुरत पठाई ॥९॥
श्रवन सजीवन नाम डारि तिन, मो कहँ दीन्ह जगाई।
पूर्व स्मरण जागृत कीन्हे, स्वस्थ दशा होइ पाई ॥१०॥
वर्म विराग ज्ञान असि देकर, सुरति सुअश्व चढ़ाई।
सैंन द्वैत जय दयं सम गद्दी, निज स्वरूप बैठाई ॥११॥

[२०]

जीवत राम सत्य जौ पावै।
सकल क्लेश अन्त आत्यन्तिक, होइ सुख-सिंधु समावै ॥१॥

यही एक जीव परमारथ, अन्य सकल भरमावै।
याही लागि करै पुरुषारथ, समय न वृथा गँवावै ॥२॥
पुण्य वही जो यहि उपयोगी, जो यह भाव दृढ़ावै।
पाप वही जो आत्म भाव तन, रखि तेहि हित दौड़ावै ॥३॥
पूजा वही राम ही दीखइ, अहमिति अति बिसरावै।
शनैः शनैः पूज्य ही भासै, "हम" तेहि लय ह्वै जावै ॥४॥
तब को मरै जरै केहि सपनेहुँ, माया नाच नचावै।
बाहर कौन जौन हित कारन, इच्छा बहुरि सतावै ॥५॥

[२१]

जोड़िय नात राम सों अविचल, जग के नात मूर्खता मानी।
जो बिनसइ बदलइ न एक रह, रूपान्तर मेटइ पहिचानी ॥१॥
कबहूँ मित्र कबहुँ रिपु सोई, कबहूँ कृपिन कबहुँ सोइ दानी।
कबहूँ पिता पुत्र होइ आवइ, कबहूँ कहाँ जात नहिं जानी ॥२॥
जन्म जन्म जो हम कहँ जानइ, रहइ संग जेहि नहिं बिलगानी।
सहज सुहृद समरथ करुणाकर, भक्तबछल जेहि वेद बखानी ॥३॥
सतिहिं शम्भु सन बहुरि मिलावइ, यद्यपि शिब प्रण औरहिं ठानी।
पितु सम्बन्ध गीध मीच पर, रोवइ होइ निज धाम प्रदानी ॥४॥
मनहूँ चाह कुचाह के नाते, जो पुरवइ तेहि अवसर आनी।
जनक नगर युवतीं सूर्पनखा, मेटि बालि रिछपति मन ग्लानी ॥५॥
सखा निषाद पारषद कपि जेहि, भुलइ न बेर भीलनी खानी।
नात मात अवलम्ब कौशिला, लै तेहि कहेउ न राम भुलानी ॥६॥

[२२]

कौशल्या माता की विनय :—
"अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम्ह करुनाकर धरम धुरीना ॥"
का रघुनाथ जी द्वारा सम्हार :—

मञ्जु बिलोचन मोचत बारी।
अवधि अंबु अवलम्बु भयो नहिं, नृपति मीन सुनि राम दुखारी ॥१॥
प्रेम तपस्या विधि लखि पितु को, करुणा राम न सकेउ सम्हारी।
सरयू प्रेम प्रवाह भयो जल, दृग ते निकरि विन्दु दुइ चारी ॥२॥
कहि करुणाकर धर्म धुरीना, सौंपेउ जनन प्रान महतारी।
सोइ करुणा जल सुखत अवध सर, जिअन मीन जन जल दृग ढारी ॥३॥

[२३]

जग माया को जाल हो, पंछी बचि रहिये।
रैन दिना यह ख्याल हो, जिव जनि परिहरिये ॥१॥
आतम स्थिति चढ़ि डाल हो, नीचे न उतरिये।
बधिक बान बिकराल हो, पहुँचन नहिं डरिये ॥२॥
पिंजरा सोई कमाल हो, अँग वृत्ति समिटिये।
होइ न बाँका बाल हो, पँच बिली झपटिये ॥३॥
सोई कमठ पिठ ढाल हो, मन पैर बटोरिये।
घात करै बहु काल हो, कछु नहीं बिगरिये ॥४॥
कमल पत्र सोइ हाल हो, जग जल नहिं हलिये।
सहज उदासी चाल हो, आसा तजि चलिये ॥५॥
निज बिच राम कृपाल हो, तिनहीं गुन कहिये।
नामहिं पंख निहाल हो, उड़ि हरि पद लहिये ॥६॥

[२४]

भजन के हैं दो बुद्धि अधार।
भेद अभेद बुद्धि शाखा के, सकल भजन विस्तार ॥१॥
एक भक्ति एक ज्ञान कहावत, दोउ जिव तारनहार।
कौन विशेष महत्व देखियत, यह रह विषय विचार ॥२॥
अनुभव बिनु प्रतीति नहिं होई, गुन अनुभव को सार।
सगुन ब्रह्म ग्राह्य यहि निर्गुन, भजन करन बेकार ॥३॥
निज सुषुप्त सुख जागृत करने, अथवा तासु प्रसार।
सगुन ब्रह्म भेद भाव हित, राम सीय अवतार ॥४॥
यह रहस्य कर सिद्ध ब्रह्म कर, भेद बुद्धि पर प्यार।
हरि सुख हेतु सयान भक्ति चह, निज सुख ज्ञान गँवार ॥५॥

[२५]

उपकारी दूजो न राम सम, कबहुँ न तउ उपकार जनाई।
विष्णु रूप निज धाम गीध दै, कहेउ कर्म निज ते गति पाई ॥१॥
सकल कामना हीन अवस्था, निज संकल्पहिं देत बताई।
देउँ काह तुम पूर्णकाम हो, बानि राम जानि मोहिं भाई ॥२॥
हनूमान सुत जेष्ठ वनावत, निजहिं रिनी तेहि धनी जनाई।
शरण विभीषण लेत कहत, तुम संतन मिलन धरा मैं धाई ॥३॥

तप साधन फल दरस देन निज, मुनिन आश्रमनि आपु सिधाई ।
कहत सुकृति फल आज लहेउ निज, तुम्हरो दरस पाइ मुनिराई ॥४॥
करत महा उपकार जीव प्रति, प्रति क्षण ताकहँ चहन छिपाई ।
मोहि लखि परत राम जेहि कारण, निराकार बनि कीन्ह उपाई ॥५॥

[२६]

अद्भुत रघुबर की मुसकान ।
को समर्थ अर्थ जो जानै, कह सब निज अनुमान ॥१॥
सब प्रसंग संगत विचारि कर, अर्थ करै निज ज्ञान ।
सत्य असत्य आपु हरि जानैं, दूजो को नहिं भान ॥२॥
बनि माया मुनि कबहुँ कहावत, कहन चहहिं जो आन ।
हृदय अनुग्रह सूचक कबहूँ, काल रूप पड़ जान ॥३॥
अपनो दुःख छिपाइ सिया दुख, देवन करत बखान ।
हेतु शीघ्र रावन मारन हित, कबहुँ हेतु भेउ आन ॥४॥
रावण बन्धु शरण राखन महँ, यद्यपि नीति सिरान ।
सादर तेहि बुलवावत बिहँसत, कृपा केतु फहरान ॥५॥
जदपि अनेक विविध कारण तेहि, दिख विपरीत समान ।
एकहिं भाव सबन तिन सूचत, राम अनन्द निधान ॥६॥
हरत तीव्र ताप त्रय तत्क्षण, भव भय मिटत महान ।
आत्मीयता सु-मिलत प्रेम अस, जनु हुतो कतहुँ भुलान ॥७॥

[२७]

हरि भव आपदा हरिये ।
जदपि मूल भव भूल आपनो, त्यागि न तेहि तरिये ॥१॥
इन्द्रिय जन्य भोग लालसा, रजु बँधि साँकरिये ।
तेहि छोरन विचार मोहिं लागत, मनहुँ जाउँ मरिये ॥२॥
इन्द्रिय रहित कल्पना जीवन, केहुँ विधि नहिं करिये ।
मन बुधि अहं परे अपने कहँ, कबहुँ न चित धरिये ॥३॥
पृथक प्रकृति बिनु लखे आतमा, किमि दोउ निरुवरिये ।
रवि कुल रवि स्फुरण तुम्हारेहिं, निज पर लखि परिये ॥४॥
मैं निर्बल समर्थ रघुवर तुम, निज करुणा ढरिये ।
आरति हरण शरण तुम्हरे किमि, माया जल भरिये ॥५॥

[२८]

मम मन पंक्षी अड्डा हेरै।
उड़ि बैठे निश्चिन्त जहाँ नहिं, बान बासना घेरै ॥१॥
गुर किय निश्चित सुषमन सुविधा, इन्द्रिन पट दै भेरै।
सुनै नाद अरु श्वास क्रिया दोउ, राम द्वु अक्षर टेरै ॥२॥
स्थिति ब्रह्म घोंसला घुसि पुनि, निर्विकल्प लह डेरै।
माया परे राम पद बसि पुनि, परै न दुख सुख फेरै ॥३॥

[२९]

सुरति श्याम जब उर वसि जात।
जग सुधि तिमि तिमि होत धूमिलो, जिमि जिमि वह गहिरात ॥१॥
निज पराय अन्तर नहिं सूझत, श्यामहि श्याम लखात।
समता सहित स्वामि भाव जग, अनायास ठहरात ॥२॥
जग लखि राम जगत जड़ उखड़ति, शेष राम रहि जात।
अपनेहुँ भीतर सुरति राम दृढ़, होत अहं बिसरात ॥३॥
आपु सहित निर्मूल जगत की, आइ बनत इमि बात।
सुरति राम हिय तस तस उपनत, जस उन गुन दरसात ॥४॥
राम चरित मानस समूह गुन, सीय राम विख्यात।
तेहि प्रसाद दोउ सुरति बसत पुनि, श्यामा श्याम समात ॥५॥

[३०]

चलब अब लखन राम सिय तीर।
चित्रकूट एकाग्र चित्त जहँ, सरित स्नेह बह नीर ॥१॥
शासित चरन गऊ इन्द्रिन निज, शुचि मन सौंपि अहीर।
सोहमस्मि गति सकल त्यागि मति, द्वैत गहे गम्भीर ॥२॥
सम्वल अटल मिलन की आशा, शका नहीं अधीर।
बेधउँ लक्षहिं निर्निमेष लखि, प्रेम प्रणव चढ़ि तीर ॥३॥
प्रकृति सिंह नाद भय नाहीं, मैं जब नहीं शरीर।
मारग अगम सुगम हाइहै अति चढ़ि कै अश्व समीर ॥४॥
पंथ पार देखिबै पथ जोवत, लखन सिया रघुवीर।
अपनइहुँ शिर धरत राम पद, मेटि अहं भव भीर ॥५॥

[३१]

रहि टुक पायेउँ स्वामि सँघरिया।
दायें लखन सिया जू बायें, तिन बिच स्वामि सँवरिया ॥१॥
जीना प्रान अपान नाम पग, आनँद चढ़ेउँ अँटरिया।
बिग्रह बैर आस त्रास सब, थकि रुकि रहे डगरिया ॥२॥
देश काल हम तुम जँह नाहीं, कर्म न खुली बजरिया।
केवल भास चेतना रमिये, आनँद चित्त नजरिया ॥३॥
कारण बिना मधुर ध्वनि सुनियत, बीना बेन किंगरिया।
स्वामी संग रंग आस्वादन, जग की विसरि खबरिया ॥४॥
गुरु सिख कृपा सिया स्वामिनि किय, अनुभव अनँद नगरिया।
बिनु सेवा अपनायो स्वामी, छमि मम दोष सगरिया ॥५॥

[३२]

अब हरि हारे गजहिं उबारो।
साथिन तजेउ थकेउ अपनेउ बल, तुम्हरइ बचेउ सहारो ॥१॥
निज कर्तव्य मानि आज्ञा तव जिमि सुग्रीव बिचारो।
लड़त रिपुहिं अति बली बालि सों, अब मानेउँ हिय हारो ॥२॥
आरति हरण शरण सुख दायक, अजहुँ न क्यों दुख टारो।
कतहुँ कटावत मोहिं गीध ज्यों, सद्गति देन बिचारो ॥३॥
समरथ तुम सब भाँति हितैषी, कस मैं कर्म शिकारो।
कृपानिधान सुसमाधान मोहिं, कृपइ विधान तुम्हारो ॥४॥

[३३]

मन जनि आत्म सुख तजि जाउ।
सकल मृग तृष्णा प्रकृति सुख, जीव बँधन उपाउ ॥१॥
बाह्य सुख भोगन प्रकृति किय, पञ्च कर्ण रचाउ।
जीव पंछी हेतु बन्धन, तिनहिं जनि पतियाउ ॥२॥
देह नहिं देही अहं जिव, देह साधर्न ठाँउ।
ताहि सुख कहँ मर न मूरख, उचित सेवा लाउ ॥३॥
पञ्च कर्णहिं जान बाहर, यहि तुम्हार॰ सुभाउ।
नाम हरि अरु चरित चिन्तन, ध्यान तिनहिं लगाउ ॥४॥
प्रकृति सम्भव काल त्रैगुण, देश मैं तोयँ भाउ।
ज्ञान नयनन निबुकि बन्धन, आत्म भाउ समाउ ॥५॥

[३४]

जौ मन मानइ जुगुति हमारी ।
तौ तव बिगड़ी कोटि जनम की, आजुहि सुधर अनारी ॥१॥
मंत्र जगावन राति अमावस, कातिक जिव निरधारी ।
अगहन शुक्ल पंचमी निशि तिमि, जिव ग्रन्थन गिरिधारी ॥२॥
भाव विदेह हृदय सिंहासन, रघुबीरहिं वैठारी ।
चित प्रतिबिम्ब अहं सिय थापइ, रघुवर बिम्ब मँझारी ॥३॥
यही पूर्ण शरणागति जानइ, निरभरता यह भारी ।
यही मुकुति निर्बान परम गति, प्रिय तोहिं कहहुँ बिचारी ॥४॥
पुनः पतन की भय तहँ नाहीं, राम करहिं रखवारी ।
सिया भाव सियपति अभिन्नता, सरल जुगुति हरि प्यारी ॥५॥

[३५]

मन बसि रहइ राम सिय रूपहिं ।
सीय नाँह के बाँह छाँह महँ, पहुँच न जग दुख धूपहिं ॥१॥
सुख समुद्र नित नव तरंग जहँ, रस आस्वाद अनूपहिं ।
परमानंदहिं करहि बास तजि, आसा सुख भव कूपहिं ॥२॥
जनम जनम दुख लहेउ अपरिमित, मोहि रूप सुख सूपहिं ।
रमइ बिलोकि रानि सागर छवि, रासि सिंगार सुभूपहिं ॥३॥

[३६]

जिव निज सहज स्वरूप सम्हार ।
चित्त भित्त प्रतिबिम्ब बनेउ तू, कारण बिम्ब बिचार ॥१॥
तव समक्ष प्रत्यक्ष बिम्ब प्रभु, करन तोहिं उपकार ।
अहं निज प्रतिबिम्ब लय करु, बिंव सिय राम उदार ॥२॥
सिय रघुवीरहिं करत स्मरण, तिन्ह स्वरूप हिय धार ।
निज व्यक्तित्व होइ विस्मरण, तिन्ह नित रहत निहार ॥३॥
मोर तोर मल धोइ प्रेम जल, सौंपि स्वामि जग भार ।
हो निश्चिन्त सुशरण राम अस, तू नहिं कछु न तुम्हार ॥४॥

[३७]

सियवर मोहुँ पहिनाउ चुनरिया ।
रखउ नाथ मरजाद बानि की, तकउ न मोरि हुनरिया ॥१॥

मम मन धोइ सानि स्नेह निज, रंगउ चटक चुनरिया।
आज्ञा सेंदुर प्रेम चूनरी, भाव अनन्य मुनरिया।।२।।
मानस सप्त काण्ड भाँवरि हम, चूड़ी नाम धुनरिया[1]।
ध्यान तुम्हार नित्य संग, मयके नहिं जाउँ पुनरिया[2] ।।३।।
मोह बासना सखियन त्यागउँ, सोउँ न प्रकृति गुनरिया[3]।
मोहिं निज करि पिय संगहिं राखउ, जीवन करउ सुनरिया[4] ।।४।।

[३८]

राघव राखउ अब शरनाई।
आश्रय एकइ सकल विश्व महँ, तुमहीं जिव पितु माई।।१।।
प्रकृति प्रकटि गुन पंच दोष रचि, तिन्ह वश कर्म कराई।
बन्धन योनि लक्ष चौरासी, करि तिहुँ लोक घुमाई।।२।।
करि करुना तुम्ह दीन्हेउ नर तनु, ज्ञान धाम भव नाई।
सोउ पाइ तिन्ह पाँचइ सेवउँ, मन बच करम सदाई।।३।।
भये बृद्ध मुक्ति तिन्ह बन्धन, औ कछु करउँ उपाई।
तौ मोहिं अधिक कठिन करि बाँधत, अपने बल बरियाई।।४।।
मन तिन्ह संग बुद्धि नहिं बरजइ अन्य कहाँ बल पाई।
करुनासागर सुहृद समर्थहिं, पाँय परउँ असहाई।।५।।

[३९]

दरसन तरसत बरसत नयन।
रूप माधुरी रस अगाधु री, तहीं मीन मन चयन।।१।।
जग छबि छोर न बसति बावरी, राम दरस जल अयन।
बिरह पीर छिदि धीर न धारत, समुझावत थक मयन।।२।।
दिन महँ दरस देत जो सकुचउ, आवउ आधी रयन।
दरस आस राति सब जगिहँउ, दिन करि लेहौं शयन।।३।।
खाइ तरस मम दरस तरसनो, रघुबर करुना अयन।
दीन दयालु आर्तिहर आजुहिं, दरस देन देउ बयन।।४।।
एकटक नेत्र क्षेत्र नहिं सूझत, स्वाँस मन्द गति भयन।
मूरति मधुर ध्यान महँ दीन्हो, दृग दीखन कहँ सयन[5] ।।५।।

१. नाम धुनरिया = नाम ध्वनि। २. पुनरिया = पुनः। ३. गुनरिया = गोंदरिया। ४. सुनरिया = सुन्दर। ५. सयन = संकेत।

[४०]

सुनि साकेतहिं बाजत बाजन ।
मन भयेउ मुग्ध बुद्धि भइ बौरी, निरखन कहँ तहँ राजन ॥१॥
गुरू कहेउ तन महल अँटारो, नित्य अयोध्या छाजन ।
सदा मधुर ध्वनि होत वहाँ सकि, करि माया निज काज न ॥२॥
ग्रीवा पीठ सीध करि बैठै, चहै जो आतम माँजन ।
श्वास नाम जप सुरति सुनै, अनहद बाजन सिरताजन ॥३॥
नासिकाग्र तकि वृत्ति बटोरै, पलक न तनिकउ भाँजन ।
दिव्य ज्योति विच राम श्याम तनु, जिव तिय सूझै साजन ॥४॥

[४१]

सहि नहिं पावहिं पीर पराई ।
जिव के पीर अधीर होत दुख, करुणामय रघुराई ॥१॥
संग जात वन पुरवासिन दुख, सोचत, गे घबराई ।
निज संकल्प सुलाइ तिंनहिं सुख, चल बन खोज दुराई ॥२॥
जन सुग्रीव दुःख नाशन हित, बालिहिं मारि गिराई ।
विकल लखत तेहि कहेउ जियावन, अचल शरीर कराई ॥३॥
देत मन्त्रणा रावण मारेउ, भ्राता चलेउ पराई ।
तासु मन्त्र साधारण मानेउ, लखन नीति बिसराई ॥४॥
रावण के काटे दशधनु अरु, रथ अनेक भहराई ।
मारेउ नहिं तेहि कहेउ जाउ गृह, करिबै काल्हि लराई ॥५॥
लख चौरासी योनि भ्रमत जिव, निज बल लखि न तराई ।
निज करुणा द्रवि देत मनुज तन, साधन भव उबराई ॥६॥
नाम सोधि करुणानिधान भल, सार्थक गौरि धराई ।
सीता जी प्रिय लगेउ नाम सोइ, कह जब पिय गोहराई ॥७॥
नापि सकै करुणासागर की, को अथाह गहिराई ।
सुख स्वरूप निज करत जीव लय, सहि नहिं प्रलय जराई ॥८॥

[४२]

वसउ मन मेरे श्री रघुनाथ ।
आदि शक्ति सीता जी बायें, लछिमन दायें हाथ ॥१॥
सिय जी कर तव नित सेवा लै, इन्द्रिन सहचरि साथ ।
लखन दलैं कामादि शत्रु सब, धारे धनु शर भाथ ॥२॥

माया करषि बरषि रघुकुलमनि, स्नेह अहेतुकि पाथ।
मग्न करउ अस "मैं" जग डूबइ, सुमिरन कहँ बच माथ ॥३॥
मम चेतना बनउ तीनउ निज, नाम रूप गुन गाथ।
बेगि हरहु त्रै ताप दीन की, तीनउँ दीनानाथ ॥४॥

[४३]

इहइ दक्षता जिव चतुराई।
जेहि निज निज सब रामहिं सौंपइ, रामहिं केवल ले अपनाई ॥१॥
तन धन धाम बुद्धि मन सौंपइ, सौंपइ सब जग जीव सगाई।
स्वारथ रहित व्यवस्था तिन्ह की, करइ जानि सियवर सेवकाई ॥२॥
हानि लाभ जग दुख सुख समता, रखइ जानि तिन्ह की अनिताई।
राम ध्यान व्यवधान दुःख लह, सुख सेवा नित भजन सुहाई ॥३॥
मान अपमान एक सम मानइ, जिन गुन दुरगुन गुन प्रकृताई।
राम आस भव रस सब त्यागइ, तजन मोह मल करइ उपाई ॥४॥
राम नाम गुन तन पुलकावलि, मल इन्द्रियन बहारि बहाई।
अभ्यन्तर मल प्रेम अश्रु धुल, मिलन निषाद बसिष्ठ बताई ॥५॥

[४४]

सिय पिय प्रीति रीजि जिव ते करनवाँ।
समुझि विराग जग, राग उन चरनवाँ ॥१॥
बैठे बन जानि जन, मुनि आचरनवाँ।
ब्रह्म दर्श चाहि मुक्ति, माया आवरनवाँ ॥२॥
जैसे जन वेष मुनि, राम हूँ धरनवाँ।
तजि राज बन चले, जन के करनवाँ ॥३॥
ध्यान धरि गीध मर, सिय के हरनवाँ।
खोजि कै निहाल किय, पूर्व ही मरनवाँ ॥४॥
जन हित हते बालि, निश्चर तरनवाँ।
राखेऊ सुकंठ औ, विभीषन सरनवाँ ॥५॥
मनु तप किये चार, वपु ही धरनवाँ।
प्रेम पुरवासी कपि, कोटिहूँ करनवाँ ॥६॥
संकट समेटि कर, पोषन भरनवाँ।
चेति मति सियपति, करि ले बरनवाँ ॥७॥

प्रेम पुरवासी :—
अमित रूप प्रगटे तेहि काला। जथाजोग मिल सबहिं कृपाला ॥

प्रेम कपि :—

अस कपि एक न सेना माहीं। राम कुसल पूँछी जेहि नाहीं॥

[४५]

हंसा उड़ि चलु अपने देश।

जोइ अनुभवत ज्ञान इन्द्रिन सों, सोइ मायाकृत भेष॥१॥
तन मन बुद्धि देश नहिं ठहरइ, पइहइ अमित कलेश।
चित अहमितिहुँ देश नाँघि चलु, जहँ नहिं दुख लवलेश॥२॥
नहिं त्रिताप को गम्य तहाँ नहिं, काल पकरि सक केश।
नहीं अविद्या अंधकार तहँ, धाम राम राकेश॥३॥
सब विधि खैर कोइ गैर नहिं, सब कोइ अपनहिं वेष।
आत्म हंस तहँ रमइ मधुर रस, चह करु राम प्रवेश॥४॥

[४६]

भयो लालसा कि लखूं राम के चरनवाँ।
कौने बिधि मिलैं राम, तरसै परनवाँ॥१॥
दीन बन्धु दया सिन्धु, आरति हरनवाँ।
आपु ही बनेउ उपाय, दीन के करनवाँ॥२॥
मिटि जइहैं नाम रूप, होत ही मरनवाँ।
छिपि जइहैं पन्च भूत, अपने करनवाँ॥३॥
मिटिहइ न टेकु नेकु, जिय जो धरनवाँ।
चातक ज्यों राम राम, रटिहइ परनवाँ॥४॥
सुधि वुधि जब कर, प्रकृति हरनवाँ।
चेतना बसइहौं नित, चेतन चरनवाँ॥५॥
राम पद नाव एकमेव, भव तरनवाँ।
जानि मति दृढ़ करि, लीन्ही है बरनवाँ॥६॥
काल कर्म गुन स्वभाव, मोहिं न डरनवाँ।
कृपासाध्य सुनि राम, तकेउँ तव सरनवा॥७॥

[४७]

धुर उड़ि चल गुर कोइ गुरु गावै।

दाना नाना वृत्ति बाह्य जग, चिड़िया चुगत उड़ावै॥१॥

सुखद बिछौना स्थिर बैठे, जेहि आसन सुख पावै।
ग्रीव अरु पीठ रीढ़ सीध रखि, ठुड्डी हृदय जमावै ॥२॥
नासिकाग्र एकटक ताकै, अनहद सुरति लगावै।
स्वाँस जात "रा" आवत "म" कह, मन प्रति स्वाँस लखावै ॥३॥
जगत शून्य लागै यहि साधन, सुधि तन तनिक न आवै।
केवल रहै चेतना कोउ हम, हंसा इमि उड़ि जावै ॥४॥
साधन सिथिल पंख मो सम गिरि, दोष न जतन जनावै।
राम भक्ति अवलम्ब पंख जमि, हंस न भव भरमावै ॥५॥

[४८]

परमादरणीय गुरुदेव अनन्त श्री सूर्य प्रसाद जी महाराज का लिखवाया हुआ, अपने जेष्ठ बन्धु श्री ओंकार नाथ द्विवेदी जी द्वारा प्राप्त, राज योग के अनाहतनाद के दस भेद, तथा दसों स्थितियों में प्राप्त विभिन्न दशायें।

—: श्लोक :—

चिणीति प्रथमे नादं, चिचिणीति द्वितीय के ॥
घंटा नादं त्रितीये च, शंख नादश्चतुर्थ के ॥
तंत्री पंचके नादं, षष्टे ताल प्रचक्षते ॥
वंशी नादस्य तथा चान्यो, मृदंगानां तदनंतरम ॥
भेरी नाद तथा तत्र, दशमे अभ्र समोभवेत ॥

चिचिणी प्रथमे देहो, द्वितीयो गात्र भंजनम ॥
त्रितीये खेदनं याति, चतुर्थे कंपते शिरः ॥
पंचमे स्रवते तालुः, ऽमृतं दिव्य रूपिणम ॥
मुनचाऽमृतं तथा षष्टे, वृद्धोपि तरुणो भवेत ॥
सप्तमे चास्ति विज्ञानम, परा वांचा अष्टमे तथा ॥
नवमं योगिनो देहे, पुणों गंधो भवत ध्रुवम ॥
नवमं च परित्यज्य, दशमंत्रः समभ्यसत ॥
दशमं ब्रह्म संप्राप्य, निर्वाणमभिगच्छति ॥

[४९]

जनपद सुल्तानपुर के एक अनुभवी पंडित जी द्वारा प्राप्त राजयोग साधना विधि अनाहत नाद के दस भेद तथा नाद के अनुसार दस विभिन्न स्थितियों का वर्णन :—

—: पद्य में :—

पद्मासन या करै सिद्धि आसन मन लाई।
मेरु दण्ड सम करै चिबुक उर देइ लगाई ॥१॥
नासा पर करि दृष्टि लखै त्रिकुटी को ध्याना।
स्वास स्वास प्रति लेइ राम को नाम सोहाना ॥२॥
तब सो मिलै मिठास आस आगे को होई।
अग्नि फूल की सदृस प्रथम झरि आवत सोई ॥३॥
कछु दिन में लखि परै दीप की ज्योति सोहाई।
पुनि तारन में होय विन्दु द्युति परत लखाई ॥४॥
शनैः शनैः पुनि चन्द्र सूर्य बहु परत लखाई।
सहस कमल पर परमातम पुनि दरस देखाई ॥५॥
बड़ी विरह की ताप मिटी मन मोह महाई।
झिलमिल झिलमिल जगत तेज मय भासत जाई ॥६॥
जलनिधि भीतर गये सकल दिशि जलहि देखाई।
तिमि आनँद चहुँ ओर कछुक बरणो नहिं जाई ॥७॥
दस विधि अनहद नाद तहाँ बाजत बहु भाँती।
प्रथम भँवर गुंजार करै पुलकित वपु पाँती ॥८॥
दूसर है पर नाद सुने चित आलस आवै।
तीसर है धुनि शंख प्रेम सुनि हिय उमड़ावै ॥९॥
चौथा है धुनि घंट सीस घूमत जेहि कारन।
पंचम है धुनि ताल अभी बरषावत सारन ॥१०॥
छठो मुरलिका नाद कंठ तर परम सोहाई।
सप्तम भेरी नाद सुनत छवि बाढ़त जाई ॥११॥
अन्तर जामी होय बात गति दूरि सो जानै।
अष्टम नाद मृदंग सुने गति काल पिछानै ॥१२॥
नवम नफीरी नाद अगोचर सुनतै होई।
चाहै जहँ चलि जाय ताहि नहिं देखै कोई ॥१३॥
होय देह की दशा सूक्ष्म तेहि कोउ न जानै।
दसमो केहरि नाद सुनै अहमिति नहिं मानै ॥१४॥
सकल ग्रन्थि कटि जायँ रूप ब्रह्महि को होई।
सतचित आनँद रूप होइ सब कामहि खोई ॥१५॥

जिमि सागर के गये सकल जल सागर होई।
जिमि अग्नी सँग जरे वस्तु सब अग्निहि जोई ॥१६॥
तिमि ध्यानी हो जाय ध्यान एकान्त बखाना।
अल्प अशन अनुरक्त शान्त रस में मन प्राना ॥१७॥
निश्चल कर सब अँग मूंद नव द्वारन को नित।
सुनै सुरत ते शब्द भाँति बहु योग मार्ग मित ॥१८॥
जो चाहै यह प्रेम ध्यान यहि भाँति लगावै।
पूछि लेइ गुरु पास भेद तब याको पावै ॥१९॥
करै प्रेम मन भूरि इष्ट को जपै सदा ही।
सदा सर्वगत ईस जान के भेद मिटाही ॥२०॥

[५०]

लागि लगन मोहिं राम मिलन की।
वह न मिलहिं तौ हमहीं ढुढ़िबै, छाँड़ि सुभाव गिलन की ॥१॥
जौ लौं मिलैं न अवसर देइहौं, मन कहुँ अनत हिलन की।
मोहिं महुँ छिपे तों खोज लगइहौं, मन चित अहं जिलन की ॥२॥
जगत कर्म फटि रह अकाश जिमि, चिन्ता करि न सिलन की।
सुरति बसइहौं लखन राम सिय, सुधि जिन भिलनि भिलन की ॥३॥
स्वामि सुभाव भरोसो मोहिं रुचि, राखन जनन दिलन की।
उदित भानु कुल भानु होहिं सुधि, जन हिय कमल खिलन की ॥४॥

[५१]

सियाबर कस न देहु अस ठाम।
मम चेतना बसइ नित तुम महँ, सत-चित आनँद राम ॥१॥
चहउँ न प्रकृति स्थिती लहि तनु, हाड़ माँस अरु चाम।
अचल वास तव पृथक ध्रुवहुँ सन, नहिं मेरो कछु काम ॥२॥
छणिक भोग सुख जोग देत मोहिं, प्रकृति घुमायो घाम।
होइ अब दीन सरन सुनि आयेउँ, करुणानिधि तव नाम ॥३॥
तुम तें पृथक न होहुँ एक छिन, नित तुम महँ विश्राम।
तद्यपि भिन्न भान हो स्थिति, नित रस लहन ललाम ॥४॥
सुरति गंग बहि मिलउँ सिन्धु तोहिं, नाम न राखउँ थाम।
राम नाम रस सुरति निरन्तर, बस सिय पद अस ग्राम ॥५॥

[५२]

जिव लखु भगत भगवत प्रेम।
दोउ चातक दोउ स्वाती, अचल दोऊ नेम ॥१॥
भरत नित भज राम सीतहिं, सिव मनावत छेम।
सुभ सगुन से राम सिय गुन, भरत आवन टेम ॥२॥
राम पद दरसन विभीषन, तजेउ लंका हेम।
राम कह तजि धाम आयेउं, बिबस होइ तव पेम ॥३॥
देव होइ कपि भालु जनमे, तकहिं आवन टेम।
होत अगनित मिलत प्रति कहँ, राम पूंछत छेम ॥४॥
राम धावत लखन पुनि पुनि, चह कपट मृग हेम।
धाव राम अमोघ शर कर, लखि न निज पद खेम ॥५॥
कुँभकरनहुँ राम निरखन, समर उपजेउ प्रेम।
सेन रिपु हति निज किये पीछे निबाहेउ नेम ॥६॥
राम जन होइ राम जोड़ै, जीव तुमहूँ प्रेम।
नेह निर्वाहिन सदा, रघुनाथ अविचल नेम ॥७॥

[५३]

जिव पंछी तन तरू नसाई।
उत्पति जड़ कोटर जहँ बैठेउ, काल व्याल तहँ आई ॥१॥
तन तरु नसन पूर्व ही ढूंढ़इ, बैठक नित्य सुहाई।
निकसत पैठत निरत नश्वर तरु, जौ होइ गेउ उकताई ॥२॥
होइ सरनागत या तो बैठउ, राम धाम अमराई।
या मल धोइ राम पद पैठउ, जिव निज नाम गँवाई ॥३॥
रामहिं लागि उड़त जिव पंछी, निज बल जब थकि जाई।
भक्ति मुक्ति कोउ कर करुणाकर, गहि हिय लेहिं लगाई। ४॥
मिलन जतन स्फुरन् करत हिय, बल हित सफल पठाई।
मोहिं लखि परत साधना साधक, साध्य एक रघुराई ॥५॥

[५४]

हृदय अवध प्रगटउ श्री राम।
दश इन्द्रिन पति जिव दशरथ मति, तिय कौशल्या नाम ॥१॥
तव पद राग याग पुत्रेष्टी, संयम व्रत निष्काम।
हवन वृत्ति धृति सत्य पात्र मन, मंत्र प्रान श्रुति साम ॥२॥

प्रेम विराग अहेतुकि सेवा, सँग तिहुँ बन्धु ललाम।
भव बन्धन भव धनुष तोरि सिय, भक्ति लाउ हिय धाम ॥३॥
विहरे बहुरि विराग भक्ति सँग, मन कानन अभिराम।
राग द्वेष ईर्षा खर दूषन, त्रिशिरा काम तमाम ॥४॥
कुंभकर्ण मेघनाद दोउ, हतउ क्रोध अरु काम।
अहं प्रवल रिपु रावन मारहुँ, लीलहिं करि संग्राम ॥५॥
भव कारन जग जिव मति टारन, बसहु नित्य हिय ठाम।
जीव अवनि प्रिय पुत्रि खानि सँग, भक्ति करहु विश्राम ॥६॥

[५५]

जिव रुकमिनि मन महल मझावै।
श्याम लाइ जो काम बनावइ, कोउ न समर्थ सुझावै ॥१॥
प्रकृति पिता सों कर्म बन्धु मिलि, मम सम्बन्धु बझावै।
बरन श्याम जिव किहेउँ तीय मति, कहि तिन्ह कहँ समझावै ॥२॥
श्याम योग अग्नि दिव्य रस, किमि जड़ अनिल बुझावै।
त्रैगुन भोग असुर सों व्याहन, मोहन प्रीति ओझावै ॥३॥
सुरति विप्र दुइ अक्षर चौठी, तेहि विरहाग्नि सिझावै।
दै पठवै कहि श्याम आइ झट, बिगड़ी मम सुलझावै ॥४॥
स्यन्दन प्रीति पहुँचि यदुनन्दन, असुर ब्याह उलझावै।
श्याम ब्रह्म रुकमिनी ब्याहि जिव, रस नव नित्य रिझावै ॥५॥

[५६]

केहि विधि राम निवाजिश करते।
राम कृपा के रूप विविध विध, सहज समुझि नहिं परते ॥१॥
दीन जानि जौ कृपा अहेतुक, राम नहीं चित धरते।
तौ ताड़का अहिल्या पाहन, मति किमि भव जल तरते ॥२॥
बन कहँ जात पयादे जौ प्रभु, ठाँव ठाँव न ठहरते।
तौ किमि मग बासी दरसन लहि, भव मग चलन विसरते ॥३॥
चित्रकूट वास करि रघुवर, जौ गिरि वन न विहरते।
तौ किमि भील बिहँग मृग जड़ तरु, तरतें राम निहरते ॥४॥
रिष्यमूक जौ गवनि बात ठनि, शठ बाली नहिं मरते।
तौ किमि दीन विहीन नारि कपि, सुग्रीवहिं दुख हरते ॥५॥
जौ समुद्र उतरन मिस तेहि नहिं, अग्नि वान धनु धरते।
जलनिधि जन्तु निरखि तौ रामहिं, भव निधि से न उबरते ॥६॥

जौ चढ़ि लंक दरस निश्चर हित, मारन मिस नहिं लरते।
तमोगुणी तौ अखिल निश्चरन, मुक्ति देन किमि सरते ॥७॥
युक्त दीनता प्रेम छाँड़ि जौ, साधन कोई करते।
तौ निज प्रानहुँ अधिक राम प्रिय, नहीं विभीषन करते ॥८॥
जौ निज मान प्रभाव राम बढ़ि, जन दुख दम नहिं भरते।
तौ आमन्त्रन तजत विभीषन मिलन न धावत भरते ॥९॥

[५७]

लियें दोउ ऐश्वरि माधुरि भाव।
ज्ञानी जन आदरत प्रथम कहँ, भक्तहिं दूजेहिं चाँव ॥१॥
प्रथमहिं जन प्रतिपालत दुष्टन, सालत मुक्ति कराव।
दूजे रचत ललित लीला, सम्मिलित होइ जन पाव ॥२॥
जे सकाम सेवहिं ते प्रथमहिं, नहिं अकाम लें नाँव।
रस माधुरी रसिक चाखैं नित, बसि अकाम प्रिय गाँव ॥३॥
दोऊ नित आचरैं मधुर रस, ऐश्वरि करहिं छिपाव।
निज ऐश्वर्य प्रकट कर तेहि बिनु, जब कहुँ चलै न नाव ॥४॥
प्रथम भाव दोउ जानन आवैं, दूजेहिं होत भुलाव।
माधुरि सँग ऐश्वरि लखाइ तब, परिचय करहिं जनाव ॥५॥
गुप्त अंग सम निजहिं छिपावत, प्रौढ़हिं तन न लखाव।
शिशु जन कहँ कछु बिलग न मानत, तिन सन कर न दुराव ॥६॥
परिजन चेत राम विलपत, सिय हनूमानान लौटाव।
निर्गुन ब्रह्म जीव दरसावत, अवतरि स्वयं स्वभाव ॥७॥
निर्गुन होत न जीव प्रभावित, कर्षत सगुन प्रभाव।
मोहिं लखि परत मुख्य कारन जेहि, निर्गुन अवतरि आव ॥८॥
ऐश्वरि महँ स्वामिता सामरथ, माधुरि जिव सम भाव।
सर्वेश्वर अवतरत मधुर होइ, जिव तू सोइ अपनाव ॥९॥
मन माधुर्य बुद्धि ऐश्वरि रखि, प्रेम अकाम बनाव।
लीला ललित जो कीन राम सिय, सुनइ गुनइ जिव गाव ॥१०॥

[५८]

जौ जिव तुम कहँ भगवत भावत।
माया नटिनि मोह रजु कसि किमि, कपि जिमि तोहिं नचावत ॥१॥

मृग तृष्णा जल विषय भोग खल, मृग जिमि जौ नहिं धावत ।
सहज शान्ति निज वृथा भ्रान्ति वश, मूरख तौ न नसावत ॥२॥
आत्म भाव तन जाल अविद्या, दाना भोग न खावत ।
तौ को बाँधि कर्म डोरि तोहिं, आवागमन करावत ॥३॥
अहं बुद्धि ऊपर जौ पामर, तनिकहुँ तू उड़ि पावत ।
तौ कस लासा लोभ फेंकि तोहिं, जिव खग प्रकृति फँसावत ॥४॥
भावाद्वैत उच्च कोटर जौ, अपनो बास बनावत ।
राग द्वैष शर काल भील कर, छुइ न बिहँग जिव पावत ॥५॥

[५९]

मम अद्वैत न ज्ञानिन भाई ।
अहं ब्रह्म अस्मि नाहीं यह, रामहिं अहं समाई ॥१॥
विस्तृत अहं न ब्रह्म मिटावइ, स्वयं न ब्रह्म कहाई ।
केवल राम सत्य भाव रहि, "मैं" मिथ्या मिटि जाई ॥२॥
डाका डारि ब्रह्म होत "मैं", एक "मैं" राम लुटाई ।
अन्तिम दशा दोउ एक अन्तर, निरस एक सरसाई ॥३॥
एक अहं असीम बनि बैठे, एकहिं जाइ हेराई ।
खाइ ब्रह्म कहँ एक अहं निज, एक दे ब्रह्म खवाई ॥४॥
ज्ञानिहिं विश्व स्वयं मय दीखत, भक्तहिं राम दिखाई ।
ज्ञानी स्वामीपन अपनावत, भक्त लेत सेवकाई ॥५॥
वह फल ज्ञान भक्ति फल यह तो, कीट भृङ्ग की न्याई ।
भक्त साधना सीता बनि, हिय पिय जा राम छिपाई ॥६॥
एक कठिन प्रत्यूह अनेकन, एक सहज सरलाई ।
सीता भाव राम अनुभव हिय, जिव अभिन्नता दाई ॥७॥

[६०]

अहं भाव केहि देश निवासी ।
यह तो प्रकृति जन्य मात्र भ्रम, जीव अविद्या फाँसी ॥१॥
जागृत स्वप्न सुषुप्ति बसै यह, तुरियावस्था नासी ।
देह आत्म भाव लौटे पर, प्रकटै जिमि जल घासी ॥२॥
कारन शूल भूल जीव सुख, आतम मूल विनासी ।
महा प्रलय भी बीज रूप रहि, करै जीव जग बासी ॥३॥

यहि निवृत्ति जौ बात चलावइ, करइ सकल जग हाँसी।
मोह निशा जग सोवत जागै, होवै गति विश्वासी ॥४॥
जाइ न जग्य घोर तप कीन्हे, दान किये धन रासी।
आत्म प्रकृति की कठिन ग्रन्थि छुट, अहं कृपा अविनासी ॥५॥

[६१]

सखि मोहिं सीता भाव सोहाई।
जग पितु गृह अपवर्ग सासुरे, कोउ पिय विनु नहिं भाई ॥१॥
लखि पिय आनन सहि दुख कानन, सुखी चकोरी नाँई।
पिय के काज वियोग लंक बसि, हिय सुमिरन पिय लाई ॥२॥
पिय यश कारन हृदय विदारन, सह वियोग बन छाँई।
जगत परिस्थिति पिय इच्छा महँ, निज रुचि रहै मिलाई ॥३॥
हिय नयनन पिय मूरति देखइ, नित कर नाम जपाई।
बाह्य वृत्ति बर्तइ जग देखत, मन रह नित पिय ठाँई ॥४॥
सुरति राम पिय होइ प्रगाढ़ हिय, अहमिति देत भुलाई।
सीता साधन राम साध्य सन, देत अभिन्न बनाई ॥५॥

[६२]

साहेब सनमुख सोच न और।
अनि विचार तजि ताकु राम मन, चन्द चकोरहिं तौर ॥१॥
जटा मुकुट अलकावलि सुन्दर, माथे चन्दन खौर।
मोहन मदन मुखाकृति मुसकनि, चितवनि चित को चौर ॥२॥
जीव जन्म ते बिछुड़े प्रीतम, मिले ताकु करि गौर।
यह हनुमत अलभ्य पद लहि मन, अचल होहिं यहि ठौर ॥३॥
सुरति टिकाइ राम मूरति मन, कर कतहूँ नहिं दौर।
तजि चिन्ता चितवइ चिन्तामनि, भक्त वछल सिरमौर ॥४॥

[६३]

कृपा वृष्टि मोहिं दीन्हेउ बोर।
राम श्याम घन वरसत दामिनि, सिय संकेत अँजोर ॥१॥
लखन पवन झकझोरि बहत मोहिं, भँवत चारिउ ओर।
नीचे छाया मन कहँ माया, मिलत न कतहूँ ठोर ॥२॥
राग द्वेष ईर्षा मद साथी, छाँड़ि भगे करि शोर।
भीगे वसन व्यसन जे बाँधे, गलिचुअ बिना निचोर ॥३॥

काम रंग उतरेउ अरु क्रोधउ, ताप भयो तनु थोर।
धूलि लोभ मोह मद मत्सर, धुलि चल वर्षा घोर ॥४॥
आत्म भाव तन वसन गील, कर कृपा राम लिय छोर।
वसन अमल मति दिये रंगि रति, नाचउँ मोर विभोर ॥५॥

[६४]

सहज प्रीति हैं रीझत राम।
जैसी उनकी कृपा अहेतुक, चहत प्रीति निहकाम ॥१॥
स्वाती सन जिमि नेह पपीहा, ज्योति सलभ कर काम।
स्वाभाविक यह चह पवि डारै, वह चह जारै चाम ॥२॥
अर्थ धर्म अरु काम कामना, नहीं मुक्ति हरि धाम।
अलसावै नहिं सुख सीतल जल, जरै न लहि दुख याम ॥३॥
नहि घटि बढ़इ सदा नित नव रस, लगि फल ललित ललाम।
चुम्बक हरि चुम्बन आकर्षन, बन जग लौह निकाम ॥४॥
नहि उपकार जनावत आपन, नहि चाहै कछु दाम।
एकाङ्गी रति रखै राम सो, चाहै बरतै बाम ॥५॥
प्रेमास्पद रुख देखि काम कर, चहै न होवै नाम।
अति दुख नरक डरै नहि चाहै, स्वर्ग सकल आराम ॥६॥
प्रेमास्पद प्रसन्न रह जाते, सोइ कर आठों याम।
निज सुख दुख कर सुधि न प्रेम जेहि, कर बिकाइ तेहि राम ॥७॥

[६५]

मज्जइ मन पद राम त्रिबेनी।
जहँ नित बस शिव मुनि जन मन जो, जीव परम गति देनी ॥१॥
ब्योम बरन पद पीठ ब्रह्म चिह्न, जीवन-मुक्ति निसेनी।
यमुना प्रान ज्ञान राम मय, करमन करत चवेनी ॥२॥
विशद ज्योति स्वामिनी प्रकृति जो, जननि गंग नख श्रेनी।
सीता भक्ति स्वरूपा जन कहँ राम प्रेम रस भेनी ॥३॥
तरवा तरुन अरुन बारिज बर, बरन बिराग बसेनी।
लखन जीव गुरु तत्व सरस्वति, जगत प्रपंच नशेनी ॥४॥
रेखा चौबिस अवतारन हरि, जग जिव भव सरि खेनी।
पंच दोष वश करत ध्यान जिन, गिध हरि रूप भयेनी ॥५॥
भइ तप पुंज परसि पद रज जेहि, गौतम रिषी घरेनी।
दंडक बन भेउ मुक्त शाप, गलि छाप पाहनउ लेनी ॥६॥

सत्य ब्रह्म मिथ्या जग ज्ञानहिं, देन सत्य कर काम।
सत गुन नासि जीव मन लय करि, देत निजातम ठाम ।।२।।
तमो गुणी जीवन मन दोषी, सदा चलत मग वाम।
शिव गुन रामाकार करन तेहि, अहं हरत संग्राम ।।३।।
गुन सुन्दर त्रैलोक्य विमोहन, अतिशय ललित ललाम।
राम रूप लखि जीव रजो गुन, तज रखि हिय अभिराम ।।४।।
ज्ञान विराग भक्ति क्रमशः प्रद सर्वोपरि पद राम।
सगुन ब्रह्म तारक तेहि कारन, भयो विदित तिन्ह नाम ।।५।।

[६९]

रघुबर नयनन नेह भरो।

जेहि देखत सोइ अपनो पावत, विश्व सृष्टि सगरो ।।१।।
नेह नीर कितनो गँभीर, लखि नाही काहु परो।
रिपु दल बेड़ा बैर थहावत, डुबि भव-सिन्धु तरो ।।२।।
नमता ममता इतना समता, सबहिं समान करो।
जो जटायु कह सोइ वाली कहँ, अविचल देह धरो ।।३।।
मानत नहिं अपराध प्रभावित, होइ जो हृदय धरो।
मारत नहीं निकट मारीचहिं, दौरत दूरि दरो ।।४।।
पूर कामना कीन सुपनखा, अवगुन जदपि भरो।
प्रेम तपस्विनि त्यागि गोपिकन, कुवरी रहे घरो ।।५।।
निर्मल नेह विलोकि सुजन जल, नयनन राम झरो।
सोइ सरजू बनि प्रगट भूमि जिव, परसत भव उबरो ।।६।।
जन सुधि नजर राम नित्य धर, नहिं कबहूँ विसरो।
सिया राम जिव जगत लखत नित, बसइ राम नगरो ।।७।।

[७०]

राम दरस अमोघ जिमि बान।

दूनउँ तें छुटकारा नाहीं, दूनउँ बेधत प्रान ।।१।।
छोड़त बान जीव पीछा करि, तेहि कर मुक्ति प्रदान।
दरसन मारा मुक्तिहुँ तड़पै, दरसन तासु निदान ।।२।।
दरस प्रभाव लुभाव सुपनखा, नसे नासिका कान।
नहिं प्रभाव मिट मिटे देह युग, कुब्जा भई प्रमान ।।३।।

माया को प्रभाव अति भारी, जिव नचाव निज मान।
ध्यानहुँ राम स्वरूप सुरति ते, अहमिति करत पयान ॥४॥
दरसन कठिन तऊ सियवर मन, कृपा निधान सुजान।
दरसन आर्त दसा तव रुचि लखि, दरसन देइहइँ दान ॥५॥

[७१]

धनी कौन जो लेइ मोल मन।

जगत स्वर्ग अपवर्ग सकल सुख, सुन्दरता समुद्र जेहि एक कन ॥१॥
कौन विशाल भेदि जेहि बाहर, मन न जाइ सक भागि एक छन।
सोइ असीम देश काल जेहि, बसत उदर भीतर विराट तन ॥२॥
काको गुन उत्कृष्ट भजइ जेहि, मन नित होइ असंग इन्द्रियगन।
जासु चरित आदर्श मान जग, सहज नेह जेहि दीन हीन जन॥३॥
सर्वोत्तम सौन्दर्य काहि कर, अंग प्रत्येक भिन्न आकर्षन।
वशीकरन जेहि रूप हरेउ मन, सूर्पनखा त्रिसिरा खर दूषन ॥४॥
कौन जो शरनागत नहिं त्यागत, अपराधी असीम पापी घन।
सोइ निहाल जेहि किय निषादपति, भील भालु सुग्रीव विभीषन ॥५॥
को सुख सिंधु सकृत सीकर जेहि, फैलि फूलि फल भो सुख त्रिभुवन।
सोइ राम जेहि रमन हेतु कर, योगी सिद्ध मुनीश्वर साधन ॥६॥
कौन धनी करनी कि अभय कर, नमनी सकृत सकल फल पापन।
सोइ जेहि वरण किहेउ अनन्त शिव, आदि शक्ति सीता जीवन धन॥७॥

[७२]

सपना अपना मर्म बताई।

ब्रह्म जीव माया कर लक्षन, हिय संकेत जताई ॥१॥
अपनहिं मन सपने में कितने, वस्तू व्यक्ति बनाई।
हितकर कोउ अनहित वर्तत जेहि, सुख दुख पाइअ भाई ॥२॥
जागत मन रचना सपना सब, मिथ्या दृश्य मिटाई।
तैसेहि जागृत जगत सृष्टि हरि, मन कर मानु झुटाई ॥३॥
स्वप्न दृश्य झूठ जिव जानत, जब वह जाइ जगाई।
जागृत जानइ जग प्रपंच सत, सोइ माया न भगाई ॥४॥
उदय ज्ञान मोह निशि जागे, जागृत जाइ हेराई।
अपनहिं सर्व भूत मय देखइ, तहुँ माया न सिराई ॥५॥
जिव ते माया बली तजन तेहि, गहइ राम सरनाई।
किये समर्पन अहं राम एक, रह भ्रम जीव नसाई ॥६॥

मायातीत अवस्था सुखमय, दुख निवृत्ति अतिसाई।
राम स्वरूप मग्न होहि मन, राम रहैं मैं जाई ॥७॥

[७३]

बिकि गये राम जनन के हथवा

धरि शरीर धरती पर आये, धारि विनय मनु मथवा ॥१॥
हारहिं खेल जितावहिं जन कहँ, भरत करत गुन गथवा।
विश्वामित्र चरन निशि चापहिं, सुवन सुमित्रा सथवा ॥२॥
वन कहँ जात संग होइ लागे, अवध नारि नर जथवा।
सत्य स्वरूप निवारन तिन दुख, चोरि चलेउ चढ़ि रथवा ॥३॥
मग पुर बासिन रुचि राखन हित, रुकत जात बन पथवा।
तजि आतिथ्य मुनिन शबरी कर, खावैं बेर कुपथवा ॥४॥
दोषारोपन बधेउ बालि जेहि, सोइ सुकंठ कर कथवा।
कबहूँ तेहि मनहूँ नहिं आनेउ, शुचि चरित्र सिय नथवा ॥५॥
रिनियाँ होइ पवनज हिय बैठे, गिरवाँ धरि धनु भथवा।
दाँव धरत सिय बिनु पूँछे पिय, रख अंगद पन तथवा ॥६॥
राम बानि यह सानि स्नेह रस, शिव चित मन लथपथवा।
तेहि पावत अवकाश न जीवन, भा विनाश मनमथवा ॥७॥

[७४]

निर्गुन निरखि न निज निपुनाई।

त्रिगुन बँधे जिव मुक्त करन हित, सगुन स्वरूप बनाई ॥१॥
माया जनित प्रकृति रचि विषयन, गुन जिन जीव लुभाई।
अवतरि ब्रह्म लखावत निज महँ, तेइ गुन अमित बढ़ाई ॥२॥
सहजहिं इमि आकर्षित जिव मन, तिरगुन जाइ हटाई।
गुन्जा गहि रख कौन मन्द मति, चिन्तामनि जब पाई ॥३॥
सगुन ब्रह्म गुन जिव लुभाई मन, सूक्ष्म होत नित जाई।
निर्गुन महँ स्थिति अहमिति दै, अपना जाइं छिपाई ॥४॥
सगुन ब्रह्म गुन वृक्ष होत लय, निर्गुन बीज समाई।
तस तस गुन अवतार रमित मन, जिव आ राम रमाई ॥५॥

[७५]

मन बन राम चले नित जात।

चित्त प्रदेश प्रकाश प्रेम मति, दृष्टि द्वैत दरसात ॥१॥

आनन चन्द्र नेत्र खंजन मृग, तन छबि जलद लजात ।
मुसकनि मधुर नसावत सब दुख, चितवनि सुख सरसात ॥२॥
बोलनि अपनावत संकेतन, संशय करत नियात ।
मिलनि मनहुँ बिछुड़े बहु दिन के, सगे निकटतम नात ॥३॥
अहंकार सम्भव द्रुम दुहुँ दिसि, छाया करत झुकात ।
सुमन भाव झरि पथिक पगन तरि, कर मग मृदुल सोहात ॥४॥
नाम सुरति खग कह स्वर स्वाँसा, दृग मृग टर न तकात ।
चित्र रेख चित लेख बनेउ नित, राम पथिक अपनात ॥५॥

[७६]

जन हित राम लगत दुख मीठो ।
प्रकृति विलास विश्व सुख निज सुख, मिलि मिठास तेहि सीठो ॥१॥
अवध राज जहँ सकल साज सुख, रघुबर दीन्हो पीठो ।
बन दुख खानि जानि जन को हित, कीन्हो हरषित हीठो ॥२॥
जग सुख तजि जेहि राम मान सुख, तेहि जन नित रख दीठो ।
राम विसारत हिय अवगुन जन, हित सुधि बाँधत गींठो ॥३॥
स्वामि बानि पहिचानि होत जन, आवागमन सुठीठो ।
जन बिचारि केहि भव उबारि दिय, निज पुर राम न चीठो ॥४॥

[७७]

तू मन मूढ़ अजहुँ नहिं जागेउ ।
उदित मोह रवि त्रिविध ताप तरि, प्रखर घाम तोहिं दागेउ ॥१॥
चारा चारु भोग गुहि कँटिया, संसृति यंत्रहिं लागेउ ।
रुचि इन्द्रिन रचि माया फाँसत, होइ सचेत नहिं भागेउ ॥२॥
दृश्य प्रपंच घोर मृगतृष्ना, दुःख सहतहूँ रागेउ ।
निज सुख सिन्धु न चितयेउ कबहूँ, जेहि सुख सुधा न खाँगेउ ॥३॥
जगत स्वर्ग अपवर्ग सकल सुख, वृथा जानि नहिं त्यागेउ ।
करुनाकर श्रीराम तृषित होइ, भक्ति अमिय नहिं माँगेउ ॥४॥
राम नाम चिंतामनि स्वाँसा, प्रान अपान न तागेउ ।
प्राननाथ अमृत चरित्र रस, अहं भूनि नहिं पागेउ ॥५॥

[७८]

बसहु हिया रे राम पियारे ।
दायें लछिमन परम हितैषी, बायें मातु सिया रे ॥१॥

बिस्मृति भाड़ झोंकि सुधि सगरे, बारउँ सुरति दिया रे।
कुशल निवारि वयारि बासना, निरखउँ नित उँजियारे ॥२॥
दोष शलभ जरि जायँ दीप लौ, काम क्रोध बरियारे।
तव दरसन स्मृति अखंड लौ, रह बनि प्रान हिया रे ॥३॥
काम काठ जरि बिरह अग्नि हिय, प्रकटे भे दुखियारे।
कृपा वृष्टि दरसन सवेग करु, सुखिया जन अँखिया रे ॥४॥
कारज तव प्रसन्नता कारन, सँग इन्द्रिन रनियारे।
अहमिति लज्जा तजि नाचउँ बनि, जनिया रघुमनिया रे ॥५॥

[७९]

सियापति भूपति जगत नचनिया।
होइ असंग नित्य देखहिं नृत, माया नटिनि सृजनियाँ ॥१॥
विधि हरिहर नचाव कठपुतली, कोउ न बचाव अवनिया।
पाप पयोधि मीन मन मूरख, तेरो कौन कहनिया ॥२॥
नाचन दुख छूटन जौ चाहै, मानै मोर बचनिया।
हरि प्रतिमा आगे तू नाचै, पगन पहिरि पैंजनिया ॥३॥
मान छाँड़ि बनि अबला नाचै, खीनी कटि लचकनिया।
दया प्रेम सियबर रिझाइ लहु, संग अभंग रहनिया ॥४॥
गाव चरित बिकाव दम्पति गुन, भाव रूप लावनिया।
माया हरि निज वृत दाया करि, देइ राम की रनिया ॥५॥

[८०]

माया कृपा राम मुसुकानि।
मायहुँ मोहिं अनुग्रह सूझति, प्रकटति ताहि लुकानि ॥१॥
मधुर राम को मायहु मधुरी, लीला मधुर सोहानि।
अन्त सुखद सब खेल हँसी यह, काहू नहीं कोहानि ॥२॥
सतिहिं राम कर ज्ञान नहीं कछु, गइ अखिलेश्वर जानि।
जीतन काम न बल जिव माहीं, नारद लीन्हेउ मानि ॥३॥
कौशल्या अविचल विवेक लह, काग भक्ति सुख खानि।
राम चन्द्र छबि बढ़ी बिलोकिय, माया क्वरिद हानि ॥४॥

[८१]

जिव जपि नाम राम रमाइ।
परे माया प्रकृति छाया, राम ब्रह्म समाइ ॥१॥

त्यागि तनु सुधि राम नामहिं, श्वास श्वास जपाइ।
श्वास गति अति छीन भे जपु, नाद संग मिलाइ ॥२॥
नाम रस मन बुद्धि चित अरु, सुरति देइ घुलाइ।
एकता स्थापि नामहिं, अहं देइ भुलाइ ॥३॥
विलग चलि तू जिव कहायो, राम होइ घुमाइ।
नाम होइ नामी अभिनता, यहि उपाय कमाइ ॥४॥
सत्य होइ नित राम स्थित, काल बाधा जाइ।
ब्याध ते बनि ब्रह्म किमि गे, बालमीकि बताइ ॥५॥

[८२]

हमरी तुम्हरी बात न भाई।
शंकर रामानुज माधव मति, एक एकहिं टकराई ॥१॥
राम चरित मानस महँ दीनहिं, जैसी पड़ी सुझाई।
राम कृपा बड़ि निज मति लघु गह, जोइ सोइ तुमहिं सुनाई ॥२॥
वालमीकि मत राम तत्व जिव, निज वल जानि न पाई।
केवल राम जनाये जानत, तुरत राम होइ जाई ॥३॥
राम भये जिव राम तत्व पुनि, जिव ह्वै कहै न आई।
तथ्य करत यह सत्य सिद्ध, होइ राम न जिव लौटाई ॥४॥
शंभु कहत रामहिं जानत जग, सपना जाइ हेराई।
सिद्ध करत भ्रम जग दर्शन बनि, रामइ विश्व लखाई ॥५॥
तुलसी कह जग आपु सहित जब, लगि निर्मूल न जाई।
तब लगि कोटि कलप उपाय करि, मरिय तरिय नहिं भाई ॥६॥
सच सन्देश जीव जग झूठा, रामइ रहत सदाई।
रामइ सत्य रूप होइ भासत, जगत जीव समुदाई ॥७॥
माया ब्रह्म न जान आपु कहँ, तब लगि जीव कहाई।
एकहुँ जाने होत ब्रह्म जिव, मिटत द्वैत दुचिताई ॥८॥
जौ लौं जीव न ब्रह्म काग[1] कह, जिव बहु इक रघुराई।
तनु सेवक जिव अंश आतमा, भाव ब्रह्म कपि[2] गाई ॥९॥

[८३]

भक्त भक्ति भगवंत एकाई।
चारि प्रकार भक्त महँ ज्ञानिहिं, रघुबर दीन्ह बड़ाई ॥१॥

---

१. काग=भुशुण्डि जी। २. कपि=हनुमान जी

भाव सहित श्री रामचरित, मानस जो सुन मन लाई।
राम चरन रति अथवा पद, निर्वानि लहै जो भाई ॥२।
पद कैवल्य हेतु नहिं केवल, ज्ञान विराग उपाई।
राम चरित सुनि राम अनुग्रह, पाइअ सोइ बरिआई ॥३।
भेद भक्ति आवश्यक तनु, प्राकृतिक दिब्य कोउ पाई।
मुक्ति छाँड़ि सायुज्य, राम जिव, औरन भेद सदाई-॥४॥
गीधराज शरभंग मुनीश्वर, पूर्व कि हरिपुर जाई।
रामहिं माँगेउ भक्ति अचल जेहि, भेद प्रत्यक्ष लखाई।५॥
लह सायुज्य भक्त ज्ञानी क्रम, परि न ज्ञान कठिनाई।
राम स्वरूप सिन्धु जेहि मिलि कर, जिव सरि रूप गँवाई ॥६॥
जन चेतना होत राम जब, निज अस्तित्व हटाई।
सोइ विलास भेद यह जानिय, वारि वीचि की नाँई ॥७॥
सृष्टि ज्वार लय भाटा मानिय, सुख सागर रघुराई।
भक्त बीचि बनि रखत राम रुचि, ज्ञानी वारि बनाई ॥८॥
एकइ ब्रह्म जिवहु बहु बनजिमि, एक रवि बहु घट छाँई।
भ्रम घट भे विनाश देखिये, रवि प्रतिबिम्ब एकाई ॥९॥

[८४]

वह रस कौन नित्य जो चीखै।

निर्भर जो न व्यक्ति वस्तु पर, दैव न माँगै भीखै ॥१॥
बाह्य जगत की वस्तु न भाई, भीतर पैठि परीखै।
राम अनुग्रह ऐनक लागत, अपने ही हिय दीखै ॥२॥
मुक्ति खानि भ्रम हानि निजानँद, दानि न दशा सरीखै।
मिल अभ्यास निरन्तर निरखन, राम हृदय जौ सीखै ॥३॥
प्रलय न सक रस छीन मलय थित, काल कुगाल करीखै।
अहं भाव बैठाव राम जौ, उनहीं नित्य निरीखै ॥४॥

[८५]

हरि चढ़ाउ जिव आपु अपनवा।

करै शरीर बचन मन सेवा, हरि करु चित्त चिन्तनवा ॥१॥
अहं भाव अस करै समर्पण, सुधि नहिं होइ सपनवा।
चित्त चेतना बसै निरन्तर, राम धरे धनु बनवा ॥२॥
जपै श्वास नित नाम राम तेहि, सुनै चरित्र श्रवनवा।
जो दरसै सो रूप राम कर, सेवा करै जहनवा ॥३॥

राग रोष दोष मल धोवै, भक्ती वारि नहनवा।
भव सरि तरि जौ मिलै चहै हरि, पद प्लव गहै सरनवा ॥४॥

[८६]

कोइ बिरला पतियाइ कहनवा।
जिव सरि वारि अभेद सिन्धु हरि, माया परे मोहनवा ॥१॥
कह शरभंग कि रुकहु राम जेहि, तनु तजि करउँ मिलनवा।
शबरी तनु तजि लीन राम भइ, छूटेउ अवाममनवा ॥२॥
उपादान कारन निमित्त जग, ब्रह्म ब्यास बरननवा।
पहिले रह्यो होन पुनि सोई, विसमय कौन करनवा ॥३॥
ग्वाल बाल ब्रज बछड़न ब्रह्मा, परिखन कीन्ह हरनवा।
बने कृष्ण उतने ही वैसेहि, तैसेहि विश्व सृजनवा ॥४॥
विधि कहँ दृष्टि दिखाइ सृष्टि वह, पुनि लय कीन्ह अपनवा।
यह लीला जिव होन पुनः हरि, तथ्य प्रत्यक्ष लखनवा ॥५॥

[८७]

रामहिं मिलि को पृथक रह्यो।
और कहउँ को लखउ दशानन, गति सायुज्य लह्यो ॥१॥
दशमुख नगर रहत बैदेही, राम न सक्यो सह्यो।
सब के सनमुख अग्नि परीक्षा, लै कर सीय गह्यो ॥२॥
रावन राम समाइ राम भी, निज व्यक्तित्व दह्यो।
रामहिं मिले पूर्व रावन कहँ, मिलि सिय श्रम न बह्यो ॥३॥
भूषन स्वर्ण अनेक रूप के, नाना नाम लह्यो।
अग्नि गलाये एक मिलाये, केवल स्वर्ण रह्यो ॥४॥
गति कैवल्य नाम सार्थक अति, विदुषन सोधि कह्यो।
द्वैत न गम्य, कटाइ अहं शिर, गति लह जौन चह्यो ॥५॥

[८८]

अहमिति जीव ब्यसन है भारी।
मोह मूल जड़ कर्म शूल कर, भूल बद्ध जिव कारी ॥१॥
जिव तनु कारन मूल उखारन, बारन गुन फुलवारी।
संसृति जनक भेद बुद्धि जेहि, कनक कामिनी प्यारी ॥२॥
जीव शक्ति के परे होन अनुरक्ति ब्यसन यहि न्यारी।
करि प्रसन्न हरि कृपा जीव निज, स्थिति सकै सम्हारी ॥३॥

समुझेउ स्वयम सोई जब बन्धन, केहि विधि ताहि निवारी।
त्राहि त्राहि रघुवंश विभूषन, दूषन लेहु उबारी ॥४॥

[८९]

मन फनि बनेउ मनि रघुराय।

नित्य सत सम्बन्ध प्रगटेउ, प्रीति सहज सुभाय ॥१॥
मनि प्रकाश दिखाइ जग, मुख मेलि लिहे हेराय।
लखत मनिहिं प्रकाश अन्दर, आत्म मनिहुँ दिखाय ॥२॥
जगत सब सम्बन्ध मिथ्या, तिया बान्धव भाय।
राम केवल सत्य अज विभु, देश काल सदाय ॥३॥
द्वैत तौ लौं जिव उरगपति, विलग मनि उरगाय।
द्वैत लय रह राम इक जेहि, जगत जीव समाय ॥४॥

[९०]

राम भक्ति चह करन शंभु बनु।

दर्शन हेतु राम जपु शिव सम, स्वाति हेतु चातक पिव पिव जनु ॥१॥
सजि चेतना पिनाक महा धनु, त्रैगुन त्रिपुरासुर प्रचंड हनु।
विमल ज्ञान भ्रू मध्य नेत्र तकि, जारु काम परमारथ मर्दनु ॥२॥
सुरति अभंग प्रवाह गंग शिर, सोम भाल सौम्यता चन्दनु।
सेवा जग हरि रूप नील मनि, कंठ नील हर पान गरल गनु ॥३॥
भाषन सत्य मधुर रव डमरू, दैन्य विभूति मसान रमइ तनु।
राम चरित्र श्रवन कुंडल वर, युवति सती सिय माता माननु ॥४॥
बुधि बिधि ग्रन्थि नारि मानि हरि, चेतन निज इन करै निवारनु।
अन्तहिं अहं ग्रन्थि शिव भेदे, होइ अभेद राम जीवन धनु॥५॥

[९१]

पात्रन सेवा राम सिखाई।

सेवा राम चारि स्थिति तिन, भ्रातन सीय लखाई ॥१॥
मन स्थिति सेवत शत्रूहन, भरत राम की ठाँईं।
जन सेवा परितुष्ट जनार्दन, करन आचरन लाई ॥२॥
स्थिति बुद्धि भरत सेवा जेहि, निहित राम सुख पाई।
निज लालसा निकट रहि रामहिं, सेवन स्वार्थ दुराई ॥३॥
चित स्थिति लक्ष्मण सेवा महँ, राम परम निकटाई।
अपने हृदय घाव दुःख जेहि, हिय रघुबीर पिराई ॥४॥

स्थिति अहं सीय सेवा मन, बुधि चित परे टिकाई।
निज पद चिह्न लीन राम पद, होते सोउ गँवाई ॥५॥
दाता मुक्ति चारि बिधि स्थिति, उपर्युक्त कह गाई।
अहंकार बिनु सेवा हनुमत, भे रिनिया रघुराई ॥६॥
सेव्य राम सेवा जिव करतब, जेहि विधि जेहि सुलभाई।
सेवा विधि प्रकटन हरि भ्रातन, सिय हनुमत सँग आई ॥७॥

[६२]

मन करु राम को नित संग।
अहं संग बसाइ नित चित, सुरति होति न भंग ॥१॥
चित गगन दृढ़ सुरति डोरी, राम बाँधै चंग।
निति सँभारत प्रेम कर लख, वृति चकोरी ढंग ॥२॥
जग त्रिताप अगम्य स्थिति, हर्ष शोक न रंग।
काल कर्म सुभाव पवन, प्रभाव पहुँचि न दंग ॥३॥
मुक्ति यह कैवल्य स्थिति, भक्ति प्रकृति असंग।
राम रमन कलेश शमन, अनन्द गमन प्रसंग ॥४॥
राम करुनासिन्धु लखि तब भंग अनँद तरंग।
दीन्ह स्थिति टुक अपरिमिति, साधना तोंहि पंग ॥५॥

[६३]

रघुबर मोहिं तव उपकार।
मैं केतिक श्रुति शेष आदिक, कहि न पावहिं पार ॥१॥
कृपा तोर अगाध वारिधि, मीन मोहिं अधार।
पीन कर प्रिय प्रान राखन, प्रेम तोषन कार ॥२॥
विषय चारा कपट कँटिया, विकट माया डार।
राम किरपा जल पियत मोहिं, चहइ मारि निकार ॥३॥
लखत करुना उमड़ि वारिद, करत उपल प्रहार।
भगेउ माया दल प्रबल दुख, राम सवल निवार ॥४॥
दीन जिव मति हीन जानि, बिहीन बुद्धि बिचार।
हृदय अन्तर्यामि बैठेउ, निकट करन सँभार ॥५॥
लखउ तुम, हम नहीं, तुम्ह अस, वेद बुद्ध पुकार।
करउँ अनुचित करि न निश्चित, तुम्ह तुम्हारो प्यार ॥६॥
कृपासिन्धु सुबन्धु दीनहिं, द्रवि करुन ब्यवहार।
आवरन टुक करि निवारन, दीन दो दीदार ॥७॥

[६४]

आजु मोहिं जनु भूल भयो ।

नाथ शिर पर हाथ लावत, बेणि आइ गयो ॥१॥
तुरत कर निज लाइ नीचे, दोउ कहँ चितयो ।
स्वामि सीता राम स्वामिनि, शंक लखि उदयो ॥२॥
ठाँव बदलेउ रूप भाव कि, दोउ कियेउ नयो ।
भये विस्मित देखि मोहिं दोउ, मुस्किराय दयो ॥३॥
भयेउ मन कृतकृत्य जाने, कृपापात्र भयो ।
राम सिय सिय राम लखि मन, दोउ अभिन्न ठयो ॥४॥
लड़त हिय विश्वास संशय, प्रथम अब विजयो ।
स्वामि स्वामिनि कृपा अनुपम, अनुभवन रचयो ॥५॥

[६५]

राघव यह रुचि राखु हमारो ।

तव स्मृति जल मधुर मीन मन, होइ न कबहूँ न्यारो ॥१॥
हो विलीन तव ध्यान विषय गन, इन्द्रिन जिन्हन सहारो ।
स्मृति जल सागर सीमा दृश्, जग घुलि होइ असारो ॥२॥
तव चितवनि मुसुकानि मधुर, बोलनि तरंग सुख-सारो ।
मम चेतना अचल होइ निशि दिन, साँझ सबेर निहारो ॥३॥
जग चेतना मिटै धूमिल होइ, तव स्मृति उँजियारो ।
जैसे जागत प्रात रात के, सपने भ्रम अँधियारो ॥४॥
तव मूरति केन्द्रित होइ स्मृति, अहमिति भाव बिगारो ।
धुले महा मल अहमिति स्मृति, होइ राम आकारो ॥५॥

[६६]

हरि की कृपा वश फल कर्म ।

सफल कृति फल कटु निवारन, जिव शरन हरि धर्म ॥१॥
कर्म ग्राह कठोर काटन, कृपा चक्र न नर्म ।
डुबत बारन जिव उबारन, हरि बिरद की शर्म ॥२॥
ताड़का तामस स्वरूपिनि, बालकहुँ लखि गर्म ।
दीन लखि हरि मुक्ति किय असि, कर्म वारण वर्म ॥३॥
दुःख भोगन कोटि जन्मन, अहिलिया दुष्कर्म ।
कृपा शक्तिहिं कीन्ह परिणत, पाप तपमय धर्म ॥४॥

रावनादि निशाचरन को, पाप सीमा चर्म।
ध्यान रिपुता प्रीति फल हरि, कृपा प्रकटी मर्म ॥५॥

[९७]

स्थिति प्रीति लगति मोहिं प्यारी।
बिनु प्रयास छोरन भव बंधन, अनायास गतिकारी ॥१॥
ढील होत नाता हमार हम, जिमि हरि प्रीति सम्हारी।
अन्त छुड़ाइ ग्रन्थि जड़ चेतन, जीव क्लेश भव टारी ॥२॥
प्रीतम सँग रहि नित्य प्रेमिका, त्यागत वृत्ति विकारी।
राम प्रीति रस आस्वादन करि, लगत अन्य रस खारी ॥३॥
कामिहिं नारि दाम लोभी प्रिय, महँ रह अहं खुमारी।
पूर्ण प्रेम रह राम चेतना, अहमिति जाइ बिसारी ॥४॥
तममय हिय गृह छिद्र रश्मि लखि, राम सनेह तमारी।
गृह छत अहं उजारिहउँ पावन, पूर्ण प्रेम उँजियारी ॥५॥

[९८]

मन करु राम चरनन प्रीति।
आचरन सिय भरत लछिमन, सिखि सुतीक्षन रीति ॥१॥
हनूमानहि सीखु सेवा, बासना सब जीति।
सिखु विभीषन हरि शरन, भव टरन भीषन भीति ॥२॥
प्रेम समरथ सीखु दशरथ, नेह निबहन नीति।
राम प्रबल प्रताप सीखइ, बालि तनय प्रतीति ॥३॥
असन अर्पन सीखु सबरी, गीधराजहिं मीति।
प्रणव सीता अर्थ राम चरित्र गावइ गीति ॥४॥

[९९]

मन बनु सिय चरनन की दासी
धनु करुना सिय प्रणव बान चढ़ि, पावइ राम सुपासी ॥१॥
तेरेहि तनु अविमुक्त सुतीरथ, जगत प्रगट जो कासी।
सुरति लाइ तहँ राम नाम जपु, लहु गति बिनु तन नासी ॥२॥
नाम जपन हित करु सिय स्थिति, निति चेतना निवासी।
नाम अर्थ राम तोहिं मिलिहहिं, आनँदमय अविनासी ॥३॥
सर्वोत्कृष्ट लाभ लहने हित, भव रस होहि उदासी।
प्रान अपान राम जपु अव तजि, छोलन तृषना घासी ॥४॥

[१००]

मन करु राम नामहिं नात ।

तीन अक्षर तव सनेही, पिता माता भ्रात ॥१॥
सुरति जीहा जपु निरन्तर, साँझ निशि दिन प्रात ।
कहत "म" जनु स्वास आवत, "रा" कहत जनु जात ॥२॥
अनुभवै सिय राम लछिमन, हिय मिलन हरषात ।
सविधि जपत प्रयाग सुचिता, देत सिद्धि जम्हात ॥३॥
ब्रह्म जीवहिं सन्धि कारक, कहा तारक जात ।
क्यों न जिव लहु शिव अमर पद, नाम नदी नहात ॥४॥

[१०१]

स्थिति अभय कमठ से सीखइ ।

पद इन्द्रिन शिर मन समेटि कर, अभय निजानँद चीखइ ॥१॥
दुख सुख हानि लाभ अपयश यश, तहाँ न तनिकउ दीखइ ।
सुख स्वरूप सिय राम चरन टिकि, भव दुख माँग कि भीखइ ॥२॥
जगत स्वप्न भव तरु संसृति फल, दुख रस हित को झींखइ ।
परमानन्द खात मोदक बनि, मधुर साधना ईषइ ॥३॥
मन समेटि जग निज अर्पन सिखु, राम भक्त अँवरीषइ ।
रामाश्रित जन भाग्य विधाता, मेटि लेखनी लीखइ ॥४॥

[१०२]

जब लगि राम न दानी जाने ।

कुंजड़िनि प्रकृति दुकान कर्म तुलि, दुख सुख हाथ बिकाने ॥१॥
लख चौरासी योनि सिंधु भव, डुबत न कबहुँ तिराने ।
राम ब्रह्म करुना तरंग लगि, नर तनु परेउ ठिकाने ॥२॥
राम चरन की शरन बेगि गहु, मन सिखु सीख सयाने ।
गीध ब्याध कपि भालु निशाचर, निश्चय तोहिं प्रमाने ॥३॥
प्रकृति नियम भव रोग भोगावत, भेषज राम न जाने ।
राम लखन हिय बसत बासना, सकत न टुक ठहराने ॥४॥
अभय दान नित देत दयामय, विरद वरद कर लाने ।
माया हारि नमित शिर करि कस, हरि कर तर न लुकाने ॥५॥

[१०३]

राम भक्ति अनुपम अगाध रस ।

जन पोषक रामहिं तोषक रस, केवल एक राम जेहि के बस ॥१॥

मूरति नयन चरित्र बयन जिह, राम नाम हिय गुन श्रवनन जस ।
नयनन नीर बयन गद्‌गद जिह, स्वाद नेह हिय श्रवनन लालस ॥२॥
तन पुलकावलि बुधि जस वावलि, आकृति शून्य मनहुँ कहुँ मन फँस ।
तन तन्मयता बुद्धि अभयता, प्रेमास्पद तजि मन न अन्य धँस ॥३॥
राम प्रेम रस नित प्रवाह अस ब्याप्त चित्त हिरदय मन नस नस ।
सुख स्वरूप राम आस मुख, चन्द अनन्द न दुःख राहु ग्रस ॥४॥
शुभ अरु अशुभ कर्म संपिता सब, योग अग्नि जरते जस बनकस ।
राम दिव्य गुन हिय बसि बरबस, नाश करत गुन सत रज तामस ॥५॥
राम रूप रवि चित अकाश उर, करत विनाश तिमिर कलि कल्मस ।
हृदय भूमि हरि गुन विशाल तरु, जामि न तेहि बासना बेलि लस॥६॥
परमानन्द अमिय नित नव रस, संसृति मृत्यु करन बस बरबस ।
अनुपम यह रस निकल भक्ति फल, लगत जो रामचरित तरु मानस॥७॥

[१०४]

जिव तव राम से न दुराव ।
अहं अन्तिम टेक तेरो, राम तेहि ठहराव ॥१॥
उपादान निमित्त कारन, राम जगत बनाव ।
भिलनि माया अहं पाया, जिव विहंग फँसाव ॥२॥
राम विलगाया नचाया, जीव माया दाँव ।
दारुनारी राम माया, सूत्र जीव नचाव ॥३॥
भाव तन मन बुद्धि चित, अहमिति न राम छिपाव ।
तव अहं चेतन विराजत, सोइ कोशलराव ॥४॥
एकता थपु राम तजि, व्यक्तित्वता जिव भाव ।
नाव डूबन शील तजि जिव, राम लहु नित ठाँव ॥५॥
राम चेतन बसत सब तन, मिलन एक उपाव ।
प्रणव सीता जप सुभीता, होत राम लखाव ॥६॥
दृश्य मात्र रमंत राम, न दृश्य देखि लुभाव ।
सकल विश्वहिं रमत रामहिं, जीव तू रमि जाव ॥७॥

[१०५]

माया मम मन अस अनुमानइ ।
प्रेरि अविद्या ब्रह्म अंश जिव, चेतन जड़ सँग सानइ ॥१॥

पवन पुत्र मन उड़इ तहँइ वह, कालनेमि अगुवानइ।
जीव बुद्धि के परे मर्म तेहि, सच जानइ भगवानइ ॥२॥
ब्रह्म जेवरी सत्य जासु बस, जिव असत्य अहि मानइ।
जीव भोर मति मृग फाँसन भव, बनि सबरी ठन गानइ ॥३॥
प्रकृति मूल भ्रम तना तीन गुन, शाखा जग तरु जानइ।
माया कटक सुभट कामादिक, टारि सकहिं शिव ध्यानइ ॥४॥
निर्बल जीव सबल माया जब, लगि जिव निज अभिमानइ।
हरि शरनागति हरे अहम्मति, माया डरे न आनइ ॥५॥

[१०६]

भइ अनुभूति राम मम सथवा।
निज चेतना अहम्मति बसते, सुगँध सुमन महँ जथवा ॥१॥
दुखाघात जब होत बिकल मन, कहूँ उनहिं दुख कथवा।
बिना विचारे दोष हमारे, अभयदान दें हथवा ॥२॥
जगत कार्य सब चलत साँकरे, फँसै कबहुँ जब रथवा।
अन्त चेतना पहुँचि सुनाये, समाधान दें मथवा ॥३॥
प्रबल भरोसा राम बाहु धनु, अक्षय बाँधे भथवा।
करुनासिन्धु दीनबन्धु हरि, आर्तन के एक नथवा ॥४॥
अनुभव करत उनहिं जानत, सोचउँ नहिं कोउ अनरथवा।
सर्वसमर्थ सुकृपा अहेतुक, की गाऊँ नित गथवा ॥५॥
संसृति रोग ग्रसित दुर्बल मोहि, मैं पायेउँ पौष्टिक पथवा।
भव डूबत चेतना पोत, लेहहिं उबारि समरथवा ॥६॥
माया त्यागे भवमति भागे, नीर निरस लथपथवा।
निज स्वरूप स्थिति सुधारिहहिं, अनँद रूप रघुनथवा ॥७॥

[१०७]

योग ग्यान भक्ति नहिं तीन।
योग ते ग्यान जाहि जानि गुन, भक्ति जीव तल्लीन ॥१॥
योग प्रदत्त निकटता लहिये, राम ज्ञान अविछीन।
ग्यान प्रगटि सद्गुन प्रेमास्पद, करत भक्ति जिव लीन ॥२॥
ज्यों ज्यों होत निकटता रामहिं, परदा भ्रम भे झीन।
त्यों त्यों जिव सम्बन्ध प्रान निज, राम वारि मति मीन ॥३॥

करत प्रदान योग ग्यान हरि, भक्त कामना हीन,
योग ग्यान भक्ति क्रम बद्ध न, ताते कहत प्रवीन ॥४॥
दोऊ अनि आवत यद्दि कोई, एकउ साधन कीन।
एकइ करत भुशुण्डि जनक शुक, दुइ पाये हरि दीन ॥५॥

[१०८]

जिव निज रूप करु अनुमान।
तू न तन मन बुद्धि स्वास, न मरइ तिन अवसान ॥१॥
तन नस तू नसत नाहीं, गहन नव तनु आन।
मनहुँ सुप्त सुषुप्ति स्थिति, जागि जग तू जान ॥२॥
बुद्धि बदलत पड़त समुझत, प्रथम किय नुकसान।
दवा बेहोशी सुँघाये, निज न रहत गुमान ॥३॥
स्वास बाधा मरत तनु, तू रहत एक समान।
रहत द्रष्टा तू सुषुप्ती, जगत नींद बखान ॥४॥
अस्त्र शस्त्र न कटै काटे, जर न अग्नि महान।
जल न डूबइ बन्द पात्र न, तव करै ब्यवधान ॥५॥
चेतना राखे करै कहुँ, पूर्व जन्म बखान।
अहं माया जनित स्वीकृति, तव करत बन्धान ॥६॥
अहं स्वीकृति करत विस्मृति, सुलभ आतम ग्यान।
नाम जापक राम ब्यापक, सीम अहं उड़ान ॥७॥

[१०९]

लागि सुरति सिर भरी गगरिया।
भूलि गिरै हिलि छलकै नाहीं, सुख दुख असम डगरिया ॥१॥
चलत राह वसि ध्यान डिगावहिं, तिय बासना नगरिया।
इन्द्री सखियाँ निज गृह खींचहिं, नित अतृप्त अजगरिया ॥२॥
गुरु की बात एक मैं पकड़े, तजि भ्रम जगत सगरिया।
गागरि प्रेम वारि पिय वैसेहिं, वसै नारियल गरिया ॥३॥
नयन विवेक खोलि जल भरतीं, चढ़ि जग सरित कगरिया।
राम पिया चित दृग नित निरखउँ, जन्मन पड़ी रगरिया ॥४॥
राम नित्य जल आसन गागरि, साधन शीश पगरिया।
चरनोदक जल राम नित्य थल, दीन्हेउँ जगत बगरिया ॥५॥

[११०]

जिव कहँ राम पास पहँचावन "रा" "म" राम पारषद दोइ।
वाचक ब्रह्म ओम् सोऽहं हूँ, ओऊ प्रणव दु-अक्षर भोइ ॥१॥
स्वांस विमान चढ़ाइ जाइ लैं, जहाँ स्वास जा खोइ।
मन गति स्मृति जगत जाइ जहँ, नाम रूप सब सोइ ॥२॥
बुधि सँग सकल बासनउ सोवैं, जिव रह केवल होइ।
दिब्य लोकु अवलोकु राम छवि, सुख प्रकाशमय जोइ ॥३॥
राम निकट पहुँचाइ दु-अक्षर, राम द्विभुज जा गोइ।
अस एकान्त अनुभवत राम सुख, को मैं सकउँ न टोइ ॥४॥

[१११]

धनि धनि राम चरन वारिज रज।
चरन कृपा अम्बुज अँगुलियाँ, विकसित अरुन पंखड़ियाँ रज सज ॥१॥
अनुपम गुन रस पान करन जेहि, मुनि गन बनि अलि ब्रह्म सुखहिं तज।
चरन पद्म पत्र रेखा ध्वज, अंकुश आदि सहित सियरज भज ॥२॥
केहरि कुशल वसत जन मन वन, देखत भागत सकल पाप गज।
जो रज छुवन पाप पाहन तन, मुनि तिय दिव्य मृदुल भेउ नीरज ॥३॥
लखे राम स्पर्श वायु तन, प्रबल श्राप मुनि तजेउ न निज कज।
भइ तप पुंज प्रभान चरन रज, रामहुँ ते बड़ कहन न अचरज ॥४॥
जासु चरन लगि तुरतहिं मग रज, होत समर्थ धरन तारन ध्वज।
तेहि तारक रामहिं लगाइ नित चित संबन्ध सम्हारिय कारज ॥५॥

[११२]

करुणा कर अब करउ न देरी।
मेरे अवगुन सब विसारि हिय, निज अनुकम्पा प्रेरी ॥१॥
बिरहाकुलता होइ अपेक्षित, तौ हिरदय बसि मेरी।
विरचउ जेहि विचारि देखि द्रवि, प्रगटउ हम नहिं हेरी ॥२॥
मकर काल मुख जात समय नहिं, नाथ प्रतीक्षा केरी।
कृपानिधान जानिये अब यह, गज की अन्तिम टेरी ॥३॥
दर्शन बदले दिहेउ विश्व सुख, लेहउँ मैं मुख फेरी।
हंस चित्त चिन्तत चिन्तामणि, चितव कि गुञ्जा ढेरी ॥४॥
शरन चरन लालसा दरस मैं, नहिं मति भव भय घेरी।
आरत दर्शन देउ जाउँ मैं, बलि विरदावलि तेरी ॥५॥

[११३]

पूजउँ जस रीझउ रघुराई ।
चित बुधि मन वाणी शरीर बिधि, तुम कहँ स्वामि सुहाई ॥१॥
सीमा सुरति पार तुम्ह चाहौ, स्तुति चित्त सुनाई ।
धरि तुम चित घट धारि शीश चह, काज न जग अलसाई ॥२॥
बुद्धि प्रकाश अकाश चहौ हिय, बिकसित कमल बिछाई ।
कर सनेह सेवउँ सिय सह पद, हृदयासीन कराई ॥३॥
मूरति मधुर बसाइ नयन महँ, चह सीता सह भाई ।
मन ते निरखउँ मैं तुम्ह तीनउँ, जगत दृश्य पर छाई ॥४॥
चाहौ चरित मनोहर तुम्हरे, वाणी ते नित गाई ।
चह तव रूप जानि जग की कर, मन बच क्रम सेवकाई ॥५॥

[११४]

जौ तोहिं चिन्मय गति रस चहिये, गहिये दो महँ एक प्रवीन ।
प्रथम स्थिती एक भाव दो, पूर्व कही न नवीन ॥१॥
भाव एक व्यक्तित्व वृथा निज, रामइ करइ यकीन ।
हरि की जगह आपु एक मानइ, द्वैत दोऊ मति छीन ॥२॥
यह कैवल्यउ लहिय कृपा हरि, उनहीं के आधीन ।
निर्बल जिव नहिं होइ आपु बल, माया बन्धन हीन ॥३॥
दूजो स्थिति अति रसमय जेहि, भक्त राम मन लीन ।
चाहै नित सम्बन्ध राम से, योनि कोउ नहिं दीन ॥४॥
ग्यानिन गति कैवल्य त्यागि करि, हरि सेवा तल्लीन ।
राम रूप जग नीर जिवन मति, सेवा लति रह मीन ॥५॥
लहे राम सम्बन्ध निकटता, राम रूप रस पीन ।
दुख सुख ब्यापै जीव तवहिं लगि, मन न राम लवलीन ॥६॥
अगम ग्यान गति सुगम भक्ति मति, रस अनुपम अविछीन ।
माया परे करे नित हिय महँ, सिया राम आसीन ॥७॥

[११५]

तोहिं गोसाइँ सब जग आभारी ।
अस आदर्श किहेउ प्रस्तुत जेहि, दोउ जग सकइ सम्हारी ॥१॥
राम सुमानवता सीखइ नर, सिय से पतिव्रत नारी ।
भरत भक्ति सीखइ लछिमन से, होनो आज्ञाकारी ॥२॥

सिखइ शत्रुहन मन अर्पन जिव, दशरथ प्रेम पुजारी।
कौशल्या विवेक सीखइ, बलिदान सुमित्रा भारी ॥३॥
रखन राम रुचि सिखइ कैकई, हट राखन सहि गारी।
सेवा हनूमान से सीखइ, गुन जटायु उपकारी ॥४॥
शरणागति मति सिखइ विभीषन, मन्दोदरि मनुहारी।
कपि पति सख्य रिक्षपति मन्त्रण, अंगद प्रण बलिहारी ॥५॥
नि:स्वारथ पति प्रेम उमा सिख, शिव से व्रत धनुधारी।
काकभुशुण्डि भक्ति हठ सीखइ, महिमा भक्ति खरारी ॥६॥
दुर्लभ भक्ति राम पावन हित, त्यागन खनी प्यारी।
संयुत ज्ञान विराग भक्ति सिख, यश तुमहीं अधिकारी ॥७॥

[११६]

अनोखी सियबर दर्शन आस।
बिन लखि सरसै लखि सुख सरसैं, तबहूँ बुझै न प्यास ॥१॥
मन टिकि जात अंग जोइ देखै, बचि जाते अनि खास।
छबि समुद्र हरि दरस लालसा, यातें कबहुँ न ह्रास ॥२॥
दरस लालसा उत्कट जागे, होत हृदय आभास।
तृप्ति तनिकहूँ होत न जौ लौं, नयनन लखिय न पास ॥३॥
राम दरस हित मन तू प्यारे, करत जो विविध प्रयास।
मैं तू दृष्टि दोष हटि जइहइ, दर्शन सुरति निवास ॥४॥

[११७]

रघुपति तुम भव विपति सहाय।
सब समर्थ करु कृपा अहेतुक, जिव के सुहृद कहाय ॥१॥
भव वारिधि ते मीन मोर मन, निकस न मृत्यु डेराय।
जान न तुमहिं प्रान प्रानहु के, रह हिय गुह्य छिपाय ॥२॥
दुन्दुभि अस्थि पाप नाम तब, सक अंगुष्ठ ढहाय।
करुणा भुज करि सकै पार भव, नौका चरित चढ़ाय ॥३॥
तव स्वरूप रवि उये ध्यान हिय, तम अज्ञान नसाय।
दैवी गुन दल हृदय घुसे भल, अवगुन सेन पराय ॥४॥
विश्व सकल सुख संभव सरसिज, निज पद नित विकसाय।
तेहि कर मधुकर करहु कृपा सर, जेहि न बारि बिनसाय ॥५॥

[११८]

जानउँ तुम बिनु अनि न उपाई ।
तुमहिं उपाय, पाइये सो तुम, सो तुम तुमहिं जो पाई ॥१॥
अपने ही कहँ लखि दर्पण जस, दूजो देत दिखाई ।
ज्ञानहीन खग लड़इ ताहि, अथवा दिखलाव मिताई ॥२॥
तैसेहिं माया जग दर्पण संकल्प निजहिं प्रगटाई ।
कबहुँ मित्रमय जग जिव देखइ, कबहूँ रिपु समुदाई ॥३॥
उपर्युक्त माया भ्रम जाकी, कृपा विशेष नसाई ।
माया ग्रस्त जीव स्वाभाविक, सुहृद ब्रह्म रघुराई ॥४॥
जिमि माखी मधु बैठि लोभ वश, आपुहिं लेइ फँसाई ।
जिमि जिमि करइ प्रयत्न छुटन कर, अधिक अधिक लपटाई ॥५॥
वैसेहिं माया मुक्त होन हित, निज बल कीन्ह अघाई ।
अधिक ग्रसित अवलोकि आपु कहँ, आयेउँ प्रभु शरनाई ॥६॥
सेवक सखा सुप्रिया नात सुत, खग मृग केलि जो भाई ।
सोइ करि राखउ राम मोहिं अब, माया नहिं नियराई ॥७॥

[११९]

मन तू राम भावना अपनी, अन्तरयामी से करु एक ।
यह मत कोउ अद्वैत द्वैत कह, तू राखै निज टेक ॥१॥
हृदयासीन राम निरखइ नित, खोले नयन विवेक ।
निज कलिपत जग अवध राज्य पर, करि आजुहिं अभिषेक ॥२॥
जिन कहँ तू अपना करि मानत, नाचत योनि अनेक ।
ते मन बुधि चित अहं समुच्चय, माया कृत अविवेक ॥३॥
राम सु-कृपा स्वरूप चेति निज, आच्छादन सब फेंक ।
निज स्थापइ रामाकर्षण, सहज नेह अतिरेक ॥४॥
भरत बसिष्ठ निषाद अनुभवेउ, तू शंका करु नेक ।
युक्ति आदि-कवि. अन्तरयामी, महँ तू रामहिं छेंक ॥५॥

[१२०]

मन तोहिं बाह्य जगत का चहिये ।
बाह्य जगत रस नाशवान सब, चखे बासना गहिये ॥१॥
तेहि बासना पूर्ण होन हित, पुनि रस खोजत बहिये ।
मिले तृप्त नहिं, बढ़ै बासना, विषय न मिलि दुख दहिये ॥२॥

जो असत्य आभास क्षणिक सुख, परिणामहिं दुख लहिये ।
तेहि लगि तू नित भागत मूरख, पहुँचि मर्म नहिं तहिये ॥३॥
अमित सकल शाश्वत सुख निज महँ, रुकि तहँ नित छकि रहिये ।
मधुर नाद शान्ति सेज सँग, प्रीतम सुख का कहिये ॥४॥
जन्म जन्म की दुसह वेदना, कारण जानि न सहिये ।
भ्रम पहाड़ जग भोग ज्ञान निज, रूप कुदारी ढहिये ॥५॥

[१२१]

तन रहिय प्राकृतिक तजि स्वभाव । जो सुलभ गहिय जब आत्म भाव ।१।
स्थूल सूक्ष्म कारणँ लखाव । विलगाइ तिनहिं निज रूप आव ॥२॥
तन तजे न तू कहुँ आव जाव । निज अमल रूप सहजहिं समाव ॥३॥
सब से बिराग करि राम चाव । चित स्थिर करु नित राम ठाँव ॥४॥
विस्मरण होइ जग निज भुलाव । स्मरण राम रह राम नाँव ॥५॥
जग सकल भ्रमात्मक बिना पाँव । नित नसत त्यागि बसु अमर गाँव॥६।
जग रहत प्रबल माया प्रभाव । तेहि पवन न दै निज मति उड़ाव ॥७॥
तेहि बचिबे एक अचूक दाँव । रहु शरन राम कर छत्र छाँव ॥८॥

[१२२]

जिव नित जोग निद्रा सोउ ।
तेहि तुरीय कहत अवस्था, दशा उन्मुनि कोउ ॥१॥
तन प्रकृति सब काम चलिहै, जिमि मशीनहिं होउ ।
चित बसावइ नित हजूरी, राम सीता दोउ ॥२॥
धेनु मन कहँ बुद्धि रजु से, तू निरन्तर नोउ ।
तबहुँ जाइ तुराइ कबहुँ जो, राम सन्मुख रोउ ॥३॥
परम शान्ति अगाध रस जब, राम सीता जोउ ।
ध्यान स्थिति ज्ञान निज जग, अनायासहिं खोउ ॥४॥
जन्म जन्मन वासना मल, प्रेम जल भल धोउ ।
राम नित विश्राम हित, नहिं कर्म गठरी ढोउ ॥५॥

[१२३]

जिव धनु चल नित "रा" "म" बान ।
'रा' विध्वंस करत जिव बैरिन, 'म' कर जिव कल्यान ॥१॥
'रा' किय भस्म होलिका पालेउ, 'म' प्रहलाद सुजान ।
'रा' कृशानु लंका जारेउ 'म', रक्षा किय हनुमान ॥२॥

'म' सद्गुन सिरजत जारत 'र', दुर्गुन केतिक महान।
'र' संग 'आ' प्रकाश रवि नाशत, जिव हिय तम अज्ञान ॥३॥
राम नाम नित संगी जिव करु, स्वाँसा चित अनुमान।
श्वास आव "म" "आ" रह जा "र" क्या प्रत्यक्ष प्रमान ॥४॥

[१२४]

हिय विच सुरतरु लखि गेउ अपने।
उपजेउ प्रीति प्रतीति सहज सुख, दुख दारिद भे सपने ॥१॥
हिय सुरतरु यह अन्तर्यामिहि, आयेउ मेरे झँपने।
जानि हृदय निज जीव लिहेउ लखि, लगे कर्म फल कँपने ॥२॥
सियबर ही अन्तर्यामी जिन्ह, कृपा न आवत नपने।
हित लखि जन रुचि पूर करत नित, मन ठानेउ उन्ह जपने ॥३॥

[१२५]

जिव पुरुषार्थ रूप निज आव।
माया संग घनिष्ट युगन की, विसरेउ सहज स्वभाव ॥१॥
हरि साक्षात्कार यह संभव, नृप अज पतिनी दाँव।
प्राकृत जग हरि मूल लखै चह, अनुभव कर हिय ठाँव ॥२॥
दोऊ निर्भर राम कृपा पर, दीन भये जो पाव।
सो दीनता होत अनुभव जब, माया बल दरसाव ॥३॥
ब्रह्म होइ जिव यही ज्ञान पथ, माया जाहि जनाव।
दुजो भक्ति पथ हरि अनुकम्पा, पाइअ सेवक भाव ॥४॥
राम दरस लालसा आर्त हिय, एकै बनै जो चाव।
करुणा सिय प्रेरणा करत हिय, राम जीव अपनाव ॥५॥

(जीव को अपने स्वरूप की प्राप्ति हरि दर्शन से होती है। "मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज स्वरूपा॥" महाराज अज की पत्नी को जैसे स्वर्ग के पुष्प माला का दर्शन हो जाने से उनको अपने स्वर्ग के रूप में स्थित हो जाने की प्रेरणा मिली थी, उसी प्रकार भगवान के चिन्मय स्वरूप के दर्शन से जीव को अपने चिन्मय आत्म भाव में स्थिति की प्रबल प्रेरणा मिलती है।)

[१२६]

लखउ रे मन प्रीति रीति गम्भीर

मीठ सीठ बिन, सीठ मीठ परि, प्रेम शर्करा खीर ॥१॥
शिव द्रोही उत्पन्न सती निज, त्यागेउ सुघर शरीर।
सोई शव शिव लिये फिरे लखि, कारण प्रेम अधीर ॥२॥
त्यागत राज प्रसन्न राम, सोइ रोवत लखि सिय चीर।
मारत बालि न हृदय व्यथा, सुनि कथा सुकंठहि पीर ॥३॥
ताड़त सिंधु अमोघ वान भे, शरण निवारेउ भीर।
राक्षस क्षय पन, रखेउ विभीषन, मारत रावन तीर ॥४॥
अशुभ होत लखि प्रात नाम सुनि, उन बँदरन रघुवीर।
करि पार्षद निज बानि प्रगट किय, प्रेमी दाननगीर ॥५॥

[१२७]

चित बिच राम नित्य निवास।

राम एक सरोज हिय सर, जिव अहं कर बास ॥१॥
होत सत्य सरोज अनुभव, निजानन्द विलास।
सुख सुगन्ध विकास निर्भर, राम नीरज खास ॥२॥
अहं कारण जानि जिव तू, राम नित अविनास।
चहइ करइ अभिन्न अनुभव, चहइ सँग बनि दास ॥३॥
जहाँ चित रह चेतना निज, राखु राम हवास।
चहै तो कर स्वयं अनुभव, करै चहै खवास ॥४॥
यही मुक्तो यही भक्तो, भव अविद्या नास।
जीव नित्यानन्द चहु तो, राम रहु नित पास ॥५॥

[१२८]

मेरे हाथ पैर नहिं रूप।

परम ज्ञान शक्ति तेज मैं, पूरणकाम अनूप ॥१॥
होन सुलभ जिव व्यक्त भाव, मैं धर साकार स्वरूप।
मार्ग लखावन यश विस्तारन, तारन जिव भव कूप ॥२॥
इन्द्रिय आश्रय राग लागि तम, जगत भोग भवपूप।
आत्म स्वरूप समाउ लाड़ले, सुत मेरे अनुरूप ॥३॥
निज आनन्द योग छाया नहिं, पहुँचत जग दुख धूप।
सोइ सम्हारु पछोरि फेंकि भ्रम, निज विवेक सुचि सूप ॥४॥

राम सँदेश कि मोहिं लखन चह, प्रगटउँ रुचि प्रिय रूप।
अहं अड़म्बर तजि मिलि व्यापक, मोहिं तोहुँ बनु जग भूप ॥५॥

[१२६]

नित्य मिलन निज जतन बताइगे।
हिय सिंहासन हिम बनि बैठे, जिव दुखाग्नि पिघलाइगे ॥१॥
जनम जनम बिरहाग्नि जलन जिय, कृपा वृष्टि सब दिनन जुड़ाइगे।
संशय भ्रम अस्तित्व ठाँव की, बिनय सुनयँ लखि हिय ते हटाइगे ॥२॥
जिव निज बिच अज्ञान आवरण, कृपा हाँथ राम खिसकाइगे।
देश काल की निज से दूरी, प्रेम श्वास से फूंकि उड़ाइगे ॥३॥
मन बुधि परे चित्त भीति पर, जीव अहं प्रतिबिम्ब लखाइगे।
बिना बिम्ब प्रतिबिम्ब न सम्भव, सत पर निर्भर असत जताइगे ॥४॥
होइ प्रतिबिम्ब द्वैत चह राखउ, चहौ होउ एक बिम्ब समाइगे।
कहि अज्ञान ब्रह्म जिव अन्तर, हृदयासीन राम मुसकाइगे ॥५॥

[१३०]

जस हरि चाहहु जीव करावहु।
कर्म बोझ अभिमानी जिव शिर, रजु अज्ञान बँधावहु ॥१॥
दुर्योधन जिव प्रेरि करावहु, अनरथ जस तुम चाहहु।
संकट परे द्रौपदी जिव बसि, अपने कहँ गोहरावहु ॥२॥
पूर्व सुनिश्चित खेल तुम्हारो, वाही जीव खेलावहु।
स्वयं जीव बनि तुमहीं खेलहु, बन्धन कर्म न आवहु ॥३॥
अहं भाव वश जिव अभिमानी, समुझत बिलग बँधावहु।
स्वीकृति अहं बँधाइ त्रिगुन रजु, नर्क स्वर्ग पहुँचावहु ॥४॥
बाजीगरी तमाशा संसृति, माया चक्षु लखावहु।
सब विधि हारि शरण आये जिव, जानउँ हरि अपनावहु ॥५॥

[१३१]

आत्म भाव तनु तजन सम्हार।
मोको लगत कठिन अति चढ़नो, जिमि एवरेस्ट पहार ॥१॥
कुछ चढ़ि चढ़ि कर गिरिय पुनः पुनि, बिति गेउ जनम हजार।
ऐसे चढ़त गिरत धरती पर, लहउँ न पारावार ॥२॥
इन्द्रिन फिसलि झकोरा वायू, क्रोध द्वेष मद मार।
गिरनो सहज कठिन चढ़नो बल, दण्ड़ विराग विचार ॥३॥

गिरते बचिय जमाइ ध्यान पद, सम्हरत वारम्बार।
आत्म स्थिति, अभाव आत्मा तनु, युगपत् जिव उद्धार ॥४॥
निफल अहं पद सफल राम पद, ध्यान ग्यान निस्तार।
भ्रम बलि बाँधत अहमिति लाँघत, हरि पद भव निधि पार ॥५॥

[१३२]

जिव रहु राम के नित शरन।
राम सिय सर्वज्ञ समरथ, सरन संकट हरन ॥१॥
नहिं प्रतीति प्रयत्न करत जो, फिरत सब के घरन।
नहीं शरनागतहिं सोहत, मूढ़ तो सम डरन ॥२॥
शक्ति रावन चल विभीषन, मृत्यु छिन महँ करन।
ढाल बनि रघुवर दिखायेउ, शरन-वत्सल परन ॥३॥
हिरनकशिपु उपाय सब बिधि, कीन्ह सुत के मरन।
राम पर प्रहलाद निर्भर, डर न कछु हिय धरन ॥४॥
द्रौपदी की कथा चेतइ, सभा बिच पट हरन।
आस सकल प्रयास हारे, हरि शरन दुख टरन ॥५॥
हो न बाँका बाल हरि जन, जगत रिपुता ढरन।
आस तजि जग जिव गहै, विश्वास दृढ़ हरि चरन ॥६॥
राम हित महँ शर्त एक तू, चह न रिपु को जरन।
चहै क्षेम सँवार अपनो, रिपु सुधार आचरन ॥७॥

[१३३]

पद रज राम परम पद चीठे।
नयनवंत दर्शन जो गति लह, पद रज लगि विनु दीठे ॥१॥
निज स्वरूप जिव देत दरस हरि, सुखमय कबहुँ न सीठे।
शिला अहिल्या रज लगि हरि पद, लह गति सब विधि मीठे ॥२॥
विनु पदत्रान चलत हरि मगवा, चित्रकूट के हीठे।
पद रज विमल विभूति राम सिय, लागत तरु गिरि पीठे ॥३॥
राम -सुकृपा पवन पहुँचावत, रज तरु हरित उकीठे।
लख चौरासी योनि तारने, हरि बाँधेउ मन गीठे ॥४॥
राम चरन रज सुमिरन रस जिव, भव रस सकल उबीठे।
मैं तैं जगत नसावत लगि रज, बसन मैल जिमि रीठे ॥५॥

[१३४]

मन श्री राम संग तू नित रहु ।
सिय बनिकै मुख चन्द्र विलोकहु, पद सरोज बनि लखन कि हिय गहु।१।
स्थिति पृथक आव जब अपने, दर्शन लखन राम सिय तिहुँ लहु ।
जग सूझत लखु राम सीय मय, मन वच कर्म करन सेवा चहु ।।२।।
राम सिया विस्मरन होत जब, जग दावाग्नि करन चह तोहिं दहु ।
होहि सुरक्षित होइ शरनागत, सम प्रहलाद राम राम कहु ।।३।।
जगत इन्द्रजाल कृत माया, ताके बहकाया जनि आवहु।
सत्य राम सत्य रूप निज. जानि रमावै सत्य सत्य महु ।।४।।
सत्य स्थिती लहन हेतु तू, सत्य राखि सत्यहि कहँ निरखहु ।
कै चलि टिकु सिय राम लखन जहँ, कै उन्ह हृदयासन आकर्षहु ।।५।।

[१३५]

सियवर सुमिरु मुख वा चरन ।
लाभ दायक दशा दोऊ, दोउ भव भय हरन ।।१।।
ध्यान मुख लै जात पद पहँ, पद सुरति मुख करन ।
दोउ देत प्रवेश बैठक, परम आनँद घरन ।।२।।
राम मुख आसक्त सीता, सुरति पद उर धरन ।
शिशु चकोर लखन लखत मुख, पद किहे जो बरन ।।३।।
केहि प्रभाव विशेष निर्णय, मोहिं न आवत करन ।
एक लखि निज रूप लह जिव, एक रज भव तरन ।।४।।

[१३६]

माधुरि रूप हरि लखि परत ।
चक्षु अलि मड़रात आनन, कमल हिय छवि धरत ।।१।।
ज्ञान ऐश्वर्ि होत आ पद, कंज गिरि लरखरत ।
राम चूमन गात जन सुत, पुनः ऊपर करत ।।२।।
राम अरु जन भाव दोऊ, इमि रहत नित लरत ।
जन स्वभाविक भाव पद हरि, सुरति जन मुख धरत ।।३।।
ध्यान हरि आनन चरन दोउ, दोष जन के चरत ।
दशा भिन्न न भिन्न दे एक, पारषद हरि करत ।।४।।
सीय सुमिरत राम आनन, लीन रावन मरत ।
चरन सेवक पवनसुत के, राम रिन नित भरत ।।५।।

मुख कमल श्री राम सीता, दोउ छवि अनुहरत।
चरन दोउ अभिन्न तैसेहिं, चिह्न सोई धरत ॥६॥
ध्यान सीता राम आवत, सिया रामहिं करत।
राम भाव जिवान्त, सीता भाव नित रस झरत ॥७॥

[१३७]

चढ़इ रे मन काया शिखर सुमेर।
त्रिगुणातीत अवस्था शाश्वत, आत्मा नित्य बसेर ॥१॥
राम दु अक्षर चढ़न पाँव तव, श्वासा सीढ़ी फेर।
नासिकाग्र तकि सहज राह ले, सुनि ध्वनि मन्ज़िल केर ॥२॥
भक्ति भाव गहि कृपा अँगुलि सिय, राम बढ़ाये नेर।
नहिं भय गिरन सुदृढ़ अवलम्बन, पाइ चढ़न नहिं देर ॥३॥
देश काल गम्य तहँ नाहीं, परै न लखि कहुँ हेर।
द्वन्द्व रहित आनन्द अवस्था, सक न अविद्या घेर ॥४॥
रवि कुल रवि प्रकाश राम नित, नहिं निशि साँझ सबेर।
शाश्वत परमानन्द राम रमु, आव न पुनि माँ जेर ॥५॥

[१३८]

आत्म आतमा सीताराम।
अथवा नहीं आतमा निर्मल, जब लगि होत न राम ॥१॥
प्रान प्रान के जीव जीव के, सुख हूँ के अभिराम।
सर्वसमर्थ सर्वव्यापक, सर्वज्ञ जीव विश्राम ॥२॥
आप्तकाम अन्तर्यामी जब, स्वयं रूप नहिं नाम।
अहं निछावर राम किहे जिव, होत आतमाराम ॥३॥
जब लगि नहिं यह दशा जीव, तब लगि लग माया धाम।
यह विचारि सुमिरिय विसारि हम, राम अङ्क सिय वाम ॥४॥

[१३९]

मन हरि छाँड़ि अनत न जाव।
वही तव विश्राम स्थल, सार सब रस भाव ॥१॥
द्वार इन्द्रिन जाइ बाहर, जौन माया गाँव।
नश्वर नकली इन्द्रजालिक, सुख न लखि पतियाव ॥२॥
भोग जग सुख नेकु अब, ललचाव बहु डहकाव।
राम पद सुख शान्ति प्रद हद, सकल रति रस राव ॥३॥

नश्वर सुख आभास हित तू, लहत संसृति घाव।
चेति स्थिर होहि हरि पद, त्यागि जीव स्वभाव ॥४॥
राम सँग वसु नित निरन्तर, जपइ रामहि नाँव।
नटिनि सम व्यवहार जग करु, सुरति रखु प्रिय ठाँव ॥५॥
लग सो अटपट राम मय जग, लखन बानि बनाव।
राम जग अवकाश सेवा, राम ध्यान समाव ॥६॥

[१४०]

जिव अब देखन क्रम बदलै।
चले अहं चित बुधि मन इन्द्रिन, देखेउ जगत भलै ॥१॥
अहं बुद्धि के परे अनुभवेउ, कबहुँक राम पलै।
बाह्य वृत्ति पुनि तन आयेउ, पलटे क्रम गयेउ चलै ॥२॥
द्वार बाह्य मुख बैठे दीख न, गृह रह चोर हलै।
काम क्रोध लूटहिं हिय बोध न जब दिय ज्ञान जलै ॥३॥
बाह्य जगत त्रै ताप तपत तू, चाखत कर्म फलै।
बैठक दुखद जानि पुनि बैठत, तहों न मूर्ख टलै ॥४॥
तन मन बुधि चित क्रम चलु हित मिलु, रामइ अहं गलै।
बैठि गये पितु राम गोद जिव, मोद स्वरूप ढलै ॥५॥

[१४१]

मन मकड़ी निज लखइ न जाला।
अपनहिं निर्मित जग लखि विस्मित, फँसि तेहि फिरै विहाला ॥१॥
जाला लय करु अपने भीतर, करि तेहि सकल निवाला।
निज अस्तित्व विचारु देह तू, बुधि चित अहं शिवाला ॥२॥
तिन्ह के अन्दर बसत नित्य शिव, केवल राम कृपाला।
सोई अन्तरयामि आतम सच, तू छाया भ्रम पाला ॥३॥
नहीं सत्य द्वै पक्षी बैठे, जीव बृक्ष की डाला।
चित्त भीति प्रतिविम्ब अहं एक, ब्रह्म बिम्ब करु ख्याला ॥४॥
निज भिन्नता जीव जग जेते, प्रतिविंव देत हवाला।
सकल प्रकाश्य राम ज्योति, मेटत प्रतिबिम्ब सवाला ॥५॥
अन्तर्यामी राम सुनिश्चित, हिय जग जिव भ्रम टाला।
भये शरन तिन चरन बैठि करि, होवै नित्य निहाला ॥६॥

[१४२]

पिय लखि पायेउँ सुरति नजरिया।
सीता राम संग दोउ बैठे, हिरदय कमल सेजरिया ॥१॥

आनन शरद चन्द सोहत विच, अलकावली कजरिया।
आत्मीयता प्रेम उन निरखत, टूटेउ मोह जँज़रिया ॥२॥
विरचित तुलसी चरित सुमाला, पहिने महँक मँजरिया।
जासु सुगन्ध गन्ध मेटेउ मम, जग वासना हजरिया ॥३॥
करुना सिया दिया निज स्थिति, जिव जग उठेउ बजरिया।
पिय संयोग दृश्य बरनेउँ, विज्ञान वजाइ खँजरिया ॥४॥

[१४३]

पिया बिठावन मोहिं न आवै।
ध्यान देउँ जौ सनमुख आसन, दूरी विरह सतावै ॥१॥
मन हिय सेज बिठावन चाहूँ, उठो बुद्धि बतावै।
बुद्धी माहिं टिकावन चाहूँ, अस्थिर चित्त लखावै ॥२॥
चित्त माँझ राखन मैं देखूं, वृत्ति अनेकन ठाँवै।
पायेउँ राम बिठावन अविचल, पावन "मैं" महँ दाँवै ॥३॥
अचल अवस्था चहुँ अमराई, शीतल श्रुति जेहि गावै।
वसन विछाइ व्यसन अहंमिति पिय, करि आसीन रिझावै ॥४॥
(तुलना कीजिये —"गये जहाँ सीतल अमराई ॥
भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई ॥")

[१४४]

सुरति सिया बनि राम पुजारी
मन बुधि अन्दर आसन सुन्दर, करि आह्वान बिठारी ॥१॥
आतम ज्योति जलाइ ध्यान हिय, पिय आरती उतारी।
बाजइ अनहद नाद मधुर ध्वनि, शंख घंट घड़ियारी ॥२॥
नाचइ मन सुताल राम रुचि, नाम श्वास लग तारी।
भाव दिखाव रिझाव राम पिय, गीति गाव पिय प्यारी ॥३॥
फैलावइ सुगन्ध प्रेम पिय, धूप बासना जारी।
अर्पन अहं सुमधुर भोग करि, जाइ पिया बलिहारी ॥४॥
राम पिया मुख चन्द चितव कहुँ, चेतइ चरन चिह्नारी।
भूलई जस सपना होइ अपना, मग्न रूप त्रिशिरारी ॥५॥

[१४५]

प्रगटे हिरदय खंभ खरारी।
तेज प्रचण्ड कि हरि अखण्ड, श्रीहूँ सक नहीं निहारी ॥१॥

सेन आसुरी गुन विध्वंस करि, देव गुनन विस्तारी।
अहंकार हिरनाकश्यपु अति, प्रबल असुर संहारी ।।२।।
ज्ञान रश्मि निज भानु तेज ते, तिमिर अविद्या टारी।
निज उरु डारि असुर सन्ध्या धड़ि, देश काल सँग मारी ।।३।।
इन्द्रिन द्वार यान सुर निरखहिं, चकित थकित बल हारी।
निकट न आवहिं शलभ होन डर, तरुण तेज दनुजारी ।।४।।
जीव भक्त प्रह्लाद मोद अति, गोद लीन्ह बैठारी।
तुरत जनित बछ गउ सों चाटत, शिर धरि कर मनुहारी ।।५।।

□ □

॥ राम ॥

श्री रामचरितमानस पदावली

अयोध्या काण्ड

श्री भरत चरित प्रसंग

(भाव प्रकरण)

॥ राम ॥

श्री सीताराम जी

हनुमान जी

[१]

फणि नृप मणि हरि सचिव गवाँई ।
चित्त सुमंत्र लगेउ मणि सँग जिमि, बछ सँग धेनु लवाई ॥१॥
हानि विशेष शोक स्वाभाविक, तन तजि प्रान जवाई ।
संभव करन असंभव जीवन, दुख बनि गयो सवाई ॥२॥
कठिन धर्म सन्देश देन भेउ, मृत्यु सुमंत्र दवाई ।
सचिव प्रान राखि जेहि तहि विधि, नृप शिर आइ नवाई ॥३॥
राम गवन सन्देश बिषम विष, जैसे नृपहिं पवाई ।
राम राम हा राम कहत भेउ, नृप कर प्रान हवाई ॥४॥
अवधि बिते आवन हरि सुनि सब, लोग न मरे भँवाई ।
प्रकृति देह तजि बसेउ प्रतीक्षा, तनु जनु प्रेम छवाई ॥५॥

[२]

नृप मन पहँ सुमंत्र बुधि आये ।
बूझेउ प्राण संग लाये वा बन चित परे सिधाये ॥१॥
चित चेतना पार गंगा के, जहँ लगि देखन पाये ।
कहेउ सुमंत्र ब्रह्म माया जिव, मोहिं बुधि परे नँघाये ॥२॥
प्रान यान चढ़ि •क्रिय पयान मन, नृपति समाधि समाये ।
आपुहिं लखेउ विश्व पेखेउ पर, ब्रह्म न परेउ लखाये ॥३॥
स्वयं ब्रह्म कीन्ह• करुणा जब, रावन अहं ढहाये,
तब दश इन्द्रिन पति मन दशरथ, प्ररब्रह्म दरसाये ॥४॥
अभिमत पाइ जानि ठाँव जहँ, नित रह राम लुकाये ।
दशरथ जीव भेदि आवरन, रामहिं संग टिकाये ॥५॥

[३]

गवन राम बन रथ के घोड़े ।
छटपटात छिपकली पूंछ जिमि, राम देह ते तोड़े ॥१॥
चरहिं न पियहिं नयन जल मोचहिं, उड़ि पर जनु जग रोड़े ।
आधे खुले नयन नित सोचहिं, सुरति राम से जोड़े ॥२॥
बरबस जुते भगाहिं दखिन जनु, सुख धन तिन्ह तहँ तोड़े ।
सूझहिं नहीं बाट औघट वा, झाड़ी खाड़ी चोंड़े ॥३॥
उत्तर चलहिं न बहु चुचकारे, अथवा मारे कोड़े ।
विरह पीर धरि धीर न धारत, पग पिरात जनु फोड़े ॥४॥
लड़खड़ात गिरि परत भूमि जनु, तनु ते प्रान निचोड़े ।
प्राणनाथ रघुनाथ जानि निज, जग तें सुरति सिकोड़े ॥५॥
पशु हय हिय हूँ हेय हृदय, प्रिय राम न तोहिं निगोड़े ।
जो तू होइ सन्तुष्ट फिरत जग, इष्ट राम कहँ छोड़े ॥६॥
ले शिक्षा रघुबर अश्वन ते, वेगि विश्व मुख मोड़े ।
नित सन्मुख सिय राम लखन रहु, रीझत जे श्रम थोड़े ॥७॥
धनि धनि बाजि जगत से बाजी, जितेउ प्रेम हरि होड़े ।
रथ चढ़ाइ राम सिय लछिमन, मोहिं लखाउ परउँ गोड़े ॥८॥

[४]

मूरति मधुर मनोहर हास ।
चितवनि चित्त चुराइ लेत मन, मानत दरस विलास ॥१॥
आत्म चेतना मन बुधि अश्वन, इन्द्रिन थामत रास ।
तन रथ चलत निगम मारग, सञ्चालित आत्म प्रकास ॥२॥
किये प्यार प्याये पय दीन्हे, रघुबर द्वारा घास ।
नहिं प्रभाव अस अश्वन जस, सम्बन्ध ब्रह्म जिव खास ॥३॥
का हय गय पशु केलि सारिका, शुक मुनि मनहुँ हुलास ।
राम बिलोकि होत स्वाभाविक, सब जिव -राम निवास ॥४॥
राम रूप आकर्षन पहुँचत, राम अंश जिव पास ।
जिव चेतना जुटत लघु चुम्बक, हरि महान- बनि दास ॥५॥

[५]

सोचत सचिव पिटत निज छतिया ।
सकल धर्म फल राम गँवाये, सुनहु सुमंत्र भयेउ जस गतिया ॥१॥

परम विवेकी जान धर्म निज, वेद साधु सम्मत करतुतिया।
कहे कैकई राम बुलायेउ, मदिरा पियन विप्र भइ मतिया ॥२॥
जिमि कुलीन निज धर्म निपुन तिय, सेवक नित पति मन क्रमबतिया।
सोवत प्रजा चोरि रथ हाँकन, भयेउ कर्म वश छोड़न पतिया ॥३॥
जन्म अनेकन सुकृत राम धन, असावधान लूटि गयेउ रतिया।
बन दिखाइ राम लौटावन, बिरद बाँधि पुरयेउ नहिं बतिया ॥४॥
सीताराम छोड़ि आवन बन, मानहुँ कीन मातु पितु हतिया।
जमपुर सोच भयेउ समुझत दुख, रथ बिनु राम लखत नरपतिया ॥५॥

[६]

दुख सागर सुमंत्र गहिरात।
पुरजन मातु सुमित्रा सीढ़ी, कौशल्या नृप जात ॥१॥
निघटत नीर मीनगन पुरजन, रानी प्रेत जमात।
शशि बिनु अमिय नृपति अवलोकेउ, सोचइ बिगड़ी बात ॥२॥
राम राज स्वर्ग आरोहन, बन दै गिरेउ ययात।
राखि न राम विवश संपाती, सम पर पंख जरात ॥३॥
कहेउ सुमंत्र राम सन्देशा, कुशल सीय दोउ भ्रात।
नहिं लौटे सुनि तजेउ प्रान नृप, राम कहत अकुलात ॥४॥
दुख सागर डूबे निकरे नृप, सुनि हरि विजय सोहात -
नृप रुचि लिये डुबे सुमंत्र, सुनि परत तिलक उपरात ॥५॥
(महाराज दशरथ दुख सागर में डूब गये और भगवान श्रीराम के लंका विजय की सोहाती बात सुन कर प्रगट हुये। सुमंत्र जी भी दुख सागर में डूब गये और इनका पुनः व्यक्तित्व श्रीराम राज्याभिषेक ही में प्रगट होता है)

[७]

रवि मणि द्रव बस रविहिं विलोकी।
अथवा रवि के उदित मुदित मन, रहत विलोकत कोकहिं कोकी ॥१॥
हंसिनि मोती चुनइ पियइ पय, स्वाति पियति चातकी विशोकी।
दूध न पियइ स्वाति जल त्यागइ, रक्तहिं से रति राखति जोंकी ॥२॥
सती विलोकति केवल निज पति, दूजेहिं लखन नयन रख रोकी।
पति के रहत सँवारत निज तन, बिनु पति देइ अग्नि महँ झोंकी ॥३॥
चित्रकूट कहँ भरत गवन किय, सम सुर राज्य अवध मन टोकी।
अवध राज बैठत रघुनन्दन, लहेउ सुमंत्र राज्य त्रैलोकी ॥४॥

[८]

मति दशरथ गति जानि कि जावै।
सो जानइ जेहि प्राप्त सोई गति, कै जेहि राम जनावै ॥१॥
मन कैकेई बुद्धि सुमित्रा, चित कौशल्या भावै।
अहं भाव राम स्थापेउ, तिन सँग नित्य रमावै ॥२॥
लौटे नहीं राम गवने बन, सचिव सँदेश सुनावै।
तैसेहि देह अवधपुर त्यागइ, सुरपुर सूक्ष्म पठावै ॥३॥
केवल कारण लिये राम पहँ. गये नहीं रस पावै।
सुरपुर जाइ प्रवेश सूक्ष्म करि, हरि पँह लंका धावै ॥४॥
हर्षित निरखि अर्थ भक्ति गहि, ज्ञान जो राम सुनावै।
मुक्ति बिहाय लहाय भक्ति दृढ़, रामहिं शीश नवावै ॥५॥

[९]

दशरथ मुये गये सुर धाम।
श्रुति कह प्राण चढ़ाइ प्रणव धनु, जिव भेदइ श्री राम ॥१॥
जोइ अन्त मति सोइ अन्त गति, पहिले कैसेहुँ काम।
राम विरह मरि जाइ लोक सुर, रटत राम किमि नाम ॥२॥
जो सम्बन्ध लिये कुछ ही दिन, गीध धाम बस राम।
सुकृती नृप जीवन निर्वाहत, सोइ किमि गति लह बाम ॥३॥
माँगेउ राम गीध कुछ दिन जिइ, पितु सुख देन ललाम।
लहत परम गति राम विनय, मानेउ नहिं गीध सकाम ॥४॥
सोइ राम रुचि नृप निर्वाहेउ, मुयेहु न किय विश्राम।
राज अभिषेक लखेउ रहि सुरपुर, राम संग गेउ धाम ॥५॥

[१०]

दशरथ नृपति प्रेम रजधानी।
दशा अगम मन बुधि चित मुनि हूँ, मैं वर्णउँ केवल अनुमानी ॥१॥
तेइस सहस वर्ष दुस्तर तप, किहेउ त्यागि राज. सुख खानी।
विधि हरि हर सुख मान सिद्धिहूँ, देत विरति मति तिन्ह न भुलानी ॥२॥
अखिल विश्व नायक दर्शन करि, तृप्ति न होइ बुधि रही लुभानी।
माँगेउ तिनहिं होन अपनो सुत, तेहि दर्शन फल सुत रति मानी ॥३॥
सुत विषयक अद्भुत रति माँगेउ, मणि बिनु फणिक मीन बिनु पानी।
बसे रहइँ नित नयनन आगे, यहि रस तें वह रस बड़ जानी ॥४॥

होइ अचेत गिरि परे धरणि तल, परिछाँइव न लखाई।
निज सहाय हित नहिं गोहरावइँ, सुत माता पितु भाई ॥३॥
भरी कुटुम्ब सु-निकट नाव जिमि, बिकट भँवर जब आई।
केवट नृप गिर मूर्छि भँवर तब, नाव छोड़ि असहाई ॥४॥
प्रभु प्रेरित पहुँचेउ तेहि अवसर, भरत कुशल केवटाइ।
विरह भंवर डूबति नौका मुड़ि, राम मिलन रपटाई ॥५॥

[१४]

अवध काण्ड हिय भरत सतावत।
भरत हृदय नित मिलेउ राम तेहि, प्रबल प्रभाव जनावत ॥१॥
यद्यपि निर्मल भीति भरत हिय, दृश्य साफ़ नहिं आवत।
राम कार्य महँ भरत न बाधा, करहिं सो राम डेरावत ॥२॥
मातु पिता परिजन पुरवासी, इच्छा सकल मिटावत।
राम मेटि नहिं सकहिं भरत रुचि, तेहि नहिं साफ़ लखावत ॥३॥
समाचार स्पष्ट जानि नहिं, कछु न उपाय सुझावत।
शोक उदधि लहरात ऊँच तट, धैर्य नाँघि नहिं पावत ॥४॥
सपने सम्भव बढ़ेउ वेदना, जब सुन गुरू बुलावत।
चलेउ बेगि रथ बन गिरि नाँघत, तनिक न दृश्य सोहावत ॥५॥
कुसगुन, पुर श्री हीन नारि नर, उदासीन दरसावत।
भरत धैर्य मग्न शोक जल, निरखि महल थल धावत ॥६॥
सुनि पितु मरन भयो दुख दारुन, सुने राम बन जावत।
शोक डुबायेउ भरत धैर्य, तिनकहुँ जिन अजहुँ सुनावत ॥७॥

[१५]

विरह पीर कोइ वीर सहै।
नहिं तो निरस शून्य लागत जग, सती समान दहै ॥१॥
मरनो सरल कठिन जीवन जेहि, नेम प्रेम निबहै।
सब ते कठिन कि विरह वर्ण करि, प्रिय हित दुःख गहै ॥२॥
प्रेमास्पद के प्रिय हूँ को हित, मन बच कर्म चहै।
जौ प्रेमास्पद कहँ सुख पहुँचै, खुशी वियोग लहै ॥३॥
विरही को दुख विरही जानै, पहुँचै हृदय तहै।
पीर दबाइ भरत कौशल्या जो पहँ गये रहै ॥४॥
रहैं सुखी सिय राम मिलन सुख, निज आजन्म ढहै।
भरत सीखि भीखि मन माँगन, विरही पीर कहै ॥५॥

[१६]

भरतहिं कैकेई बहु प्यारी ।

जब लगि तेहि हिय राज्य भरत से, राम अधिक अधिकारी ॥१॥
राम नात ही लगत भरत कहँ, पिता बन्धु हितकारी।
तेहि माँगत महेश मातु पितु, परिजन बन्धु सुखारी ॥२॥
जेहि छन जानी दीन्ह मातु बन, राम बरस दस चारी।
वाही छन तजि दीन्ह ताहि नहिं भूलि कहेउ महतारी ॥३॥
पिता मरन कर शूल भूल सुनि, राम भये बनचारी।
दहि जिमि घोर घाम गज दौड़ेउ, राम तड़ाग निहारी ॥४॥
चुम्बक चतुर भरत हिय आकर्षत या तजत विचारी ।
केहि के हृदय राम प्रेम, केहि, सुलगत रामहिं रारी ॥५॥

[१७]

भरत भक्ति मणि लहत अँजोर ।

भव निशि नशत मिटत जग सपना, सद्गुन खग कर शोर ॥१॥
राम विमुख लखि मात नात तुरि, जोरेउ नहीं बहोर।
गये कौशिला मातु बुझावन, निज दुख करि कमजोर ॥२॥
एक दूजेहिं लखि गिरे भूमि पर, उमड़े दुःख विभोर।
सम दुख पर एक एक समुझावत, निज दुख मानत थोर ॥३॥
राम गवन बन घाव भरत हिय, पुरै न जतन करोर।
भेषज राज्य अवध अवधी सुख, देत पीर भइ जोर ॥४॥
राम भाव सम लहत राज्य सुख, बन दुख देत कठोर।
राज्य लहत दुख अति सुख भरतहिं, बन लखि अवध किशोर ॥५॥

[१८]

एकहिं एक प्रीति नहिं थोर ।

एक गँभीरता राम प्रेम हृद, एक विस्तार न छोर ॥१॥
जदपि स्वरूप राम सिय लागत, सीमा तल अरु कोर।
एक लीन शोभा दोउ आनन, चरनन एक विभोर ॥२॥
तद्यपि सो सीमा न प्रेम दोउ, बूझत अस चित मोर।
लौटइँ तजि वन[1] एक बसन कह, लौटे युगल किशोर ॥३॥

---

१. वन—यहाँ दीप देहली न्याय से अर्थ रखता है

प्रेम अगाध असीम कौशिला, भरत भये इक ठोर।
राम प्रेम निर्मल प्रसंग नभ, शशि भे भक्त चकोर ॥४॥
भरतहिं निरखति मातु राम सिय, गिरति तकति मुख ओर।
कौशल्या पद राम सिया लखि, भरत गिरत तेहि ज़ोर ॥५॥

[१९]

मन कौशल्या प्रेम निरखु बल।
तप बल जप बल याग योग बल, सती प्रभाव न तुल धरती तल ॥१॥
तप बल भये विश्व विजई, मारे गे किये लोक त्रै बिनु कल।
जप बल मन्त्र देव होते वश, सुखी होहिं रहि गगन अवनि जल ॥२॥
किये यज्ञ जिव लहत स्वर्ग सुख, पुण्य छीण पुनि आव अवनि थल।
योगी सिद्धि सृष्टि तक कर सक, किन्तु चलाइ न सकइ ताहि भल॥३॥
अनुसुइया सतीत्व बल से भे, बाल त्रिदेव करत उन्ह ते छल।
उपजे बिना प्रेम रामहिं पर, उपर्युक्त साधन बल नहिं चल ॥४॥
निरखु प्रभाव प्रेम कौशल्या, जेहि गेउ भरत रूप राम ढल।
वत्सलता बल बनेउ प्रौढ़ सुत, शिशु पथ स्रवन लगेउ जाके फल ॥५॥

[२०]

भरत सपथ सनेह सुचि टपकत।
मनहुँ प्रबल अघ सकल जगत जुटि, छुवन ताहि होड़ करि लपकत॥१॥
असफल एक देखि दूसरो, तेहि पाछे करि अपनो झपटत।
एक एक करि सब के हारे, सब भे भरत नेह मस्तक नत ॥२॥
सब मिलि एक स्वर जनु उच्चारे, भरत न मातु मते अन्तर्गत।
नहिं तौ कौन करै आवाहन, हम अघ दुसह दुःख फल अवगत ॥३॥
करि षडयन्त्र पींजरा विरचेउ, कैकेई मंथरा कुसंगत।
अवधि विलास अवध शासन रखि, भरत हंस फाँसन चह तेहि लत॥४॥
परम विवेकी भरत न आयेउ, पिंजरा कहँ दुतकारेउ कहि धत्।
भरत हंस तजि माया मृग जल, पियेउ क्षीर होइ राम चरन रत ॥५॥

[२१]

अवध नगर वासिन हरि प्रीति।
नेह गेह देह सम्बन्धित, सब कहँ लीन्हो जीति ॥१॥
रिधि सिधि सुहृद कुटुम्ब प्राप्त, तिन्ह से नहिं राखत मीति।
बिना राम के सुख दुख उन सँग, दुख सुख करत प्रतीति ॥२॥

राम सीय सम्बन्ध सकल प्रिय, अपनाये यह नीति।
राम बिना लालसा न हरिपुर, संग न यमपुर भीति ॥३॥
लखन राम सीता स्वभाव की, निशि दिन गावत गीति।
का बसन्त ग्रीषम वर्षा रितु सरद शिशिर हिम शीति ॥४॥
रानी दासी परिजन पुरजन, यही सबन की रीति।
वारि विहीन दीन मीन सम, जब लगि अवधि न बीति ॥५॥

[२२]

कैकइ कुमति भरत लखि भागि।
देखि भरत अनुराग राम पद, दबी प्रीति तेहि जागि ॥१॥
भरत प्रेम अति सुचि समक्ष, माया रहि सकी न लागि।
प्रखर तेज श्री भरत नेह सिझि, पुनि नहिं लौटी दागि ॥२॥
पति शव संग सती न भई, सिय राम दरस अनुरागि।
संग कौशिला चित्रकूट गइ, सहि न राम विरहागि ॥३॥
राम रूप मणि निकट होन हित, चित तेहि होइ गइ नागि।
लहेउ अनूपम प्रेम दशा अति, जेहि तप पायेउ माँगि ॥४॥
यद्यपि राम प्रेरणा, करनी कैकइ चढ़नी साँगि।
राम प्रेम कैकई कियो जग जश, सुख पति सुत त्यागि ॥५॥

[२३]

राम भरत एक एकहिं प्रान।
सीमा सुख अवलम्ब प्रान कहँ, परे जीव अनुमान ॥१॥
प्रानहु के कोउ प्रान कहन तें, अधिक अपन तें जान।
तन मन बुधि चित अहं परे तेहि, मानिय आत्म समान ॥२॥
मानत भरत आत्म करि रामहिं, राम भरत तिमि मान।
भरत राम कहँ ब्रह्म मान, नहिं राम भरत कहँ आन ॥३॥
जो गति कोटि जतन करि पावत, कोइ जिव होइ हैरान।
प्रेम तराजू चढ़त. तुलत जिव, ब्रह्म एक परमान ॥४॥

[२४]

जन मन होत राम मन भाई।
इच्छा निज निःशेष रखत करि, करत जो राम सुहाई ॥१॥
रामहि के सम्बन्ध मानियत, रिपुता और मिताई।
मानत रिपु पुनि ताहु मनावत, राम जो तेहि सुख पाई ॥२॥

राम विमुख अनुमानि मातु कहँ, कहेउ ओट उठि जाई।
पकरि पाँव अन्य मातुन्ह सम, ताह भरत मनाई ॥३॥
पति संग सती होइ लौटि बन किमि तेहि राम बुझाई।
चित्रकूट लै गये यही डर, रथ कैकइहुँ चढ़ाई ॥४॥
शान्त करन मन भरनो तोह, विपरीत यदपि कठिनाई।
भक्त भरत मन करन हेतु लय, प्रीति रीति दरसाई ॥५॥

[२५]

भक्ती भरत विवेक प्रधान।
सुखी होहिं राम सुख मानहिं, सो कर भरत न आन ॥१॥
यही साधना भरत दृष्टि रखि, कर सब कार्य जहान।
हनत मन्थरा रिपुहन बर्जत, कैकइ सती मसान ॥२॥
चित्रकूट लै जात कैकइहुँ, मातन्ह सकल समान।
रखत ध्यान ताके सुख सुविधा, यद्यपि हृदय कोहान ॥३॥
त्यागत स्वयं राज्य पद सम्पति, जोगव राम कर जान।
दशरथ क्रिया दान कर अन धन, करत मूल फल पान ॥४॥
दर्शन राम तृप्त नहिं कबहूँ, तबहूँ जब लौं प्रान।
कह बन बसन राम जौ लौटैं, यह विवेक परमान ॥५॥

[२६]

राम ते अधिक भरत कर धीरज।
बिछुड़त भरत सु-उदासीन पर, मोचत वारि राम दृग नीरज ॥१॥
जहाँ भरत सन्तुष्ट लखिअ लहि, प्रभु पादुका पीठ गंगा अज।
धीर धुरन्धर राम विह्वल तहँ, लखि बिछुड़त जो एक उनहीं भज॥२॥
राम हृदय निज भरत बसायेउ, शशि हिय गरल बन्धु रखि जिमि सज।
भरत हृदय सिय राम विराजत, तेहिं प्रभाव बेबस माया लज ॥३॥
सीता राम प्रभाव बड़ो तेहि, हेतु भरत हिय धीरज नहिं तज।
भक्त प्रेम राम धीरज तज, भक्तवछलता सो नाहीं कज ॥४॥
जितनी निर्भरता निजात्म सुख, अथवा सीता राम चरन रज।
उतना ही दृढ़ धैर्य होत जिव, होत न नष्ट नसे निज सजधज ॥५॥

(पिता के देहान्त और श्री सीताराम जी के बनबास समाचार से अति व्याकुल भरत के, बसिष्ठ जी द्वारा पिता की क्रिया करने को कहने पर, अविलम्ब उद्यत होकर उठ खड़ा होने के अवसर पर उनके असाधारण धैर्य के कारण का उल्लेख उपर्युक्त पद में किया गया।)

[२७]

महिमा लखउ प्रेम रघुराई।
वश वशिष्ट जेहि ज्ञानि शिरोमणि, बिलखत दशा लखाई ॥१॥
जस वशिष्ट भे भाव प्रभावित, दिहेउ उपाधि गोसाँई।
कैकइ कथा प्रेम पन दशरथ, कहते मुनिवर पाई ॥२॥
कहते राम सुभांव शील गुन, कहलायेउ मुनिराई।
मगन प्रेम वर्णत सिय लछिमन, ज्ञानी मुनी कहाई ॥३॥
राम वियोग विवशता वर्णत, ज्ञानी मुनि बिलखाई।
तब उपाधि मुनिनाथ वशिष्टहिं, तुलसी दिहेउ सुहाई ॥४॥
होन प्रभावित प्रेम राम सिय, ज्ञानी यही बड़ाई।
नहीं तो योग कुयोग ज्ञान, अज्ञान राम गुरु गाई ॥५॥

[२८]

मुनि वशिष्ट कर मन विज्ञान।
गुरू वशिष्ट योग्यता प्रकटत, करत तासु सन्धान ॥१॥
भरतहिं राज्य देन हित मुनिवर, शुभ मुहूर्त जब जान।
सचिव महाजन कहँ बुलाइ सब, सभा बिठायेउ आन ॥२॥
तब बुलवाये भरत भाइ दोउ, अर्थ न हो जेहि भान।
निज समीप बैठारि भरत कहँ, कीन्हेउ मान प्रदान ॥३॥
भावत भरत कुटिलता कैकइ, पहिले कियो बखान।
तब व्रत सत्य नृपति निर्बाहन, किय जिमि प्रेम प्रमान ॥४॥
सजल नयन पुलकित तनु तब किय, राम शील गुन गान।
परम विवशता आपन प्रगटेउ, मिस विषाद विलखान ॥५॥
यहि विधि जानि भरत मन मुट्ठी, आगे किहेउ पयान।
विधि करतब बताइ कैकेई, निर्दोषी कह मान ॥६॥
शोच योग्य नृप नहीं सिद्ध करि, सुकृती कहेउ महान।
तासु बचन अनिवार्य बतायेउ, पालन राम समान ॥७॥
नृप परितोष राम सिय सुख कर, रक्षा प्रजा दुखान।
पण्डित मान्य बेद बुध सम्मत, कौशल्यादि सोहान ॥८॥
यहि विधि प्रेरेउ सचिवन कौशल्या भरतहिं समुझान।
नृपति बचन फुर करन कहेउ करि, निज आज्ञा अनुमान ॥९॥

[२९]

हरिजन न भये अति शोचनीय।
सकल आस त्यागि हरिजन हिय, निर्मल नभ सम शोभनीय ॥१॥
हरिजन हिय उपजै न काम जिमि, ऊसर तृन नहिं उपजनीय।
उपजे राम भक्ति हिय हरिजन, काग शरीरउ पूजनीय ॥२॥
लाभ न अन्य राम भक्ति सम, लहे सफल तनु माननीय।
नर तनु पाइ न भजे राम सम, हानि न कछु जग जाननीय ॥३॥
सब साधन फल नेह राम पद, शिव प्रचार कर गोपनीय।
राम चरन वारिज सनेह सर्वस्व जानु निज राम तीय ॥४॥
सुमिरन बिधि तुलसी निषेध कह, राम बिस्मरन नारकीय।
जिव तिय राम भजइ भर्ता, परकीय भाव अथवा स्वकीय ॥५॥

[३०]

ब्याकुल भरत कौशिला बानी।
कैकेई बसिष्ठ सीख, अनुहरत उन्ही के मानी ॥१॥
कैकेई शिख भोग जगत सुख, मुनि जग धर्म लुभानी।
राम प्रेम मति कौशल्या की, मुनि प्रेरणा भुलानी ॥२॥
भरत हृदय सिय राम प्रेम गम्भीर अगम पहुँचानी।
मति पुरजन मुनिजन लछिमन करि, बहुत प्रयत्न थकानी ॥३॥
भरत प्रेम महँ गम्य कौशिला, यदपि न पूर्ण थहानी।
सोउ बसिष्ठ रुचि भरत सिखावति, रखन राज कुल कानी ॥४॥
एक सहारा कौशल्या सो टुटे भरत हैरानी।
तेहि सम्हार हित मातु[1] सुनयना, कहेउ जनक समुझानी ॥५॥

[३१]

को जिय कै रघुबर बिनु बूझा।
कहेउ भरत निज जानि हृदय रुचि, कौशल्याहु अबूझा ॥१॥
जगत बुद्धि के परे भरत रुचि, प्राकृत सुख म उरूझा।
सो प्राकृत जन जानै किमि मति, विधि हरि हरहूँ जूझा ॥२॥
मन बुधि चित अहमितिउ पार मति, भरत प्रेम-तेहि सूझा।
हाथ विराग विवेक छुरी छिलि, छल छिलका लह गूझा ॥३॥

---

१. मातु अर्थात् कौशल्या जी ने

[३२]

सीमा सहज सनेह भरत रति ।
लछिमन प्रेम राम योग नित, सीता सहि सक कछु वियोग गति॥१॥
क्षीर नीर सम लखन राम कर, प्रेम न सहि सक एक दूजो छति ।
एक दूसरो संग नहिं छोड़ै, यह कर प्रकृति व्यवस्था एक हति ॥२॥
राम वियोग अशोक वाटिका, सीय निमेष कलप सम टारति ।
विरह घाव हिय नव सेंकन नित, नयनन गरम वारि उर ढारति॥३॥
कोउ नहिं विरह सकै सहि रघुवर, वचन वियोग मृत्यु गति आरति।
अति सहर्ष राम सिय सुख हित, जन्म वियोग भरत मति धारति॥४॥
उपजत नव वियोग अंकुर हिय, बाढ़न तिनहिं प्रेम जल डारति ।
धन्य भरत मति प्रेम अनूपम, जेहि समुझन तरनी भव तारति ॥५॥

[३३]

हरि प्रभाव लह प्रेम भाव जन ।
राम स्वरूप अपान बिसारन, भरत प्रेम सुधि देह विसर्जन ॥१॥
केहरि सम कटि राम निरखि, बिसरेउ बाटिका अपान सखी गन ।
भरत राज प्रस्ताव सभा लखि, भरत भाव बिसरे सब निज तन ॥२॥
भव मग भयो समाप्त सभी जिन, लखे राम सिय लखन जात बन ।
चित्रकूट जाते भरतहिं लखि, तैसेहिं छुटे जीव भव बन्धन ॥३॥
जितनी समय प्रगाढ़ प्रेम हरि, उतनी समय हरी सम हरिजन ।
राम प्रेम मूरति जानिअ नित, भरत प्रभाव राम जस मुनि भन ॥४॥
राम चरित सुनि प्रेम राम पद, होत साथ ही भव निधि उबरन ।
भरत चरित्र सीय राम पद, राग देत वैराग भोग मन ॥५॥

[३४]

भेषज राज देन निज रुज हित ।
क्रमशः कारण रोग भरत कहि, व्यंग सिद्ध किय भेषज अनुचित ॥१॥
जनु ग्रह दशा दुसह दुख उतरी, अवध शारदा फल लखि हर्षित ।
मति मंथरा साढ़ साती बनि, बुधि कैकई करइ आकर्षित ॥२॥
दुइ बरदान देन कैकई, राम शपथ नृप बात सत्य नित ।
बात दृढ़ाइब कैकेई इमि, बात रोग जेहि पीर असीमित ॥३॥

रामहिं चौदह बर्ष बास बन, समाचार बीछी सम छेदित।
मादकता वारुणी राज पद, पाइब पिअब रिक्त कर वुधि चित ॥४॥
ग्रह ग्रहीत इमि भयो वात रुज, बीछी छेदि किहेउ अति पीड़ित।
बारुणि प्याइ राम बिछुड़न दुख, परम असम्भव होइ विसर्जित ॥५॥

[३५]

उत्तर भरत समुझिबे लायक।
सुनत मधुर फल सुधा ज्ञान मन, बसुधा मनहुँ विनायक ॥१॥
कहेउ दिहेउ सिख मोहिं जानि जिय, फल भल तोहिं मोहिं दायक।
मोहिं सम पापी राज्य रसातल, रसा जाइ कह गायक ॥२॥
मोर राज्य तुम कहँ दुख दायक, मोहिं लगत सुनि सायक।
नंगे पग फिर बन हृदयेश्वर राज्य करो किमि पायक ॥३॥
सीता राम लखन पद दर्शन, केवल प्रान प्रदायक।
सत्य कहउँ निज सहज दीनता, जनि मानेउ यहि मायक ॥४॥

[३६]

उत्तर भरत धर्म नय केतु।
विषम धार गुरु मंत्रिन माता, स्वारथ सिख हित सेतु ॥१॥
सजि सामान्य धर्म पितु आज्ञा, राज देन के हेतु।
बचन गुरू मंत्रिन माता भठ, भरत पछारे खेतु ॥२॥
धर्म विशेष राम सिय दर्शन, वर्धन पोषक हेतु।
जानत अवध राज्य सुख सोमा, त्यागेउ जैसे रेतु ॥३॥
राग राम पद याग बिघ्न बड़, दलि सुत सुता सुकेतु।
चले चित्रकूट मिथिला सिय, राम दरस चित चेतु ॥४॥
शान्त सिन्धु सिय राम दरस रुचि, पुरजन ज्वारा देतु।
भरत राम पद प्रेम पूर्ण शशि, शोभा मन हरि लेतु ॥५॥

[३७]

राखी भरत सबहिं के मन की।
राम दरस लालसा सबहिं मन, भरत राज्य बस कहन सुनन की ॥१॥
राम प्रेम जल जमि हिम हिय गिरि, रहेउ गुरू मातु सचिवन की।
भरत हृदय विरहाग्नि राम द्रवि, किहेउ प्रवाह राम थल बन की॥२॥
पुरजन प्रेम मिले नारे तेहि, भयो योग सरि बहुत बढ़न की।
देखन सुनन किहेउ आप्लावित, योगिन ध्यान ज्ञान मुनि जन की ॥३॥

भरत भगीरथ निर्धारित पथ, राम प्रेम जल सरि पावन की ।
जो मग परे तरे तारे निज, पुरुषन पीढ़ी पुनि आवन की ॥४॥
खग मृग तरु तृन तरे निरखि जल, भरत प्रेम भव भाव सपन की ।
राम सिंधु मिलि जल सरि लौटेउ, भरत प्रेम डर लय न खपन की॥५॥

[३८]

निज दीनता भरत समुझाई

देखे बिनु पद पदुम राम सिय, जिय की जरनि न जाई ॥१॥
सहज स्वभाव हृदय रह हुलसत, दरसत तब रघुराई ।
दरस राम पद परस बिना तेहि, विरह कृशानु तपाई ॥२॥
जिय की तपनि न मिटै आन बिधि, पद हरि हर बिधि पाई ।
अग्नि प्रचण्ड विरह हिय केवल, दर्शन वारि बुझाई ॥३॥
राम दरस नहिं भरत खिन्नता, जौ सुख स्वर्ग नसाई ।
नर्कउ घोर ताप नहिं तापई, सन्निधि राम जुड़ाई ॥४॥
भरत राम प्रेम हित उपमा, रवि वारिज सकुचाई ।
फणि मणि चातक स्वाति मीन जल, उपमउ कहत लजाई ॥५॥
दर्शन अवलम्बित जीवन, बिनु दरस रहै सरसाई ।
जौ वह बनैं हेतु राम सुख, सेवा अस दरसाई ॥६॥
भरत अमल मन कमल राम पद, प्रबल विवशता पाई ।
लुब्ध मधुप इव तजइ संग नहिं, तेहि तुलसी तेहि गाई ॥७॥

[३९]

प्रगटेउ राम प्रेम तनु धारी ।

अवध समाज समक्ष मातु गुरु, पुरजन प्रेम पुजारी ॥१॥
मोचत अश्रु ललित पुलकावलि, सक न शरीर सम्हारी ।
गद्‌गद् बयन नयन एक टक जनु, मन बुधि चित्त बिसारी ॥२॥
लेत उसास आस नहिं पूरन, प्रेमास्पदहिं निहारी ।
तासु प्रभाव स्वभाव निकट जिव, प्रेमी होत खरारी ॥३॥
नाम लेत राम सिय उमगत, प्रेम लहर दिशि चारी ।
आप्लावित सो करत कर्ण घुसि, मन बुधि चित नर नारी ॥४॥
अचर शिला चल पिघल भाव जेहि, स्तम्भित जिव चारी ।
निरखत बरसत नयन मिलन हित, तरसत अवध-बिहारी ॥५॥

जा कहँ भजत शंभु विधि मुनि जन, राम ब्रह्म अवतारी।
निशि दिन भरतहिं भजत राम सोइ जिमि बालक महतारी ॥६॥
जाकी इच्छा हित पितु बच व्रत, राम सकहिं निज टारी।
इच्छा रहित राम प्रेम तनु, भरत जाउँ बलिहारी ॥७॥

[४०]

भरत भये सब प्रान पियारे।
भरत सुगात मातु कुटिलाई रहे, व नहिं ते सारे ॥१॥
राज देत सर्व-सम्मत, नहिं लिहेउ कहत सब हारे।
सो षड्यन्त्र करै कि राज लगि, संशय सब हिय टारे ॥२॥
राजा मृत्यु गवन बन रघुबर, बहत दुखद नद नारे।
उलटि प्रवाह उछाह मिलन प्रिय, मधुर सँयोग सँवारे ॥३॥
भरत राज्य रुचि त्रिन जानत हिय, खेत सकुशल उपारे।
राम मिलन लालसा निबल कृषि, सींचि सुप्रबल किया रे ॥४॥
परमातमा प्राण प्राणहु को, रामहिं मिलन सिधारे।
भरत भक्ति रथ चले प्रेम पथ, मिलते राम सिया रे ॥५॥

[४१]

लखु मन, भरत अलौकिक भाव।
चढ़ि विराग विज्ञान शिखर पर, राम सुप्रेम रिझाव ॥१॥
जगत स्वर्ग अपवर्ग त्यागि सुख, राम होत हिय ठाँव।
सोइ समुझत कह भरत राम ही, जानत जिव को घाव ॥२॥
नहिं सन्तोष राम हिय निवसत, बाह्य मिलन को चाव।
तीव्र कि निश्चय किहेउ प्रात ही, चलन मिलन रघुराव ॥३॥
तन मन बुधि सुधि परे भाव चित, हरि हित अहं टिकाव।
पाइ राम तिन्ह मिलत तजेउ सो, अहमिति राम दुराव ॥४॥
द्वैत पात्र प्रेम हवि अनुपम, अशन राम सोइ खाव।
राखत अहं राम हित भरतहिं, भजत राम सुख पाव ॥५॥

[४२]

सुनि समाज सब चातक मोर।
लखन वायु सीतल सीता जल, राम रूप घन घोर ॥१॥
भरत वचन घन ध्वनि संकेतेउ, प्रेम वारि दृग कोर।
दर्शन प्यास आस बूझब लखि, निकटहिं मोद न थोर ॥२॥

राम वियोग विमूढ़न चित विष, मंत्र भरत बच छोर।
सब जागे पागे सनेह नच, मोर चलब सुनि भोर ॥३॥
रुचि एकइ मन दरस राम घन, ते चातकन बटोर।
माध्यम भरत पूर्णता रुचि लखि, भरतहिं करहिं निहोर ॥४॥
प्रथम चले वशिष्ट कौशल्या, पहुँचन रामहिं ठोर।
जिन्ह अनुसरत भरत अनुवर्तत, जिव लहु अवध किशोर ॥५॥

[४३]

धन्य अवध बासी नर नारी।
चले राम पहँ चलन न पाये, तेउ आरत हिय भारी ॥१॥
सब सम्पति सम्बन्ध गेह पुर, बाग बगीचा बारी।
तपत लगत विरहाग्नि राम अति, प्रबल सकल दिय बारी ॥२॥
नर नारी करि करिनि भगे तकि, राम सीत सर बारी।
शीतल भे मज्जत दर्शन जल, सकल पाइ निज बारी ॥३॥
जान न पाये ते नर नारी, हय गय मृग शुक सारी।
पराधीन पहिचानि प्रेम हिय, वास राम किय सारी ॥४॥
दरस पाइ ते फिरे राम सिय, मूरति हिय बैठारी।
जान न पाये हिय तिनके सिय, राम कीन्ह पैठारी ॥५॥

[४४]

राम मिलन पुरजन चित चाव।
अस विशेष मोहिं लगत कि उपमा, लघु जोइ मन में आव ॥१॥
भरतानन नभ बच राकाशशि, रामहिं चलन सुझाव।
लखि उमड़ेउ सुख सिंधु हृदय, बड़वानल बिरह बुझाव ॥२॥
गिरि सुमेर दुख लखन राम सिय, बसन तपस्वी भाव।
राम मिलन उल्लास उमड़ि जल, तेहि कर किहेउ ढकाव ॥३॥
होत वियोग मिलन सुख सारे, सुलभ, भये जिमि पाव।
केवल अन्तर कहत निरन्तर, प्रात चलब प्रिय ठाँव ॥४॥
सूरति भरत प्रेम मूरति रघुबर सम रखत प्रभाव।
भरत स्वाति घन सुख चातक जन, सुखद चकोर स्वभाव ॥५॥

[४५]

सानुज भरत चले बन पाँये।
गुरजन पुरजन मातु सवारी, पीछे आपु छिपाये ॥१॥

पग न त्रान शिर पर नहिं छाया, मग समतल न बनाये।
डगमग डग मग पर विभोर मन, रघुबर प्रीति जनाये ॥२॥
पग झलका झलकत जल नयनन, तन पुलकावलि छाये।
गद्गद् बयन नयन निमेष बिनु, निरखि राम जनु पाये ॥३॥
पाइ खबर गहबर कौशल्या, कहेहु करहु मोहिं भाये।
रथ चढ़ि चले मानि आज्ञा व्रत, निजहिं प्रभाव बढ़ाये ॥४॥
शृङ्गवेरपुर चले चढ़े रथ, जहँ लगि राम सिधाये।
आगे चले बहुरि नंगे पग, त्रिभुवन नेह लजाये ॥५॥
राम चरन चिह्न दरसत परसत, सिय पद रज सिर लाये।
सानुज भरत चरन चिह्नित चित, हित भयो मोहर लगाये ॥६॥

[४६]

मन गुह सेवा प्रेम विलोकइ।
कटक सहित लखि भटक भयो मन, चलेउ भरत पथ रोकइ ॥१॥
इष्ट अनिष्ट सहज सूझइ जेहि, स्वामि शोक हिय चोंकइ।
रखन इष्ट त्यागन अनिष्ट कर, छाती नेज़ा नोकइ ॥२॥
जिमि कौशल्या कोमल निर्बल, निरखइ स्वामि त्रिलोकइ।
प्रेम भाव तिमि बन स्वभाव गुह, सुखउ अशंका शोकइ ॥३॥
जानत राम अजेय तिनहिं हित, निज टोली रन झोंकइ।
सेना भरत प्रबल निरखतहूँ, ताल लड़न हित ठोंकइ ॥४॥
भ्रम सेना निशि राम नेह दिशि कोकी जाते टोकइ।
करइ दिवस तेहि लखु निषाद-पति, राम नेह हित कोकइ ॥५॥

[४७]

का जग जनमे होइ जग भार।
मानव धर्म चर्म सीमा भे, भक्त न राम उदार ॥१॥
मोह सार संसार विटप नहिं, काटेउ ज्ञान कुठार।
जननी जौवन तुम कुठार, नहिं साधु समाज सुमार ॥२॥
राम काज ही करनो जग में, लिहेउ न सार्ज सम्हार।
तासु सहायक हित लगते, अनहित जे ताहि विगार ॥३॥
परम भाग जौ कहूँ कटै शिर, जाग स्वामि हित रार।
नाहित ब्यर्थ एक दिन परिहै, स्मशान को भार ॥४॥
प्रीतम प्रान देइ अनि नाहीं, पुनि न आव संसार।
राम रिझावै मति समुझावै, गुह सुवीर गति सार ॥५॥

[४८]

राम कृपा लेती अवतार ।

हित जन रक्षण रूप विलक्षण, धर अवसर अनुसार ॥१॥
कबहुँ अस्त्र बनि कबहुँ वस्त्र बनि, कबहुँ सँयोग सम्हार ।
नाई कहुँ राजा की नाईं, यलि कहुँ अश्व सवार ॥२॥
कहुँ निज मति पुरुषार्थ बनी कहुँ, स्वार्थ अन्य व्यवहार ।
कोमल कहुँ कठोर लागत, नहिं माँगत बदला प्यार ॥३॥
सीता भरत त्राण पहुँचावत, प्राण तजन की बार ।
सींक विलम्ब न लाइ छींक बनि, गुह पालेउ परिवार ॥४॥
अघटित घटना घटि पटीयसी, राम प्रेयसी सार ।
जग दंगल जन मंगल की जो, लिहे सजग सिर भार ॥५॥

[४९]

राम सखा सुनि भेंटन चाव ।

भयेउ भरत हिय तुरत त्यागि दिय, रथ चल नंगे पाँव ॥१॥
करत दंडवत लखि निषादपति, अस तेहि हृदय लगाव ।
मानहुँ भेंटत गहे लखन अतिशय हिय प्रिय रघुराव ॥२॥
भयेउ विदेह निषाद प्रेम वश, मिलन सनेह प्रभाव ।
पावन करन राम अपनावन, सिधि किय भरत मिलाव ॥३॥
भयेउँ भुवन भूषन तवही तें, राम मोहिं अपनाव ।
कह निषादपति देव समर्थन, करत सुमन बरसाव ॥४॥
अपनावनि स्पर्श राम जप, सेवा नेह लगाव ।
राम प्रेम मूरति निषादपति, मिलति प्रभाव लखाव ॥५॥

[५०]

शृङ्गवेरपुर देखेउ आई ।

कानन जात राम सिय लछिमन, केहि विधि रैन गँवाई ॥१॥
प्रथम राम विश्राम भूमि लखि, रहेउ प्रेम उर छाई ।
सुरसरि राम घाट कहँ मस्तक, भरत सप्रेम नवाई ॥२॥
डगमग चलत सहारे गुह के, तन चेतना मिटाई ।
कुश साँथरी शिंशपा नीचे, लखि हिय लिय लिपटाई ॥३॥
सुख स्वरूप राम सिय सोवत, कुश साँथरी बिछाई ।
हृदय बिदारन बढ़ेउ बेदना, लखन शयन नहिं पाई ॥४॥

हिरण सु-चरण राम दृग शिर सिय, पट विंदु हिरण चढ़ाई ।
बरसत नैन बैन गदगद, पुलकावलि प्रेम पढ़ाई ॥५॥

[५१]

निदरेउ कुलिश न बिदरेउ छाती ।
प्रिय दुख भयेउ न टूक चूक साखी सनेह मति छाती ॥१॥
कुश साँथरी शयन प्रीतम कर, ताहि बिछा कर पाती ।
बज्र कठोर कोटि गुन छाती, बिदरत नहि लखि पाती ॥२॥
भूखे बासर रहि अहार किय, कन्द मूल फल राती ।
जानत अशन ग्रहइ बिनु दर्शन, किमि मति प्रिय रति राती ॥३॥
राम सीय लखि शयन साँथरी, तरु तर सुरसरि दाँती ।
लखन शयन नहि नयन भरत लखि, जीभ दबाये दाँती ॥४॥
तन अनुहारि निहारि सेज नहि, दुख निषादहूँ जाती ।
भरत भाय भक्ती सुभाय गति, मति मम किमि कहि जाती ॥५॥

[५२]

पाहन हूँ ते हृदय कठोर ।
पिघलत नहिं लखि शयन साँथरी, जानकि अवध-किशोर ॥१॥
जिनहिं निरखि स्वभाव तजि तीछी, बीछी गह न बहोर ।
जिन कर नाम जपत हर अहिवर, नात हार बनि जोर ॥२॥
जिनहिं बिलोकत होत सिंह स्थिर अति प्रेम विभोर ।
हिंसक जीवन दशा होत अस, कस मृग मोर चकोर ॥३॥
गिरि नद बाट देत रेत शीतल महि मृदुल न थोर ।
कुश कंटक बहारि चल वायू, सकल सुगंध बटोर ॥४॥
पाँयन तर पाहन पिघलत, टिघलत नहिं हिरदय मोर ।
मैं भाई प्रेमी सेवक नहिं, कोई पातकी घोर ॥५॥
जानि जानकी राम आवते, लिहेउ बसन निज छोर ।
ढकि साँथरी विठाइ परे पद, तात नात करि शोर ॥६॥
लखि विक्षिप्त तृप्त प्रेम गुह, मृत्यु सशंकित चोर ।
भरत उपाइ लाइ डेरा समुझावत ही भेउ भोर ॥७॥

[५३]

रघुपति पन शुचि रुचि मन राखन ।
हिमगिरि चलै ढलै सागर जल, टलै न कबहुँ राम सुदृढ़ पन ॥१॥

मनु शतरूपा की रुचि राखी, जग अवतरेउ शुद्ध आनँदघन ।
कोशलपुर बासिन रुचि राखी, खेलत बर्तत जनु प्राकृत जन ॥२॥
विश्वामित्र लालसा राखी, सँग रहि मख रक्षन दुष्टन हन ।
मूक अहिल्या इच्छा पूरेउ, पग परसेउ विधि एक उबारन ॥३॥
धनुष खण्डि सीता रुचि राखेउ, सुर मुनि रुचि राखन गवने बन ।
पीछे मृग मारीच दूरि तक, दौड़ि हनेउ दय पुनि पुनि दर्शन ॥४॥
मरती बेर गीधराज रुचि, राखेउ मिलन न करि विलम्ब छन ।
रुचि राखेउ सुग्रीव बालि हनि, एक बान सुग्रीवहिं कारन ॥५॥
राज्य विभीषन इच्छा राखेउ, रावन मोक्ष मारि निज बानन ।
कुम्भकर्ण दर्शन रुचि पूरेउ, निज पीछे करि कटक बानरन ॥६॥
अमित रूप धरि पुरवासिन रुचि, प्रथम जाइ गृह कैकेई मन ।
अवधि मिटे प्रथमहिं दिन आये, रुचि रख भरत बसन करि आसन ॥७॥

[५४]

(निषाद राज भरत जी से कह रहे हैं)

ऐसी राम रउरेहिं प्रीति ।

रहत जल जस कमल रवि पर, जीव नैन प्रतीति ॥१॥
बच्छ पर जिमि गो लवाई, सुख चहन जिव रीति ।
ब्रह्म जिमि जिव पर सुहृदता, क्षीर नीरहिं मीति ॥२॥
प्रीति पितु कर राम समुझत, होत हिरदय भीति ।
कहत भावत भरत मम हित, जिअहिं मृत्युहिं जीति ॥३॥
गगन उडुगन देखि कहते, भरत सद्गुन नीति ।
अवनि अवलोकत भरत सम, कहत क्षमा विनीति ॥४॥
गंग तट रमणीक सिय सँग, गाव रउरेहिं गीति ।
लखत मेचकता शशिहिं तव चित्र निज मन भीति ॥५॥

(चन्द्रमा भगवान राम का मन है और इस स्थल पर उनके मन से मिलान किया गया, यथा :—

"अहंकार सिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान ।
मनुज बास सचराचर, रूप राम भगवान ॥")

[५५]

गुरु बिनु जिव भव होइ न पार ।

सत्य न केवल साधारण जिव, लागू जे संसार ॥१॥

दिक्षा दीन्ह निषाद-राज कहँ, लक्ष्मण गङ्ग कछार।
सोइ निषादपति बोध भरत मति, कीन्ह समय अनुसार ॥२॥
राम गुरू वशिष्ट सीता गुरु, लछिमन परम उदार।
कृत मारीच सुमृग मरीचिका, मग्न लखायेउ सार ॥३॥
लखन जगद्गुरु परम्परा गुरु, गुह भयो भरत अधार।
अन्तर्यामी राम लखायेउ, प्रेम कृपा आगार ॥४॥
मिले भरत कहँ राम सिद्ध किय, सत्य निषाद विचार।
दिय प्रमान हिय रहत भरत कहि, हिरदय रहित विकार ॥५॥

[५६]

भरत भाव कुछ अस दरसै।
अन्तर्यामी बसहिं राम नित, नयनन निरखन मन तरसै ॥१॥
आतमहुँ आत्म राम परमात्मा, जानत भाव जो चित सरसै।
याते रुचि राखइ शुचि ऐसी, जातें सिय सियबर हरसै ॥२॥
अन्तर्यामी से उपजइ मति, विधि हरि हर तेहि नहिं परसै।
ऐसी सेवा बनै राम सिय, जो प्रसन्नता नित करसै ॥३॥
बाहर जौ उपलब्ध दरस, चित अन्दर झाँकत नहिं झरसै।
बाहर दर्शन कारन सियबर, नेह मेह जल दृग बरसै ॥४॥
राम को तन तन, मन मन, बुधि बुधि, चित चित अहं अहं गरसै।
अहमिति परे ब्रह्म राम से, मिलत भरत जिव नहिं धरसै[1] ॥५॥

[५७]

अवनि अस सेना गवनि नहीं।
सात्विक भोजन एक बार निशि, सोउ कहीं बनहीं ॥१॥
आगे मुनिवर विप्र बाद, पुरजन सैनिक तिनहीं।
शिविका रानि बाद दो नृप सुत, चलत बिना पनहीं ॥२॥
लिहे क्षत्र अरु विजन डुलावत, लिहे न. सँग जनहीं।
घोर घाम अरु तात बात नहिं, कुश कंटक गनहीं ॥३॥
नगर न जात बास कर तरु तर, स्थल निर्जनहीं।
शोच विभोर कोर जल टपकत, नित सब नैननहीं ॥४॥

---

१. धरसै=धर्षै=अविनय करना।

काम कोह अरि विजय मोह करि, निज विछेद तनहीं।
रिपु संसार जीति चल अर्पन, मन धन जिवधनहीं ॥५॥

[५८]

स्ववशहिं राम वश को करत।
कर्म ज्ञान विराग घाटहिं भक्ति जल को भरत ॥१॥
राम अन्तर्यामि रीझन, कर्म जेहि लखि परत।
कर्म बच मन विमल जेहि, जग जगह कोइ न भरत ॥२॥
एक राम न आन अपनो, ज्ञान यह जिय धरत।
हारि रिधि सिधि मुक्ति सुख, जेहि द्वार पानी भरत ॥३॥
राम सिय नित ध्यान हिय, जपु नाम दृग जल झरत।
जो न जगत विरंचि विरचेउ, लखि न आवै भरत[1] ॥४॥
वेद मर्यादा सुलभ जग, राम सिय अवतरत।
रहति दुर्लभ राम-भक्ति जो, अवतरत नहिं भरत ॥५॥

[५९]

सहित लखन सिय सुमिरत राम।
भरत न सुमिरत देखि देवसरि, केवल करत प्रनाम ॥१॥
सुमिरत भरत लखन लघु भाई, जो आवहिं बड़ काम।
जिव लखाव इमि साधन पद्धति, लहन परम विश्राम ॥२॥
ऋषि अगस्त्य साधना सुतीक्षण, यही ध्यान अभिराम।
राम मनाइ यही माँगेउ शिव, तीनहुँ निज हिय ठाम ॥३॥
काम क्रोध मद गज मन बन बसि, लेन न दें आराम।
लखन सीय राम केहरि, क्रमशः तिन्ह रखैं न नाम ॥४॥
ममता लखन बासना सीता, दलैं अहंता राम।
पुनि बाधक न होहिं ते साधक, नसि होइ छिन छिन छाम ॥५॥

[६०]

•नहिं भेउ भगत भरत अनुहारी
नहिं विरंचि विरचेउ कबहूँ नहिं, ब्रह्म भयो अवतारी ॥१॥
गंग पार करि चलन बार यहि, क्रम इमि भरत निकारी।
जेहि नहि दशा भरत की जानैं, गुरू राम महतारी ॥२॥

---

१. भरत—भारतवर्ष

राम लखन सिय गये पयादे, हिरदय भरत विचारी ।
नंगे पैर चलेउ हठात, विनयेउ नहिं चढ़ेउ सवारी ॥३॥
अति अनुराग राम सिय रटते, जब प्रयाग पगु धारी ।
झलकां ओस कोस पद पंकज, सूचइ शिर बल चारी ॥४॥
नहिं सन्ताप ताप झलका लहि, शीत शीत हिम भारी ।
हृदय विराजति भूमि सुता, नहिं करि मृदु भूमि सँवारी ॥५॥
तन चल पग बल मन शिर बल, चूमत चिह्न पद पिय प्यारी ।
रस आस्वादन कहत राम सिय, भरत भयेउँ बलिहारी ॥६॥

[६१]

लखि त्रिवेणि सिय राम लखन तन ।
परमानन्द पूरि तनु बिसरेउ, परा भक्ति रस भयेउ मगन मन ॥१॥
विह्वल वियोग मिलन चलि आतुर गे नहाइ, जानेउ न प्राणधन ।
सब नहात जै जै त्रिवेणि कहि, जानत माँगेउ अभिमत आपन ॥२॥
अर्थ धर्म काम नहिं मोक्षउ, एक राम पद रति अवलम्बन ।
जन्म जन्म वह सहज अहेतुक, वही साधना सिद्धि बनै जन ॥३॥
जानइँ राम कुटिल मो कहँ चह, जग समुद्र दुख बरसै होइघन ।
प्रीति प्रतीति हृदय बाढ़इ नित, रीझइँ सिय अनन्त आनँद-घन ॥४॥
सुख विलीन हो राम सुसेवा, दुख सिय राम लखन हित दर्शन ।
एवमस्तु कहि कहेउ त्रिवेणी, तुम सम प्रिय न राम काहू गन ॥५॥
सुनिकै भरत पूर्णकाम भे, पुलकित तन बरसैं जल लोचन ।
प्रेम प्रशंसा करत उपस्थित, कह किय भरत प्रशस्त उपासन ॥६॥

[६२]

सियबर रति कर जग वैरागी ।
जस जस होत राम राग जिव, तस तस जग सुख त्यागी ॥१॥
ज्ञान भान हिय नभ उदये जस, निशा अविद्या भागी ।
जागृत स्वप्न प्रपञ्च सकल जस, केवल मिथ्या लागी ॥२॥
अथवा शुद्ध विवेक हृदय जिव, राम कृपा जब जागी ।
सुख स्वरूप राम मणि तजि बन, विषय काँच कस रागी ॥३॥
आवागमन मुक्ति ब्रह्म सुख, जो ज्ञानिन नित माँगी ।
तुच्छ समुझि तेहि भरत न याचेउ, राम प्रेम रस खाँगी ॥४॥
संसृति दुख व्यापै न जीव मति, राम प्रेम नित टाँगी ।
मुक्तिहुँ सुख से सुखद राम रति, सुरस भरत मति पागी ॥५॥

सिया राम लीला विलोकि थल, जगत विषय लग आगो।
तल्लीनता निन्य लीला सुख, लहइ कोइ बड़ भागी ॥६॥
भुक्ति मुक्ति सुख तजि संयम किय, भरत राम रति यागी।
उन सुख हित तजि उनहुँ सकै करि, हवन स्वयं विरहागी ॥७॥

[६३]

भरत चरन लखि झलका झलकत।
ब्याकुल अस तुलसी हिय कर ते, भयेउ विचार धारणा ढलकत ॥१॥
लुब्ध मधुप अस लखेउ तजत नहिं, भरत राम पद पंकज हलकत।
माते वन्देउ चरन कमल सब, छाँड़ि भरत पद पदुम राम रत ॥२॥
भरत प्रेम नेम लखि तुलसी, चूमन चलेउ चरन मस्तक नत।
तरुवा तरुन अरुन पंकज झलकन कन ओस भयेउ लखि आहत ॥३॥
भरत चरन कहँ कमल कहन, नहिं संगत मानन रह विचार गत।
भरत चरन लखि झलका झलकत, प्रेम विभोर खसेउ हिय सो मत ॥४॥
पद झलका झलकन झाँकी लखि, भरत प्रेम हिय तुलसी छलकत।
मोहिं लखि परत व्यापि प्रेम सोइ, होइ हिय जिव नित तेहि
दिल दलकत ॥५॥

[६४]

(राग सावन)

समुझत भरत प्रशंसा निज गुन, केवल गुन श्री राम कृपाल।
सद्गुन फल त्रैगुन सम्भव तन, मन बुधि फलै न डाल ॥१॥
सत रज तम ते बटेउ डोरि दृढ़, प्रकृति बनायो जाल।
फाँसे जीव नचाव बासना, कर गहि दृढ़ शिर बाल ॥२॥
बसत प्रकृति निज सोई मानत, आयेउ जिव उत्पति काल।
ताके गुन बिन अनि किमि बर्तै, जिव निर्बल बेहाल ॥३॥
सिया कृपा भजि राम लहइ जिव, निर्मल मति ततकाल।
गुणातीत तेहि कर्म सँवारहिं, राम त्रिगुण बनि ढाल ॥४॥
बसत राम सिय हृदय बसत सद्गुन जन होत निहाल।
अवगुन मानत अपनी करनी, गुन शरणागत-पाल ॥५॥
(आधार—
कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा। भरत सनेहु सीलु सुचि साँचा॥
सुनत राम गुन ग्राम सुहाए।)

[६५]

भरतहिं भरद्वाज भल जानत ।
नहिं निषादराज सम बैरी राम भरत अनुमानत ॥१॥
भरत सँकोच पोच जनिहहिं मुनि, मातु मते महँ मानत ।
भरतहिं भरद्वाज भेंटेउ, निज धन्य हर्षि हिय आनत ॥२॥
कहेउ जो करतेउ राज दीन्ह पितु, बुरो न कोई मानत ।
धन्य विराग अग्रगन्य तुम, राज्यहिं लायेउ लानत ॥३॥
सगर पुत्र भये धन्य पिता हित, सागर सप्तहि खानत ।
भूप भगीरथ गंगा लाये, धनितर लोग बखानत ॥४॥
परम धन्य दशरथ लाये रामहिं, विधि हरि हर छानत ।
भरत भयो धन्यातिधन्य शुचि, राम भक्ति जग दानत ॥५॥

[६६]

रघुबर कर सनेह जस तुम पर ।
कामिहिं नारि दाम लोभिहिं प्रिय, लघु उपमा, तन सुख जड़ नर कर॥१॥
मोहिं लखि परत राम प्रेम जस, भरत तुम्हारो तनु धरि अवतर ।
न्हात त्रिवेणी मगन नाम तव, करहिं प्रशंसा निशि जगि सियबर ॥२॥
मोह तिलोक त्रिगुन ईंधन विरहाग्नि फूंकि अपने अभ्यन्तर ।
प्रकटेउ भरत राम प्रेम रस भक्तन हेतु सिद्धि शुभ अवसर ॥३॥
जग अकाश यश विधु प्रकाश तव, रहिअ संग नित राम दिवाकर ।
दिन दिन बढ़िअ, न ग्रसिअ राहु कलि, सुखद चकोर कुमुद हरि किंकर ॥४॥
स्रविहिं सदैव सुधा सनेह रस, जेहि पी भव रस प्यास जाइ मर ।
तेहि रस नव नित छुधा पियन हित, बढ़त रही हिय राम करिहिं घर ॥५॥

[६७]

नहीं भरत हम झूठ कहइंगे ।
सकल जगत सुख उदासीन होइ, तेहि हित क्यों असत्य बर्तइंगे ॥१॥
जप तप याग योग बल रिधि सिधि, प्राप्त कि वैभव विधिहुँ चकइंगे ।
लघु सुख लागि रिझावन काहू, झूठ कहन हम काहि चहइंगे ॥२॥
लोक प्रशंसा चहिअ तो बस्ती, तजि क्यों आके बनहिं बसइंगे ।
छोरि सकइ कोउ सो सब त्यागेउँ, तौ काहू केहि भाँति डरइंगे ॥३॥

सुनहु भरत कह भरद्वाज परिणाम ज्ञात, कहि झूठ दहइँगे ।
चढ़ि के उच्च साधना स्थिति, झूठ बोलि तेहि ते न ढहइँगे ॥४॥
तेहि पतियाहु राम सिय लछिमन, दर्शन फल साधना लखइँगे ।
राम प्रेम मूरति तव दर्शन, तेहि फल रस नव नित्य चखइँगे ॥५॥

[६८]

भरत कहहिं मुनि सत्य कहहिं हम ।
तीरथराज समाज मुनिन सर्वज्ञ आप सिय राम हृदय रम ॥१॥
नहीं शोच कर्तव्य मातु नहिं, पोच मोहि जानइ जग एकदम ।
राम विरह पितु मरन शोच नहिं, बिगरन जन्म यहू अरु आगम ॥२॥
सीताराम लखन बिनु पनहीं फिरहिं वेष मुनि बन न भूमि सम ।
अजिन वसन फल मूल असन, वन भूमि शयन कुश पात न दुख कम॥३॥
तरु तर बास त्रास सिंह अहिं, सहि हिम लू घन बरसत झम झम ।
वारि पहार सहार न सेवक, जो बहार थल टिकन करै चम ॥४॥
यही एक दुख हरेउ सर्व सुख, भूख नींद तन आनँद आतम ।
केवल लौटे राम दूरि दुख, होइ मिले जिमि जिव परमातम ॥५॥

[६९]

भरतहिं भरद्वाज पहुनाई ।
प्रकटेउ भरद्वाज तप महिमा, भरत विराग जनाई ॥१॥
जो सुख भोग विश्व कतहूँ, या मन कल्पना समाई ।
भयो उपस्थित विस्मित विधि लखि, शची इन्द्र ललचाई ॥२॥
कल्पवृक्ष अरु कामधेनु दोउ, प्राप्त सबहिं तनहाई ।
त्रिविध वायु रमणीक दृश्य, वासना हृदय उकसाई ॥३॥
स्रक् सुगन्ध उपलब्ध चन्द्रमुखि, लखि उर्वशी लजाई ।
अर्थ धर्म काम मोक्ष सुख, लहइ जाहि जो भाई ॥४॥
मुनि महिमा लखि हर्ष लोग, सियराम न लखि पछिताई ।
भरत हृदय सिय राम सदय, करि यत्न न सिधि छुइ पाई ॥५॥

[७०]

भरत धरेउ शिर राम प्रेम घट ।
उर कर खसेउ न छलकेउ धक्का, दै दै थके प्रलोभ प्रबल भट ॥१॥
पवन प्रलोभन उड़ै मेरु सुरपति मति विधि धरनी धरहूँ हट ।
तेहि किञ्चत नहिं डिगेउ प्रेम घट, भरत धारणा कसे केश लट ॥२॥

पुलकित ह्वै बहु बार सम्हारैं, सूखे भरैं अश्रु च्वै तेहि झट।
माया पंछी पियन निवारहिं, निशि बासर सिय राम नाम रट ॥३॥
ऐसो निज स्वभाव प्रेम रस, भार धरन जेहि लगइ न आकट।
समता जागै चलत न लागै, ठोकर पार करत मग दुर्घट ॥४॥
अस माधुर्य कि गिरत धनुष पट, दौड़े राम पियन रस झटपट।
धन्य भरत तुम सम जग नाहीं, कुशल प्रेम घट सिर सिरजन नट ॥५॥

[७१]

भरत चले चित चित्रकूट दइ।
प्रेम मगन मन नहिं सँभार तन, चले सहारा नृप निषाद लइ ॥१॥
सुनत सखा सन पंथ कथा, सिय राम बसन तरु तर दुख जल कइ।
सुमिरि राम दुखु रहत अश्रु चखु, निरखि वास थल बरबस छल कइ ॥२॥
नंगे पाव नहीं शिर छाया प्रेम· अमाया दृष्य सुलभ भइ।
देखि दशा बरसहिं प्रसून सुर, भूमि मृदुल प्रकृतिउ सुख सरसइ ॥३॥
चलैं जलद छाया करि ऊपर, मृग लखि खग बोली आकर्षइ।
शीतल मन्द सुगन्ध वायु चलि, कहै सुलभ न राम जस भरतइ ॥४॥
चेतन अचर भये अचेत चर, भरत लखे तब अब सुनि चरचइ।
भये परम पद योग्य तबहिं, होते अब भरत प्रेम लहि परिचइ ॥५॥

[७२]

मोहिं नहिं समुझि आवै बात।
क्यों सुखद मग भा न रामहिं, जस भरत भा जात ॥१॥
सुखद नहिं भरतहुँ चले लै पादुका लौटात।
सुखद चलि माँगे त्रिवेनी, राम सिय प्रिय नात ॥२॥
कहत यह करतूति सुर, जस भरत उनहिं सुहात।
अवध लौटे राम सुर दुख, रहत बनहिं नसात ॥३॥
उमा पूंछति भरत सुख किमि, राम से अधिकात।
राम जब बन जात दुख, सुख सुरन हेतु सहात ॥४॥
भरत हूँ तस सुख न लौटत, राम जस नगिचात।
प्रश्न सुनि "सिय कृपा सब" शिव कहेउ बहु मुसुकात ॥५॥
प्रथम मन शिर बल चले, तलवान ओस लखात।
भूमि शीतल हित, निवारन घाम, दिन किय रात ॥६॥

जब प्रयाग ते चले विह्वल, डगमगात डगात।
प्रकृति स्वामिनि किय व्यवस्था, व्यथित जन दुख घात ॥७॥
राम लखन न निज दशा तस, लखत मग बनजात।
लौटते लहि पादुका प्रभु, भरत दुखी न गात ॥८॥
भक्तवत्सलता सिया लखि, पिया हिय हुलसात।
राम अहलादिनि सिया गुन, कृपा तेहि दरसात ॥९॥

[७३]

देखि भरत कर अमित प्रभाव।
मारग सुखद जलद शिर छाया, त्रिविध सामने बाव ॥१॥
स्वतः होत सब निज आयसु बिनु, लखि सचराचर चाव।
करत प्रशंसा सिद्ध साधु सुनि, शोच विवश सुर राव ॥२॥
अति विषाद वश गयेउ गुरू पहँ, विनय कियो परि पाँव।
भरत प्रेम निधि राम प्रेम वश, चाहत बिगड़न दाँव ॥३॥
अस माया कीजिय कि भेंट नहिं, भरत राम होइ पाव।
सुर गुरु कहेउ सहस लोचन हूँ, तोहिं नहि मेरु लखाव ॥४॥
निज अपराध भुलाव राम, जन के अपराध रिसाव।
अम्बरीष अनहित दुर्बासा दुर्गति प्रकट स्वभाव ॥५॥
सेवक मीत मीत निज मानत, बैरी बैरी भाव।
सेवक शुचि रुचि राम रखत नित, कर्म विचार न लाव ॥६॥
जिन कहँ राम भजत भजु भरतहि, सुनु मम अमिट उपाव।
लहि सुख राम करत तव हित, मेटिहैं न भरत प्रस्ताव ॥७॥
(भरत जी का भजन करने से रघुनाथ जी सुख मानेंगे और तुम्हारे देव हित में प्रस्ताव रखेंगे, जिसे भरत जी मेटेंगे नहीं)

[७४]

प्रेम भरत हिरदय लखु भल कै।
पूर्ण सिंधु अस चिह्न चरन मग, राम चन्द्र लखि छलकै ॥१॥
आप्लावित तट सब शरीर किय, नाम नहीं कहुँ मल कै।
स्वच्छ मुकुर सम सब शरीर छबि, राम लखन सिय झलकै ॥२॥
विरह उसास पहुँचि तरंग शिर, गिरि पषान हिय जल कै।
प्रेम नीर झरनन नयनन ह्वै, खग मृग मृगपति ढलकै ॥३॥

दशा अवर्णनीय सुर मुनि बुध, दशा कहूँ नर खल कै ।
तन मन बुधि भिगोइ चित अहमिति, सबकइ गइ गलगल कै ॥४॥
कठिन कठोर पषान हृदय महँ, किय प्रवेश दलदल कै ।
भरत प्रेम अमृत गरिमा, भव भयो हलाहल हलकै ॥५॥
राम बास थल चरन चिह्न लखि, रेनु चढ़ावत पलकै ।
श्याम वरण यमुना लखि रामहिं, वन्दत भीगो अलकै ॥६॥
यमुना राम मिलन दौड़त, रोकैं परिजन बहु बल कै ।
सिंधु प्रेम जल बसै बिरह रघुवर उर बड़वानल कै ॥७॥

[७५]

सखि लखु राम पुनः वह आये ।
संग भ्रात पंडित मुनि सैनिक, सेवक सचिव सुहाये ॥१॥
पुरजन परिजन शिविका सुन्दर, सुघर ओहार ओढ़ाये ।
पहिले मनहुँ लुमानि तियन दुख, लखि अब ब्याहन धाये ॥२॥
नहिं मुनि वेष जटील केश नहिं, संग निज नारि दुराये ।
मनहुँ त्रिविक्रम भूमि परिक्रम, लौटि बरात सजाये ॥३॥
दूजो देखि कहइ सखि साँचो, मरम न तुम लखि पाये ।
वय वपु रूप रंग चाल सोइ, किन्तु मलिन मुख नाये ॥४॥
होइ सन्देह विचार करत दोउ, तीजो खबरि जनाये ।
राम भ्रात ये भरत शत्रुहन, चले राम लौटाये ॥५॥
पिता दीन्ह सो राज तजेउ, गुरु मातु जदपि समुझाये ।
भूख प्यास नींद नहिं लागत, विलप वियोग सताये ॥६॥
सेवक सेनप सचिव मातु गुरु, लै चले राम मनाये ।
साज समाज संग जेहि करि अभिषेक बनहिं घर लाये ॥७॥
सुनि सब निरखहिं धन्य धन्य कहि, भरत सोउ जिन जाये ।
प्रमुदित हिय बसाइ राम सिय, लहि शिसु भरत खिलाये ॥८॥

[७६]

मंगल सगुन होहिं सब काहु ।
लोवा नकुल दरस मृग माला, फरक सुभग दृग बाहु ॥१॥
सूचक समुझि राम मिलने कर, शीतल भा उर दाहु ।
तरु अभिलाष बढ़ेउ उर फूलत, बहु रँग सुमन उछाहु ॥२॥

लाभ मिलन प्रिय लखन सिया, सन्तोष दरस सिय-नाहु।
हृदय विचारत सब मातत चखि, सुरा सनेह अथाहु ।।३।।
एक एकन्ह लखि राम मिलहिं, जाकै हिरदय जस चाहु।
लड़खड़ाइ गिरि परहिं धरनि, शिर धरनि राम पद लाहु ।।४।।
रक्त ललाट लगाइ ललित, लालिमा तिलक सरसाहु।
प्रेम समुद्र तरंग दृश्य भा, मग नर पर्व नहाहु ।।५।।
पर्व नहाइ अर्घ तिन्ह दीन्हे, नयनन नीर प्रवाहु।
मुख पर पड़े सचेत मन्त्र सुनि, मिलिहहिं जनि पछिताहु ।।६।।
तनिक दूरि जहँ चित्रकूट बस, दुःख पूर्ण शशि राहु।
नाभि सुगन्ध चले तजि मृग सुनि, पद्म नाभ निर्वाहु ।।७।।

[७७]

भरत सपन महँ सियहिं दिखाये।
संग समाज अवध विरहाकुल, सासु श्रृङ्गार दुराये ।।१।।
सुनि सिय नाह भरे जल लोचन, खबरि किरात जनाये।
आवत भरत राम पुलकित तनु, हर्ष न रहै छिपाये ।।२।।
कारन शोचत भरत आगमन, गुरु संग सेन सजाये।
समुझेउ भरत न लियो राज पद, दै मोहिं चह लौटाये ।।३।।
पिता बचन अभिलाष भरत, केहि रखिअ रहे उलझाये।
लखन हृदय श्रद्धा भरतहिं गुन, सुनन सुअवसर पाये ।।४।।
भरत कुटिलता वर्णन मिस, गुन कहन राम उकसाये।
भूख राज्य प्रभुता मद त्रुटि भायप, आरोप लगाये ।।५।।
सुनहु लखन सादर कह रघुबर, जग भे साधु सुहाये।
भरत सरिस निरलेप नहीं विधि, पद्म पत्र उपजाये ।।६।।
भरत न मद लहि विधि हरि हर पद, अस सुबन्धु नहिं जाये।
राम बचन अनुमोदन सुर सुनि, हर्ष लखन मन भाये ।।७।।

[७८]

कारन स्वप्न समुझि अस पाई।
उमा भरत सीता त्रिजिटा, सपना निष्कर्ष लगाई ।।१।।
एक कारण कोऊ समर्थ कह, सोवत स्वप्न उपाई।
जागृत कहन प्रत्यक्ष न चाहै, अपना रखन छिपाई ।।२।।
उमा स्वप्न यहि उदाहरण, दूजो कारण अब गाई।
होने वाली होत हुई, घटना जेहि देइ दिखाई ।।३।।

जेहि परमान स्वच्छ वित्त, घटना तस चित्र बनाई।
त्रिजिटा भरत सिया सपना, क्रमशः स्पष्ट लखाई ॥४॥
लखन न सोवत राम प्रभू सर्वज्ञ न स्वप्न समाई।
उमा स्वप्न मोहिं 'राम दरस दो', सिय लीला दरसाई ॥५॥

[७९]

भरत चले जहँ सिय रघुराई।
मंदाकिनि सब लोग रोकि सँग, लिय निषाद लघु भाई ॥१॥
भरत सिन्धु हिय लखन राम सिय, ज्वार सनेह उठाई।
करनी मातु दोष निज घाटा, भाटा दे बैठाई ॥२॥
कबहुँ शिथिल कहुँ रुकै चलब जब, निज त्रुटि मन महँ लाई।
राम स्वभाव भक्तवत्सलता, समुझि बढ़त बल पाई ॥३॥
वातावरण शान्ति विग्रह नहिं, जीवन बन रुचिराई।
सचिव विराग रानि शान्ति नृप, ज्ञान बसे जनु आई ॥४॥
राम शैल बन निरखि हरषि हिय, भरत प्रीति अस छाई।
पाइ सिद्धि साधक साधन सब, जैसे रहे सिराई ॥५॥

[८०]

राम बास थल चन्द्र लखाये।
प्रेम वारि हिय भरत सिन्धु, उमड़ेउ जनु प्रलय लजाये ॥१॥
मगन भये मन बुधि चित अहमित, सीमा दृशि जे आये।
डुबे, बचेउ लालसा दरस, मुनि चिरजीवी उतराये ॥२॥
राम बास थल बट अवलोकत, बार बार चित लाये।
प्रबल प्रवाह प्रेम परलय, अक्षय अवलम्बन पाये ॥३॥
निरखि राम पद पदुम चिह्न, घन प्रलय नयन बरसाये।
किहेउ प्रेम जल प्रलय चित्त लय, काल प्रदेश नसाये ॥४॥
परलय पवन प्रेम पुलकावलि, परमानँद प्रकटाये।
जग लय बिच बट पात, राम केवल मुकुन्द दरसाये ॥५॥

[८१]

भरत लखेउ रामाश्रम पावन।
मंगलमय सुमनोहर मन रति, मदन बसंत लुभावन ॥१॥
करत प्रवेश मिटेउ दाहक दुख, भेउ योगी मन भावन।
देखि वेश मुनि लखन राम सिय, मन भा दुसह सतावन ॥२॥

मुनि के वेश मुनिन संग राजत, बेदी परम सुहावन।
भक्ति ज्ञान वैराग्य वेश मुनि, आयेउ मुनिन रिझावन ॥३॥
वल्कल बसन जटा मुख शोभा, कोटि मनोज लजावन।
जेहि लखि मोहे खर दूषन, त्रिशिरा अरु भगिनी रावन ॥४॥
राज साज ते अधिक मनोहर, उपयोगी ललचावन।
सुख स्वरूप सोइ हिये जमावन, ललकि दीन चह जावन ॥५॥

[८२]

महिमा लखन गुरू लखु भारी।
जिव का अन्य भरत सीता, लछिमन सम्मत पैठारी ॥१॥
सुनत कान बिनु भजत भरत नित, सुनेउ न भरत पुकारी।
जब लगि लखन न कहेउ भरत हैं, करत प्रनाम खरारी ॥२॥
सीता देखि सराहत रघुवर, ब्याहन नहीं विचारी।
जब लगि उदय अरुण लक्षित, सम्मत नहिं लखन उचारी ॥३॥
धरनि धाम धन देन कहेउ गुह, राम भये आभारी।
सखा कहेउ जब तेहि मति लछिमन, दै उपदेश सम्हारी ॥४॥
राम कीन सुग्रीव मित्रता, बधन ताहि कहि डारी।
लछिमन दीक्षा लहि अपनायो, कहत भरत अनुहारी ॥५॥
गीतावली लिखत तुलसी, लक्ष्मण सम्मत उर धारी।
कहेउ विभीषन सखा बोलि, "बोलिये बेगि" दनुजारी ॥६॥
जासु वियोग विलाप राम भेउ, सती विमोहन कारी।
राम तबहिं अपनायेउ सोइ सिय, लखन सहाय निहारी ॥७॥
रामहिं तोहिं अपनावन मन करु, नित लछिमन मनुहारी।
वर्धन सुख उर्मिला, सुमित्रा नन्दन जा बलिहारी ॥८॥

[८३]

भरत राम मन मिलन विलोकइ।
अस उपमा प्रेमी प्रेमास्पद, मिलन न मिल त्रैलोकइ ॥१॥
निज आनन्द भरत भा स्थिति, परे हर्ष अरु शोकइ।
प्रेम भये प्रेमी प्रेमास्पद, एक होन को रोकइ ॥२॥
चिदानन्द तनु पट-निषंग धनु तीर गिरन को टोकइ।
मानुष तनु सोइ मन बुधि चित, अहमिति प्रेमी लग बोकइ ॥३॥
दुरे द्वैत निशि जिव कोकी मिल, ब्रह्म स्वाभाविक कोकइ।
राम भरत भे भरत राम, आवरन दुरे तेहि मोकइ ॥४॥

राम राम भे भरत भरत, सम्बन्ध सिया टिकि नोकइ।
राम भरत प्रिय मिलन सरित, स्नान मिलन हिय चोंकइ ॥५॥
यह प्रसंग सुधि कामधेनु, कामादि दोष मद भोंकइ।
भरत राम संगम पवित्र बढ़ि, जमुन गंग दोउ होकइ ॥६॥

[८४]

भरत राम प्रिय मिलन सुढंग।
जीव लखावत ब्रह्म मिलन किमि चहिये प्रकृति असंग ॥१॥
तन मन बुधि चित अहंकार के भरतहिं छोड़े सँग।
प्राकृत वस्तु राम त्यागेउ पट, सायक धनुष निषंग ॥२॥
पहिले राम निरखि नयनन तव, प्रकृति संग किअ भग।
नयन दरस सोपान प्रथम, मिलने आतमा प्रसंग ॥३॥
गिरे भरत तनु सती उठा, शिव राम लगाये अंग।
अजहुँ मिलन यहि भाव बतावत, जलि लौ दीप पतंग ॥४॥
प्रखर प्रेम असि मिलन चढ़ावत, यह गति अन्तिम रंग।
भक्ति हृदय अकाश अवकाश न, उपर उड़नि अनि चंग ॥५॥

[८५]

रघुबर रवि प्रिय भरत मिलनिया।
भव निशि अंत संत हिरदय सर, सरसिज भक्ति खिलनिया ॥१॥
ज्ञान समाज मण्डली मुनिगन, राम ब्रह्म दिखलनिया।
जन्मन लहिअ ज्ञान जो स्थिति, छिन महँ भक्ति दिलनिया ॥२॥
अति आश्चर्य अवस्था अहमिति, परे शरीर जिलनिया।
सूचत भगत दशा शरीर हू, माया परे हिलनिया ॥३॥
करि सुधि अद्भुत दशा मिलन मन, चह तेहि वेगि दिलनिया।
किन्तु दशा यह कहब सुलभ, करतब है कठिन लिलनिया ॥४॥
जौ चित चढ़ै भरत स्थिति वह, कानन रुचिर टिलनिया।
तौ मिलु राम चित्रकूट बनि, कोउ एक भोल मिलनिया ॥५॥

[८६]

अनुपम मिलन भरत रघुबर को।
स्थिति मिलत परे अहमिति जहँ, गम नहिं विधि हरि हर की ॥१॥
राम शैल लखि देह शिथिल, मन दर्शन लहि सियवर की।
पाहि पाहि कहि गिरे बुद्धि लय, चित परसन हरि कर की ॥२॥

हिय लाये लय अहं दशा एक, भई स्वामि अनुचर की।
राम सुजान लगे समुझावन, गति अभेद के डर की ॥३॥
राम सुधारत भक्ति दीन जन, तासु शक्ति लखि सरकी।
ब्रह्म मिलन आनँद आस्वादन, राखि बुद्धि निज पर की ॥४॥
आत्म ब्रह्म लय दशा बाढ़ि रस, इच्छा पूर्ति जिगर की।
भरत मिलन परिपक्व भक्ति फल, अशन तृप्ति धनुधर की ॥५॥

[८७]

भरत राम शुचि मिलन सगाई।
उपमा ढूंढ़त कतहुँ न सूझत, अस अद्भुत गहिराई ॥१॥
मुनिगन चकित थकित इन्द्रिन सुर, माया व्यथित न पाई।
मन रहि हरि बुधि बिधि अहमिति हर, छुइ न पाइ गुन गाई ॥२॥
मुक्ति सशंकित आत्म ब्रह्म मिलि, पुनि आतम बिलगाई।
भक्ति प्रशंसित विकसित हर्षित, महिमा अलख लखाई ॥३॥
केहरि कटि पट पीत राम लखि, सखिन अपान भुलाई।
इहाँ गिरे पट राम मिलन लखि, सबन अपन बिसराई ॥४॥
दशा विचित्र न हिय सचित्र मम, किहेउ अनेक उपाई।
जनक लली निज कृपा पली मोहिं, देहि सो तोर उपाई[1] ॥५॥

[८८]

भरत मिलन रहस्य त्रै बात।
अहमिति परे चेत तन लौटन, मिलि न कहब बिलगात ॥१॥
तीजो लखन प्रश्न का उत्तर, राम प्रेम सरसात।
तुलसी त्रै रहस्यमय वर्णन, कृपा सिया दरसात ॥२॥
मुनि मण्डली सु-सभा ज्ञान कहँ, भक्ति करावन ज्ञात।
लखन जगद्गुरु पूँछेउ प्रभु प्रिय, ज्ञान कि भक्ती नात ॥३॥
राम बतावत भक्ति श्रेष्टता, मुनिगन हिय न समात।
भरत मिलनि गुन भक्ति लखायेउ, सब भे अहं भुलात ॥४॥
अहमिति परे पहुँचि मिलि ब्रह्महिं, ज्ञानी नहिं लौटात।
अहं परे लखि भेद बुद्धि गति, सब भे भक्ति ललात ॥५॥

---

१. (उपाई = उपाय) (उपाय = १ युक्ति, २ निकट आना)

आत्म ब्रह्म की भक्ति मिलन सुख, राम न तनिक अघात।
भरत राम किअ नित्य मिलन किमि, लिख तुलसी पृथकात ॥६॥

[८९]

भरत धरत सिर सिय पद धूरि।

लहति भगति तिय मिलन राम पिय, सती सुहाग सेंदूरि ॥१॥
विपति हरन दुख दरन शरन कर, कर अघ अवगुन दूरि।
रघुनायक पायक दायक, निर्मल विवेक मति सूरि ॥२॥
दर्पण सिया राम जग देखन, अर्पण निज भरि पूरि।
अजय शत्रु संसार तिलक जय, भय दय माया हूरि ॥३॥
[1]करि कन्दर्प दर्प मकरी सक, सर्प क्रोध नहिं घूरि।
चिठी प्रवेश देश हरि, भव रुज, क्लेश सजीवन मूरि ॥४॥
बनिअ सुहागिनि भरि माँगिनि, हरि अघनावनि मन्जूरि।
दशा भरत सिय एक मगन हिय, राम लगन जग तूरि ॥५॥

[९०]

मोहिं यहि मिलनि न मिलत मिलान।

उपमा जल नहिं पाइ विश्व सर, आस कमल कुम्हिलान ॥१॥
बिसरेउ मुनिन अपान शत्रुहन, नृपति निषाद भुलान।
तेहि नहिं किहेउ दण्डवत रामहिं, गहि तिन्ह निज हिय लान ॥२॥
सुरपति शोचत दशा राम लखि, अब सब बनी विलान।
सुरगुरु तेहि समुझाइ विविध विधि, उर सन्तोष दिलान ॥३॥
भरत प्रनाम प्रेम रवि सिय उर, वारिज नेह खिलान।
"होउ राम प्रिय मोहिं सम" आशिष, दिय हिय हर्ष हिलान ॥४॥
दशा भरत सिय भई एक, गिरि देह भिति भिहिलान।
भरत राम सिय मिलनि चेत मम, बन्धन देह ढिलान ॥५॥
दाह वियोग मिलनि पहिले हिय, पाहनहूँ पिघलान।
चित्र बनाये राम भरत पद, गति विचित्र दिखलान ॥६॥

[९१]

धन्य भरत शिर सिय पङ्कज कर।

सानुकूलता अति प्रसन्नता, शुभ संकेत सकल रक्षा कर ॥१॥

---

१. करि रूपी काम, मकरी रूपी मद और क्रोध रूपी सर्प घूर नहीं सकते।

निश्चित भक्ति अनूप प्रदायनि, सद्‌गुन देन सकल अवगुन हर।
दानि विवेक राम शरणागति, मति न प्रवेश विरचि बिष्णु हर ॥२॥
भक्ति ज्ञान मर्मज्ञ शंभु निज शीश, ईश पगजा गंगाधर।
हनूमान शिर राम कमल कर लहि निशङ्क, नहिं अहि माया धर ॥३॥
हिया सिहात सुप्रिया राम कर, कमल बिलोकत भरत शीश पर।
छाया जेहि कर कंज विमोचन, लोचन भेद बुद्धि आपन पर ॥४॥
नहिं उपलब्ध सुनयना जनक लखन, दशरथ कौशल्या लहि बर।
हनूमान सियबर न प्राप्त, पर्याप्त जो भरत शत्रुहन सुख बर ॥५।

[९२]

धन्य भरत जेहि सानुकूल सिय।
सानुकूलता सिय, सेवा कर प्रकृति, प्रसन्न लखन सीता पिय ॥१॥
अन्तःकरण राम प्रिय राजत, मन बच कर्म तिनहिं अनुर्वातिय।
कबहूँ चाहै कहै करै नहिं, भाव न सीता रामहिं जो हिय ॥२॥
सिया राम केवल प्रसन्नता, जासु ध्येय जिमि पातिव्रत तिय।
महा प्रलोभन अवध राज्य आतिथ्य मुनीश्वर, लह न जगह जिय ॥३॥
सिया राम हूँ संग त्यागि उनके सुख हित, तप कठिन जाहि प्रिय।
नयन नीर पुलकित सुमिरत जो, राम नाम चातक जिमि पिय पिय॥४॥
राम प्रेम निःस्वार्थ न इच्छा, अर्थ धर्म काम मोक्ष किय।
भरत राम प्रेमी पवित्र भा तिन चरित्र, साधना क्षीर घिय ॥५॥

[९३]

सिय असीस दिय भरत मनहिं मन।
योग्य न सो स्पष्ट कहन अरु, नेह मगन सुधि नहीं तनिक तन ॥१॥
"होउ नाथ प्रिय सदा मोहिं सम", देत असीस प्राण-धन आपन।
सीय विभोर प्रेम लहि भरतउ, परमोत्कृष्ट वांछनीय धन ॥२॥
जानेउ भरत कहेउ जो सिय मन, दोउ हिय होइ विचित्र आकर्षन।
दोउ दशा एक भई न सुधि तन, किय तुलसी नहिं पृथक विवेचन ॥३॥
सीता सम प्रिय भरत राम होइ, दशा अभिन्न-भिन्न स्वामी जन।
ताते राम कहेउ हनुमानहिं, "भरत मोहिं अन्तर न एक कन" ॥४॥
भरतइ सिय जहँ रहत राम जिय, तेहि सक भरत दशा लंका भन।
सियइ भरत शशि बन्धु गरल उर, जरत वियोग राम फिर वन वन॥५॥

लहि कृतकृत्य भरत सीता पद, भरतहिं भजन लगे आनँदघन ।
प्रेम शिखर सर्वोच्च भरत पद, लहेउँ कृपा सिय दुर्लभ दर्शन ॥६॥

[६४]

सकैं सहि राम न निज हित पीर ।
निज वियोग दुख धीर धुरन्धर, जानत होत अधीर ॥१॥
जन के दुख अति होत दुखी, निज हित लखि दुखी गँभीर ।
अपनो दुख भूलत सिय, लखि दुख, घायल गीध शरीर ॥२॥
निराकार अवतरत संत सुर गो हित बने अहीर ।
अवतरि नृप कारन, कानन जन, फिर बन बने फ़कीर ॥३॥
ब्रह्मादिक प्रार्थना एक ही वपु धरि धारेउ धीर ।
दुख वियोग पुरवासिन बहु बपु, मिलैं फेंकि धनु तीर ॥४॥
बच्छ बनन हरि मिलन हतु, ब्याकुलता नित दृग नीर ।
भये वच्छ रुचि मिलन सहस गुन, भक्त बछल रघुबीर ॥५॥

[६५]

मरन पितु हेतु सुनन निज नेह ।
राम बिलोकिय ब्याकुल बिलपत, शोक धरे जनु देह ॥१॥
मंजु विलोचन मोचन जल लखि, बरसन मानहुँ मेह ।
मुनिगन पुरजन पशु विहंग तरु, सब होइ गये विदेह ॥२॥
प्रभुता धैर्य ईशता त्यागे, बने नेह के गेह ।
चित्र विचित्र राम शोक पितु, चित्रकूट लग खेह ॥३॥
राम वानि निज छाँड़ि ईशता, लहन जनन दुख ठेह ।
रोग निराशा हित हरि प्रेमिन, भा आशा अवलेह ॥४॥

[६६]

चित्रकूट हर्षित सब पुर जन ।
राम लखन सिय निरखि दिब्य गिरि, सरिझरना बायू बसंत बन ॥१॥
हर्ष होत जस निरखि राम तस, लखि गिरि सरिता झरना तरु गन ।
करत प्रसिद्ध चित्रकूट हूँ, धाम सिद्ध जस राम स्वय तन ॥२॥
हर्षित लोग भरत व्याकुल, फिरिहहिं या टिकिहैं बन जीवन धन ।
शोचत रहत भरत निशि बासर, नींद न रैन चैन नहिं दिन मन ॥३॥
फिरहिं कहे गुरु कहैं सो लखि रुचि राम बसग वा त्यागन कानन ।
जननिहुँ कहे फिरहिं क्या सोउ कहुँ, हठ विरुद्ध राम रुचि सकुठन ॥४॥

मोहुँ हठ किये फिरहिं रघुनन्दन, सेवा धर्म मूल किमि सकि खन ।
सुमिरत सिया हिया आयेउ, आयसु स्वामी सेवक सिर चन्दन ॥५॥

[९७]

सुनहु सभासद भरत सुजाना ।
मुनि वशिष्ट कह राम सत्यव्रत, पितु बच रत भगवाना ॥१॥
बिधि हरि हर रवि शशि माया जिव, राम रजायसु माना ।
आयसु राम विरुद्ध करै कोउ, नहीं विश्व मैं जाना ॥२॥
अस विचारि रुचि राम जानि, मति प्रकटहु सकल सयाना ।
भरत कहेउ प्रभु सकहु मेटि गति, बिधि का बनेउ अयाना ॥३॥
बूझत मोहिं तौ कह मुनि सूझत, एकइ युक्ति सुहाना ।
लौटहिं राम जाउ दोउ भाई, यह उपाय नहिं आना ॥४॥
बन महँ करउँ बास जन्म भरि, दोउ कहेउ हर्षाना ।
अवसि मुनीश करिअ यह निश्चित, नहिं करि कोउ बहाना ॥५॥
सुनि उत्तर दिशि देखि बहत्तर, पाइ न कोउ जलयाना ।
मुनि-मति गर्व गरत न भरत लखि, सिंधु प्रेम परमाना ॥६॥
भरत सनेह सुधा सेवा माधुरी, छुब्ध अवसाना ।
कहेउ ज्ञान विज्ञान योग यज, भक्ति शक्ति बलवाना ॥७॥

[९८]

गये राम पहँ गुरु समाज सह ।
सब उर बसत राम तुम जानत, तुम बिनु पुरजन मन कि शान्ति रह।१।
अस विचारि करुणानिधान अस करहु, भरत पुरजन न हृदय दह ।
या विचारि अवलम्ब देहु लहि, अवधि वियोग सकैं सब ही सह ॥२॥
राम कहेउ सोइ शिरोधार्य आयसु गोसाइँ राउरि जस जन लह ।
साधु लोक नीति मत होइअ, किये भरत जस कहहिं गुरू कह ॥३॥
नाथ शपथ दोहाइ पितु दशरथ, भाइ भरत सम भुवन न चौदह ।
पन करि राम कहेउ गुरु करिहउँ, तब आयसु जस भरत भाइ चह ॥४॥
गुरु स्वामी अनुकूल भरत लखि, हिय अपडर आडम्बर गा ढह ।
पुलकित तनु भे सभा खड़े, अतिरेक नेह हिय नयनन जल बह ॥५॥

[९९]

बोले भरत जोरि जुग पानी ।
कहौं काह करुणानिधान तुम, अभ्यन्तर गति जानी ॥१॥

मम उत्पत्ति कुमातु कठिन, बनवास नाथ उर आनी।
मो हीं हित दो अनुचित बर लहि, कठिन कुटिल पन ठानी ॥२॥
पितु कर मरन शोच मातन, पुरजन कारन निज मानी।
स्वामी स्वामिनि नंगे पायँनि, बन दायनि ठहरानी ॥३॥
भये भरत व्याकुल नयनन जल, कण्ठ रुद्ध बँद बानी।
साधु साधु कहि राम सराहेउ, तुम सम जन न जहानी ॥४॥
मातहिं दोष देहिं जड़ जानहिं, परोपकार नहिं दानी।
सुमिरत तुम्हरो नाम सुलभ सुख, मिटै प्रपञ्च भ्रमानी ॥५॥
जानउँ नीके तुमहिं प्रेम, सेवा स्वरूप गुन खानी।
मम हित तजे प्रान तेहि पितु पन, हटै किन्तु बड़ि हानी ॥६॥
गुरु आयसु पितु आज्ञा ते गरु, उर अपने अनुमानी।
करहुँ प्रात जस कहहु तात निज रुचि हिय तजि सकुचानी ॥७॥

[१००]

निज पन तजि राखेउ मन मोर।

राम सनेह छोह निज ऊपर लखि भे भरत विभोर ॥१॥
करि प्रणाम भये भरत कहत प्रभु, कीन्ही कृपा न थोर।
गुरु प्रसन्न अनुकूल नाथ लखि, गइ आशंका घोर ॥२॥
अब अपनी अभिलाष हृदय की, भाषउँ नाथ निचोर।
जन हित प्रभु चित नहिं सँकोच कोउ, कछुकउ पावै ठोर ॥३॥
करुणाकर जस चाहहु चाकर, चित चलि है तेहि ओर।
बन्धु समेत रहहुँ बन लौटहु, सह सिय लक्ष्मण भोर ॥४॥
नाथ फिरे स्वारथ परमारथ, किये रजायसु जोर।
सफल करन कोउ तिलक बस्तु, लायेउँ चित बस एक च र ॥५॥
जानि न अवसर मानि भरत मन, साहिब अवध-किशोर।
लिए पहिनि पादुका दिये जो, भरत निरखि नच मोर ॥६॥

[१०१]

अवसर जनक दूत तेहि आये।

जनक राज हाल पूँछत गुरु, ते विषाद दरसाये ॥१॥
मृत्यु नृपति दशरथ अनरथ नृप भरत॰ राम बन पाये।
जनकराज भयो शोक अवधपुर, चर द्वै गुप्त पठाये ॥२॥
विरह वेदना प्रेम भरत सुनि रामहिं चले मनाये।
सुनत नृपति चल चित्रकूट सँग, जिनहिं राम अति भाये ॥३॥

निकट आइ रुकि हम कहँ भेजेउ, आपन खबरि जनाये।
जनकराज आगमन राम सुनि, अगहुँड चले लिवाये ॥४॥
शोकाकुल समाज राज दोउ, मिलन न मोहिं कहि जाये।
योग अह्लाद अनूप रूप बहु, विरह विषाद बनाये ॥५॥

[१०२]

चित राम पद्म पद परिछाँई।
घोर घाम त्रै ताप नसावन, शान्ति बसावन बरिआई ॥१॥
श्याम वरण पद पीठ मिटावत, चित्र बासना दुखदाई।
नख चन्द्रिका प्रकाश हरत तम, कुहू निशा भ्रम समुदाई ॥२॥
तल लालिमा प्रेम उपजावत, वशीभूत जेहि घुराई।
रेखैं मेखैं ध्यान ललित लीला हिय सियबर ठहराई ॥३॥
अंगुलि पञ्च दोष पञ्च, ज्ञानिनद्रिन वश्य करन ताँई।
जीव प्रतिष्ठित करन राम पद, एक मात्र साधन भाई ॥४॥
चञ्चरीक राम हिय पंकज, भयो न शिव तस सुखदाई।
जस पद पंकज राम बसत शिर, मधुकर हनुमत रसदाई ॥५॥
कोल भील श्री राम चरन, दुख दुसह दोष मेटन गाई।
अर्थ जासु संसृति छुटकारा, नाश बासना भयदाई ॥६॥
मिथिला वासी अवध प्रशंसत, भाव भील निज लघु पाई।
बढ़ेउ सबहिं अनुराग राम पद, नेह हृदय हमरेउ छाई ॥७॥

[१०३]

विनय सुनय मिथिलापति रानी।
कौशल्या कह नृप विवेक निधि, अपनउ परम सयानी ॥१॥
सत्यसन्ध राम नहिं मेटिहैं, केहू भाँति पितु बानी।
चौदह वर्ष बिते अवश्य फिरि कर निज बचन प्रमानी ॥२॥
राम संग सिय प्रान न छोड़िहि, कहहुँ अपन अनुमानी।
अति विह्वल होइ कहइ कौशिला, डरउँ भरत की हानी ॥३॥
भोजन करत न देखेउँ कबहूँ, कबहिं पियत हैं पानी।
रहत शोच रत भरत निरन्तर नयन मघा बरसानी ॥४॥
फेरहिं लखन भरत पठवहिं बन, वह उपाय उर आनी।
महाराज करि शीघ्र व्यवस्था, बनहिं भरत जिव दानी ॥५॥

कहिहउँ कहेउ सुनयना सुनु, कह याज्ञवल्क्य विज्ञानी ।
सुर मुनि नाग बसाइ बाहुबल, फिरहिं राम रजधानी ॥६॥
तीन लोक महँ राम राज्य, सिय त्रिभुवनपति महरानी ।
तीनउ भाइ पवित्र पारषद, तजहु शोच अस जानी ॥७॥

[१०४]

डेरा आइ जनक देखेउ सिय ।
तापस वेश शृँगार लेश नहिं, केश वने अनुहरत राम पिय ॥१॥
पुत्रि पवित्र किये दोऊ कुल, कर्म मथे किय प्रकट धर्म बिय ।
ज्योति जलाइ जाहि उर गृह कोउ, रहै न वंचित पातिव्रत तिय ॥२॥
राम नेह जनु देह सिया, योगी मिथिला पति कहँ कृतार्थ किय ।
मिलत सीय अनुराग सिंधु, अनुरूप प्रलय आप्लावित किय हिय ॥३॥
तन मन बुधि चित बुड़े अर्ध अहमिति वट रामस्वरूप देखि जिय ।
पद सीता समात जनकहिं सोइ, राम रूप आनँद बचाय लिय ॥४॥
राम मिलत जस भरतहि सीता, निज पद भिन्नाभिन्नहिं राखिय ।
तैसेहिं सीता मिलत जनक लहि, दरस राम पद ऐश्वर्यहिं चाखिय ॥५॥
जनक भरत सिय मिलन अवस्था, प्रलय मिटय जहँमिलि एक साखिय ।
राम देहु सामर्थ्य लखन, जेहिं सकउँ राउरे जनगुन भाखिय ॥६॥

[१०५]

समय सुनयना जनक कहेउ ।
भरत प्रेम गति सुनत डूबि मति, नयनन नीर बहेउ ॥१॥
जनक कहेउ सुनु रानि सुलोचन, सिय सौगन्द सहेउ ।
भरत चरित आवृत हिय जिव भव, मुक्त सवेग ढहेउ ॥२॥
ब्रह्म विचार नीति धर्म मम, पहुँचै बुद्धि तहेउ ।
सोइ मति भरत प्रेम अन्तरगति, पहुँचि न फेन गहेउ ॥३॥
परमारथ स्वारथ सुख सारे कबहुँ न भरत चहेउ ।
जौन परिस्थिति होइ राम सुख, आनँद आपु लहेउ ॥४॥
साधन सिद्धि नेह राम पद, समुझउँ भरत ठहेउ ।
राम रजाइ भरत नहिं मेटिहैं, कहि नृप मौन रहेउ ॥५॥

[१०६]

गवने गुरु पहँ राम सुजान ।
दोउ समाज नर नारि मोह मम, दुख सह कृपानिधान ॥१॥

[१०९]

निश्चय राम भरत नहिं जान ।
ताते समुझि राम सिय बन दुख, अवध किरन सुख मान ॥१॥
जानत गुरु वशिष्ट रामहिं प्रिय, पिता बचन परमान ।
सुर हित करन दनुज संहारन, यश भव तारन गान ॥२॥
जानत जनक याज्ञवल्क्य कहिबो, जस तीय बखान ।
जानत कौशल्या जस दशरथ, बचन न तजन विधान ॥३॥
सीताराम बास वन दुख कह, भरत करत अनुमान ।
तिन्ह लौटावन लिय पावन, प्रस्ताव रहन बन ठान ॥४॥
रहन समीप सभी कोइ चाहत, राम प्रान के प्रान ।
सिया राम हित प्रान दान किय, भरत सरिस नहिं आन ॥५॥

[११०]

बड़े असमंजस राम पड़े ।
त्रिभुवन पति के त्रिभुवन नायक, पद नहिं विरद अड़े ॥१॥
सृष्टि प्रलय नहिं अधम उधारन, गज न ग्राह पकड़े ।
भक्त सों कोई होइ नहीं, जेहि विरह नष्ट पिछड़े ॥२॥
वचन विरुद्ध भक्त प्रिय द्वै के, राम कुठाँव कड़े ।
पिता वचन वन जान भरत लौटन, केहि करहिं बड़े ॥३॥
भक्त बछल विज्ञान धाम हरि, सोचेउ खड़े खड़े ।
निज सुख हित एक मोहिं सुख कारन, निज सुख राखु गड़े ॥४॥
राम सुजान कहेउ रुचि राखन, भरत हृदय उमड़े ।
आज्ञा स्वामी कहे भरत रुचि, खुले पाँव जकड़े ॥५॥

[१११]

भरत बचन लखि अद्भुत भाऊ ।
प्रेम प्रशंसा गुरु वशिष्ट लय, मय तेहि तिरहुत राऊ ॥१॥
तबहिं सबहिं जन चले राम पहँ, प्रकट प्रेम चित चाऊ ।
लखि सुरेश विह्वल आतुर, चातुर शारदा मनाऊ ॥२॥
प्रथमउ मातु तुम्ही प्रयत्न करि, बन कहँ राम पठाऊ ।
अब स्वामिनि मति फेरि भरत रखि राम भरत लौटाऊ ॥३॥
कहेउ शारदा सहस्र नयन तोहिं, तउ ले सुमेर लखाऊ ।
भरत हृदय प्रकाश राम सिय, तम कि तहाँ पैठाऊ ॥४॥

मोरि बात नहिं ब्रह्म रुद्र हरि, डारि न सकहिं प्रभाऊ।
भल जो चहहु तो भजउ भरत, मोहिं एकइ लखत उपाऊ ॥५॥

[११२]

भले दोउ बानक आजु बने।
भक्त भरत भगवान राम लड़, खेल विरद अपने ॥१॥
नीति विशारद राम मिलाये, गुरु जनक स्वजने।
बनबासी मुनि सुर सुरेश, शारदा न जाहिं गने ॥२॥
भरत पक्ष कौशल्या पुर बासी, बस कुल इतने।
हृदय गोल एक दूजे राखन, गेंदा राज्य हने ॥३॥
भरत भक्ति वश किये जनक गुरु, स्थल साधु घने।
सुर सुरेश शारदा भरत हिय, लागेउ लौह चने ॥४॥
हारत राम सम्हारि वेग निज मन किय भरत मने।
राम पादुका जीति प्रेम बल, मानेउ हारि रने ॥५॥
हारे भरत जिताये पहले, यहि बदले सपने।
पिघलि पषान समान राम पद, भरत सृजेउ जपने ॥६॥

[११३]

गे सबहीं जन जहँ रघुराई।
भरत जनक संबाद राम गुरु, कहि विस्तार सुनाई ॥१॥
तेहि निष्कर्ष कहेउ मुनि रघुबर, जस तुम्हरे मन भाई।
तस करिहहिं सब लोग भरत, मानिहइँ स्वामि सेवकाई ॥२॥
रघुबर कहेउ बिद्यमान नृप, पितु सम, गुरू गोसाँई।
तहँ कछु मोर कहब बड़ अनुचित, मोहैं नहीं सोहाई ॥३॥
जस कछु आज्ञा होइ आप दोउ, लेहौं शीश चढ़ाई।
राउरि शपथ जो झूँठ कहउँ मैं, वा ऊपरहिं बनाई ॥४॥
राम शपथ सुनि, सकुचे नृप गुरु, नहीं कछू कहि आई।
असमंजस वश लखहिं भरत मुख, चाहत होहिं सहाई ॥५॥

[११४]

मन टुक धीरज भरत विलोकइ।
जगत विरागी रामहुँ जाकर, दुख वियोग हिय चोंकइ ॥१॥

स्वारथ प्रेम बढ़त विन्ध्याचल, चह रवि रविकुल रोकइ।
निज विवेक कुम्भज समर्थ तेहि, धर्म न जन लखि टोकइ ॥२॥
एक दिशा दर्शन प्रेमास्पद, अपयश पर यश ठोंकइ।
दूजे दिशा राम इच्छा जो, मंगल कर त्रैलोकइ ॥३॥
पहिले महँ संकट समाप्ति निशि, कोकी सँग नित कोकइ।
दूजेहिं सेवा धर्म रहइ रखि, प्रान मृत्यु शर नोकइ ॥४॥
सियाराम प्रेम सुख सँग जो, चह अकाम जग होकइ।
तेहि धीरज किमि वर्णिअ बदलै, उपर्युक्त सुख शोकइ ॥५॥

[११५]

शिथिल समाज भरत लखि बोले।
राम राउ गुरु साधु बन्दि, बच, भक्ति दीनता घोले ॥१॥
नाथ मातु पितु गुरु अन्तरयामी स्वामी सुठि भोले।
प्रणतपाल करुणानिधान, जन हित नित हिरदय खोले ॥२॥
मैं अति नीच निठुर कलंक गृह, धारे अवगुन चोले।
मेटे नाथ रजाइ ठोस अति पाप, पुण्य के पोले ॥३॥
जीव जन्तु जग नहीं रजायसु, राम मानि नहिं जो ले।
मेटे वहू नाथ मानी मम, सेवा प्रेम अमोले ॥४॥
नाथइ करि प्रेरणा करायेउ, पायेउँ निज हिय टोले।
कहि सिरमौर साधु मम कृत बढ़ि, सकल सुकृतिगन तोले ॥५॥

[११६]

बोलत भरत खड़े कर जोरी।
गद्गद् बयन नयन जल तन पुलकावलि ललित न थोरी ॥१॥
कृपानिधान सुजान चलै नहिं, अन्तर्यामी चोरी।
एकइ हित स्वामी प्रेमास्पद, आश्रय गति प्रभु मोरी ॥२॥
सुख स्वरूप सह दुख मम कारन, नरकउ मोर न ठोरी।
सो लायेउ न तनिक चित भूलेहुँ मानेउ मोर न खोरी ॥३॥
जन दूषन भूषन करि मानत, लख गुन गुनौं करोरी।
एकइ वार कहत मैं तुम्हरो, सगरो दुख लेउ छोरी ॥४॥
मोहि शठ कहत कहौ तस करिहहुँ, जाति ग्लानि मति बोरी।
तुम स्वामी अनुगामी मैं कहि, परे चरन तन भोरी ॥५॥

[११७]

सुनिये प्रभु जो मम मन भाई ।
कहत भरत बहोरि राम सों, धरि धीरज अधिकाई ॥१॥
सेवक सुख चह रखि न स्वामि रुख, तेहि लखि लाज लजाई ।
शरणागत वत्सल नहिं सौंपेउ मन, तौ क्या शरणाई ॥२॥
अन्तर्यामी प्रभु सों कहिहउँ, केहि विधि बात बनाई ।
मेरे तो व्रत नियम चारि फल, स्वामि सहज सेवकाई ॥३॥
स्वामी आज्ञा पालन सम नहिं, अनि कोई सेवकाई ।
स्वारथ परमारथ को सार, जिव कर्म ब्रह्म सुखदाई ॥४॥
जस रुचि होइ देउ तस आज्ञा, सब संकोच विहाई ।
नाथ स्वामि में दास रावरो, जुग जुग ते बनि आई ॥५॥

[११८]

भरत विभोर और कहि आव न ।
राम बाँह गहि निकट बिठाये, लगे भरत समुझावन ॥१॥
तात होहु तुम तरनि तरनि कुल, असमंजस तैरावन ।
विषम समय कुल कीर्ति बचावन, मोहि पितु वचन रखावन ॥२॥
अति कोमल मानस मराल शिशु, मन्दर कहउँ उठावन ।
सो मेरो अपराध नहीं कुछ, कुसमय लगेउ करावन ॥३॥
होउँ उरिन पितु खींचि खाल निज, रचि पनही पहिरावन ।
भइया तुम तें उरिन न तुम हित, शिर शत जन्म कटावन ॥४॥
अस कहि लिय लिपटाइ भरत, निज धीरज अमित बँटावन ।
अन्तर्यामी हिय बल दै लग, विश्वरूप यश गावन ॥५॥

[११९]

जाउ अवध अब धरम धुरीना ।
तुम सम लखउँ प्रजा महतारी, सब तन दिन दिन खीना ॥१॥
प्रेमी तुम्हरो राखि चित्र हिय, बनिअ हमारो जीना ।
बढ़िअ सो वर्ष चौदहों दिन जिमि, चित्र चन्द्रमा सीना ॥२॥
मम वियोग दुख कठिन सुमिरि तव, दाँते आव पसीना ।
त्याग परम अनुराग बनिअ तव, भूषण भक्ति नगीना ॥३॥
मम यश विमल बनब तुम्हरेही, यहि पुरुषार्थ अधीना ।
जेहि दोउ सुमिरि समुझि पइहइँ मोहिं, सुख स्वरूप जिव दीना ॥४॥

[१२०]

भरत राम संवाद सुहाई।
जीव ब्रह्म सम्बन्ध सार, स्वामी हरि जिव सेवकाई ॥१॥
ब्रह्म ज्ञान तरु भक्ति बेलि चढ़ि, शिखर सुमन ललिताई।
तेहि सुगन्ध सूंघत सुख सब कहँ, गहन परम कठिनाई ॥२॥
दूरी सूचत बर बिराग तेहि, सुर मुनि पहुँचि न पाई।
रँग बिरंग अनुराग राम पद, सित कैवल्य लजाई ॥३॥
अति विनीत प्रस्तुति कोमलता, छुवतहिं जाइ हेराई।
भायप भल सँभार गुरु परिजन, सुमन मनोहरताई ॥४॥
पुलकनि वायु हिलन नयनन जल, ओसकन सुन्दरताई।
बनेउ भक्ति तिय बसन हिलन शिर बिन्दु कनक कनकाई ॥५॥

[१२१]

पूंछत भरत राम शिर नाई।
प्रभु अभिषेक साज सब लायेउँ, ता कहँ काह रजाई ॥१॥
प्रभु पहिरेउ पादुका राखि रुचि, भरत कहेउ समुझाई।
राखेउ तीरथ जल थल जहँ जहँ, मुनिवर अत्रि पताई ॥२॥
भरत खिन्न लखि निकट लाइ, समुझायेउ अस रघुराई।
जेहि जेहि थल तीरथ जल रखिहउ, लखिहउ मम प्रभुताई ॥३॥
भरत प्रसन्न दिव्य थल लखि, जहँ जहँ जल अत्रि रखाई।
दर्शन करत राम सिय लछिमन, तहँ तहँ ध्यान लगाई ॥४॥
सिया राम लक्ष्मण मय देखेउ, भरत सकल गिरिराई।
चित्रकूट है धाम राम, दर्शन चाहत जन पाई ॥५॥

[१२२]

सेवक स्वामि सुभाव लखइ मन
सेवा करत एक परितोषत, मन ते मन बच बच तन ते तन ॥१॥
एक दूजेहिं के रिनी बनत अस, उरिन न होत कोटिहूँ जन्मन।
प्रेम करत अस दोउ परसपर, एक एक के मनहुँ प्रानधन ॥२॥
सेवक के वह एकइ स्वामी, स्वामिहिं तस न लखत दूजो जन।
एक एक क्षेम मुदितता चाहत, सर्वस न्योछावरि करि जीवन ॥३॥
एक एक के बसत हृदय, रुचि राखन तेहि त्यागइ पन आपन।
शुद्ध मिलन एक एकइ डारत, तन मन बुधि चित अहमिति छाजन ॥४॥

भरत राम को राज सँवारत, लोभी लोलुप चहै जगत मन।
राम भरत संबन्ध सम्हारत मिलि कैकई प्रथम सब मातन ॥५॥

[१२३]

राम सँकोचत कहि नहि पावत ।

यह लखि भरत धरत धीरज उर, बोले शीश नवावत ॥१॥
इतने दिन दुलरायेउ प्रभु अब, अवध जान जिय आवत ।
कहत विकल बहि चले नयन जल, धीरज सकल गँवावत ॥२॥
धीरज मूरति मनहुँ विकल लहि, नहि तह प्रेम थहावत ।
बिन अवलम्ब बिलम्ब ठाढ़ कर, नयनन नोर बहावत ॥३॥
कृपासिन्धु लखि बन्धु दशा, गुरु जनक सँकोच नसावत ।
दीन्ह पाँवरी रूप साँवरी, गोरी भरतहि भावत ॥४॥
राम सिया स्वरूप पादुकन, लखि शिर भरत चढ़ावत ।
लिय लगाइ हिय राम बिकल अस, जस फणि मणि बिलगावत ॥५॥

[१२४]

व्याकुल राम वियोग भरत के।

स्ववश राम परवश सनेह जन, जनु नर देह धरत के ॥१॥
धीर धुरन्धर धीरज त्यागेउ, मणि जनु फणिक हरत के ।
लवा धेनु बछ लै भागत हरि, सम्पति सेठ जरत के ॥२॥
आकृति विकृति लखन सिय जनु हिम, कर रवि तेज गरत के ।
विसरेउ सिया व्यवस्था लौटत, पायन्ह भरत जरत के ॥३॥
चिन्ता शोक भरत भागे शिर, प्रभु पादुकन परत के ।
सुख सिय राम फरन अभिमत ते, सुर तरु शीश फरत के ॥४॥
सुचि सनेह कलि बलि स्वारथ जिव, जिव[1] बिनु भरत भरत के ।
भरत पवित्र चरित्र चित्र लखि, मानस रखि न तरत के ॥५॥

[१२५]

भरत बिदाई राम मिलत भे ।

निज सिय रूप पादुका मणिफणि, भरत जियन हित रखि उगिलत भे ॥१॥
वारिधि विरह मोह दिति सुत दलि, भरत बराह महान खिलत भे ।
अवनि पादुका दन्त शीश पर, जियन भूमि अवलम्ब हिलत भे ॥२॥
सुरपति मंत्र उचाट अवध वासिन शिर प्रेम प्रभाव किलत भे ।
निज अवलम्ब देइ पुरजन पादुकन पाइ आपूह जिलत भे ॥३॥

---

१. जिव = जीव तथा जिय वा हिय ।

बुद्धि सुरासुर मथत भवार्णव हित सुख अमृत भरत पिलत भे ।
विरह हलाहल दुख प्रकटत, बल नाम पादुकन अमर लिलत भे ॥४॥
प्रबल प्रभाव स्वार्थ सब सुर मुख, भरत प्रशंसा करन सिलत भे ।
लखत विदाई हर्षित हिय यश भरत कहन जिह्व सबन हिलत भे ॥५॥

[१२६]

मन लहु भरतहिं बोध रहन जग ।

कबहूँ जग से मुक्ति न चहि रहिं,पद्म पत्र जिमि जग जल नहिं लग ॥१॥
आपन नहीं राम काज ही करन लागि मन सदा रहत टँग ।
अपने लिये नहीं नन्हें शिशु, हित जिमि लाव घोंसला चुनि खग ॥२॥
राम सुरति जल भरत मीन जिव, मोह रात्रि जग नित्य सजग जग ।
दक्षिण दिशा निशा धावत कपि, बेधेउ शर धनु तानि श्रवन लग ॥३॥
बैर न विग्रह आस त्रास नहिं, प्रेमी राम निषादउ लग सग ।
करत परीक्षा मुनि परिचह लह, सुख न चाह, बस राम प्रेम रग ॥४॥
अवध राज्य गद्दी सिहात सुरपतिहूँ, तेहि सब कहेउ न धर पग ।
बिना कहे कोउ लखन लखन सिय, राम चरन धारेउ पग बन मग ॥५॥
रहनि सहनि करु भरत अनुसरनि, जौ चह रहि जग माया नहिं ठग ।
रहु बनि मीन राम प्रेम जल, विषय बारुणी भव रस ते भग ॥६॥

[१२७]

राज समाज अवध दोउ चल दिय ।

रूप सजीवन लखन राम सिय, नयन कटोरिन हिय घट भरि लिय ॥१॥
कोउ कछु कहत न चलत निकलि उर, जनु नरनारिन मुँह लिय सब सिय ।
चले जात जनु गृह स्वारथ ते, तिय परमारथ लिये बरातिय ॥२॥
साथ भरत धन शाँत सकल मन, परिजन विरह भरा हिय दृग तिय ।
तन सुधि नहीं बसन सुधि तनिकउ, बने संग पहिचान न तिय पिय॥३॥
दर्शन तरसत बरसत जल दृग, प्रेमास्पद यद्यपि राजत हिय ।
पूर्ण ज्ञान घट हृदय पड़े रस, भक्ति लखिय जनु नयनन सरकिय ॥४॥
दरस प्रत्यक्ष लालसा अतिशय, लखहिं सामने लखत राम सिय ।
माया जगत हटाइ पटल प्रभु, राम भये प्रत्यक्ष जन आँखिय ॥५॥
ताते भरत संग जाते हय, बोल न अढ़क न पीछे ताकिय ।
धरत भरत सम हृदय राम सिय, झरत नयन जल कोउ न बाकिय ॥६॥

[१२८]

भरतउ चित्रकूट ते आई ।

नन्दिग्राम ओबी बनाइ रह, कुश साँथरी बिछाई ॥१॥

तहीं सिंहासन राम पादुकन, अति आदर पधराई ।
नित पूजत पूंछत तिनके कर, राज काज समुदाई ॥२॥
तजि भूषन, फल अशन, बसन बल्कल, शिर जटा बनाई ।
रहि असंग सुख सकल भंग, मन रंग सिया रघुराई ॥३॥
अर्ध निमेष जगत सोवत नित, जागत ध्यान लगाई ।
स्वामि सुरति नित बरसत दृग, हिय घन वियोग उमड़ाई ॥४॥
रटत राम सिय अति आरत स्वर, चातक चित्त लजाई ।
लै उसास सिध साधु भरत, विश्वास प्रेम यम गाई ॥५॥
भरत राम के गुन गन सुमिरत, राम भरत लघु भाई ।
भरत अवधि बँधि बछ रँभात गृह, बन गउ राम लवाई ॥६॥

[१२९]

भरतइ पराकाष्ठा साधन ।

तीनों भाइ सहित सीता, सोपान राम आराधन ॥१॥
सीतापति सेवक गुरु सेवा, शिष्य धर्म धरि काँधन ।
सेवा भरत शत्रुहन बन, ज्ञानाग्नि अहम्मति राँधन ॥२॥
सिद्धा दशा लखन लहि रामहिं, तोरि मोह जग बाँधन ।
रामहिं भिन्न अभिन्न दशा सिय, नेम राम आह्लादन ॥३॥
जगत रहत कर भरत राज, सेवा गुरु परिजन मातन ।
चञ्चरीक चित लुब्ध राम पद पद्म न चम्पक बागन ॥४॥
भरत प्रेम साधन स्थिति जय, जुगल जगत सुख बाधन ।
राम वियोग योग लक्ष्मण सेवा सिय लहे पादुकन ॥५॥

[१३०]

दर्शन तरसत बरसत नयन ।

पावस बरसत दृग तरसत, पपिहा रटि रामइ बयन ॥१॥
राम सिया नित हिया विराजत, बिनु प्रत्यक्ष नहिं चयन ।
दिवस रयन भा॰ दरस न सूझत, रयन दिवस बिनु शयन ॥२॥
नित्य राम बसते मन तन कृश, पिंजरा प्राण बसयन ।
भरत दरस अवलम्ब अवध वासिन भा प्रान धरयन ॥३॥
भरत विरह उपमा लघु स्थिति, रति शिव जारे मयन ।
भरत विरह पय निधि डूबे, सिय राम पयोनिधि अयन ॥४॥

सुरति भरत की आवत हिरदय, बिरह राम सिय पयन।
काटति भव बन्धन, विराम, सिय राम चरन नित दयन ॥५॥

[१३१]

भरत साधु सिरमौर स्वभाव।

निगम अगम मुनि जनक कहउँ मैं, बाल्य चपलता चाव ॥१॥
बुधि आगर सागर बूड़ति मति, गुरु बशिष्ट तिय नाव।
कारपण्य अस कैकेइ देखत, दोषी अपनेहिं दाँव ॥२॥
दोषी निज समुझत बन गवनत, पड़ै न आगे पाँव।
स्वामि स्वभाव छमा सुमिरत, अति नेह विह्वल अगुवाव ॥३॥
रसा रसातल जाइहि करते, राज भरत समुझाव।
राम कहेउ है अवनि टिकी, भरतहिं के पुण्य प्रभाव ॥४॥
दर्शन पावन जेहि प्रभाव चर, अचर परम पद पाव।
जाकी दशा बिलोकि बचन सुनि पुलकइँ सिय रघुराव ॥५॥
जेहि रुचि राखन पन रघुपति तज, शिला प्रेम पिघलाव।
तेहि स्वभाव सुमिरत निवसत सिय राम लखन हिय गांव ॥६॥

[१३२]

मानस पुण्यारण्य मझाई।

झुरमुट कई प्रकार विटप के, पड़िगे अलग दिखाई ॥१॥
सब तरु सुन्दर लदे ललित फल, गलित भरे मधुराई।
सब के रस के भिन्न भिन्न गुन, लहै जाहि जो भाई ॥२॥
उमा शंभु ब्याह स्थल, सुख सुता ब्याह नर पाई।
राम अवध प्राकट्य लहिय फल, नहिं भव कूप गिराई ॥३॥
लहै सदा मंगल उछाह, सिय राम ब्याह फल खाई।
सिय वियोग राम तड़पन तरु, दृढ़ हरि भक्ति लहाई ॥४॥
सिया खोज सुर तरु सुन्दर फल, सकल काज सिधि दाई।
उल्लङ्घन समीर सुत सागर, भव विनु नाव तराई ॥५॥
समर विजय रघुनाथ हाथ नित, विजय विभूति दिलाई।
शुभ अभिषेक राम फल निर्मल, ज्ञान, विराग मिलाई ॥६॥
सब स्थल उपरोक्त खान फल, राम धाम पहुँचाई।
एकई स्थल फल विरुद्ध दल, की अतिशय बिनसाई ॥७॥
भरत चरित विशिष्ट फल द्वै गुन विशद अवशि सुलभाई।
प्रेम अहेतुक चरन राम सिय, भव रस जिय उपटाई ॥८॥

॥ राम ॥

श्री रामचरितमानस पदावली

अयोध्या काण्ड

श्री भरत चरित प्रसंग

(सत्संग प्रकरण)

॥ राम ॥

श्री सीताराम जी

(हनुमान जी)

[१]

तिय निज सेज पिय बैठाउ ।

अहं सेज नश्वर निवासहिं, बैठि जनि ऐंठाउ ॥१॥
आपु तजि सुख बाह्य ढूंढ़त, मुख न दुख पैठाउ ।
पिया तजि तव जिया जहँ जहँ, जाइ माया ठाँउ ॥२॥
मूल प्रकृति व भूल माया, से तु अहं उठाउ ।
अहं सेज बिछाइ शाश्वत, पिय बिठाइ ठठाउ ॥३॥
देश काल कछू न दूरी, पिय न सुनेउँ रुठाउ ।
नित्य परमानन्द भोगत, भोगु राम जुँठाउ ॥४॥

[२]

सुरति लखु झूलत सीताराम ।

मृदुल झूलना श्वासा हिलमिलि, झूलत आठो याम ॥१॥
बाहर श्वासा जात कहत 'रा', समुझु राम अभिराम ।
अन्दर आवत उच्चारत 'म', सीता ललित ललाम ॥२॥
जागत सोवत झूला विलुलित, सुखमन करै विराम ।
नाम जपत इमि आव अवस्था, आपुहिं प्राणायाम ॥३॥
'रा' महँ राजत राम भानु, शशि सिय 'म' आधा नाम ।
मोह निशा जग अभ्यन्तर निशि, नाशत तम दोउ ठाम ॥४॥
सीताराम विलोकि नाम नित, जिव बनु पूरनकाम ।
मृत्युलोक कलियुग रहते तनु, तेहि बसाउ हरि धाम ॥५॥

[३]

लखि पिय पायेउँ स्वयं सेजरिया ।

ढूंढ़त फिरत जगत जन्मन बहु, उड़ि गइ अपन धजरिया ॥१॥

बाहर ताके लखि नहिं पायेउँ, किहेउँ उपाय हजरिया।
योग युक्ति सूंघेउँ सुगन्धि हरि, बसते अहं मँजरिया ॥२॥
मैं तैं मोर तोर दुख सुख कर, उठती लगेउ बजरिया।
राम नाम औषधी मिटावत, त्रैगुन ताप तिजरिया ॥३॥
कामधेनु साकार रूप हरि, चिन्तक चित्त गुजरिया।
अतिहि लालसा लखन राम सिय, लखन स्वरूप नजरिया ॥४॥

[४]

जौ तोहिं राम लागते अपने।

हरि उपासना सकल वासना, तेरे लगते खपने ॥१॥
हानि लाभ दुख सुख पराव निज, होइ जाते सब सपने।
चिन्तन सहज होत रूप गुन, नाम लगत नित जपने ॥२॥
मिलन लालसा जागत त्यागत, रूप सुरति दृग ढपने।
दैवी गुण तव हृदय भूमि पर, अविचल लगते थपने ॥३॥
सहज प्रीति राम डर नासत, नरक अग्नि महँ तपने।
राम प्रीति साधना धरत पग, भव मग लागत नपने ॥४॥
सुदृढ़ धारना करै साधना, देइ न कबहूँ झपने।
सुमिरत राम संग सिय स्वामिनि, माया लागति कँपने ॥५॥

[५]

भजु प्रणव रूप अञ्जनी लाल।

जो मन्त्र चारिहूँ वेद प्रान, सो बनेउ बीज शिव दीन दान।
क्षिति जल अकाश वायू कृशान, पञ्चाक्षर अञ्जनि भूत जान।
तेहि जठर जन्मि जग किय निहाल ॥१॥
'उ' उपर अंश बन भुजा दोउ, वक्षः स्थल बिच उभार जोउ।
नीचे को अंश उरु उभय होउ, लाँगूलहि मात्रा बड़ा गोउ।
चन्द्रिका विन्दु हरि तिलक भाल ॥२॥
नहिं भेद ॐ अरु राम नाम, जो करत अग्नि रवि चन्द्र काम।
'आ' बल लीलेउ फल रवि ललाम, 'र' जारेउ निशचर दुष्ट ग्राम।
'म' सञ्जीवनि लक्ष्मण बिहाल ॥३॥
जेहि सुमिरन मेटत जगत जाल, जन रक्षा हित, जो नित्य ढाल।
रिन जासु राम सिय लखन लाल, आश्रित जेहि तिन्ह दर्शन रसाल।
तेहि पद रज चाटन चुवत राल ॥४॥

लक्ष्मण विराग 'आ' हिय अकास, जेहि राम ज्ञान 'र' भानु बास।
तेहि भक्ति जानकी 'म' प्रकास, सो हनूमान नित राम दास।
दर्शन दिलाउ दिलवर दयाल ॥५॥

[६]

मन टुक लखु गुन पवन कुमार।
जेहि सद्गुन कर करिअ चेत, कपि ताही कर आगार ॥१॥
बल अस गिरि उपारि लै कूदइ, सहस कोस कर पार।
एक मुष्टिक प्रहार मुर्छित जेहि, तौलेउ शम्भु पहार ॥२॥
वेग कि जाइ तीव्र पवनहु तें, कोउ न रोकन हार।
युद्ध कुशलता धैर्य वीरता, जन्मेउ नहिं अनुहार ॥३॥
ब्रह्मचर्य व्रत करन परीक्षा, श्रम किय प्रकृति अपार।
परम रम्य किय लंक उपस्थित, युवति रत्न भंडार ॥४॥
रैन शैन मैन मति माती, मदिरा पिये उधार।
चितयेउ खोजत मातु जानकी, उपजेउ मन न विकार ॥५॥
क्षुब्ध कियो मन शिव समाधि जब, लिये अखण्ड अधार।
नारद नाचेउ डरे बने, सनकादिक नित्य कुमार ॥६॥
धन्य धन्य हनुमान एक, तन मन बच जीतेउ मार।
हिय बसाइ जपि नाम निरन्तर, भयो राम अनुसार ॥७॥
कीन्ह कृपा सुग्रीव विभीषण, ऐसो परम उदार।
सिय सुधि लाइ राम जीतन कहिं, दिहेउ न लिय उपहार ॥८॥
राम कार्य निज कार्य मानियत, स्वामी सुख सुख सार।
सिंहासनासीन राम सिय, लखि नर्तेउ बलिहार ॥९॥

[७]

हनूमान की विरति विरतिया।
उपमा छानी सकल जहानी, काहु न अस मति धरति धरतिया ॥१॥
पूंछेउ राम लंक जारेउ किमि, जातुधान भेउ बरति बरतिया।
कहेउ हनूमान मैं नाहीं, सब कीन्हेउ तब किरति किरतिया ॥२॥
सावधान राम कार्य नित, मन रख सकल दिवस रति रतिया।
निज अभिमान नहीं लागेउ तेहि, कोटिन जातुधान हति हतिया ॥३॥
सब ते मोहिं कठिन लागत जो, सुमिरत होत मोर छति छतिया।
मारन महावीर कहँ निश्चर, नगर मध्य हिंसा लति लतिया ॥४॥

प्रति उपकार तासु विश्व नहिं, पावत गयो राम मति मतिया ।
हनूमान के सदा रिनी की, चले लिखै त्रिभुवन पति पतिया ॥५॥

[८]

बिनु पिय मिले न मोहिं सबरिया ।
माया मइभा मातु रखतु मोहिं, नैहर जगत जबरिया ॥१॥
वस्तु व्यक्ति सम्बन्ध खिलौना, देती मोह रबरिया ।
तन गृह बन्द बुद्धि दरवाजा, करि मोहि रख बखरिया ॥२॥
इन्द्रिन विषय देत मोहिं गहना, वश कर रसना बरिया ।
करत उपाय अन्त पहुँचावन, संसृति प्रकृति कबरिया ॥३॥
कर्ण किवाँड़ा खोलेउँ एक मिलि, सतगुर दिहेउ खबरिया ।
जानेउँ निज सम्बन्ध पढ़ेउँ गुन, रामचरित अखबरिया ॥४॥
नैहर त्यागि पिया मिलने कहँ, हिया भयो गहबरिया ।
कारुणीक पिय मिलन प्रतीक्षा, करिहउँ बनी सबरिया[1] ॥५॥

[९]

लखउ मन, मिथ्या जग जग बात ।
माया काया चश्मा लागत, तब हीं जगत लखात ॥१॥
मोर तोर की लासा लागे, जीव विहंग फँसात ।
अहं भाव से काम करत फल, सुख दुख ताके खात ॥२॥
केवल एक आतमा राजत, उपजत नहीं नसात ।
आपुहि पाण्डव आपुहि कौरव, भेद असत दरसात ॥३॥
व्यापक व्योम समान ताहि महँ, सबही देश समात ।
ब्यापत बाधा काल ताहि नहिं, सृष्टि प्रलय दिन रात ॥४॥
सदा समान ज्ञान यह राखन, राम जोड़िये नात ।
आपु समान करत जे कपि जिन्ह, दोष नाम लिए प्रात ॥५॥

[१०]

मोर मुकदमा राम सुई सम ।
मोह फाँस हिय गड़ी निकालन, सुई गड़ावत तेहि न तनिक कम ॥१॥
जानत रहेउँ करम फल केवल, ज्ञान नयन लखि गयो मोर भ्रम ।
राम कृपालू सुई कर्म फल, काँटा मोह निकालत करि श्रम ॥२॥

---

१. सबरिया = सबरी, भीलनी

काँटा मोह अनेक जन्म कर, घर हिय करि लीन्हेउ रह होइ खम ।
शल्य कुशल कोशलपति कीन्हेउ, उचित व्यवस्था नाश एक दम ॥३॥
कोसत कर्म राम करुणा लखि, तन मन बुधि ते मोर गयो ग़म ।
मोहँ शठ पर हठ अनुकम्पा, लखत राम होइ गये नयन नम ॥४॥
स्वामि समर्थ अपार कृपा लखि, बुधि प्रहलाद अहलाद जो गिर बम ।
राम कृपा नरसिंह प्रगट भेउ, मेरे हिय पामर पषान थम ॥५॥

[११]

किरपा कर मोपर सिय रानी ।
नर तन नाव चढ़े भव सागर, पार जान हम ठानी ॥१॥
पाँच छिद्र नाव महँ उनहीं, खुले पियउँ मैं पानी ।
मूँदे जानउँ मरब बिना जल, खुले डुबै जल यानी ॥२॥
सागर मध्य भवँर चुम्बक धन, सुन्दर नारि जवानी ।
काँटा लौह वासना लागे, खिँचइँ नाव आसानी ॥३॥
आगे भवँर शिला कोइ रोकइ, ता कहँ हित नहिं मानी ।
बाधा जानि क्रोध करि तोरउँ, बोरउँ नाव भ्रमानी ॥४॥
दशा यही प्रति जन्म देखि निज, बल मद अब भहरानी ।
देहि विवेक कर्ण भव उतरउँ, परसउँ पद धनुपानी ॥५॥

[१२]

मन करु पौरुष परुष न बोलन ।
पुरुषोत्तम सब पुरुष हृदय बस, उदित भान ज्ञान दृग खोलन ॥१॥
परुष बयन तू अन्तर्यामी, असन्तुष्ट किय हिय कितने जन ।
तासु भोगावत कर्म दुखद फल, तू किमि लहि सक कबहुँ शान्तपन ॥२॥
वह अन्तर्यामी तव स्वामी, आन न स्वयं राम जग वन्दन ।
इष्ट देव सन्तुष्ट सुचन्दन, शीतल बचन लेय अभिनन्दन ॥३॥
जेहि साकेत बसत तू जानत, अथवा मूर्ति प्रसिद्ध तीर्थगन ।
निज उर बसते लखइ राम सोइ, अरु गे बिश्व व्यक्ति बस्तु बन ॥४॥
निज साधना पाइ सुधि त्रुटि जेहि,अब लगि लहे उ राम नहिं दर्शन ।
स्वामि रूप सेवइ सैचराचर, देहइँ दरस रीझि रघुनन्दन ॥५॥

[१३]

मानुष जनम अकारथ जौ मन नयनन निरखि न पायेउ राम ।
परमावश्यक बात टालते, होत जात तन छाम ॥१॥

देखेउ बिना चैन तू मानत, निपटावत जग काम।
तौ तू चिन्तामणि तजि चाहत, चमकत रज कन घाम ॥२॥
अजहूँ तेरो हृदय बसावत, कनक कामिनी दाम।
नश्वर शरीर जानि झूठो जग, तबहुँ देत हिय ठाम ॥३॥
तुलसी नरसी मीरा चैतनि, कथा पढ़त भइ शाम।
थोड़ो अजहुँ अँजोर, जवानी, अनुसरु चरित ललाम ॥४॥
दर्शन रति ढीलइ खींचइ मन, हय जग विरति लगाम।
ब्याकुलता चाबुक चलाइ आतुरता बिनु विश्राम ॥५॥
जन मन रुचि राखत आये तव रखिहहिं करुणा धाम।
वर्त यही हो दरस मुख्य रुचि, शर्त रिझावन राम ॥६॥

[१४]

राम रिझावति सिय रचि माया।
जाकर नित मुसकानि राम नित, सूचत जिव प्रति दाया ॥१॥
राम सत्य से असत बनावत, जीव जगत जस छाया।
निज संकल्प विकल्प सृष्टि करि, सारे जीव नचाया ॥२॥
रचति स्वाँग लक्ष चौरासी, प्रति जिव हिय जस भाया।
जिव तेहि मिथ्या खेल जानि नहिं, दुख सुख में भरमाया ॥३॥
खेलत जीव बना के टोली, निज परिवार पराया।
ब्रह्महिं छाया अहं न बूझत, जानत निज कहँ काया ॥४॥
निज करुणा द्रवि देहि विमल मति, सिय वा पति रघुराया।
होइ द्रष्टा निरखउँ माया कृति, रामानन्द समाया ॥५॥

[१५]

हरि गुन सुनन सपन रस चाखी।
परे बुद्धि अनुभूति सूक्ष्म रस, रसना किमि सक भाषी ॥१॥
रत फँसिगे पग तन मन बुधि चित, सुरति पियति भइ माखी।
अति अनन्द सम्बन्ध नसत जग, सुरति न तनिकउ माखी ॥२॥
अकथनीय सुख योग अग्नि चित, जगत भयो जरि राखी।
परमानन्द रमे सुधि अपनहुँ, सपनहुँ नाहीं राखी ॥३॥
परमानन्द अनूप न उपमा, सुषमा सुख जग लाखी।
लहेउँ एक छन नित्य लहन मन, गहन भयो अभिलाखी ॥४॥
साँस अवरुद्ध नास तन तबहूँ, सुरति छिपी कहुँ काँखी।
वर्णन दशा सु-कथा श्रवन कछु, देते तासु शिनाखी ॥५॥

[१६]

"मैं" परे जात मोहिं भय लागै।

हम हमार सम्बन्ध जगत की, मति नहिं तूरि सकइ तागै ॥१॥
मैं ही बीज बृक्ष जग सारा, अग्नि विचार नहीं दागै।
जीवनि ताहि मानि संजीवनि, राम प्रेम मति नहिं पागै ॥२॥
निज अमरत्व बिसारि मोह निशि, सपन मृत्यु ते नहिं जागै।
सुख ही निज स्वरूप नित्य तेहि, भूलि डरै मृग जल खाँगै ॥३॥
मोती परमानन्द त्यागि हंसिनि मति भइ मल रति कागै।
निज आराम राम नहिं ढूंढ़इ, होइ आकुल मणि हित नागै ॥४॥
जो रक्षा तव कियो गर्भ महँ, विन भोजन उलटे टाँगै।
तेहि समर्थ विश्वास बाँह गहि, "मैं" आरोहण चित रागै ॥५॥

[१७]

पिय "मैं" उपर उठाउ अँटरिया।

"मैं" सरि मृग जल निकसत मेरे, फँसिगे पंक टँगरिया ॥१॥
मति उपाय हाथ याहू पर, पकरे मोह मगरिया।
इन्द्रिन नाड़ि बुद्धि रक्त पिइ, रिक्त विवेक जिगरिया ॥२॥
कठिन हृदय फल कर्म शत्रु दुइ, दुख सुख तने कटरिया।
खड़े पास उसकउँ तौ मारहिं, डारहिं सरित झँझरिया ॥३॥
मत्सर मान दोष ईर्षा तन, काटहिं कमठ मछरिया।
बान्धव बन्धु हितैषी जानउँ, गति यह उनहुँ सगरिया ॥४॥
केवल प्रीतम राम लखउँ तोहिं, भव सरि चढ़े कगरिया।
निज करुणा विशाल हाथ गहि, "मैं" सरि मोहिं उबरिया ॥५॥

[१८]

संत नकुल का बूटी खाइ।

काटे जगत भुअंग विषम विष, जेहि तेहि सक न सताइ ॥१॥
कहँ उपजत वह अनुपम बूटो, नकुल जाइ किमि पाइ।
का वह स्वाद प्रभाव नाम केहि, बूटी जानी जाइ ॥२॥
जिव के प्रान संग सो उपजइ, श्वासहिं रहइ समाइ।
प्रेम स्वाद सुप्रभाव ज्ञान निज, राम दु अक्षर नाँइ ॥३॥
बाहर जात कहत "रा" श्वाँसा, "म" जब अन्दर आइ।
यहि विधि बूटी सेवन नेवला, निज आनन्द रमाइ ॥४॥

जग भुअंग विष त्रिविध ताप से, निज सुख नहिं बिनसाइ।
जिवन मृत्यु दोउ असम अवस्था, सम जपि राम सुभाइ ॥५॥

[१६]

हन्सा उड़ि ऊपर बास करो।
घास आस जग जरत जाहि तू, ऊँचे बैठे नहीं जरो ॥१॥
तन तरु ऊपरु श्वास पगन टहनी 'रा' 'म' अक्षर पकरो।
आतम सुख फल लाग शिखर तरु, चखि चखि नित्यानन्द भरो ॥२॥
सुनइ मधुर जौ नाद अनाहत, चौंकइ नहिं सुनि जग झगरो।
छबि समुद्र सिय राम ज्योति लखि, का डर मृग जल जग बिगरो ॥३॥
अमर नगर लहि रस मय जीवन, भव रस पी नहिं पुनः मरो।
मृत्यु रहित जीवन प्रवेश करि लौटे मूर्ख मृत्यु नगरो ॥४॥
मैं तैं मोर तोर द्वन्द्व तहँ, सुख दुख राग द्वेष बिसरो।
रुचि रति राम चुगै तू मोती, आतम भाव सुनि सिख हमरो ॥५॥

[२०]

मन ग्वालिनी मुदित लहि माखन।
विश्व पयोनिधि दधि बनाइ बुधि, मथेउ जन्म जब लाखन ॥१॥
वेद पुरान शास्त्र सद्ग्रन्थन, संत वाक्य कोउ राखन।
सब दधि मथि भे मही नश्वर श्वर योग्य दुअक्षर चाखन ॥२॥
साधन अग्नि चढ़ाइ प्रज्वलित, नाम राम को भाखन।
माखन नाम राम सिय घृत, प्रगटि है अवशि हिय ताखन ॥३॥
नाम राम बल जिव सुकंठ दबि, सक न बालि दुख काँखन।
होत बिशोक बिलोक राम सिय, बसत सिंहासन आँखन ॥४॥

[२१]

हरि देखन हरि जन आईना।
जे निज सुधि बिसराइ राम के, ध्यान रहत लवलीना ॥१॥
भरत माँहि कौशल्या दर्शन, राम रूप करि कीना।
हनूमान् महँ भरत विभीषन, लखेउ राम कहँ भीना ॥२॥
रामहिं चिन्तत सन्तत पावत, सद्गुन प्रेम प्रवीना।
निज कहँ भूलत प्रकृति-जन्य त्रैगुन ते होत विहीना ॥३॥
चित्त भीति राम पधराये, जिमि मुद्रिका नगीना।
जगत चित्र आत्यन्तिक मेटे, किये, राम आसीना ॥४॥

राग रोष ईर्षा मद त्यागे, हर्ष विषाद न दीना ।
राम प्रेम रस महँ मति माते, नाते सुरति दफ़ीना ॥५॥
भव रस विरति सुरति रघुपति रह, जैसे जल महँ मीना ।
राम-युक्त जग मुक्त मुये सग, सिखे राम रमि जीना ॥६॥

[२२]

आतम स्थिति सब साधन फल ।
त्रैगुण परे यही एक स्थिति, जहँ माया कर नहीं दाल गल ॥१॥
यहि स्थिति ते तनिकउ उतरे, जीव नसत फँसि माया दलदल ।
आत्यन्तिक न नाश वासना, यहि स्थिति जिव सक तब लगि टल ॥२॥
राम प्रेम जल धुलै वासना, शरणागत होइ लहै राम बल ।
विमल विचार प्रकाश धरत पग, राम नाम सोपान पहुँच थल ॥३॥
रामहिं रहनि रमनि चिन्तन जब, बनै जीव हन्स मानस जल ।
निज सुख मोती चुगै न अनि तब, स्थिति आतम समस्या सब हल ॥४॥

[२३]

वन्दउँ राम अक्षर वरन ।
राम एकहिं ब्रह्म सीता रूप लखनउ धरन ॥१॥
रचन पालन हरन जग, विधि रूप हरि हर करन ।
अग्नि रवि शशि हेतु शीतलता प्रकाश अरु जरन ॥२॥
कर्म ज्ञान उपासना जिव, वेद भल अनुसरन ।
जपत जन अनजानहू गुन, आपने तेहि भरन ॥३॥
कबहुँ नरसिँह बनत दुख प्रहलाद जापक दरन ।
कबहुँ निज करुणा अहेतुक, करत मुनि तिय तरन ॥४॥
बाह्य अन्दर रिपुन सारे, जन जितावत लरन ।
जीव लोहा ब्रह्म स्वर्ण बनाव पारस परन ॥५॥
अघ स्वरूपउ जिव तरत, कहि सकृत् समया मरन ।
नहीं कोऊ गये राखेउ, नाम जेहि नहिं सरन ॥६॥
सुलभ चौदह भुवन आश्रम चारि, चारिउ वरन ।
चारि युग चारिउ अवस्था, सकल नारी नरन ॥७॥
रटनि रसना ध्यान श्वासा, अहं सुषुमन धरन ।
अहं हू हटि गये रूप, अनन्द आतमा करन ॥८॥
दोउ अक्षर जानि जिय निज, राम के दोउ चरन ।
गहन सुमिरन हाथ माँगउँ, हौं सरन नहिं टरन ॥९॥

[२४]

सियवर छमियो कहब ढिठाई।

काहू अति कटु देत अयश फल, केहु यश निपट मिठाई ॥१॥
जगत मञ्च अभिनय नायक तुम, रचहु नाट्य मन भाई।
नाचत जीव विवश तव इच्छा, माया जौन कहाई ॥२॥
तव चेष्टा वश कर्म करत जिव, मानत निज मनुसाई।
तेहि कोउ दयावान कहलावत, कोउ कहाव कसाई ॥३॥
तुम्हरो पाइ सहाइ चढ़त कोउ, गिरत भये असहाई।
तव बल नारद कामहिं जीतत, हारत बलहिं बिहाई ॥४॥
नहिं कोउ बुरो भलो सब नर्तत, जैसे देउ नचाई।
निर्भर तुम्हरे भयेउँ जानि अस, भव डर लेहु बचाई ॥५॥

[२५]

रहनो प्रकृति तजि जिव सीख।

होत जेहि सुख अन्त दुख महँ, तेहि न माँगइ भीख ॥१॥
समय जन्मे मृत्यु दोनों, दुख लग्यो तोहिं तीख।
तेहि बिसारे मूढ़ मृग जल, जगत सुख चह चीख ॥२॥
मृत्यु पीछे जन्म पहिले, मुक्त जिव सुख दीख।
जियन जीवन मुक्त सीखइ, जनक नृप अँबरीष ॥३॥
विरति उर करि प्रकृति सुख, पिउ रस निजहिं रति ईख।
राम निज सुख महँ रमइ, जग सुख न पुनः परीख ॥४॥

[२६]

"हम" "हमार" भव उदधि सतह जल।

या नीचे भव सागर डूबिय, या उबरे उतरिये मुक्ति थल ॥१॥
हम हमार कहँ लखिय फेन, जेहिं नीचे त्रिगुनात्मक सिवार मल।
चढ़ि विराग नौका उतराइअ, राम बिलोकिय नित्य ठाम भल ॥२॥
राम प्रेम पतवार पकड़िये, नाम हाथ विश्राम रहित चल।
राम दिशा नौका चलाइये, इच्छा मोह बचावत दलदल ॥३॥
हम थापिये राम, परमानँद महँ हमार थापिय करि अविचल।
जो यहि युक्ति चलै मन तौ मम, भव विनाश अत्यान्तिक दुख टल ॥४॥

[२७]

आत्मा राम एक ही भाई।

जिव स्थिति मैं पृथक होत, आत्म-स्थिति यक होइ जाई ॥१॥

मन बुधि चित्त अहं बैठक ते, जिव जौ टुक विलगाई।
तौ जो भासइ ताहि कहउ आतमा चहउ रघुराई ॥२॥
जीव अनेक, आतमा एकइ, सब जिव रहेउ समाई।
मन बुधि चित्त अहं आईना, अगनित प्रकृति लखाई ॥३॥
राम ते पृथक न मूल प्रकृति हूँ, तिन्ह विलास परिछाँई।
आदि मध्य अन्त रामै एक, भ्रम देखिअ बहुताई ॥४॥
पार्षद राम राम द्वै अक्षर, जिव दें राम मिलाई।
आत्मा सोई राम तेहि तुलसी, प्राण प्राण कहि गाई ॥५॥

[२८]

मन अस शरण होइ सीतावर।
आसन अहं राम स्थापइ "मैं" निःशेष राम महँ लय कर ॥१॥
तू नहिं तोर वस्तु व्यक्ति कोइ, तनु कर कर्म राम जस उर धर।
मन बुधि चित सब वर्तहिं तैसेहि, चेष्टा राम होइ तेहि अवसर ॥२॥
शरणागतवत्सल कृपालु प्रभु, अपनाइहैं तोहिं करुणाकर।
उनहीं बुद्धि प्रदान किहेउ नतु, तू किमि जान होन इमि निर्भर ॥३॥
इहै विराग ज्ञान योग नित, अविरल भक्ती फल साधन वर।
कर्म कुशलता मुक्ति प्रकृति लय, ब्रह्मलीन गति परम इहै नर ॥४॥
निज पुरुषार्थ फिरेउ तू अब लगि, लख चौरासी योनि अचर चर।
राम अहेतुक कृपा प्रेरणा, लहि यहि मग हो तुरत अग्रसर ॥५॥

[२९]

मन तू भव रस अजहुँ ललात।
बीतेउ व्यर्थ तोर नर जीवन, अंत कछुक दिन बात ॥१॥
विषय वारि बिचरत भव सागर, मगन मीन दिन रात।
ग्रसेउ ग्राह वासना उदर संसृति लै तो कहँ जात ॥२॥
संसृति उदर नसात काल बहु, निकलेउ हरि करुणात।
पुनि तेहि जात पुकारु राम, तारण वारण शरणात ॥३॥
सुख लोलुप जिव तोहिं सुलभ सुख, रस अनुपम न सुखात।
निज सुख कुन्ज खोजि कै अलि बनु, राम चरण जलजात ॥४॥
निज स्वभाव तजि गौवरैला मल, विषय विषम जग खात।
संत भक्त मधुकर बनि आजुहिं, पिउ रस अमर अघात ॥५॥

[३०]

संसृति सज़ा मज़ा भव रस रति ।
जौ संसृति महँ तू दुख मानै, तौ आनै न भोग भव निज मति ॥१॥
भव सुख त्यागै तन मन बुधि चित, निज स्थिति जौ चहै अभय गति ।
परमारथ अरु विषय भोग महँ, दिवस रैन सम परम असंगति ॥२॥
माया सिरजित इन्द्रिय मन बुधि, तिन्ह कर भव सुख स्वाभाविक लति।
राम कृपा विवेक उपजे जानिअ सुख पाइब तिन्ह इच्छा हति ॥३॥
माया विरचि विषय नाना सुख, सुलभ जीव करि नित आकर्षति ।
याके सुख से सोई भागै, जागै जो भव निशि लखि दुर्गति ॥४॥
भागे हूँ नहिं बचै न जब लगि, निज सुख लहै न करि सतसंगति ।
अथवा अपना अबल सकल विधि, जानि न जाइ शरण सीतापति ॥५॥

[३१]

साकार राम भे निराकार ।
यह सत्य अनुभवउँ करि विचार, बुधि द्वैत होत तब निराधार ॥१॥
अवतार रूप गुन लै अधार, पकड़िये नाम डोरी सम्हार ।
पग प्रेम डगर पर देहि डार, तजिये मन बुधि चित अहंकार ॥२॥
मग चलते निज बल जाइ हार, शरणागत होइ चढ़िये पहार ।
बहिरंग वृत्ति जब हो तुम्हार, तब जग लखिये सियवर अकार ॥३॥
बल राम अविद्या तजु विकार, तू विलग नहीं निज सृजनहार ।
यहि ज्ञान होहि भव उदधि पार, यह परा भक्ति वेदान्त सार ॥४॥
पी राम प्रेम रस जगत खार, तेहि मस्ती अपनहुँ कहँ बिसार ।
अपनहिं तजि नित रामहिं निहार, सच्चिदानन्द सँग करु विहार ॥५॥

[३२]

अब सियवर हिय महल बसइहौं ।
ज्ञान नयन विवेक झाड़ू ते, चित वासना खसइहौं ।
निर्मल चित्त विछाइ अहम्मति, रघुपति राखि रसइहौं ॥१॥
राम नाम पाहरू, चेतना बाहर जात ग्रसइहौं ।
प्रेम पकड़ चेतना बेलि, रघुबर तरु ललित लसइहौं ॥२॥
प्राकृत नयन बिलोकत जग, वृति सीताराम धँसइहौं ।
सिया राम बिनु अनि न देखि, जग निज परतीत नसइहौं ॥३॥

मोहिं विश्वास राम आपन करि, रखिहैं रहेउँ कसइ[1] हौं।
राम अद्वैत सु-दशा द्वैत महँ, गइहौं राम जसइ[2] हौं ॥४॥

[३३]

चिदानन्द सत राम दुभुज तनु।
अनुभव सती भुशुण्डि शम्भु यह, मोहिं सत लागत सह सायक धनु ॥१॥
सोइ तनु लखिय ध्यान हिय प्रांगण, सोइ अकार ज्योति नासिक बनु।
जगत अनित्य सत्य रूप सोइ, जीव अहं मिटि रहत सोई जनु ॥२॥
अखिल विश्व तेहि उदर विराजत, कौशल्या भुशुण्डि लखि अस मनु।
संत विशुद्ध भक्त प्रहलादउ, बसत अनुभवेउ जग प्रत्येक कनु ॥३॥
खर दूषन निज सेन विलोकेउ, व्यक्ति प्रत्येक राम लड़ते रनु।
हनूमान महँ भरत विभीषण, रावण बल महँ निरखेउ हनुमनु ॥४॥
संत विलोकिन गुरू लखन महँ, बन मग नारि भरत शत्रूहनु।
राम नाम महँ नित्य विराजत, प्रकटत प्रेम परे संकट जनु ॥५॥

[३४]

राम नावँ नाव भव तरु मन।
कछु कर्तव्य न अन्य अपेक्षित, पूर्ण राम नाम जप साधन ॥१॥
हृदय सिन्धु सिंहिका बैठि जनु, पकड़त रूप राम सिय लछिमन।
त्रिविध ताप प्रज्वलित अभय प्रद, साख देत लिखि भवन विभीषन ॥२॥
भव तारन संकेत करत गुन, पाहन लिखे सेतु कपि उतरन।
अधमउ ब्रह्म बनावन प्रकटत, रत्नाकर गुन वाल्मीकि बन ॥३॥
जापक रक्षक गुन प्रसिद्ध जब, बनि नरसिंह हिरण्यकशिपु हन।
गई-बहोर बानि दर्शत लहि, आत्म स्वरूप नाम अवलम्बन ॥४॥
जापक हेरि राम चलि आवत, प्रगटत गुन मिलि गिध घायल रन।
राम ब्रह्म रत्न मोल हित, राम नाम पर्याप्त सुलभ धन ॥५॥

[३५]

अब सिय होइ पिय राम रिझइहौं।
आर्दिहि ते मन सीझत सुख लगि, सार सो देइ बुझइहौं ॥१॥
चित वाटिका सखिन इन्द्रिन सँग, विहरत निकरि नितइहौं।
बुद्धि चतुर सखि आजु लखाये, निरखेउँ नित्य हितइ हौं ॥२॥

---

१. कसइ = कैसा भी। २. जसई = जश।

नारद गुरु गिरिजा श्रद्धा बर, वरणेउँ ब्रह्म बरइ हौं।
तेहि निर्भर होइ प्रबल अविद्या, भव धनु तिनहिं तुरइ हौं ॥३॥
जग नैहरे स्वर्ग ससुरे सुख, चाहत मनहिं कसइहौं।
राम पिया सँग चित्रकूट चित, परमानन्द बसइहौं ॥४॥
सकल विश्व सुख लंका रावन, बली कर्म जौ नइहौं।
राम रूप नाम गुन सुमिरत, तृन सम तेहि न चितइहौं ॥५॥
इन्द्रिन दुष्ट निश्चरिन दुख डरि, मन नहिं तनिक खिझइहौं।
प्रीतम प्रेम परीक्षा अहमिति, ज्ञान कृशान सिझइहौं ॥६॥

[३६]

चित्त चेति चिन्मय प्रयाग बनु।

राम यमुन सिय गंग त्रिबेनी, बनी संग शारदा लच्छिमनु ॥१॥
आतम अछय बट, साधन तीरथ सकल, भाव जिव भक्त हनूमनु।
माधव ज्ञान प्रेम श्रद्धा विश्वास नेम सँग तीरथ पति गनु ॥२॥
मल इच्छा वासना धोवनो, शीतलता लहनो सुख आपनु।
सब आपन विराग दक्षिणा, गऊदान विस्मृति अहमिति जनु ॥३॥
विधि नहाइ यहि जाइ ताप त्रय, सहज होहिं वश प्राकृत त्रैगुनु।
सीता प्रकृति भाव जिव लछिमन, परे बसाव राम चिन्मय तनु ॥४॥

[३७]

झूलइँ नित सँग प्रीतम प्यारी।

मेरु दण्ड पर परा झूलना, श्वास पेंग नित जारी ॥१॥
श्वास जात राम "रा" आवत "म" सिय रूप विचारी।
मेरु दण्ड सीधा बैठे हम, अनुभव करउँ दिदारी ॥२॥
प्रेम घटा हिय नभ पावस रितु, जगत निशा अँधियारी।
दोऊ चन्द्र चन्द्रिका छबि, छिटकी सुजोति उँजियारी ॥३॥
शंख मृदंग बाजने बाजइँ, झाँझ घंटि घड़ियारी।
प्रेम बूँद बरसत सुख सरसत, तन मन सुरति बिसारी ॥४॥

[३८]

मगन मीन लहि अनुपम पानी।

यह उपलब्ध होइ गहिये दृढ़, सिय पद पंकज पानी ॥१॥
बहै लोभ नहिं दहै क्रोध, त्रैताप चढ़ै नहिं पानी।
माया मोह न बिलग प्रलय करि, होइ गयेउ पानी पानी ॥२॥

निज स्वभाव सम्भूत भूत नहिं, सब साधन कर पानी।
निजानन्द अनूभूति कठिन अति, भयउ कृपा सिय पानी ॥३॥
सीता राम स्वामिनी स्वामी, दास मोर यह पानी।
जीवन नित्य पाइ का डर मुइ, लङ्किका देइ न पानी ॥४॥

[३९]

मैं अकेल दुइ प्रकृति लखाई।
तन मन बुधि चित रचि तापर, प्रतिबिम्ब मोर विरचाई ॥१॥
यह प्रतिबिम्ब अहं करि मानउँ, आत्मा स्वयं भुलाई।
यही अविद्या दारुण जा ते, जिव कर संज्ञा पाई ॥२॥
तन महँ रचेउ इन्द्रियाँ साखी, जग मन जाहि बनाई।
विरचित निज कल्पना विषय सुख, तेहि मन रहेउ लुभाई ॥३॥
भोगत सुख उतपन्न बासना, जिव तेहि गयो बँधाई।
बद्ध जीव बहु योनि नचत जस, तेहि बासना नचाई ॥४॥
आत्मा स्वयं ब्रह्म अंश वा, बनि जिव तदपि भ्रमाई।
तम प्रतिबिम्ब मिटइ निकटइ रहि, व्यापक रवि रघुराई ॥५॥

[४०]

रउरे बिनु हमरे नहिं कोई।
यह जिय जानि राम अपनावहु, चाहे जस हम होई ॥१॥
सग सम्बन्धी सखा कहूँ केहि, मन बुधि नहिं अपनोई।
प्रकृति के इन चाकर वश आकर, करम बीज मैं बोई ॥२॥
जिन्ह फल दुख आभास कबहुँ सुख, शान्ति न कबहूँ सोई।
आवागवन असीम काल फिरि, फिरिहूँ तिन जिय जोई ॥३॥
चित्त राशि बासना भोग जहँ, कहँ जनमब सक टोई।
मानउँ अपना अहं ग्रन्थि सोइ, जेहि मोहि राखेउ नोई ॥४॥
इन्ह सब परे समर्थ सुहृद तुम्ह, जिन्ह ते निज दुख रोई।
निज स्वभाव द्रवि देहु राम मोहिं, निज स्वरूप जो खोई ॥५॥

[४१]

सन्निधि राम परम अभिराम।
कर्म रूप रज बिरजा नाँघइ, लहइ राम नित धाम ॥१॥
दुख सुख खाट ठाट साजइ सन्तोष भाव निष्काम।
सम दोउ श्वास वायु बिस्तर तेहि, पर कर बैठि विराम ॥२॥

त्रिविध ताप जग, दाप आप कर, तहाँ न पहुँचइ घाम।
प्रबल अविद्या तम तहँ गम नहिं, ज्ञान प्रकाशत राम ॥३॥
ताकइ राम सीय रूप छबि, जौ लौं चित तेहि ठाम।
लौटे चित जग राम विलोकइ बिसरइ राम न नाम ॥४॥

[४२]

निज सुख ज्ञान, भक्ति हरि संग।
एक अनन्त एकरस दूजो, नित नवीन रस ढंग ॥१॥
एक आत्म स्थिति जग झूँठो, मन बुधि चित जहँ भंग।
दूजो जगत राम मय, मन बुधि, चित सँग सियबर पंग ॥२॥
एकहिं टिकनो कठिन जीव कहँ, चलन धार जनु खंग।
अन उपयोगी रह जड़वत कहुँ, बसन सहित कहुँ नंग ॥३॥
दूजेहिं सुलभ अधार रूप जेहि, लाजत कोटि अनंग।
नाम स्वभाव शील अति रुचिकर, अगनित चरित प्रसंग ॥४॥
दूनउँ रहनि बिना मन दुख सुख, सित एक मनहर रंग।
एक उपरान्त मनोलय, दूजो, मन बह प्रेम तरंग ॥५॥

[४३]

करु मन राम नित स्मरन।
डूबना भव जगत सुमिरन, राम सुमिरन तरन ॥१॥
जगत विस्मृति आपु स्मृति, रूप निज सुधि करन।
निज सुरति कैवल्य परमानन्द हिय हरि धरन ॥२॥
चेतना निज हाथ अक्षर, राम गहु दोउ चरन।
दृश्य मात्र प्रतीत करु जग, राम तनु आभरन ॥३॥
छोड़ि दे विक्षेप सुख दुख, लाभ हानी जरन।
राम होइ लवलीन बिसरइ, जगत जीवन मरन ॥४॥

[४४]

राघव एक रुचि राखव हमरा।
स्वर्गउ सुख नर्कउ दुख महँ चित, तव स्वरूप रह सम्हरा ॥१॥
अनुभव नयन रसास्वादन कर, कमलानन मन भ्रमरा।
कबहूँ बिलग न होइ पलक छिन, बैठावइ हिय कमरा ॥२॥
तव गुन गुनगुनाइ नित मम चित, अन्य सुनन हित बहरा।
लखत रूप तव महाराज मन, जग चहिं होइ न महरा ॥३॥

मृगतृष्णा अगाध दृश्य जल, ग्रसै न इच्छा मकरा।
अहंकार पीनता न रोकै, चलन प्रेम पथ सँकरा ॥४॥
जागत देखइ आनन्दित चित, स्वप्न सजावइ सेहरा ॥
होइ द्रष्टा सुषुप्ति दे पहरा, रह तुरीय सँग ठहरा ॥५॥
नित्य युक्त अस रहउँ राम तुम्ह, बैठे भव सर कगरा।
तव नित दर्शन एक राखि रुचि, करि विलीन रुचि सगरा ॥६॥

[४५]

पिय पहँ पहुँचन श्वासा डोरी।

राम नाम द्वै अक्षर दोउ पग, चढ़ै सुरति तेहि जोरी ॥१॥
श्वास प्रगति जस होत जाइ कम, राह लखउ तस थोरी।
पहुँचत होत श्वास सम पिय लखि, जात सुरति सँग सोरी ॥२॥
केवल आनँद रहत एक रस, सोइ अद्वैत कहो री।
रस आस्वादन भाव चेत चित, लौटत द्वैत बहोरी ॥३॥
भव प्रवाह भाव आस्वादन, नीचे सुरति बहो री।
सुरति संग भङ्ग नाम पग, जग चेतना लहो री ॥४॥
यहि बिधि चढ़त गिरत नित निज बल, अब पिय पाँव पड़ो री।
निज करुणा भुज गहि अपनावहु, जाति हौं ग्लानि गड़ो री ॥५॥

[४६]

सुमिरन राम निज विस्मरन।

होति प्रगति प्रगाढ़ जस, तस जानिये भव तरन ॥१॥
स्मरन ईश्वर सगुन साकार, भक्ती करन।
ध्यान बिनु आकार निर्गुन, ब्रह्म ज्ञानाचरन ॥२॥
होत निज विस्मरन सँग दोउ, मोर जग कर हरन।
यहि दशा दोउ भाँति सुमिरत, होत जिव हरि बरन ॥३॥
ज्ञान यह निर्बान, भक्ती धाम लय हरि चरन।
यही कहियत हरि अराधन, आपनो करि मरन ॥४॥
देह हनुमत विस्मरन, शिव रूप निज जागरन।
भव कृपा भव राति बीती, राति भव व्रत धरन ॥५॥

[४७]

प्रीतम प्रणवउँ प्रेम पत्र पर।

राम प्रणव स्वर हृदय भाव भरि, श्वास हाथ पठवउँ प्रीतम कर ॥१॥

माया परे रहहु तुम प्रीतम, मेरो तो माया ही पीहर।
गुरु पण्डित सम्बन्ध विचारेउ, देह अवधि के बिते लगन टर ॥२।
चारिउ फल कहार के ऊपर, विरद पालकी आवहु चढ़ि कर।
विरति ज्ञान अनुराग भाय सँग, हनूमान विज्ञान सु-परिकर ॥३।
भाँवर सप्त घुमावहु मोहिं लै, सप्तावरण सकउँ जेहि परिहर।
सखियाँ सकल इन्द्रियाँ मिलि कर,करहिं गान सुठि तव चरित्र बर॥४।
नृत्य करइ मति बहु प्रकार गति, हाव भाव तव गुन गन मनहर।
क्षमा दया दोउ भुज उठाइ मोहिं, मेलि लेहु उर रहै न अन्तर॥५॥

[४८]

मृत्यु समस्या कर विचार मन।
मृत्यु अवस्था पूर्ण व्यवस्था, करु अविलम्ब पूर्व त्यागे तन ॥१॥
रही न कछु सम्बन्ध स्वजन घर, पदवी वैभव वस्तु भूमि धन।
करि विचार वैराग्य सुदृढ़ धरि, छाँड़ि देहि मानन तिन आपन ॥२॥
दृश्य प्रपञ्च न रह नहिं इन्द्री, भोग करन अथवा अवलोकन।
मिथ्या जानु मनोकल्पित या, राम जानि भजु भाव सेवकन ॥३॥
भोग भाव संसार वासना, रहहिं कर्म फल सुख दुख भोगन।
कर्म करन स्थान वासना, मन बुधि आपु थापु हरि चरनन ॥४॥
मृत्युहि तजे पञ्च भूत तन, सूक्ष्म उपावै पुनि तेहि प्रकटन।
सूक्ष्म कारणउ तनु बिहाइ, अपना करु राम रूप स्थापन॥५॥
यहि अभ्यास राम नाम जपि, करै जीव निज अहमिति त्यागन।
देह वुद्धि निज अहं विस्मरन, निर्विकल्प राम शुचि साधन॥६॥

[४६]

सुरतरु राम सिय स्मरन।
जमत दीन विनम्र हिय भुँइ, कृपा हरि बिय परन॥१॥
ब्रह्म जिव सम्बन्ध ज्ञान, सुमूल दृढ़ जिय धरन।
नाम जप तेहि तना शाखा, चरित जो हरि करन॥२॥
शील दया उदारता गुन, सकल तरुवर परन।
छबि सकल अँग सुमन बहु रँग, हँसनि- बोलनि झरन॥३॥
बास सुमन सुगन्ध अनुपम, बासना जिव हरन।
फल अलौकिक प्रेम जेहि उपलब्ध हिय के करन॥४॥
तासु परमानन्द रस, नित स्वाद नव बहु बरन।
आप्तकाम सुपुष्टि प्रद हित, जग भवार्णव तरन॥५॥

[५०]

दोउ भ्रू बीचे गंगासागर।

जीव ब्रह्म योग स्थल हरि, गीता कीन्ह उजागर ॥१॥
नासिकाग्र त्राटक अभ्यासहिं, होत जीव जिमि आगर।
ध्यान केन्द्र तिमि चढ़त होत, भ्रू मध्य नगीचे पागर[1] ॥२॥
दोउ भ्रू मध्य दृष्टि ध्यान मन, शान्त होत होइ लागर।
सागर ब्रह्म मिलै गंगा जिव, अहं भेद टुटि कागर ॥३॥
भौंहन बिच साकेत ध्यान तहँ, होत जीव तेहि नागर।
ज्ञान नेत्र शिव खुलै तहीं जिव, ध्यान धरै भरि जाँगर ॥४॥

[५१]

मन बसइ राम सिय सुख सागर।

आनँद सिन्धु बसत नित भीतर, खनइ न खार कूप धाँगर ॥१॥
मृग जल भरा बासना संसृति, फोड़ अयान अहं गागर।
नित नव जेहि माधुर्य सुधा रस, पिअइ चरित नागरि नागर ॥२॥
अपनो दीन दशा दुर्बलता, लिखै नेह मसि हिय कागर।
दीन दयाल समर्थ सियाबर, मिलन हेतु देहैं जाँगर ॥३॥
निज स्वरूप चेतइ मानइ नहिं, अपनहिं देह पीन डाँगर।
प्रेम डगर पर रगर किये चल, मिलिहहिं राम प्रीति आगर ॥४॥

[५२]

पिय नहीं मिले तो हम मिलबै।

ध्यानावस्था राम पिया पहँ, पहुँचि पाद पद्मन खिलबै ॥१॥
जगत चेतना चादर कफ़्फ़न, सुई विवेक विरति सिलबै।
जगत हाथ सुख दुःख हिलाये, कोटि भाँतिहूँ नहिं हिलबै ॥२॥
अपनो करि कै बस्तु व्यक्ति जेहि, जानेउँ तेहि कर ते ढिलबै।
इच्छा सकल बटोरि बासना, बकस साधना महँ किलबै ॥३॥
मन बुधि चित कहँ जानि पराया, तजन ज्ञान छूरी छिलबै।
प्रीतम प्रेम रंग सारी रँगि, द्वैत किवाड़ खोलि पिलबै ॥४॥

[५३]

तजते नैहरवा दुख लागै।

जगत दृश्य सुन्दर पीहर मोहिं, छाँड़ि न जाइ तासु रागै ॥१॥
सखीं घनिष्ट पाँच इंन्द्रिन संग, खेलन कहँ चित नित भागै।
माता मन पितु बुद्धि बन्धु तिहुँ, त्रैगुन हौं न सकउँ त्यागै ॥२॥

---

१. पागर = पागड़, पगड़ी।

चित चाची गोदी सोवउँ शिर, राखि अहं जिमि मणि नागै ।
नैहर तेहि तजि मैं किमि जीहउँ, अहं प्राण ही जब खाँगै ॥३॥
सुनत सुभाव शील पिय रसिकन, उर यौवन मति रति जागै ।
तौ पितु मातु आपुहीं पण्डित, ज्ञान बूझि ब्याह माँगै ॥४॥
मन बुधि चित्त दृश्य मैका जड़, चेतन ग्रन्थि छोरि टाँगै ।
पीतम पीत पिछौरा सँग निज, नेह चूनरी गुथि तागै ॥५॥

[५४]

झीन साधो पिया घर रहिया ।
मरत पाँच बिनसात सात, नहिं चलत अहं रथ पहिया ॥१॥
ध्यान प्रगाढ़ प्रवाह प्रेम महँ, सकल बासना बहिया ।
दृश्य प्रपंचउ मिलन योग, लालसा अग्नि महँ दहिया ॥२॥
सकल विश्व दधि मथि विचार घृत, राम ध्यान जब लहिया ।
परमानन्द तुष्ट पुष्ट मति, भव रस पिअइ कि महिया ॥३॥
पिया पबित्र मिलइँ जब त्यागइ, यल-युत द्वैत पनहिया ।
बिनु आवरन राम पिय सुमिरन, पिय सँग एक होइ रहिया ॥४॥
होत प्रगाढ़ स्मरण पिय महँ, अपन विस्मरण सहिया ।
पिय कर केवल रहइ स्मृती अपनो नाहीं चहिया ॥५॥

[५५]

पिया मिलय महँ होत प्रलय री ।
कोई वीराङ्गना मिलय पिय, निज व्यक्तित्व समूल दलय री ॥१॥
प्रकृति प्रलय जिव रहत सुरक्षित, जदपि विराट स्वरूप हलय री ।
होते सृष्टि विराट विलग होइ, लख चौरासी योनि ढलय री ॥२॥
काहू निज प्रभाव दिखलावन, जन भुशुण्डि सम प्रभु निगलय री ।
सोऊ उदर विराट बास करि, देखि प्रभाव बहुरि निकलय री ॥३॥
राम समक्ष अनूपम आनन्द, लेन हेतु कोइ विलग खिलय री ।
कोइ सिय प्रेम राम अहलादन, कहुँ अभिन्न पिय कहुँ न मिलय री ॥४॥
कोइ मीरा रनछोर समावै, स्वयं प्रेम जल देय गलय री ।
सीता प्रेम राम लिपटावहुँ, निज करि चन्दन चहहुँ मलय री ॥५॥
जन रुचि राम सदा रखि आये, यह प्रभु बानि न कबहुँ टलय री ।
हरि बर माँगत सती लहत शिव, योग अग्नि तन जदपि जलय री ॥६॥

[५६]

द्वैत अद्वैत सन्धि प्रिय लागै ।
ब्रह्मानन्द लीन चेतना, परमानन्दहिं जागै ॥१॥
भिन्न अभिन्न दशा सीता यह, दोउ सुख कोउ न खाँगै ।
कहुँ अभिन्न कबहूँ अभिन्नता, हरि खूंटी पर टाँगै ॥२॥
कबहूँ दृश्य शून्य सोवत जग, निज स्वरूप रस पागै ।
सुख स्वरूप सिय राम अलग लखि, कबहुँ तिनहिं अनुरागै ॥३॥
राम नित्य लीला निवास करि, जग प्रपंच से भागै ।
छुटे स्मरन राम पुकारै, बिरह विह्वल होइ बागै ॥४॥

[५७]

पिय के पकरत खुलि गइ सरिया ।
मैभा मातु प्रकृति यद्यपि प्रति, जन्म ग्रन्थि दृढ़ करिया ॥१॥
माता बुद्धि विवेक पिता मिलि, रघुबर बर मोहिं बरिया ।
सारी सप्त काण्ड रामायन, किय रँग सप्त चुनरिया ॥२॥
मति अनन्य भक्ति भीनेउ अति, तेहि सुगन्ध मनहरिया ।
सो पहिराइ प्रेम आभूषण, पठयेउ पिया सँघरिया ॥३॥
सुखमय सेज चढ़ाइ लीन पिय, रही न अपन सम्हरिया ।
भेद वस्त्र प्रीतम नहिं भावै, मोहैं कीन उघरिया ॥४॥
दशा अभेद अनन्द अमित, लय मति किमि कह बावरिया ।
कुछ वर्णउँ सो सखि जानेउ होइ, पिया बाँह बाहरिया ॥५॥

[५८]

दिखाइ देउ रघुबर निज मुसकनिया ।
अधर अरुणिमा विकसत निकसत, चन्द्र दन्त दमकनिया ॥१॥
होहिं निहाल निरखि नृप दशरथ, कौशल्या की कनिया ।
मोहे नगर विदेह नारि नर, वृद्ध युवा लड़िकनिया ॥२॥
कुन्जी कृपा अधर पट खोलत, जेहि प्रवेश सुख खनिया ।
सुख मुसुकानि हेतु मुख निरखत, रहत त्रिलोकी रनिया ॥३॥
उदय अरुणिमा मिस प्रताप रघुबर किय लखन बखनिया ।
होइ प्रसन्न राम मुसकाने, लखन भये धन धनिया ॥४॥
जो प्रकटत प्रसन्नता जन लखि, औरन लगि बहकनिया ।
मम मूर्खता रीझि प्रकटउ सोइ, करउ न आनाकनिया ॥५॥

[५९]

समाइ गये रघुबर अंग अपनवा ।

तन मन बुधि चित अहमित सारे, उनके लगइँ ढपनवा ॥१॥
निरखत नयन न अन्य राम, भे जग सब दृश्य सपनवा ।
अनुभव पृथक न होइ आपनो, पूरन राम जपनवा ॥२॥
दशा अखण्ड, देश काल के बीतहिं सकल नपनवा ।
वृत्ति निवृत्ति दशा पहुँचत गुन, प्राकृत लगइँ कँपनवा ॥३॥
यहि प्रकार राम अपनावहिं, तौ छूटइ जिवपनवा ।
राम रूप शान्त शीतल महँ, होत अशेष तपनवा ॥४॥
गीधराज हूँ सें विशेष गति, अतिशय जाहि खपनवा ।
बह गति सुलभ स्मरन चिह्न पद, यह हिय करन चपनवा ॥५॥

[६०]

गली मद जनक लली पद धोये ।

रामानन्द पीजिये पय दुहि, प्रकृति मातु गउ नोये ॥१॥
जन्मन जमा बासना मल नहिं, हटै अन्य विधि धोये ।
तिमिर अविद्या नसत तकत, विद्या प्रकाश दृग कोये ॥२॥
अहं अविद्या कुहू निशा महँ निज लखि पाइअ खोये ।
हृदय अकाश प्रकाश चरन नख, सिय विद्या जब होये ॥३॥
राम सकार रूप अथवा निज, जिव चाहै जौ जोये ।
राम ब्रह्म करुणा स्वरूप सिय, पाँव पकरि कै रोये ॥४॥
राम चरन पखारि केवट गति, सो नहिं पावउँ टोये ।
जो गति गीध स्मरत सिय पद, चिह्न राम पद गोये ॥५॥

[६१]

अब सिय मम हिय जनक बनाव ।

जाचक भाव पुरइ प्रभाव दिन, निज प्रगटाव जनाव ॥१॥
वर विराग अस प्रथम जाग, जिय जगत प्रलय विरचाव ।
जिव ऊत्रे जग डूबे रक्षय, बट अक्षय तव चाव ॥२॥
तोर प्रेम नित नेम राम हित, सोइ बट-बृत सरसाव ।
बाल मुकुन्द अत्र द्वन्द, बट पत्र राम दरसाव ॥३॥
बन बैराग्य चित्र तव जनक, विचित्र दशा पहुँचाव ।
नेह प्रलय जल देह भलय गल, दर्शन राम हुँचाव ॥४॥

कृपा मेह गलि अहं देह, बासना ठेह बिनसाव।
दै सनेह निज गेह चेतना, सीता राम बसाव ॥५॥

[६२]

रघुपति मोर परम गति भाई।
सब आवरण अन्त भीतर सोइ, बाहर रहेउ समाई ॥१॥
नित उठि श्री सरयू नहाइ, श्री नागेश्वर अन्हवाई।
परिकरमा श्री अवध, शीश श्री काले राम नवाई ॥२॥
चरणामृत श्री मात गैउँ, श्री हनुमत गढ़ि पर पाई।
हृदय हिरण्य भवन महँ लौटउँ, निरखउँ सिय रघुराई ॥३॥
प्राणेश्वरी प्राणपति पूजउँ, मूरति परम सुहाई।
एक तार ताकत विग्रह दोउ, होत राम एकजाई ॥४॥
नहीं विसर्जन करउँ रूप पिय, तिय जिमि हिये छिपाई।
देखउँ जगत राम सिय लछिमन, रूप नयन महँ छाई ॥५॥
विषय वायु जब उड़उँ टूटि सुधि, कटी चंग की नाँई।
भुज प्रलम्ब अवलम्ब कृपा दै, जोड़ैं ताग सगाई ॥६॥
राम अखण्ड चेतना गोदी, जब निज जाउँ भुलाई।
वही परम गति जनिहउँ पिय सँग, आनँद सोइ तुराई ॥७॥

[६३]

पकरि पिय लइगे जहँ नहिं कोई।
प्रबल प्रवाह प्रेम जल भव मल, गयो आपु ही धोई ॥१॥
तन मन बन्धु बुद्धि बहिनी सग, तेहि अवसर रह सोई।
चित गृह शून्य अहं पितु मूर्छित, प्रकृति मातु छुटि रोई ॥२॥
पिया योग भोग होइ जौं, प्रकृति न उपमा सोई।
परिवर्तित प्रियता अनन्द जिव, तोय राम पिय होई ॥३॥
पीहर पिय पठवहिं पुनि जौ रुचि, पीहर पावहि गोई।
तौ तिय नागिनि पिय चिन्तामणि, निज हिय राखई टोई ॥४॥
यहि तें तिय पिय अचल स्मरण, जग नैहरउँ न खोई।
द्वैत भूमि पय प्रेम सींचि, अद्वैत बीज पिय बोई ॥५॥

[६४]

राम एक चिन्तन बहु ढंग।
रवि प्रकाश एक जिमि शीशा, सात दिखावत रंग ॥१॥

निराकार निर्गुन या सहगुन, सह अकार गुन संग।
होइ अवतरित करत लीला जेहि, सुमिरि होइ भव भंग ॥२॥
आकर्षत बरबस जीवन्ह चित, शोभा कोटि अनंग।
अर्चा विग्रह सरल पाइये, सेवा प्रभु प्रति अंग ॥३॥
अन्तर्यामी स्रष्टा सृष्टी, व्यापक सोई असंग।
परम अचिन्त्य जोइ चिन्तिय सोइ, वर्णत श्रुति मति पंग ॥४॥
उपर्युक्त कोउ रूप छिपे सब, समुझन जिव मति तंग।
स्वयं निवारि आवरण माया, राम भक्त हित नंग ॥५॥

[६५]

राम अखण्ड स्मरण होइ।
जब अपनेहुँ को आपन जानइ, या जैसे पिय जोइ ॥१॥
प्रथम ज्ञान दूसरो भक्ति, दूनउँ अन्तर नहिं कोइ।
राम स्मरण जाइ स्मरण, अपनो अतिशय खोई ॥२॥
राम से होइ एकता या अस, अन्तर जावै धोइ।
देश काल करि थकै परीक्षा, सक अवकाश न टोइ ॥३॥
निज स्मृति बनि राम स्मृति जब, रह जागति अरु सोइ।
यही अखण्ड राम स्मरण, जीवन्मुक्ती सोइ ॥४॥
स्वाभाविक अखण्ड स्मरण, होइ न निज सुधि ढोइ।
निज स्मृति बनि राम स्मृति, छुटि गयेउ कहाइब दोइ ॥५॥

[६६]

लखि गे राम अहं विच अपने।
अनुभव होत राम केन्द्र निज, अन्य दृश्य भे सपने ॥१॥
जेहि अपनेहुँ को आपन जानइ, स्वतः लगै तेहि जपने।
देश काल दूरी छूटे, पथ साधन परइ न नपने ॥२॥
जागृत राम चेतना, सपना लगे मोर मैं खपने।
नरक स्वर्ग संसृति विकल्प मन, लगे अनाश्रय कँपने ॥३॥
राम चेतना स्थिर मति दिय, तजि कुतर्क सब गपने।
अहं अधार छुटे, आपुहि मद काम कोह भे चपने ॥४॥
शीतल राम रूप सुख स्थिति, मिटे ताप त्रै तपने।
त्रिगुणात्मक माया नहिं व्यापइ, राम कृपा भुज थपने ॥५॥

[६७]

चिन्तन राम ठाम त्रै खास ।

नेत्र श्वास अरु अहं चेतना, क्रम तें अधिक विकास ॥१॥
बीच राम बायें सिय दायें, लछिमन दरस हुलास ।
पाइअ नयनन बसे, दृष्टि कर जब जग दृश्य विलास ॥२॥
गोचर होत व्यक्ति वस्तु जोइ, उन्ह पर बिना प्रयास ।
सीता राम लखन मूरति छपि, तिन्ह कर होत प्रकास ॥३॥
अर्ध अन्तरङ्ग चेतना, राम नाम जप श्वास ।
जपत नाम, राम सिय लक्ष्मण दरस होत आभास ॥४॥
यहि महँ जग सुधि होइ धूमिलो, आवत नाहीं पास ।
श्वास नाम जप संग जगत सुधि, पावइ नहिं अवकास ॥५॥
पूर्ण अन्तरङ्ग स्थिति सुधि निज हटि, राम निवास ।
अस चिन्तन छूटइ भव बन्धन, परमानन्द सुपास ॥६॥
चिन्तन मन ते रूप प्रथम, मन दुजो नाम जप नास ।
रूप नाम के परे तीसरे, राम राम को दास ॥७॥

[६८]

अब मोहिं शरण रखिअ रघुराई ।

निज बल माया ग्राह छुड़ावन, मम गज बुधि बिसराई ॥१॥
पुनि पुनि चढ़ि साधन गिरि गिरि पुनि, विषय कीच मैं आई ।
चढ़न गिरन अनन्त चक्कर लखि, चक्कर माया पाई ॥२॥
जब सुषुप्त रह बीज बासना, चढ़उँ साधना धाई ।
बीज बृक्ष फल खान गिरउँ मैं, आकर्षित बरियाई ॥३॥
निज बल चढ़त गिरत माया बल, अनुभव मोहिं पढ़ाई ।
माया परम प्रबल निर्बल मैं, निश्चय बुद्धि दृढ़ाई ॥४॥
करुणा सिय मन सुहृद लखन निज, चेति विरद प्रभुताई ।
अपनावहु असहाय अहिल्या, माया मोहि सताई ॥५॥

[६९]

पिया मिलन मन ठानि चलिउँ री ।

तन ते निज बिलगाइ चेतना, तन ब्रह्माण्डहिं महल हलिउँ री ॥१॥
त्रिविध ताप जग लागि भाप तेहि कठिन परन मन नहिं पिघलिउँ री ।
जगत वायु दुख सुख ईर्षा, परिहास प्रशंसा मैं निगलिउँ री ॥२॥

श्वास डगर पिय नाम पुकारत, नौबत बज तेहि दिशा पिलिउँरी ।
नासिकाग्र दृष्टि स्थिर करि, गुरू दीन साधना ढलिउँ री ।।३।।
बहुत प्रलोभन मग दोहूँ दिशि, मैं सयानि तिन्ह तें न छलिउँ री ।
प्रेमाकर्षन आकर्षित मैं, छकित प्रेम पथ नहिं बिचलिउँ री ।।४।।
परमानन्द व्यापि रह जहँ तहँ, सँकरि किवाँड़ा लखि न टलिउँ री ।
अहँ त्यागि होइ सूक्ष्म द्वार मैं, द्वैत निकलि पिय राम मिलिउँ री ।।५।।

[७०]

हरहिं हरि ममता जन तिय चीर ।
हृदय कमल बैठे कदम्ब तरु, साधन सरिता तीर ।।१।।
साधन सरिता यमुन नहाते, जन जल प्रेम गँभीर ।
ममता चीर उतारि रखत जब, धारन पुनः शरीर ।।२।।
निज स्वरूप समता बैरी, ममता माया तसवीर ।
यद्यपि जन विलपै राखन तेहि, हरि बन हरि बेपीर ।।३।।
होइ परिपक्व साधना निकलै, जब जन तिय धरि धीर ।
निज सम्बन्ध चीर दें जेहि जग, ममता लग न समीर ।।४।।
जन ममता हरते कठोर, लगते यद्यपि रघुबीर ।
करुणा धनु नहिं राम कबहुँ चढ़, अन्य अनुग्रह तीर ।।५।।

[७१]

बाँधु सिकहर उँचे लपकि कर ।
अर्थ धर्म काम मोक्ष नहिं, बिल्ली सकें गपकि कर ।।१।।
दोउ जग भोग चाहना चूहे, लहैं न चढ़े चपकि कर ।
कुपथ कुतर्क कुक्कुरन बरजिय, बेंत विवेक छपकि कर ।।२।।
नित्य वस्तु राम सिय लछिमन, ध्यान न हटै झपकि कर ।
ध्यान पात्र छिद्र सोहं होइ, गिरइ न वस्तु टपकि कर ।।३।।
सिकहर हृदय ध्यान पात्र प्रिय, राखिअ वस्तु थपकि कर ।
नित्य लालसा दर्शन ढक्कन, निकलै नहीं तपकि कर ।।४।।

[७२]

लखइ रे मन राम प्रान के प्रान ।
तन मन बुधि चित अहं परे निज, सार तत्व पहिचान ।।१।।
शब्द राम आकार राम सिय, पहिले हिय अनुमान ।
जैसे सभा प्रत्यक्ष दिखायेउ, भक्त प्रवर हनुमान ।।२।।

ज्ञान कि जान पिया योगउ यह, मिलन वित्त महँ ठहि ले ।
बिरति प्रकृति नहिं अपना जानै, कर्म राम कहुँ कहि ले ॥२॥
तप पहाड़ दुख गिरै जो ऊपर, पिय इच्छा लखि सहि ले ।
पर को मग पग धरै न देखै, पिया महल गिरि ढहि ले ॥३॥
चहिअ विवेक धारणा जग मथि, पिय नवनीतहिं लहि ले ।
रुचिकर लखि वैभव विलास जग, सबहिं लेत नहिं महि ले ॥४॥
प्रेम कि पिय के विरह वेदना, अश्रु निरन्तर बहिले ।
अस शृंगार तिय जात मिलन पिय, आइ मिलैं पिय पहिले ॥५॥

[७६]

गोसाँई तव, राम भक्ति जग दान ।
अनुपम रसमय परमानँदमय, परे ज्ञान विज्ञान ॥१॥
कथा सती मनु राम लखायेउ, शिव विरंचि हरि खान ।
धाम जीव हिय विश्व बतायेउ, उनके त्रै स्थान ॥२॥
संत भक्त शरणागत दर्शन, हित कर धाम प्रदान ।
योगी भक्त राम लख अन्तर्यामि प्रान निज प्रान ॥३॥
दास भक्त विश्व सब देखत, रूप राम भगवान ।
सो अनन्य सेवक अपने कहँ, सेव्य चराचर जान ॥४॥
पहिलो मिलय राम तनु त्यागे, दुजो लीन भे ध्यान ।
तीजो नित्य लहइ दर्शन रहि प्रकृति न तेहि व्यवधान ॥५॥
पहिलो दशरथ गीध बिभीषण भा शरभंग विधान ।
दूजो शंभु सुतीक्षण तीजो, भरत काग हनुमान ॥६॥
संयुत ज्ञान विराग भक्ति तव न्योछावर निरबान ।
प्रकटन चखन भयो जेहि तुलसी, तजि गति ब्रह्म समान ॥७॥

[७७]

राम प्रतीष्ठित निराकार नित ।
गुणातीत निज गुन दरसावन, बन साकार जीव तारन हित ॥१॥
अन्तराल जल जीव उबारन, आवश्यक पहुँचन तेहि स्थित ।
तैसेहि जिव शरीर स्थित, पहुँचन हित राम रूप निरमानित ॥२॥
यद्यपि चिदानन्द रूप हरि, भेद न निराकार स्थापित ।
तद्यपि भ्रम निज सम समुझत जिव, राम रूप माया आच्छादित ॥३॥

जिव माया[1] प्रगाढ़ आवरण, नाँघि न सक यद्यपि निज कल्पित।
ताहि भेदि राम जिव मिलि कह, तुम सन्तन मिलि शन्ति होत चित॥४॥
दृश्याकार जाल महि निर्मल, निकरि मिलै जिव राम निताचित।
फणि मणि मीन नीर नेह नहिं, मिलु जेहि पुनि रह मिलन न आश्रित ५

[७८]

बिच साकेत मुक्त समाज।
पहुँचि ब्रह्मा राम सों कह, सुनु गरीब निवाज॥१॥
घोर कलि महँ म्लेच्छ शासन, सकल पापन साज।
जीव तारन अवतरन, नक्षत्र नाथ विराज॥२॥
सहस एक षट सौ इकत्तिस, विक्रमी महराज।
अवध नाथहिं जन्म दिन, मङ्गल सुअवसर राज॥३॥
राम कहेउ कि धरा जब तक, रूप आवै काज।
नाम नासक पाप नित खग, आस लीला बाज॥४॥
लोक भाषा रहि न संस्कृत, चरित आव न काज।
नागरी महँ चरित वर्णित, बनै तरन जहाज॥५॥
लखत निज दिशि बालमीकि, कहेउ कि आवत लाज।
लिखेउँ नहिं भल भरत साधन, भक्ति गुन सिरताज॥६॥
विस्मरण को को सम्हारै, घोर कलि के राज।
कहेउ बाणी "हम चेताइव तुमहिं, श्री रघुराज"॥७॥
गुप्त चरित लखाव को, शिव कहेउ "मैं" महराज।
क्षुधा कैसे मिटी बोली, उमा "देव सुनाज"॥८॥
कौन करिअ सहाय भूले, "मैं" कहेउ कपिराज।
वाल्मीकि स्वरूप तुलसी, अवतरेउ तब आज॥९॥

[७९]

हम से हरि मम अधिक फ़िकर है।
धेनु वत्स अरु माजरि शिशु, हलका नेह ज़िकर है॥१॥
जो समर्थ सब भाँति काल तिहुँ, व्यापक विश्वम्भर है।
ताकी बाँह छाँह बैठि, कोउ, स्थिति व्यक्ति न डर है॥२॥

---

१. (शिव माया = अहंकार यथा "अहंकार शिव बुद्धि अज, मन शशि चित्त महान")

अल्प बुद्धि अज्ञान जीव, हित अनहित की न ख़बर है।
रुचिकर जानि विषय विष लपकत, बरजत हरि निज कर है ॥३॥
जो सर्वज्ञ जान आफ़त जो, आइ रही सर पर है।
करि प्रबन्ध ताहि टालत, डालत एहसान न सर है ॥४॥
जासु कृपा तब लगि न सबर, जब लगि कछु काज कसर है।
अब निश्चिन्त सोउ राम लखि, निज पर नेक नज़र है ॥५॥

[८०]

भरद्वाज पहुनाई निशि, सुख चकई, भरत बनै चक हे मन।
जौ तू चहइ चित्रकूट चित, तव पर मिलइँ, राम सिय लछिमन ॥१॥
सुर सुरभी सुर तरु जहँ अगनित, देत मोक्ष काम धर्म धन।
पर ते राम दरस न दे सके, जेहि व्याकुल अति भरत सपरिजन ॥२॥
भरद्वाज नहिं भोगें तप बल, प्राप्त उन्हें अनेक रिधि सिधि गन।
तिन्ह रिधि सिधि बल, लहन जगत यश, लेवै कोई मूर्ख अवलम्बन।३।
जे बाधक साधक स्वरूप निज, नित्य युक्तता हरि भव माचन।
तिन तीनउँ ईषना तजइ मन, जौ तू चहइ परम हित आपन ॥४॥
रावन जेहिं बल जिते चराचर, बल लवलेश राम हनुमत गन।
रावन माया राम रूप धर, तिन अगनित कहँ हनूमान हन ॥५॥
यह सब समुझि चतुर चित मेरे, नहिं पतियाइ सन्त कलिनेमन।
मायापति सेवक नहिं धावत, लखन लागि मात्रा मृग हेमन ॥६॥

[८१]

सकल चराचर विश्व राम, अपराध होइ बड़, राम न कोउ कहि।
दास अनन्य भाव जौ लावै, सेवा करइ सबहिं के पद गहि ॥१॥
रूप एक राम ही देखइ, अनि स्वरूप सब, ज्ञान अग्नि दहि।
रटइ नाम एक रामइ नित, अनि सब सुनतहुँ जाइँ बाइ बहि ॥२॥
लीला सुनइ एक रघुनायक, उनहीं अनि अवतार उनहिं चहि।
नहिं चित लावइ जगत रुष्टता, सन्तुष्टता राम केवल लहि ॥३॥
चिन्तन करइ नित्य एक रामइ, दुख सुख कृति फल उदासीन रहि।
गान करइ यश रामइ, यहि विधि, नित्य युक्त राम विचरइ महि॥४॥

[८२]

रहन सिखु मरन भये सम आज।
बहु बिशेष होइ नित असंग मन, बुधि चित अहमिति साज ॥१॥

परे कर्म फल भव सागर जल, डर न लोक यमराज।
माया जाल परे उबरे गुन, त्रैईषना न काज ॥२॥
जग निज बिस्मृति केवल स्मृति, सुख स्वरूप रघुराज।
भव प्रवाह तुम गिरे जहाँ ते, पहुँचि मिटावै लाज ॥३॥
निज स्थिति स्मृति लहि, करुणा राम गरीब निवाज।
अबहीं चढ़ु सिय राम लहायेउ, तोहि विवेक जहाज ॥४॥

[८३]

स्मृति राम हृदय जब जागै।

दुख सुख हानि लाभ मृत्यु, जीवन अन्तर भ्रम भागै ॥१॥
श्वासहि श्वास राम नाम जप, होन स्वभाविक लागै।
उर्ध वृत्ति मन निश्चल केवल, राम चरण अनुरागै ॥२॥
अपने उर आनन्द सुधा रस, नहीं तनिक जब खाँगै।
तब किमि वृत्ति बहिर्मुख सुख कहँ भागि जहाँ तहँ माँगै ॥३॥
मन बुधि चित्त अहँ मणि देखिय, राम पिरोये धागै।
प्राण के प्राण राम जानि नाचिअ कि मोर मैं स्वाँगै ॥४॥
निरस निरर्थक अर्चन पूजन, वृत्ति प्रेम जब पागै।
भक्ति अनन्य न अन्य निरखि, जिबहिइ राम सुहागै ॥५॥

[८४]

दरस अवध औषधि लहि हरसइ।

मुक्ति साधना लड़त नकुल जिव, जब जग सुख अहि गरसइ ॥१॥
करुण सलिल सलिला सूर्य, दर्शन जब हिरदय परसइ।
जनम जनम वासना बीज हिय; अनायास ही झरसइ ॥२॥
लखन किला नागेश्वर नाथहिं रूप कला लहि दरसइ।
हनूमान गढ़ि कनक भवन, दर्शन मन आनँद सरसइ ॥३॥
जगत दृश्य विष विषम डसन अहि, नसन लगै नहिं अरसइ।
राम सिया पद प्रीति स्वस्थता, दरस अवध आकर्सइ ॥४॥
जौ खटकइ मन डसन भुजग पुनि, दरस अवध जेहि धरसइ।
हिय बिठाइ सिय राम न तरसइ, अवध भाव नित बरसइ ॥५॥

[८५]

कलई मोरि गई खुलि सपना।

दशा आपनी सही जतावन, सपना है समरथ नपना ॥१॥

जागृत बुद्धि सम्हारे सुमिरउँ, राम नाम करि जपना।
अन्तरङ्ग चित नारि प्यारि, सम्बन्ध सगा जेहि अपना ॥२॥
दशा देखि परिणाम विचारत, लागत हिरदय कँपना।
अब अन्तहुँ जो दशा न सुधरेउ, निश्चित संसृति खपना ॥३॥
राम भक्ति मोरि नकली, सिधि अकली भइँ कलपना।
राम प्रेम आवेश कथा नहि सच सब बाह्य जलपना ॥४॥
राम सुजान कृपानिधान सच, करउ मोरि गति गपना।
हिय गज ग्रसे ग्राह गहि फेंकउ, भक्ति थापि बनि ढपना ॥५॥

[८६]

करत मैं पूजा कहत कि सोइ।
करउँ जो सो तन मन बुधि स्थित, तेउ एक संग न होइ ॥१॥
जिह्वा पाठ होत जप, मन कहुँ, बुद्धि प्रकृति फल टोइ।
राम लक्ष्य नहिं पूजा फल जस, गर्दभ गोबर ढोइ ॥२॥
अब लौं पूजा लक्षित दूजा, सहज साधना सोइ।
किहेउँ सो तजि मन राम भक्त बन, बहुरि बनै का रोइ ॥३॥
राम दरस जिव हृदय भूमि दे, सहज रूप निज बोइ।
सोइ स्वरूप निज पावन साधन, करै अन्य सब खोइ ॥४॥
सार ज्ञान विज्ञान राम कहँ, परे अहम्मति जोइ।
सहज स्नेह निज सार राम करु, मल मन अहमिति धोइ ॥५॥

[८७]

बाह्य भीतर राम अन्तर।
बाहर कबहुँ देत निज दर्शन, भीतर बसत निरन्तर ॥१॥
बाहर दर्शन फल कि राम कहँ, देखिय अपने अन्दर।
अन्दर राम नचाव जीव जग, भाँति कलन्दर बन्दर ॥२॥
सकल दृश्य जब लखिअ राम, बीभत्स बुरो भल सुन्दर।
तब प्रभाव बाहरी राम लखु, जिव जस निज अभ्यन्तर ॥३॥
बाहर दर्शन दक्ष मथन माया समुद्र मति मन्दर।
माया मथि अविशेष राम जिव, कर अनुभव हिय कन्दर ॥४॥

[८८]

जिव जस राम जानत जात।
निराकार सकार होइ अवतार राम लखात ॥१॥

प्रकृति माया जीव जग निशि, दिवस साँझ प्रभात।
ब्रह्म लोक पाताल रवि शशि, देश काल सिरात ॥२॥
प्रकृति गुन फल कर्म जानत, जाहि दुख सुख नात।
समुझि आपुहि परे प्रकृतिहिं, तिनहिं नहि भरमात ॥३॥
राम निज आधार, अहमिति प्रकृति कारामात।
प्रकृति जनित अहं निवारे, राम ही रहि जात ॥४॥
सृष्टि के विपरीत लय यह, जगत जीव जमात।
राम लय जीवत्व छय, साधन सहज कहलात ॥५॥
ब्रह्म साक्षात्कार या, पद राम सकइ बात।
यही ज्ञान विशुद्ध भक्ती, योग कहि विख्यात ॥६॥

[८९]

साधो सहज साधना भावै।

तन मन बुधि चित अहं परे, निज जानि राम पद पावै ॥१॥
हरि पद पाइ स्वरूप चतुर्भुज, गीधराज दरसावै।
मम गति परे राम भृङ्ग जो, तेहि हिय कंज लखावै ॥२॥
रामहिं पाइ राम पद पावन, शबरी आपु जलावै।
देइ सँदेश आपु नासि हो, लहिअ राम पद ठाँवै ॥३॥
सीता पद जो भरत प्राप्त, हरि भिन्न अभिन्न कहावै।
भेद भये रस देइ राम कहुँ, होइ अभेद रस पावै ॥४॥
निज मानस मराल रामहिं लखि, शंकर ध्यान लगावै।
निर्विकल्प लागै समाधि, पद राम वही कहलावै ॥५॥
परमोत्कृष्ट एक यहि, दोउ पद, सीता राम समावै।
पराकाष्ठा भक्ति सिया पद, राम ज्ञान बुध गावै ॥६॥
तन मन बुधि चित परे अहं थित, दोऊ पद लखि आवै।
अहं बिठाइ राम चलवावै, सहज साधना नावै ॥७॥

[९०]

रामहिं आपन सहज सगाई।

अस सामीप्य कि देश काल की, नहीं कछुक विलगाई ॥१॥
अपनी कृपा दया करुणा, दें राम सुज्ञान जगाई।
हिय नभ उदित ज्ञान भान के, तम अज्ञान भगाई ॥२॥
भ्रम भावना आपु जग दूनउँ, की मिटि जाइ ठगाई।
भक्ति ज्ञान विज्ञान योग सुख, सहज न तनिक खँगाई ॥३॥

सीता करै रूप लय सुरता लखन न हरि बिलगाई ।
नाम करै लय राम चेतना, सोइ गति कैवलि गाई ॥४॥

[६१]

सुधि रखु राम जहाँ सुधि अपना ।
पूजा पाठ ज्ञान ध्यान यह, राम स्मरण जपना ॥१॥
अल्प समय अल्पज्ञ बुद्धि चढ़ि मिटइ न संसृति खपना ।
विद्युत गति हरि कृपा दत्त बुधि, होइ जगत निज नपना ॥२॥
काल कर्म गुन प्रकृति तहाँ, पहुँचन नहिं देखइ सपना ।
जौ रह सजग काल केहुँ, स्मृति, यहि कर होइ न झँपना ॥३॥
जस आपन सुधि राखन चित, तेहि तजै न स्मृति छपना ।
मिटै न राम चेतना तैसेहि, निज सुधि किये कलपना ॥४॥
राम सत्य सुधि भये प्रकट कर, निज असत्य सुधि चपना ।
माया दृष्टि अनिष्ट जीव यह, इष्ट ज्ञान बन ढपना ॥५॥

[६२]

राम मिलन मिलि सीख सगरिया ।
राम-भरत-सिय-जनक मिलन मन, खुलेउ प्रशस्त डगरिया ॥१॥
सम्बल मिलन प्रेम स्वाभाविक, हिय भरि चलइ गगरिया ।
तन मन बुधि चित अहमिति ऊपर, प्रीतम राम नगरिया ॥२॥
अभय अमर शाश्वत सुख सागर, संसृति ग्रस न मगरिया ।
निजानन्द छुइ सकै न जितना, माया माथ रगरिया ॥३॥

[६३]

राघउ कृपा कसरि नहिं राखउ ।
या तुम महँ नित रमउँ ब्रह्म सुख, दर्शन या चख चाखउ ॥१॥
नर तनु दै पुनि कृपा सँजोइअ, धरो होइ जो ताखउ ।
नहिं संसृति प्रवाह बहिहौं जस, नर तनु मैं लहि लाखउ ॥२॥
लहि अवसर अनेक तरि सकेउँ न, सुमुझि राम तेहि माखउ ।
तरउँ न कबहीं निज बल तव, अवहीं भल लगइ न पाखउ ॥३॥
जन्म जन्म मम दिन दिन दुर्गति, करुणाकर लखि आँखउ ।
माया कर्षि कस न सीतावर, मैं तुम्हरो अस भाखउ ॥४॥

[९४]

हनुमत राम नाम प्रतापु ।

हेतु भानु कृशानु हिमकर, अवतरेउ जग आपु ॥१॥
बाल्य लीलेउ भानु ब्योम, छलाँग इक होइ नापु ।
लोक पाल विरञ्चि विस्मित, निरखि कार्य कलापु ॥२॥
दहेउ लंक समक्ष बारिदनाद, सँग निज बापु ।
अग्नि बीजहिं जलै हेम, न बीज हिमकर आपु ॥३॥
करत सद्गुन सृष्टि जन हिय, नाश अवगुन पापु ।
काम क्रोधादिक निवारत, दशा अविचल थापु ॥४॥
पार सागर सीय पहुँचत, बान बनि हरि चापु ।
ब्रह्म भेदन जिव सिखावत, अन्त रामहिं जापु ॥५॥

[९५]

चुगु हंस मोति गति देन अमर ।

माया के दाना न चुगइ खग, तृप्ति न जो जड़ बाँध कमर ॥१॥
प्रबल विराग भोग प्राकृत सुख, जतन एक जाल निकरन कर ।
आपन ज्ञान पान निज सुख जेहि, खसन खपन कबहूँ नहिं डर ॥२॥
राम नाम चोंच धरि काटै, तीली त्रिगुन पींजरा घर ।
राम सनेह बारि ते धो ले, लासा लगेउ वासना पर ॥३॥
भक्ति पंख उड़ि चलु विहंग पद, राम बसई आनन्द नगर ।
ललित चन्द्र नख ज्योति मोति, आनन्द अमर कर पान संचर ॥४॥

[९६]

साधो राम चेतना जागो ।

प्रकृति जन्य जहँ लगि जड़ अवयव, निज चेतन तकि त्यागो ॥१॥
प्रकृति रहत साकार राम, मन वचन कर्म अनुरागो ।
प्रकृति रहित निज करत चेतना, लखउ राम ही टाँगो ॥२॥
जपत नाम लखु खपत आपु तेहि, आहुति जिमि जलि आगो ।
राम नाम जप सूक्ष्म होत जिव राम, मोहिं अस लागो ॥३॥
दीन जनहिं दानी न राम सम, देत न जिन्ह कछु खाँगो ।
सकुचि देत आपुहिं स्वरूप सुख, सुख तुच्छउ जब माँगो ॥४॥

[९७]

निज सुख लहन गहन रन ठनिहौं ।

निज बल जानि हरे निज सम्पति, प्रबल अविद्या हनिहौं ॥१॥

मृग तृष्णा जल जानि जगत सुख, कर्म कूप नहिं खनिहौं।
इन्द्रिन मन बुधि रखि पराव सुधि, आपुहि तिनहिं न सनिहौं॥२॥
श्वास यान नाम सम्बल लै, स्वामी देश पयनिहौं।
हते पञ्च माया सेनापति, सुगति अयोध्या जनिहौं॥३॥
आसा जगत दासता त्यागे, राम दास महँ गनिहौं।
जिते समर बिनु लहे अमर गति, मति कह मैं नहिं मनिहौं॥४॥
जउ निर्बल तउ पिता राम को, जानत सीय जननि हौं।
जन को रुचि राखन पन तिनको, तिनको मुँह जन बनिहौं॥५॥

[६८]

चेतना जीव तव राम बसै।
निज करि स्थापित तन मन बुधि, चित अहमित तू अबुध नसै॥१॥
मन चाहत बुधि करत व्यवस्था, मृग जल जग सुख लागि रसै।
धँसै बासना पंक पाँव तब, गहि तोहिं संसृति मगर ग्रसै॥२॥
जगत पीठ डीठ दै अन्तर, लखै मगर मुख से निकसै।
इन्द्रजाल काल संसृति नहिं, माया जनित त्रिताप त्रसै॥३॥
अबिनाशी शाश्वत चेतन, आनन्द नित्य नहिं कबहुँ खसै।
रूप पाव निज जौ चढ़िमन बुधि, अहमिति जिव पद राम लसै॥४॥
यही बिराग योग ज्ञान जेहि, उपर्युक्त चढ़ि जिव विकसै।
भक्ति सोई हित राम रहत तिन्ह, राम समर्पे सुख सरसै॥५॥

[६९]

सुरति लखु भव सागर गम्भीर।
पार करन पुरुषार्थ जीव जेहि, करि विवेक धरि धीर॥१॥
मन बुधि ऊँच करार अहं गिरि, यहि घेरे चहुँ तीर।
हरि विलगाव सृष्टि गहिराई, भरा अविद्या नीर॥२॥
परेउ जीव जेहि मध्य लिए, नौका अवलम्ब शरीर।
कल्प विकल्प लहरि अनेक, बहि चल संकल्प समीर॥३॥
करम शुभाशुभ नौका लागे, दोउ दिशि प्रबल जँजीर।
खिंचि लै जाहिं स्वर्ग नर्क टापुन जहँ लह सुख पीर॥४॥
दृश्य प्रपञ्च तोर मैं, ममता, नश्वर जगत जागीर।
इन महँ लंगर डारि रहन चह, सब सुख सहित अमीर॥५॥

लंगर यह विराग ते तोड़इ, ज्ञान सुखावै नीर।
जारै कर्म नाम राम अनुकम्पा, चढ़ गिरि तीर ॥६॥
भक्ति भाव शरणागति पकड़ै, विरद बाँह रघुबीर।
यहि विधि पार करइ भव सागर रहै न पुनि भव भीर ॥७॥

[१००]

रहु मन निशि दिन राम हजूरी।
देह गेह सुधि मनुआ राखत, जिमि कहुँ करत मजूरी ॥१॥
सोवत राखि चेतना जागत नयन चेतना घूरी।
लखन राम सीता सुन्दर लखु, ध्यान उनहिं होइ चूरी ॥२॥
भौतिक नयनन जग देखइ गुनि, राम सत्य कर धूरी।
मैं तैं मोर तोर सपना गुनि, राग द्वेष दे तूरी ॥३॥
विषय बासना जग के जानइ, निज हित काटन छूरी।
सुख स्वरूप जिय राम जानि दृढ़, मृग तृष्णा रह दूरी ॥४॥
सत्य नित्य निज जीवन हित, सँग राम सजीवनि मूरी।
संसृति रोग न मृत्यु योग अमृत दृग पियत अँजूरी ॥५॥
बनइ अकाम राम जो कुछ दें, मानइ हितकर रूरी।
सेवा करइ स्वरूप राम लखि, सृष्टि चराचर पूरी ॥६॥

[१०१]

बज ध्वनि मनहर गगन बजनवा।
श्वास हाथ दोऊ लूटै जिव, राम सुनाम खजनवा ॥१॥
प्रकटेउ ज्योति अरणि मन्थन, लगि बासा तकन यजनवा।
ध्वनि सुनि लहि प्रकाश जिव गोपी, दौड़ो सुरति सजनवा ॥२॥
राम योग उपजै विवेक, सहजै बन जगत तजनवा।
कारण अहं राम अनुभव करि, पूरन होइ भजनवा ॥३॥

[१०२]

पिया नहिं आये हाय हमार।
मैं तड़पूं पिय तरस न आवै, कहियत करुणागार ॥१॥
मिली मोहिं एक सखी स्यानी, कहिसि पिया कर प्यार।
सो उनके मन भावत करि सक, रहन सहन शृङ्गार ॥२॥
जग नैहर सुख आसा त्यागै, ममता लेइ सम्हार।
तेहि बटोरि पिय प्रेम लगावै, स्वारथ सीमा पार ॥३॥

यहि प्रकार मिलि पुनि बिलीन पिय, होहिं रूप संसार।
यातें मन बुधि अहं, पार मिलु, पिय होइ एकाकार ॥४॥

[१०३]

लखि मैं राम नाम जरि पाई।
अवधपुरी निशि राम कलेवा, राम सुकृपा सहाई ॥१॥
परे अहं नित नाम राम की, सहजइ स्फुरणाई।
तातें राम जपत निज नामहिं, दास कबीरा गाई ॥२॥
राम श्वास श्रुति चारि प्राण तेहि, तुलसी नाम बताई।
हेतु कृशानु भानु हिमकर कहि, अगनित गुनन गनाई ॥३॥
बिधि हरि हर मय राम नाम कहि, राम अभिन्न लखाई।
राम नाम जप साधन केवल, कलि भाषेउ फलदाई ॥४॥
जपन नाम बैखरी कि श्वासा, निज चेतना मिलाई।
अनहद अजपा मिटेउ संत कह स्नेही नाम रहाई ॥५॥
नाम चेतना अजपा श्वासा, जपन जो परइ सुनाई।
सकतें एक बहिरङ्ग साधना, है विकास लौटाई ॥६॥
जपत जगत जिव पशु पतंग तरु, होत लहत जड़ताई।
राम नाम जप जिव जीना चढ़ि, रामानन्द रमाई ॥७॥

[१०४]

तजै जग भजिबो, राम भजै।
यही लहन विश्राम राम पद, तरि भव होइ विरजै ॥१॥
मन रखि राम काम करु तेहि कर, सिद्धि असिद्धि तजै।
यही रहन नौका जल ऊपर, नौका जल न गँजै ॥२॥
जग सुख सम्पति धुवाँ धौरहर, जानि न तिन सिरजै।
राम भजन लहु निजानन्द, सुनु अनहद नित्य बजै ॥३॥
नित चेतन महँ बसै अमर होइ, छुटि के जन्म कजै[1]।
यहि संसार स्वप्न सुख सूझत, लखै न जगि हरजै ॥४॥
लड़त अविद्या ग्राह निरन्तर, हारत तू न लजै।
भजै राम जो तुरत जितायेउ, होतइ प्रणत गजै ॥५॥

---

१. कजै = कज़ा = मृत्यु।

[१०५]

लखु मन सुख स्वरूप रघुराई ।
निराकार आनन्द बनेउ, साकार मनोहरताई ॥१॥
जेहि सुख सिंधु सकृत सीकर सुख, त्रिभुवन सुर समुदाई ।
सोइ प्रकटेउ बनि रूप राम सिय, सुषमा सुन्दरताई ॥२॥
सुख स्वरूप राम गुन सुख कहि, निर्गुन लांछन आई ।
राम अंश जिव कर तेहि कारन, सुख हित नित विकलाई ॥३॥
जग सुख है आभास नित्य सुख, मृग जल शीतलताई ।
तृष्णा बढ़इ ह्रास निज सुख बल, ज्यों ज्यों तेहि लगि धाई ॥४॥
संसृति महा दौड़ दौड़त जिव, मृग सुख थाह न पाई ।
सुख सुवास लहि राम नाभि हिय, जग बासना सिराई ॥५॥

[१०६]

केवल सुख दुख भोग न मानव ।
भोगत देव जीव चौरासी लक्ष योनि भव आर्नव ॥१॥
नर तनु करत स्वतन्त्र कर्म जिव, निज सुख हित तेहि जानव ।
कोई दौड़त तुच्छ भोग लगि, यज्ञ दान कोइ ठानव ॥२॥
यज्ञ दान ते देव होत, निर्दयता करते दानव ।
जेहि जस कर्म पाव फल तैसेहि, कर्म करत अभिमानव ॥३॥
मानव करत न कर्म किन्तु सेवा जग राम समानव[१] ।
यातें नित्य प्रतिष्ठित पूजा, रामहिं मानव मानव ॥४॥
जितने कर्म मानिये मन कर, भव जल दुख मल खानव ।
सेवा प्रेम अरनपउ रामहिं, सम न पुण्य परमानव ॥५॥

[१०७]

सखी मैं पिया मिलन मचली ।
जग विस्तार देखि नहिं ढूढ़ेउँ, अपनेहिं महल ढली ॥१॥
अनमय मनमय॰ बुद्धि कोष मैं, ढँढ़त सकल चली ।
प्रकृति प्रबन्ध निरखि चारिउ दिशि, ब्याकुल भयउँ अली ॥२॥
ब्याकुलता विलोकि राम पिय, गा हिय सदय खली ।
मोहिं बिच हँसे कृपानिधान पिय, सार हमार खली ॥३॥

---

१. समानव = समान ही ।

अद्भुत आनन्द पिया मिलन पर, अहमिति गयेउ गली।
खोजत अहं बाँह पिय पकड़न, भगि गे कोउ गली ॥४॥

[१०८]

धिक मम राम सीता प्रीति।

अधिक उनतें उनहिं माया, जनित जग परतीति ॥१॥
जगत मिथ्या से तजन सम्बन्ध मानउँ भीति।
राम सत्य सुमिलन नित्य, उठाइ सकूँ न भीति ॥२॥
झूठ तन मन तृप्ति हित मम, राम पूजन नीति।
सत्य सुख सिय राम चहउँ न, कामना जग जीति ॥३॥
आपुहू को आपु राम, अहेतु जाकी मीति।
त्यागि तिन मैं जगत चाहत, जासु संसृति रीति ॥४॥
अन्न सुख जग खाइ मरिगे, तिनहिं चाटउँ सीति।
चारि फल तजि राम प्रेमहिं, भरत गावउँ गीति ॥५॥

[१०९]

निज आनन्द जिव सिखु हलन।

परे त्रैगुण ताप तीनों, निज स्वरूपहिं ढलन ॥१॥
द्वैत सन्निधि राम सुख, अद्वैत रामहिं गलन।
सोइ परमानन्द ब्रह्मानन्द, दुख दल दलन ॥२॥
हरन कठिन कलेश संसृति, लहि न जग सुख जलन।
छुइ न पावत दिवस निशि सुख दुख दुरासा खलन ॥३॥
पद परम संतोष परिमिति, चाल माया चलन।
विश्व सुख कोउ बनि अभाव, स्वभाव जिव सक छलन ॥४॥
सुफल साधन सिद्धि अरु लहि रिद्धि सिधि पद टलन।
पहुँच कठिन सो झरनि सहजहिं, कृपा सिय तरु फलन ॥५॥

[११०]

चढ़न निज पद हरि, नाम जीना।

स्थिर "रा" के होत चढ़त "म", मन प्रवाह जिव मीना ॥१॥
सुनत मधुर ध्वनि नाद अनाहत, तुरत होत मन लीना।
नाद देत संकेत महल जहँ, नित्य राम आसीना ॥२॥
रामचन्द्र चान्दिनी ज्योति लखि, मिलन आस भा पीना।
मिलिहइँ राम चलो चढ़ि आगे, जग निज सुधि करि झीना ॥३॥

जब आगे नहिं चलइ सुरति, अहमिति त्यागति भइ दीना।
कृपा बाँह तब राम सम्हारत, जिमि भुशुण्डि कर कीना ॥४॥
राम कृपा बल ताकि चढ़इ पथ, लखइ न निज बलहीना।
राम कृपा बल चढ़इ गिरइ जो, निज बल चढ़त तनि सीना ॥५॥

[१११]

लखेउँ दोउ सुरति समीप खड़े।
चित्रकूट गिरि मन्दाकिनि तट, पावस वृष्टि बड़े ॥१॥
झुरमुट बेलि बितान बिटप तर, एकहिं एक पकड़े।
मानहुँ घन प्रविष्टि भइ दामिनि, दामिनि घन जकड़े ॥२॥
श्यामा श्याम किशोर वयस नव, प्रेम उभय उमड़े।
छायो परमानन्द विश्व, जग भोगानन्द सड़े ॥३॥
वारि विन्दु दोउ ऊपर राजत, रोमावली पड़े।
धन अवकाश लखत दिनपति भे, मोती मनहुँ जड़े ॥४॥
निजानन्द प्रकटेउ निरखत छवि, दवि बासना झड़े।
परकीया सुख सखी कृपा सिय, मेटेउ जग झगड़े ॥५॥

[११२]

रहत नित-झूलत राम सिया।
जात राम "रा" आवत सिय "म", श्वासा सुरति सिया ॥१॥
यह अनुभूति विभूति साधना, मिल सिय कहत पिया।
होइ न संसृति मृत्यु जो यहि बिधि, अमृत नाम पिया ॥२॥
यह निधि अजपा नाम जपन विधि, सतगुरु जाहि दिया।
निज हिय गृह तेहि सुलभ जलावन, ज्ञान अखंड दिया ॥३॥
रवि सम नित्य प्रकाश खिलै, पंकज विवेक कलिया।
मिटै अविद्या तम निरखत युग, शंक न युग कलिया ॥४॥
नित्य युक्तता लहि सिय रामहि, भ्रम अहमिति गलिया।
जपत राम होइ राम चलत, साँकरी नेह गलिया ॥५॥

[११३]

लखेउँ नहिं दोउ सँग श्वास चले।
"रा" छिपि राम छिपी "म" सीता, निति तन महल हले ॥१॥
आवागमन श्वास सम होते, सुखमन शान्ति थले।
चिन्तन करत चितइये सन्मुख, बैठे दोउ भले ॥२॥

मानउँ श्वास पटल टलते दोउ, होइ प्रत्यक्ष निकले।
प्रान प्रान के जिव जीवन धन, लखि मन नहीं टले ॥३॥
मूरति मधुर चोरावति मन, चितवनि दोउ लली लले।
मुद्रा अभय हाथ संकेतत, डरु नहिं मोर बले ॥४॥
यहि स्थिति सुख शान्ति अनूपम, माया नहीं छले।
चलत श्वास अदृश्य होत दोउ, रहिये हाथ मले ॥५॥

[११४]

दर्शन ध्यान राम जिव जागै।
प्रकृति जन्य तन जानि न निज कहँ, आत्म चेतना रागै ॥१॥
वृक बिलि रहत लखत बालक नर, अनुरूपता न खाँगै।
तैसेहि दरस व ध्यान राम, निज रूप प्रकटि भ्रम भागै ॥२॥
ध्यान राम ज्ञान देत निज, सोना करइ सोहागै।
सन्मुख होत राम रवि तम हटि, रजु भ्रम होइ न नागै ॥३॥
सब रस सुख कारण निजात्म सुख, महँ जब जिव चित पागै।
लहि व्यन्जन नित लवन मिलन किमि, चह अलोन जग सागै ॥४॥
निज सुख विकसित होइ राम जो भक्ति भाव अनुरागै।
प्रीतम प्रिया नित्य लीला कृतकृत्य न रह कछु माँगै ॥५॥

[११५]

छमु सिय स्वामिनि मोर गलतिया।
नर तनु कागद नाव सुअवसर, भव सर परत गलतिया ॥१॥
बहु तन खोजत द्वार द्वार सुख, सहेउँ काल की लतिया।
सद्गुन स्वामिनि देहि विमल मति, छूटै भव रस लतिया ॥२॥
स्वामी राम मिलन हित साधन, सुरति स्वरूप हलतिया।
प्रकृति प्रलोभन प्रबल प्रभंजन, हिलि भइ विकृति हलतिया ॥३॥
तू करुणा करुणानिधान पिय की, प्रदान करु रतिया।
जेहि अखंड राम चेतना, जागूं जग भव रतिया ॥४॥
अपनी दया असीम छुड़ावै, ग्रसे ग्राह भव मतिया।
कनक कामिनी नशा डूबि जल, दशा गयेउ मति मतिया ॥५॥
अपने बल सुत दशा सम्हारत, लखि माया बल छतिया।
ज्ञान भक्ति दुध श्वेत गरम भरि, चलेउ मातु सिय छतिया ॥६॥

[११६]

कारण छिपि जग प्रकट प्रकासा ।
आपुहिं आपु बनायेउ छिति जल, अनल अनिल आकासा ॥१॥
पञ्च तत्व इन्ह मिश्रित विरचेउ, गृह ग्रह गिरि कैलासा ।
जीव जन्तु जड़ जङ्गम तनु जेहि, निरखिअ उद्‌गम नासा ॥२॥
तन मन बुधि अहमिति कहिलावत प्रकृति आत्म तेहि बासा ।
प्रकृति निरन्तर लखिअ बिकृति, आत्मा एकरस अविनासा ॥३॥
ज्ञान विलोचन अवलोकन जग आपु, मिटैं अनयासा ।
सकल विश्व महँ रमा राम रमि, जिव लहु भव अवकासा ॥४॥

[११७]

कहउं भक्ति जस मैं लखि पाई ।
स्वाभाविक हरि प्रीति रीति तिय, छल फल चारि बिहाई ॥१॥
जग सुख की लालसा नहीं यह, नहिं जग दुख उकताई ।
नहिं प्रवित्ति जग नहिं निवृत्ति, जल पद्म पत्र की नाँईं ॥२॥
ब्रह्म जीव संबन्ध, अन्ध नहिं, काम सुगन्ध मताई ।
पूर्ण प्रेम रस जेहिं एकहिं बस, ब्रह्म छाँड़ि प्रभुताई ॥३॥
प्रेमइ एक स्वभाव ब्रह्म जिव, जेहि महँ दोउ एकताई ।
एकइ मंत्र स्वतंत्र ब्रह्म कहँ, जिव परतंत्र बनाई ॥४॥
ब्रह्महिं भिन्न अभिन्न अवस्था, जिव दै भक्ति सकाई ।
लखेउँ भक्ति सीता स्वरूप, जेहि छिपी राम सेवकाई ॥५॥
ज्ञान शिखर चढ़ि जीव न छुइ सक, अतिशय ब्रह्म उँचाई ।
सीता हाथ प्रेम जयमाला, लखि शिर ब्रह्म नवाई ॥६॥
भक्ति प्रधान प्रेम गुन जेहि बिन, असन न राम सोहाई ।
जग मोहन हरि मोहन भक्ती, हरि प्रसाद लहि गाई ॥७॥

[११८]

अनुभवेउँ राम योगी रमन्त ।
श्री अवध धाम ब्राह्मी मुहूर्त, सिय कृपा बैठि साधन एकन्त ॥१॥
सब दृश्य जगत मैं मोर तोर, अतिशय सबही कर भये अन्त ।
विस्मरण आपु चेतना राम, दुख भूलि फूलि आनँद बसन्त ॥२॥
जो जग निवास साकेत बास, अन्तरयामी चेतन कहन्त ।
निर्गुण जो निराकार सर्गुण, साकार सो नृप सुत सिया कन्त ॥३॥

अनुभूति सो ब्रह्मानन्द न जेहि, पुलकावलि नयनन जल बहन्त ।
मोहि तस न सुखद जस स्वप्न कछुक, आभास राम सीता लहन्त ॥४॥
लालसा दरस, बासना जगत किय अन्त कि मिट जन्मउ अनन्त ।
प्रकटिहउ सिया संग पिया निरखि, नयनन तब मानव भाग्यवन्त ॥५॥

[११९]

राजति हिय सिय, सिय-पिय जोरी ।
विनवउँ दोउ विशेष स्वामिनी, अति विनीत कर जोरी ॥१॥
निर्बल सरल उपाय पाय नहिं, भई निशा मति भोरी ।
गई दृष्टि सिय कृपा बृष्टि, मैं यत्न लहेउँ भे भोरी ॥२॥
प्रबल प्रकृति कर अटल नियम जेहि, वृष्टि हरेउ जिव तोरी ।
सुवन प्यार त्रिभुवन समर्थ एक, सकै नियम तेहि तोरी ॥३॥
माया जीव नचावत, भक्ती शक्ती जेहि सक छोरी ।
देहि दृष्टि सो स्वामिनि, भामिनि राम सुनयना छोरी ॥४॥
मूक होंहि काचाल, पंगु गिरि चढ़इँ प्रकृति मुँह मोरी ।
जेहि प्रभु कृपा-शक्ति सोइ फेरइ, गई दृष्टि दृग मोरी ॥५॥

[१२०]

छमा करबि सिय मातु री, मैं निपट गँवारो ।
काम सिद्धि तुरतै चहूँ, जस घोड़ सवारो ॥१॥
मैं अल्पज्ञ न कर सकूँ, परिणाम विचारो ।
उलटेहि दूषन मातु को, हिय होइ सँचारो ॥२॥
मैं स्वारथी कुपूत किय, नहिं नेह सम्हारो ।
भला करत जननी कबहुँ नहि मानेउ हारो ॥३॥
सद्गुन सिन्धू मातु तू, मैं पाप पहारो ।
कृपा हाथ माँ जानकी, मम अवगुन झारो ॥४॥
मोदक माता हाथ सोहत, सुत मुँह गारो ।
मातु सिया संबन्ध सुत सहि, दोष बिसारो ॥५॥

[१२१]

इन्द्रिन विषय वासना मम अति ।
केवल हटत नेत्र बल निरखउँ, तन मन बुधि अहमिति निज दुर्गति ॥१॥
कामेन्द्रिय कर विषय नारि, हरि ताहि दुरावत नारद साँसति ।
समुझउँ नहिं हरि कृपा मन्द मति, दृष्टि घटत मानत एक आफ़ति ॥२॥

क्यों नहिं सिखै रहन परिहरि, इन्द्रिय चेतना मूल संसृति गति।
लोलुपता इन्द्रियन देवावत मन दासता सहन दुख अनुमति ॥३॥
करइ विचार कि एकइ चढ़ि सक, नाव विषय लतिवा निजात्म रति।
जो विषेश भावै चढ़ एकतू, हरि दीन्हेउ परियाप्त तोहिं मति ॥४॥
सृषि प्रलय सब काम राम कर, बिनु इंद्रिन तनिकउ नहिं दिक्कति।
तिन्ह सच्चिदानन्द स्थिति, सिखवति तजि विषय बनन मायापति ॥५॥

[१२२]

साधो सुनउ सुजान ज्ञान जस मैं लखि पाई।
अन्तर्यामी राम शाम कल, हृदय सुझाई ॥१॥
छिति जल अनल अकाश, अनिल स्थूल सुहाई।
मन बुधि चित हैं सूक्ष्म, रूप जड़ प्रकृतिहिं भाई ॥२॥
चेतन चित अनुभूति, चित्त चेतन परिछांई।
वा जड़ चेतन ग्रन्थि अहं, जेहि माया माई ॥३॥
सन्निधि चेतन चित्त माहिं, अहमिति उपजाई।
सोइ चेतन आभास अहम्मति, जोव कहाई ॥४॥
अहमिति बैठक जीव, प्रकृति माया उपजाई।
चेतन जिव अहमिति हटे, लह ब्रह्म एकाई ॥५॥
पंच भूत तन महँ मन बुधि चित, अहमिति आई।
सो कहाव जिव जन्म, मृत्यु तिन तन विलगाई ॥६॥
ज्ञानेन्द्रिय तन पाँच जिन, अनुभव जग जाई।
जग सुख की अनुभूति मन, बासना बनाई ॥७॥
सोइ बासना समेटि मन, लै मृत्यु उड़ाई।
लख चोरासी योनि, इच्छा जिव जनमाई ॥८॥
यहि विधि जन्मन मरन जीव संसृति कहलाई।
अहमिति सीमा पार स्थिति, मुक्ति जनाई ॥९॥
निज स्वरूप लहि विजय प्रकृति, सिय राम सहाई।
प्रकृति शक्ति • अनुरक्ति राम, भक्ती सेवकाई ॥१०॥

[१२३]

•प्रकृति महँ प्रलय जोव लय होइ।
प्रलय काल बिकराल ज्वाल महँ, जलत करब का रोइ ॥१॥
जेहि अहमिति मिति तोहिं न सूझत, राखत निज सुख खोइ।
प्रलय काल महँ रह न सुरक्षित, जाइ प्रकृति हरि सोइ ॥२॥

सृष्टि काल महँ पुनि उपजइ जिमि, बीज सुरक्षित बोइ।
सृष्टि प्रलय सामूहिक लय महँ, जगत आपु लखु टोइ ॥३॥
अहमिति प्रकृति वस्तु तव बन्धन, सत्य न अस जिय जोइ।
तेहि असत्य निज दुख कारन कस, तोरत नहिं कर धोइ ॥४॥
अत्यान्तिक निवृत्ति राम महँ, खोवै वा ह्वोइ दोइ।
राम आत्म सुख रमै लखै नहिं, एक लखै सब कोइ ॥५॥

[१२४]

राम मिलन मन भरत भजन ठन।
रहनि सहनि प्रिय मिलन चहनि नित, नाम जपनि सादृश्य भरत बन॥१॥
इन्द्रिय संयम नियम नित्य चिन्तन अहार शुचि सत्य बदन पन।
करम बचन मनसा नहिं हिन्सा, रहनि एकान्त विनीत आचरन ॥२॥
इन्द्रिय मन आवेग दमन, सुख जगत स्वर्ग नहिं चाह तनिक मन।
सम सन्तोष परिस्थिति सारे, सहनि कोउ कैसउ अप्रिय भन ॥३॥
हृदय सिंहासन सदा विराजत, राम सिया स्वरूप कर चिन्तन।
बुधि बहिरङ्ग होइ उत्सुकता दरस, मीन जिमि जल बिनु तड़पन ॥४॥
राम नाम जप होइ निरन्तर, कहुँ बैखरी कबहुँ सँग श्वासन।
निराकार साकार दरस हित, विरह पीर हिय दृग जल बरसन ॥५॥
गुनगन चितवइ तन विभोर होइ, जिमि चकोर शिशु शशि प्रिय दर्शन।
जग सुख जल तजि चह मन चातक, स्वाति बूंद राम आनँदघन ॥६॥
राम सिया सुख लगि अपने सुख, आपु आपुनो सब कर अरपन।
निज सूरति सँभार करु लखि जिव मूरति भरत स्वच्छ हिय दरपन ॥७॥

॥ राम ॥

श्री रामचरितमानस पदावली

अरण्य काण्ड

(भाव प्रकरण)

॥ राम ॥

श्री सीताराम जी

श्री हनुमान जी

[१]

बरनि छबि फटिक शिला न बनी ।

बट शिव फटिक शिला गिरिजा बनि, बस अनन्द लहनी ॥१॥
प्रकृति बनी बन बिटप बेलि छबि, जग समेटि अवनी ।
मृग बिहंग बहु रंग फूल फल, विहरत गज गजनी ॥२॥
ब्रह्म राम साजन सँग सीता, प्रकृति रानि सजनी ।
बैठे फटिक शिला पग चूमत, गंगा मन्दकनी ॥३॥
सूर्य तेज तरु तर न आव दिन, बनेउ अर्ध रजनी ।
कमल कुमुद सँग खिले बायु बर, बरसै बारि कनी ॥४॥
करत कलोल बोल शुक पिक गन, नाचु मोर मोरनी ।
लजित निहार विहार राम सिय, तृन ढक मुख धरनी ॥५॥
सेवा प्रकृति सफल करने हित, अति निहाल रमनी ।
सुमनन भूषन राम सजायो सिया कमल बदनी ॥६॥
छबि शृँगार दामिनी घन लय, सिय पिय अवध धनी ।
उपमा लहत न अवसर बर्णन, परे सहस्त्र फनी ॥७॥

[२]

शिर सिय गोद नींद पिय आई ।

काग जयन्त चोंच सिय आँचर, मारि बैठ तरु जाई ॥१॥
सिय सेवा तत्पर न डिगेउ, रोयेउ नहिं अश्रु बहाई ।
पड़ेउ रुधिर रघुनाथ माथ, उठि कारण पता लगाई ॥२॥
सिय नहिं कहेउ लखेउ आपुहि खग, चोंच रुधिर लिपटाई ।
कारण जानि सींक, धनु सायक, धारि यह मन्त्र पढ़ाई ॥३॥
प्रान न लिहेउ डरायेउ चलि जेहि, वेग काग उड़ि पाई ।
तात सखा सुरेश सुत यहि यहँ आनहु भय दिखलाई ॥४॥
चलेउ ब्रह्म शर खग न धीर धर, भागेउ गगन उड़ाई ।
धरि निज रूप पिता शक्रहिं, ब्रह्मा सिव तकेउ सहाई ॥५॥

रघुबर कर अपराधी वैठन, कहेउ न कोउ भय खाई ।
सब कोहत रख राम शरण, रख कोउ न राम कोहाई ॥६॥
दशा निरखि असहाय काग की, निज बल बोध कराई ।
करुणा वश लखि जगन्मातु, भे दया दुखी रघुराई ॥७॥
चितवत कृपा दृष्टि मुनि नारद, मिले जयन्त सिखाई ।
गहै राम पद पाहि पाहि कहि, अतुलनीय प्रभुताई ॥८॥
संत दरसते मिटे पाप, कहि पुनि जयन्त कवि गाई ।
गहेउ राम पद त्राहि त्राहि कहि, जग शरण्य विरदाई ॥९॥
राम छोह करि मोह विगतु किय, भव मृतु सुतु सुरराई ।
हरि अमोघ शर हरेउ नयन एक, जन अपराध रिसाई ॥१०॥
कीन्ह मोह वश द्रोह राम तेहि, दीन्हेउ मोह मिटाई ।
रारि करत तेहि मारि न डारेउ, को कृपालु अस भाई ॥११॥

टिप्पणी :—१. "चला रुधिर रघुनायक जाना" संकेत करता है कि रघुनाथ जी सोये थे ।

२. लेटे दशा में रुधिर उनके ऊपर तभी गिरा जब आघात स्थल उन से ऊपर था, इस कारण आघात स्थल स्तन माना गया जैसा वाल्मीकीय रामायण में वर्णन है । गोस्वामी जी के वर्णन "सीता चरन चोंच हति भागा" का अर्थ यह लेना चाहिये कि सीता जी को चरन (पंजे) व चोंच से आघात पहुँचाया । पद में आँचर शब्द स्तन संकेत करता है ।

३. "प्रेरित मंत्र ब्रह्म शर धावा" का अर्थ यहाँ मंत्र द्वारा ब्रह्मास्त्र बनाना न मान कर ब्रह्म श्री राम के शर को उनके द्वारा मंत्रणा देना अधिक संगत प्रतीत होता है, क्योंकि आमन्त्रित करके तो ब्रह्म शर वह बनाये जो स्वयं ब्रह्म न हो । मंत्र शब्द यहाँ मंत्रणा अर्थ में प्रयोग हुआ है, जैसे :—

"मंत्र न यह लछिमन मन भावा" सुन्दर काण्ड
"मंत्र कहउँ निज मति अनुसारा"
"नीक मंत्र सब के मन माना" लंका काण्ड

मंत्रणा भी मिलता जुलता है "भय दिखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव" जो रघुनाथ ही जी ने क्रोध ही का स्वांग करते हुए लक्ष्मण जी से कहा था ।

४. संत नारद का दर्शन जयन्त को भगवान श्री राम ही की कृपा से हुआ, प्रमाण :—

"संत विशुद्ध मिलहिं परि तेही। राम कृपा करि चितवहिं नेही॥"
"बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता।"

५. संत नारद के दर्शन से जयन्त का पाप नष्ट हो गया, यथा, "संत दरस जिमि पातक टरई" - तब गोस्वामी जी ने उसका नाम लिया, नहीं तो सीता जी को आघात पहुँचाने के पश्चात् उसको काग ही कहते रहे।

६. शरण आने पर भी एक आँख फोड़ देने का कारण था (अ) भक्ति स्वरूपा सीता जी का अपराध जो क्षमा नहीं किया जाता, यथा :—

"सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥"
"जो अपराध भक्त कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥"
और (ब) श्री राम बाण का अमोघ होना, यथा :—

"जिमि अमोघ रघुपति कर बाता',

७. "प्रभु छाँड़ेउ करि छोह" का संकेत है माया मोहमुक्त करना (मोह वश द्रोह किया था तो जयन्त का मोह ही नष्ट करने की कृपा करना) यथा :—"नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा॥" यहाँ छोह शब्द का यही अर्थ उत्तम प्रतीत होता है और "छाँड़ेउ करि छोह" का मिलान "सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा" से संगत बैठता है। "छाँड़ेउ" शब्द भी गोस्वामी जी द्वारा मोह-शृङ्खला ही छोड़ाने में प्रयोग हुआ है, यथा—तुलसिदास प्रभु मोह-शृङ्खला छुटिहिं तुम्हारे छोरे"। (विनय पद—११४)

[३]

राम समान कृपाल न आन।
साँसति अन्त जयन्त कीन्ह, सिय-कन्त कि कृपानिधान॥१।
शरन न राखि फोरि आँखि एक, साखि बिरद बिनसान।
खुलसी त्रुटि तुलसी किमि घुँटि, हिय हुलसी कृपा बखान॥२॥
कह तुलसी जहँ हरि यश तुल सो, पुल सी कृपा प्रमान।
शरन बिरद गति आधी हरि मति, जन अपराधी त्रान॥३॥

नारद सती भुशुण्डि खगपती, जिमि किय गती प्रदान।
यह प्रसंग अभिमान भंग, हरि ढंग देन निज ज्ञान ॥४॥
करत प्रयत्न जयन्त लुकन जहँ, रुकन बान हूँ ठान।
कृपा लखावत बान सखावत, तेहि न नसावत प्रान ॥५॥
लखन पठावत राम सिखावत, लान सखा डरवान।
पिता सखा सुत तिमि लावन जुत, सिखवुत सर सन्धान ॥६॥
राम कृपा बिनु मिल न सन्त, नारद जयन्त को लान।
पग पग पर लग राम जीव सग, रग रग कृपा समान ॥७॥
कोह मोह वश द्रोह सोह बधि, योनि पशू पहुँचान।
लख चौरासी योनि कर्म लह, कृपा धर्म निर्बान ॥८॥
"छाँड़ेउ" अर्थ प्रयोग गोसाईं, "विनय" परत पहिचान।
मोह शृंखला छुटन राम प्रभु, केवल "छोरे" गान ॥९॥
छाँड़ेउ भव बन्धन रघुनन्दन, अर्थ "छोह" दरसान।
हनुमत कहेउ जीव मोह माया तव "छोह" छुड़ान ॥१०॥
प्रान लेत निर्बान देत, सर राम अमोघ जहान।
लह जयन्त बिनु अन्त देह, परियन्त राम दयवान ॥११॥

[४]

कस मोहिं छाँड़ि चलेउ रघुराई।
आरत अत्रि विहाल बिरह डर, स्तुति राम सुनाई ॥१॥
मैं नवजात बच्छ निर्बल, निर्भर तुम धेनु लवाई।
कृपा शील कोमल स्वभाव, होते किमि चहउ दुराई ॥२॥
बूड़त मैं भव सिंधु तुमहिं, मन्दर अवलम्बन पाई।
किमि तुम कहँ छोड़उँ बूड़त, पकड़त तृन मानि सहाई ॥३॥
मम मदादि दोष मानउ सो, तुमहीं सकहु छुड़ाई।
जीव बच्छ यह दोष स्वभाविक, साफ़ चाटि कर गाई ॥४॥
तुमहि भजउँ सानुज सशक्ति मैं, सुलभ भयेउ सोइ आई।
ढूंढ़त निज मणि पाइ कृपानिधि, फणि किमि छाँड़ि सकाई ॥५॥
देत अकामिन धाम नाथ, मोहिं तुम बिनु कछु न सुहाई।
भक्त कल्प पादप भक्ती दै, बसहु सदा यहि ठाँई ॥६॥
भक्ती दिहेउ कहेउ पाइअ सोउ, तव कृत स्तुति गाई।
बन्धु सिया सँग चित्रकूट बसि, किय नव रूप बिदाई ॥७॥

[५]

दोउ अनन्य सोउ मन क्रम बानी ।
अनुसूया मति रिषी अत्रि पति, अत्रि राम पति मानी ॥१॥
एक सती एक भक्त कहावत, समता दोउ कहानी ।
अपनइ पुरुष एक जग लख, एक रामइ सकल जहानी ॥२॥
बल सतीत्व अनुसूया सुत भे, बिधि हरि हर बरदानी ।
अत्रि भक्ति बश चित्रकूट बस, लखन राम सिय रानी ॥३॥
सती पति कहँ राम बनावत, दोष न कुछ उर आनी ।
भक्त दोष गुन लखत प्रकृति कृत, राम रूप जग जानी ॥४॥
विश्व राम मय भक्त लखत, पति राम सती अनुमानी ।
भक्त बनत शिव विश्वनाथ, जग जननी सती भवानी ॥५॥

[६]

अत्रि प्रिया लखि सिया दुखाई ।
तापस वेश जूट केश लखि, नयनन नीर ढुराइ ॥१॥
परसत पग सिय जानि परम सग, हिरदय लिय लिपटाई ।
अति आदर बिठाइ आसन, फल मूल सप्रेम पवाई ॥२॥
दिव्य बसन भूषन पहिरावन, करत प्रतीक्षा आई ।
वैभव दिब्य स्वयंभव सीता, पाइ मुदित पहिराई ॥३॥
सीता नाम जपत सतीत्व ब्रत, कठिन भयो सुलभाई ।
दत्तात्रेय चन्द्रमा दुर्वासा त्रिदेव सुत पाई ॥४॥
कठिन कुअवसर आगे आवत, सिय अति प्रीति समाई ।
जेहि रत पूरन किहेउ पतिव्रत, सिय तिय धर्म सिखाई ॥५॥

[७]

राम स्वरूप सरभ सरभंग ।
कोटि अनंग अंग छबि बारेउ तनु भेउ आपु अनंग ॥१॥
जात रहेउ विधि धाम सुनेउ, बन अइहइँ राम प्रसंग ।
रहेउ प्रतीक्षा करत दिवस निशि, लखि छबि भयो पतंग ॥२॥
नयनन तृप्ति न भये वृत्ति, नित लहन राम को संग ।
देखत राम पार्थिव तनु तजि, मिलन लखायेउ ढंग ॥३॥
ब्रह्म धाम से बढ़ि आनँद रँगि, लखन राम रंग सिय ।
धाम विरञ्चि जानि पुनरावर्ती, होइ तेहि ते तंग ॥४॥

प्रेम डोरि वायू तरंग तेहि, हिय अकाश मन चंग।
अति बढ़ाइ साकेत छुवायेउ, राम चरन पितु गंग ॥५॥

[८]

राम भक्त आदर्श सुतीक्षण।
चित्रकूट दण्डकारण्य मुनि, साधन किये निरीक्षण ॥१॥
अति अधीर रघुवीर लखन सिय, आवत करन समीक्षण।
प्रेम मगन मुनि दशा परे वर्णन, जो भयेउ विलक्षण ॥२॥
नाचत गावत दौड़त लौटत, मन होइ मग्न क्षणहिं क्षण।
कबहुँ गिरत धरणी पर रोवत, लखत न करत प्रतीक्षण ॥३॥
प्रकटे राम हृदय मुनि सहि नहिं, विरह वेदना तीक्षण।
मुनि बैठेउ स्तम्भित पुलकित, दृग जल आनँद लक्षण ॥४॥
यही प्रेम राम भूखे, कर पान निरखि छिपि बृक्षण।
परम तृप्ति हिय मुनिहि जगावन, चौभुज भये ततक्षण ॥५॥
राम द्विभुज मुनि मति अनन्य भेउ बिकल मनहुँ हरि भक्षण।
राम प्रकटि हिय लिय लगाइ मुनि, करत धारणा रक्षण ॥६॥

[९]

देहु नाथ दीनन हितकारी।
पग परि राम सुतीक्षण माँगइ, अँसुवन पाँव पखारी ॥१॥
मैं सेवक रघुपति पति मोरे, अस अभिमान हमारी।
भूलइ नहीं कबहुँ मरतेहुँ दम, राखउ राम सम्हारी ॥२॥
सब रुचि त्यागि मोक्षहूँ छोड़े, यह रुचि रखउँ बिचारी।
को मैं कहाँ नयन नहिं सूझत, हिरदय तुमहिं निहारी ॥३॥
अस निर्भर तुम पर होइ बैठउँ, जिमि बालक महतारी।
तुमहिं समर्थ सुहृद स्वामी लहि, त्यागउँ चिन्ता सारी ॥४॥
तुम्हरइ राम रूप मैं देखउँ, विश्व चराचर झारी।
स्वामी पूज्य देव मैं सेवक, सदा अनन्य पुजारी ॥५॥

[१०]

चहुँ दिशि मुनि बीचे रघुराई।
रामचन्द्र मुख चन्द्र विलोकहिं, मुनि चकोर समुदाई ॥१॥
एकटक मनहुँ विलोचन हेरत, निधि प्रत्यक्ष लखि पाई।
भये मगन मूरति सोइ बैठी, जो हिय कमल लखाई ॥२॥

करि करि जतन रतन सोइ ढूंढ़त, परेउ न कबहुँ दिखाई।
अनायास मन बुधि अहमिति नसि, निज स्वरूप प्रगटाई ॥३॥
जनु साधन समूह बैठे थकि, ढूंढ़त सिद्धि हेराई।
मुनि अगस्ति आश्रम पायेउ लखि, सिया सहित दोउ भाई ॥४॥

[११]

राम देत नित दास बड़ाई।
जन पूँछत महिमा तिन सूचत, आपन प्रगटि छोटाई ॥१॥
भरद्वाज से बन मग पूँछत, बाल्मीकि ठहराई।
निश्चर-हीन करन महि पन करि, पूँछ अगस्ति उपाई ॥२॥
भरद्वाज मुनि कहेउ सकल मग, सुगम तुमहिं रघुराई।
बाल्मीकि कह जहँ न होहु तहँ, कहहु रहन बतलाई ॥३॥
मुनि अगस्ति कह कृपा रावरी, जानउँ कुछ प्रभुताई।
सो प्रभु पूँछत मोहिं उपाय अस, जग केहि शील सुहाई ॥४॥
गूलरि तरु तव माया फल ब्रह्माण्ड अनेक लगाई।
फल विच बसते जीव जन्तु जेहि, काल निरन्तर खाई ॥५॥
जा के डर सोउ काल डरत सो, प्रभु तुम त्रिभुवन साँई।
यह वर माँगउँ यही रूप, तीनउँ मम हिय बसि जाई ॥६॥
निर्गुन रूप बखानउँ जानउँ, किन्तु सगुन प्रियताई।
बर दै हिरदै बसि रघुनन्दन, रहउ पंचवटि छाई ॥७॥

[१२]

रघुबर पञ्चवटी बसि जाये।
उकठे तरु भे हरित भरित सब, पुष्पित फलित सुहाये ॥१॥
चक चकोर मोर शुक पिक खग, मधुकर मृग मन भाये।
बनत सिद्ध मुनि वृन्द देवता, तनिक विलम्ब न लाये ॥२॥
प्रकृति राम सेवा हित अपनहिं, सुन्दर सहज सजाये।
बन नितान्त एकान्त निकट, गोदावरि कुटिया छाये ॥३॥
एकटक लखत चकोर मोर नाचहिं, शुक पिक गुन गाये।
गुंजहिं भ्रमर राम सिय रंजहिं, मृग विलोकि नगिचाये ॥४॥
बने पञ्चमुख तहाँ पञ्च वट, पद रज लट लटकाये।
गौरा गोदावरी राम पग, परसैं, गंग लजाये ॥५॥

[१३]

करत नाट्य नर राम बार एक, निज आनन्द समाई।
बैठे लखि लक्षणाचार्य जिव, प्रतिनिधि अवसर पाई ॥१॥
सुर नर मुनि सचराचर सब की, निज सम्बन्ध जनाई।
सर्व स्वामि से सर्व परम हित मौलिक प्रश्न उठाई ॥२॥
माया ज्ञान विराग बतावहु, भक्ति जो नाथ सुहाई।
आपु ईश मोहिं जीव भेद, प्रभु बिनु को सक समुझाई ॥३॥
'माया ज्ञान शोक नासइ, वैराग्य मोह विनसाई।
ईश्वर जिव सम्बन्ध भक्ति दै, दे भ्रम सकल मिटाई ॥४॥
समुझावहु अस जानि कृपा करि, शोक मोह भ्रम जाई।
अनरथ जग तजि परमारथ पद, सेवउँ तव लव लाई ॥५॥

[१४]

—: श्री राम गीता आरम्भ :—

जन जिज्ञासा राम बुझाई।
बुद्धि कुशाग्र लखन तोहि कारन, बहुत न कहि समुझाई ॥१॥
लखन भयो सन्तोष हर्ष, निज कृतज्ञता प्रकटाई।
उत्तर राम प्रसिद्ध "राम गीता" भा, कृपा गोसांई ॥२॥
कारण क्रम से राम प्रथम, माया स्वरूप दरसाई।
मैं तै मोर तोर कहि माया, अहमति जीव जनाई ॥३॥
आत्म अभिन्न भिन्न भासत, घट देह भिन्न दिखलाई।
एकइ जल विभिन्न आकृति घट, दूसर नहिं होइ जाई ॥४॥
माया कार्य बतायेउ कीन्हे, निज वश जिव समुदाई।
इन्द्रिय विषय होइ, जाइ मन, तेहि बिस्तार बताई ॥५॥
दृश्य मात्र मन वुधि उड़ान, माया के भीतर भाई।
याते इन्द्रिय वुद्धि ज्ञान, माया से पार न पाई ॥६॥
माया के दो भेद अविद्या एक विद्या कैहिलाई।
जिव भव कारण प्रबल एक, निर्बल चल हरि रुख पाई ॥७॥
हरि प्रेरणा भक्त कहँ व्यापत, विद्या जो सुखदाई।
हरि बल पाइ अविद्या से, हरि जन कहँ लेइ छुड़ाई ॥८॥
विद्या और अविद्या स्थित, चित माया उपजाई।
यातें दोउ बिहाइ लखै, एक ब्रह्म सो ज्ञान कहाई ॥९॥

सिद्धि त्यागि त्रैगुण अतीति गति, लहे विराग दृढ़ाई।
माया ईश न आपु जान, सोई जिव संज्ञा पाई ॥१०॥
माया प्रेरि जीव जो बाँधइ, सोई सकइ छुड़ाई।
महा महिम सर्वेश सर्वपरि, ईश वेद तेहि गाई ॥११॥
धर्म है साधन विरति, ज्ञान पावन कर योग उपाई।
विरति एक अंग आवश्यक ज्ञान जो मुक्ति कराई ॥१२॥
कालान्तर यह सकल देहिं फल, मम सहाय कम पाई।
जाते वेगि द्रवउँ मैं सो मम, भक्ति भक्त सुखदाई ॥१३॥
भक्ति प्राप्ति अवलम्ब अन्य नहिं, स्वयं ज्ञान गुन आई।
भक्त हृदय मैं बसउँ निरन्तर, माया दुरै डेराई ॥१४॥
कहेउ सकल संक्षेप, भक्ति विस्तार पूर्वक गाई।
कारण यह कि विराग ज्ञान गुन भक्ति रहत पछिआई ॥१५॥

[१५]

माया सूपनखा बनि धाई।
वार्ता अकनि ब्रह्म जिव भ्रातन, कीन्हेउ छलन उपाई ॥१॥
सकल विश्व शोभा समेटि, जग मोहनि निज कहँ पाई।
गये समीप स्वयं दोउ मोही, बोलि राम मुसुकाई ॥२॥
तुम सम नर न नारि मो सम, सुन्दर अन्दर जग जाई।
यह संयोग भोग अवसर, अस करहु हाथ नहिं जाई ॥३॥
सिय दिखाइ राम ब्रह्म निज, सुख स्वरूप दरसाई।
गये लखन जिव लखन कहेउ मोहिं, दास न बात सुहाई ॥४॥
प्रगटि भयंकर रूप भक्ति व्यवधान सिया चह खाई।
बल संकेत ब्रह्म राम लहि, लक्ष्मण कीन्ह दवाई ॥५॥
नाक कान काटे कुरूप किय, जिव जेहि नहिं ललचाई।
लै त्रैगुण त्रिशिरा खर दूषन, तब तेहि कीन्ह चढ़ाई ॥६॥
सैनिक सहस .बासना चौदह, भुवन प्रत्येक सहाई।
रामइ देखि एक दूजे लड़ि, गे सब तुरत नसाई ॥७॥
अहमति रावन राम प्रिया, भक्ती लिय सिया चुराई।
राम ज्ञान लक्ष्मण विराग कपि सद्गुन कीन्ह लराई ॥८॥
रावन अहं भ्रात लोभ सुत काम सेन दुखदाई।
जूझे सकल, विराग ज्ञान सँग, भक्ति जीति गृह आई ॥९॥

यहि प्रसंग मिस माया जीतन, तुलसी जतन बताई।
राम ज्ञान लक्ष्मण विराग सँग, सीता भक्ति कमाई ॥१०॥

[१६]

साधू वेश राम छबि न्यारी।
खग मृग मीन कहै को हिंसक, निश्चर मुग्ध निहारी ॥१॥
सजे धजे लखि राम ताड़का, दया हृदय नहिं धारी।
राम सहज छबि निरखि काम पीड़ित सूपनखा भारी ॥२॥
मन बुधि चित बिकाइ राम, आपा नहिं सकी सँभारी।
राम योग आराम जानि नहिं, बनि गइ भोग भिखारी ॥३॥
जो न मोह सो राम रूप लखि, निश्चरि दोष विचारी।
मोहे खर दूषन त्रिशिरा लखि, सत सुन्दर अवतारी ॥४॥
सूपनखा की इच्छा पुरयेउ, भई कूबरी प्यारी।
राम रूप निर्वाण लहेउ, निज रूप खरादि बिसारी ॥५॥

[१७]

रघुकुल रीति राम भलि पाली।
कुल अनुरूप आचरन अस किअ, भे आदर्श प्रणाली ॥१॥
चौदह सहस अजेय निशाचर, लड़ते अपना खाली।
काहू को नहिं पीठ दिखायेउ, डालेउ सब कहँ बाली ॥२॥
रूप मोहनी सूपनखा धरि, माँगेउ भीख कुचाली।
एक पत्नी व्रत सदा राम रत, दृष्टि न ता पर डाली ॥३॥
भोग भीख दीन्हेउ नहिं याहू, भेष देखि तेहि जाली।
सूपनखा कुबरी भे द्वापर, गृह बसि कीन्ह निहाली ॥४॥
दूषनादि दुष्ट माँगेउ, निज नारि तुरत देउ टाली।
जीवत भवन जाहु दोउ भाई, मारउँ देउँ न गाली ॥५॥
कृपा निधान राम निज करुणा, ता कर अर्थ सम्हाली।
निज माया करि तुरत मुक्त, गवनउ गृह प्रान निकाली ॥६॥
माया निज तिय तस दुराइ, निर्वान परोसेउ थाली।
जेहि पावत आनन्द नित्य, माया सक हाथ न घाली ॥६॥

[१८]

राम कठिन को दण्ड चढ़ाये।
मार्तण्ड भुज दण्ड इन्द्र धनु, गहि घन असुर नसाये ॥१॥

कारण मुनि कंकाल निरखि, विकराल क्रोध दमकाये।
वदन लालिमा ऊषा निकसेउ, सुरगन कमल खिलाये ॥२॥
स्वर्ण पंख सायक समूह, रवि रश्मि सामने धाये।
मेघ बरूथ निशाचर तन घुसि, वारि रुधिर बरसाये ॥३॥
प्रखर तेज रवि कुल रवि बाढ़त, आगे चरन बढ़ाये।
चकाचौंध अँधराइ शत्रु, एक दूजेहिं राम लखाये ॥४॥
आपस ही लड़ि मरे शत्रु, छवि राम हृदय नभ छाये।
राम राम ललकारत पद, निर्वान निशाचर पाये ॥५॥

[१९]

नृप सुत राम कि हरि अवतारी।
संशय रावन भयेउ राम जब, खर दूषन कहँ मारी ॥१॥
जौ नृप तनय तौ समर मारि, ताकर हरि लइहउँ नारी।
जौ अवतरेउ ब्रह्म रूप नर, तौ हठि करिहउँ रारी ॥२॥
तामस तन हरि भजन होइ नहिं, दृढ़ करि हृदय बिचारी।
हरि शर लगि तनु तजे तरउँ मैं, अनायास भव भारी ॥३॥
संशय यही वचन मारीचहुँ, ईश चराचर झारी।
यदि नर तौ अति शूर, लड़े जिन ते है निश्चय हारी ॥४॥
नहिं निश्चय भे निश्चय कीन्हेउ, हरिबो नारि करारी।
लड़ि नहिं छल, अहि मरै न टूटै, जेहि तन छड़ी हमारी ॥५॥
बँधिहइँ सिन्धु सेतु तौ जनिहउँ, हरि जो भव सक तारी।
तब लरि मरि अकेल नहिं तरिहउँ, प्रत्युत निश्चर धारी ॥६॥
दुविधा दुख रावन कुपूत की, सही न सिय महतारी।
निज हरि बधू जनाइ मृत्यु तेहि, हरि शर कीन्ह सुखारी ॥७॥

[२०]

धनि धन्य जटायू गीधराज।
नभ सुनि क्रन्दन। लखि सिया बदन ॥
लिय जात हरन। रावन असरन ॥
कहँ रघुनन्दन। कहि करत रुदन ॥
कह गिध रावन। रोकै स्यन्दन ॥
नहिं रुकत झपट जिमि लवहिं बाज ॥१॥

बूढ़ो शरीर। अवसर गँभीर ॥
रिपु महा वीर। लखि नहिं अधीर ॥
तेजी समीर। जिमि राम तीर ॥
विद्युत लकीर। सम पवन चीर ॥
अति तीव्र वेग लखि गरुड़ लाज ॥२॥
पंजा व चोंच। ते शत्रु नोच ॥
भुज बीस लोच। दससीस पोच ॥
नहिं सक खँरोच। जनु पाइ मोच ॥
मारै जो सोच। पूर्वहिं दबोच ॥
मूर्छित रावन जिमि गिरे गाज ॥३॥
अवकाश पाइ। सिय भूमि लाइ ॥
पुनि भिड़ेउ जाइ। नहिं गनि सवाइ ॥
रिपु लहि सजाइ। असि कर सजाइ ॥
पँख गीधराई। काटे गिराइ ॥
बरदान प्रबल बिधि किहेउ काज ॥४॥
चिह्न राम चरन। सब दोष हरन ॥
भव सिंधु तरन। निज चित्त धरन ॥
सिय पुत्रि हरन। जिय जात गरन ॥
करि दरस परन। लिए राम सरन ॥
गे पहुँचि राम आगे विराज ॥५॥

[२१]

राम गीध कहँ लीन्ह उठाई।
धोये अश्रु, जटा निज पोंछे, घाव गोद बैठाई ॥१॥
टूटे शब्द सिया हरते, रावन ते युद्ध बताई।
बिलपत सीता बरबस शठ, लै गयेउ कहेउ सिसकाई ॥२॥
दशा गीध की देखि कृपानिधि, प्रान प्रिया बिसराई।
प्रानहुँ ते प्रिय जानि गीध लिय, प्रान निकट लिपटाई ॥३॥
अधिक प्रेम निज मानव लीला, रामहिं गयेउ भुलाई।
रावन सकुल मारहउँ भाषेउ, राखब तुमहिं जिलाई ॥४॥
तन राखन अब इच्छा नाहीं, गीध कहेउ मुसकाई।
तुम्हरी गोद तुम्हहिं निरखत, पुनि अवसर मृत्यु न आई ॥५॥

[२२]

गीध देह तजि हरि तनु पायो ।
जलद श्याम वपु वारिज लोचन, मुख मनोज ललचायो ॥१॥
चारि चारु भुज शंख चक्र तिन्ह, पद्म गदा लटकायो ।
भूषन पीत बसन किरीट शिर, सकल अंग छबि छायो ॥२॥
हिय आनन्द सिन्धु मुख होइ, मुसकानि मधुर लहरायो ।
होइ कृतकृत्य चकित लीला अद्‌भुत स्तुती सुनायो ॥३॥
अति उत्कृष्ट रूप धरि आपन, फल उपकार दिखायो ।
मुक्ति रूख पर सिय अनुकम्पा, भक्ति बेलि बिलसायो ॥४॥
भ्रमर राम सिय चरन कमल हिय पटल, रहेउ मड़रायो ।
गीधराज धन्यातिधन्य, तेउ धन्य अवस्था गायो ॥५॥

[२३]

सीता राम चरन अनुरागी ।
सीता प्रीति स्वरूप राम, मोहिं कहत हिचक नहिं लागी ॥१॥
प्रबल प्रलोभन रावन दिखलायेउ एक दिशि एक साँगी ।
कियेहु असम्भव मिलन राम, सम्भव सनेह नहिं त्यागी ॥२॥
बिकट निशचरिन कठिन क्रूरता, मध्य रैन दिन जागी ।
राम चरन चिह्न ध्यान निरन्तर, रखत प्रेम रस पागी ॥३॥
लक्ष्य राम धनु पीर तीर चल नाम बाँह बिरहागी ।
राम ब्रह्म निर्लिप्त होत बिक्षिप्त प्रेम शर दागी ॥४॥
राम अहलादन भिन्न रूप धर, नित अभिन्न लय भागी ।
भामिनी राम जगत स्वामिनि कर राम प्रेम मैं माँगी ॥५॥

[२४]

सीता विरह राम दुख भारी ।
जल आनन्द सिन्धु राम निज, लागत सिय बिनु खारी ॥१॥
जाके कोऊ अंग लखत कछु, प्रिय सिय की अनुहारी ।
जानत इनहिं गई बाँटत छबि, पूँछत किधर सिधारी ॥२॥
नयन विलोकि मीन मृग खंजन, शुक लखि नाक सँवारी ।
श्रेणी मधुकर निरखि केश सम, वेणी नागिन कारी ॥३॥
दाड़िम दाना दन्त पंक्ति सित कुन्द कली सम न्यारी ।
दामिनि दमक दन्त मुसकाने, मुख शशि शरद पियारी ॥४॥

भौहें धनुष मनोज, बोल पिक, सरिस हंस गज चारी।
तनु कोमलता कमल आचरन, श्री फल सरिस उभारी ।।५।।
वर्ण स्वर्ण उरु कदली कटि केहरि खीनी लचकारी।
नहिं उत्तर सुनि समुझेउ निरुपम सिय बिनु भये सुखारी ।।६।।
राम अखिल जग छवि बटोरि जिमि, सिय छबि अंश विचारी।
मन तिमि प्रान राम तनु सीता, जगु लखु हिय निरधारी ।।७।।

[२५]

अद्भुत राम रीति सिय खोजन।
लगत विक्षिप्त विरह सीता पर, लिपटत सोइ तरु तनु जो निज जन ।।१।।
तजि निज असन सयन सोवन कर, परसन परसन दरसन भोजन।
लिपटत एक एक बेगि न छोड़त, बढ़त दिवस निशिचलिकहुँ जोजन ।।२।।
आश्रम मुनिन जात पद कंटक, घुसेउ सो बनेउ बैद अभिनन्दन।
प्रेमी सिद्ध बने तरु भेंटत, जन हिय धँसेउ रूप रघुनन्दन ।।३।।
पुलकित तरु जनु प्रौढ़ पनस फल, झरत सुमन बह अश्रु ओसकन।
हर्षित राम मिलत जनु सीता, पुलकित बहत नेह जल लोचन ।।४।।
तना कमर तरु राम गहत भुज, शाखा भुज तरु धर हरि काँधन।
यह आलिङ्गन किहेउ सत्य, "अतिशय प्रिय," सियसम राम भक्तजन।५।

[२६]

सिय तजि ढूँढ़त शबरी राम।
भक्तिमती शबरी जनु प्यारी, जस सिय भक्ति ललाम ।।१।।
जेहि पूँछत तेहि शबरी आश्रम, लेत अन्य नहिं नाम।
सकल साधना ते जनु मानत, सरल भक्ति विश्राम ।।२।।
मुनिन मिलन हित तजे अयोध्या, संत मिलन हित धाम।
मान धाम तहँ लागत ढँढ़त, शीतल शबरी ठाम ।।३।।
चरन कमल निज चिह्न राम पद, लखि सिय कछु आराम।
शबरी बिनु अवलम्ब, राम सहि, सक विलम्ब नहिं धाम ।।४।।
गुरु की बात प्रतीति, प्रीति निज, अति प्रगाढ़ निश्काम।
प्रबल प्रतीक्षा प्रणय प्रेरणा, खोजत शबरी राम ।।५।।

[२७]

शबरी राम मिलन मग ताकइ।
रामानँदघन सहजाकर्षन, दामिनि जिव सग ता कइ ।।१।।

वृक्षन बिच अवकाश नील नभ, राम छनइ छन झाकइ ।
मुक्ति अमिय जनु छकन छनइ जिव, दुस्तर संसृति झाकइ ॥२॥
सोचइ आवत अवध चित्रकुट पंचवटी तजि नाकइ ।
मानहुँ जोगी ज्योति लखन हित, तकइ अग्र निज नाकइ ॥३॥
बाँका पति से मिलन हौसिला, होइ अहर्निशि राकइ ।
तिमि शबरी चकोरि रति रामहिं, लखन शरद शशि राकइ ॥४॥
एकटक नयन खुले आधा मुख, सकत वायु रज फाँकइ ।
करत प्रतीक्षा अस अधीर हिय, होन चहइ अब फाँकइ ॥५॥

[२८]

वारि जाऊँ राम तव बनियां ।
वत्सलता शबरी हेरत, हेरानि जनु कनिया[1] कनिया ॥१॥
शबरी गृह हेरत हेरानि हिय, सच हेरानि सिय रनिया ।
विरह नाट्य नर पर हरि फेरेउ, भक्त बछलता पनिया ॥२॥
राम विलोकि चरन लिपटानी, बैठारेसि आसनिया ।
चरन धोइ फल दीन्ह खात, पुनि माँगत करत बखनिया ॥३॥
तीन बार निज अधम कहे तेहि, तीन बार कह जनिया ।
नवधा भक्ति कहन मिस शबरी, के प्रत्येक गुन गनिया ॥४॥
प्रभु मुसकान दान बल शबरी, सहज स्वरूप लहनिया ।
तनु तजि योग समानि राम जब, राम समानि[2] भयनिया ॥५॥
बर न माँगि बर बरी लही बर गति जेहिं नहिं लौटनिया ।
राम गरीब निवाज ताज भइ, शबरि गरीब कहनिया ॥६॥

[२९]

शबरि बेर कस राम खिलायेउ ?
रुचिकर असन तस न गुरु गृह पितु महल जनकपुर पायेउ ॥१॥
सदा कुपथ्य कहत बदरी फल, रामहिं अतिहि सुहायेउ ।
शबरी बदरी सम, फल गनियत अति स्वादिष्ट न भायेउ ॥२॥
अति संकोची राम बेर माँगत पुनि पुनि न लजायेउ ।
सुलभ न भयो भाग्य सो दशरथ, कौशल्यहु जे जायेउ ॥३॥

---

१. कनिया = कन्या । २. समानि = समान ।

शबरी कहेउ रोज फल ढूंढ़न, चितवत राम कि आयेउ ।
बदरि ढूंढ़ि भरि दई माधुरी, रस जस बिधि न बनायेउ ॥४॥
मम सँकोच मोहिं छुये खाहिं फल, राम सँकोच मिटायेउ ।
अधम उधारन दीन दुलारन, बानि राम दिखलायेउ ॥५॥

[३०]

नारद सुधि निज श्राप लजाई ।
राम जन्म उत्सव विवाह पर, पड़े नहीं दिखलाई ॥१॥
ब्याह मुहूर्त कहे पितु ब्रह्मा, तो गे जनक जनाई ।
किन्तु विवाह महोत्सव निरखन, हिम्मत हृदय न आई ॥२॥
लीला रसिक भक्त चूड़ामणि, रहत नित्य यश गाई ।
निज अपराध ग्लानि राम की, विचरहिं दृष्टि दुराई ॥३॥
बिलपत बिरह राम लखि नारद, हृदय बहुत पछिताई ।
माँगन छमा छुवन पद रज, अवसर अनुकूल न पाई ॥४॥
पंपासर लखि राम शान्त चित, बर्णत बन बनजाई ।
राम समीप पहुँचि मुनि नारद, सादर सीस नवाई ॥५॥

[३१]

नारद निरखत राम बड़ाई ।
नारद कर अपराध न मानत, मिलत प्रेम उर लाई ॥१॥
अस स्वभाव अवतार रूप अनि, नहिं गनि गुन बहुताई ।
माँगेउ बर बर राम नाम बड़, होइ नाम समुदाई ॥२॥
राम नाम श्रेष्ट पूर्वहिं ते, रहेउ जो शम्भु जपाई ।
राम सत्य संकल्प सत्य-वद, बर अब मुहर लगाई ॥३॥
नारि बिरह ब्याकुल जो भासत, नारि स्वरूप बताई ।
सद्गुन सुख अपहरन, दु:ख दुर्गुन दाता समुझाई ॥४॥
प्यार अपार जननि जन शिशु, राखन अहि अनल बचाई ।
जानि स्वभाव राम नारद मुनि, बार बार बलि जाई ॥५॥

[३२]

संतन लक्षन राम बखानी ।
नारद पूंछेउ निज हित पर, विशेष हितकर जिव जानी ॥१॥
भव भय भंजन आवश्यक, संतन गुन नारद मानी ।
राम बतायेउ संतन गुन जिन्ह, करहिं राम वश प्रानी ॥२॥

॥ राम ॥

श्री रामचरितमानस पदावली

अरण्य काण्ड

(सत्संग प्रकरण)

।। राम ।।

[१]

बन्दउँ धनुष बाण रघुराई।
पूर्ण ब्रह्म राम दर्शन, जिन बिन अपूर्ण दरसाई ।।१।।
प्रकटत छिपत राम सँग चिन्मय, रामहिं सरिस लखाई।
मनु शतरूपा जस समक्ष, प्रगटे कौशल्या माई ।।२।।
एक बाण बहु बन ब्रह्मा सम, जन पालत हरि नाँई।
दुष्ट सँहारन प्रबल रुद्र सम, गुण त्रिदेव की पाई ।।३।।
विधि हरि शंभु राम के मन की, मरम न जानि सकाई।
इनके मन मन राम जानिके, करहिं राम मन भाई ।।४।।
सीधे घूमि रुकत चलते करि, काम फिरहिं पुनि आई।
कथा जयन्त प्रत्यक्ष कर्म इन, छिपि ताटंक गिराई ।।५।।
राम बचन सम कबहुँ न मिथ्या, तेहि अमोघ कहिलाई।
पुण्य परशुधर दृग जयन्त, सागर दुख हरन बताई ।।६।।
राम कहेउ शर मूढ़ मारिहउँ, जेहि हति बालि ढहाई।
शर अदृश्य मूढ़ता हरेउ, सुग्रीव भरत भे भाई ।।७।।
दुष्ट दलन पालन हरि जन, निष्पक्ष लखत निपुनाई।
पूँछन इन्हन विभीषन कस, हरि वायू सुवन सुझाई ।।८।।
राम हाथ नित रहि दुरात, हिय राम बसत कपिराई।
यहि मानउँ हनुमान रूप इन्ह, पार्षद राम गुसाँई ।।९।।
जग सन्तापी पापी अघ क्षय, निश्चय एक उपाई।
इनके लागत सब अघ भागत, तुरत परम गति पाई ।।१०।।

[२]

राम योग मानस सिखु रीति।
योग कुयोग कहेउ वशिष्ट जेहि, नहिं प्रधान हरि प्रीति ।।१।।
चहि न विश्व सुख मनु अपनायेउ, राम दरस कहँ नीति।
जनक कहत रामहिं दर्शन हित, योग करिअ मन जीति ।।२।।
दर्शन लहि शरभंग शेवरी, विछुड़न पुनः सभीति।
लहेउ सुयोग राम की तनु तजि, स्थिति देहातीति ।।३।।
दर्शन भजन राम हित राखत, शिब भुशुण्डि तनु मीति।
प्रभु प्रकटे प्रत्यक्ष लख, ध्यानहिं स्थिति त्रिगुणातीति ।।४।।

गीधराज कहँ राम सुझायेउ, लखि तेहि जीवन बीति।
राखन तन विशेष हितकारक, गावत हरि हर गीति ॥५॥
रहनि राम सों नहीं तो मिट्टी, तुलसी कहै पलीति।
राम नित्य योग सम स्थिति, जीवन मरन प्रतीति ॥६॥

[३]

प्रानी खोजि जान निज प्रान।
ज्ञान अन्त प्रारम्भ भक्ति यह, अनुभव कह विज्ञान ॥१॥
प्रान वायु नहिं जेहि बिनु जीवित, रहिअ[1] समाधी ठान।
चेतन कर चेतना अहं कर, कारण बोध महान ॥२॥
तन तरु बसत अहं जिव पंछी, सँग वह बिहँग सुजान।
तरु फल खात न, रहत चेतावत, अस वेदान्त बखान ॥३॥
बुधि ऋतम्भरा वा विवेक निर्मल सोइ करइ प्रदान।
कारण अहं विलग पर ताते, राम आत्म भगवान ॥४॥
उर बासी अन्तर्यामी कोइ रूप न नीर समान।
सीताराम रूप प्रकटे धारणा वक्ष हनुमान ॥५॥
उर कहँ कहे चेतना स्थल, वस्तु तत्व हो ज्ञान।
अपने कर आपन जानत[1], फणि मणि भक्ती आसान ॥६॥

[४]

अब मानस मानस मम आई।
गुरु दीक्षा सम्बन्ध सेव्य सेवक भव पार कराई ॥१॥
जगत भाव माता पितु सम्बन्धी जिव की लरिकाई।
नैहर जागृत सोवत स्वपना, हाट भवन पहुनाई ॥२॥
बर ते ब्याह ब्रह्म भक्ति, गुरु दीक्षा ब्याह रचाई।
जगत मोह विच्छेद छोह बर, ससुरे कहँ गवनाई ॥३॥
वर नाते ससुरे जग स्वामी, सास ससुर समुदाई।
अपनहिं सेवक जानि करइ, मन बच क्रम सब सेवकाई ॥४॥
यह तुरीय ज्ञान धारणा, भव जल पत्र तैराई।
तुरियातीत सेज मिलि पिय हिय, परा भक्ति उतराई ॥५॥

[५]

तंग गलिया पिया मिलन की।
जग सुख आसा लिये, पाहरू, छेकैं द्वार पिलन की ॥१॥

---

१. 'जीवित रहिअ' और 'जानत' शब्द दीप देहली न्याय सूचक हैं।

सम्बल सँग एक चलै लालसा, प्रिय के मिलन दिलन की।
तन मन बुधि चित रुके अहं चल, सहि आघात छिलन की ॥२॥
चरन चेतना चलै रासता, बिच यम नियम टिलन की।
नहिं अवकास साँस अरु मन के तनिकउ चलन हिलन की ॥३॥
पहुँचे देश सुनउँ सुख उपजै, सरसिज सहज खिलन की।
सिर दै अहं सूरमा पैठइ, साधन नहीं ढिलन की ॥४॥

[६]

इच्छा राम धरे तन माया।
सोई रूप जीव सचराचर, अरु ब्रह्माण्ड निकाया ॥१॥
जोइ शीलनिधि नगर मनोहर, प्रजा रानि अरु राया।
सोइ जगत यह नगर नागरिक, हम तुम रूप दिखाया ॥२॥
माया राम रूप त्रिगुणात्मक, बिधि हरि हर सोइ जाया।
इन त्रिदेव की माया निज निज, माया राम समाया ॥३॥
झाँसा झूंठ चलाकी सोइ जिव, एक दूसरेहिं भुलाया।
देखिअ सुनिअ गुनिअ मन सो सब, माया ही की छाया ॥४॥
माया टले विश्व मोहनी, रमा रूप विनसाया।
तैसे माया हटे परम पद, केवल राम बचाया ॥५॥
अच्छा बुरा न कोइ सब बर्तइ, जस जेहि राम नचाया।
रावन तेज सिद्ध मुनि ताकत, आनन राम अमाया ॥६॥
माया जाया जीव, मुक्ति माया निज बल नहिं पाया।
मुक्ति युक्ति एक शरण राम की, सीता जाकी दाया ॥७॥

[७]

चढ़ाइ दिहेउँ अहमति रामइ चरनवा।
राम सिंधु जिव गंग गयेउ मिलि, हिम गिरि अहं गरनवा ॥१॥
निशा अविद्या हटे स्वप्न "मैं", बैठे राम परनवा।
तेज प्रकाश कृपा रविकुल रवि, हिय तम भयेउ हरनवा ॥२॥
माथा टेकन यही राम पद, सद्गुन राम धरनवा।
मन गुरु द्वय हय देह चढ़े भा, पूर्ण विदेह परनवा ॥३॥
रामइ बोलइ चलइ राम हीं, रामइ कर्म करनवा।
दाम राम नाम चिन्तामणि, चिन्ता भव उतरनवा ॥४॥
स्थिति यह आकास घास, माया गउ सक न चरनवा।
तातें रामहिं रक्षपाल नतपाल सदैव सरनवा ॥५॥

[८]

माया भक्ति शक्ति रघुराई।
सृष्टि स्थिती प्रलय खेल दिखलावत एक प्रियताई ॥१॥
माया कर्म अकर्म राम की, केवल भ्रम न सचाई।
प्रेम स्वरूप नित्य राम की, भक्ति तासु सरसाई ॥२॥
माया भक्ति अंग दोउ सीता, शक्ति जो राम रिझाई।
माया मुक्ति प्राप्ति भक्ति की, सिय कर मोदक भाई ॥३॥
राम सिया अभेद भेद बस[1], दुर्लभता सुलभाई।
सीता युक्त न, राम भावना, निर्गुन अति कठिनाई ॥४॥
जग मिथ्या माया कर कारण, लखिय सत्य रघुराई।
भक्ति वृत्ति बाहर तिन सेवा, अन्तर्मुख अपनाई ॥५॥
भ्रम बन्धन माया बाँधइ जिव, भक्ती देइ छुड़ाई।
ज्ञानी चित अपहरि सक माया, देखि भक्त भगि जाइ ॥६॥
पिता राम करुणानिधान जिव, सीता करुणा माई।
सीता की करुणा विषाद जिव जाइ, राम कहँ पाई ॥७॥

[९]

राम रूप जिव रूप नसावन।
जीव रूप तन रूप नाम, तिन स्वयं जानि अपनावन ॥१॥
सुर पुर पुष्प लखन अज पत्नी, नर तनु भयेउ छुड़ावन।
राम रूप तस आत्म रूप निज, जिव कहँ होत चेतावन ॥२॥
दरस प्रभाव तुरन्त ध्यान दृढ़, देरी कछुक लगाव न।
कीट भृङ्ग न्याय सत्य, उपमा खर दूषन रावन ॥३॥
कीट भृङ्ग से पृथक, आतमा राम रूप निज पावन।
तातें कीट भृङ्ग लघु उपमा, जीव ब्रह्म समुझावन ॥४॥
दर्शन ध्यान राम रूप, भ्रम सोवत जीव जगावन।
जग स्वप्ना विस्मृति करि स्मृति, चेतन रूप हिलावन ॥५॥
निज आधार रूप चेतन, जिव अतिशय कठिन पढ़ावन।
राम रूप आकर्षन जिव बन, जग निज रूप भुलावन ॥६॥

[१०]

एक अधार राम जिव भाई।
जग भव सागर उड़त काग जिव, राम जहाज सहाई ॥१॥

---

१. बस = केवल।

सकल दृश्य एक राम स्वामि लखि, आपु करइ सेवकाई।
या निज उदरहिं दृश्य मेलि जग, रामहिं जाइ हेराई ॥२॥
आपा राखि राम देखन स्थिति रहि सदा न पाई।
बिनसइ प्रलय व दलय काल, माया तहँ लगि पहुँचाई ॥३॥
सृष्टि पूर्व एक रहत राम वा, तेहि जिव बीच छिपाई।
तैसेहिं होइ अभिन्न राम वा, अहमति राम बसाई ॥४॥
कीट होत भजि भृङ्ग, पृथकता होत योनि उड़नाई।
राम अंश तू होत भजत, कस राम बनत सकुचाई ॥५॥

[११]

तस तस जीव राम नियराई।

पोषक अहं जोइ, जस जस जग, रूप राम लखि पाई ॥१॥
सम्पति सम्बन्धी तन मन, पोषक अन्तर्गत आई।
दान यज्ञ तप सेवा शुभ-इच्छा, तिन देन कहाई ॥२॥
बदला चहै सो स्वर्ग लहै, या जग सुख विपुल बड़ाई।
कुछ नहिं चहै तो लहै राम प्रियता स्वरूप निकटाई ॥३॥
योग ज्ञान वैराग्य भक्ति, सीधे समीप पहुँचाई।
शनै शनै करि अहं नाश तहँ, राम देइँ बैठाई ॥४॥
अहं न नाश बासना रहि, हरि वैभव लहि लौटाई।
अहँ सूक्ष्म भे लहै धाम, अति नसे राम होइ जाई ॥५॥

[१२]

राम जुगुति निर्बान जान मन।

चौदह सहस निशाचर पापी, प्राप्त करहिं तेहि अवसर कुछ छन ॥१॥
तन तजते मुख राम नाम, देखइ केवल श्री राम श्याम तन।
केवल यही शर्त पुरवन जेहि, लहै जीव कैवल्य परम धन ॥२॥
तन न तजइ तन उदासीन होइ, गये नहीं कछु फल परिवर्तन।
राम न पास तो करइ ध्यान वा, राम रूप जग देखन साधन ॥३॥
उच्चारण करि सकं न राम तो, ताहि बसावै संग निज चेतन।
होइ विदेह मन लिहे राम तन नाम प्राप्त निर्बान जिअत जन ॥४॥

[१३]

नाम रूप हरि जीव अधार।

माया के संग्राम रूप हरि ढाल नाम तलवार ॥१॥

वार रूप जग रूप निवारत, निज स्वरूप बैठार।
काटत नाम अहं शिर माया, मरत मोह मद मार ॥२॥
रूप नाम दोई उपाधि हरि, पकड़िअ जिनके द्वार।
चिन्तन जपन हाथ दोउ जिव के, हरि कहँ पकड़न हार ॥३॥
दायक दोउ निर्वान खराहिक, निश्चर अघी अपार।
येई दोउ मानस मराल शिव, दक्ती के भण्डार ॥४॥
राम प्राप्ति साधन सारे के, यही दोउ सत सार।
पार करन संसार सिंधु, नर तन नौका पतवार ॥५॥

[१४]

द्वार माया निकलि भे बहरे।
माया जीव विनष्ट राम ही, अविनाशी एक ठहरे ॥१॥
माया द्वार निकलते बाहर, टोकइ नहिं कोउ पहरे।
अपनी इच्छा रहिअ जात बाहर नहिं कोउ कह रह रे ॥२॥
रस स्पर्श गन्ध नहिं भासइ, नयन कान भे बहरे।
एक चेतना मात्र रूप नहिं, नाम जो कोऊ कह रे ॥३॥
मन बुधि अविषय होत, सिन्धु सुख, परम शान्त बिनु लहरे।
भेद भाव तट रहे लौटिये, खोइ न पैठे गहरे ॥४॥
कछु होइ निकट कल्पना बहु करि, माया बाहर टहरे।
स्थिति खसे दशा तेहि बरनउँ, बसे अविद्या शहरे ॥५॥

[१५]

पिय लक्षित सिय काज सँवारत।
इच्छित काज राम सम्बन्धित, हित निज जोखिम डारत ॥१॥
जदपि नीच मारीच छलन हित, रूप कनक मृग धारत।
तदपि राम पीछे धावत, पुनि पुनि अवलोकन आरत ॥२॥
ताकी इच्छा पूर्ण करन की, सीता जुगुति निकारत।
कोमल राम चाम हित प्रेरत, कंचन मृगा निहारत ॥३॥
रावन चहत परम गति पावन, तामस तन लखि हारत।
दारुन दुख विसाहि, राम शर, वध करवाइ उबारत ॥४॥
तिय वियोग सुग्रीव दुखी लखि, तासु विषाद निबारत।
भूषन वसन दिहेउ चिट्ठी लखि, राम तासु दुख टारत ॥५॥
दोषी दुष्टन उदाहरन यह, अथवा भक्ति जे ना रत।
राम जनन की परम हितैषी, साधन विघ्न निवारत ॥६॥

कठिन ग्रन्थि जड़ चेतन जिव की, करुणा कर निरुवारत।
भिन्न भिन्न राम रूप निज, महँ स्वरूप जन ढारत ॥७॥

[१६]

भव सागर का तासु उपाय।
जड़ चेतन की ग्रन्थि, अविद्या, संसृति तेहि परियाय ॥१॥
मैं तैं मोर तोर जग जंगम, जित नानात्व दिखाय।
सो स्वरूप जल गुन लहरैं, दुख सुख जिव भाव निकाय ॥२॥
जागृत स्वप्न सुषुप्ति अवस्था, बाढ़य रुकय घटाय।
तन मन बुधि चित सीमा, स्थिति अहमति जाहि टिकाय ॥३॥
दुख सुख मिथ्या जानि न कछु चहि, नहिं तेहि लहर उठाय।
दृश्य मात्र एक राम रूप लखि, तेहि जल रूप सुखाय ॥४॥
स्मृति राम गँभीर स्थिती, अहमति जाइ भठाय।
नहिं जल रहे नहीं थल पाये, भव सागर बिनसाय ॥५॥
निज कहँ चेतन जानि प्रकृति जड़, से ले ग्रन्थि छुड़ाय।
राम भक्ति रवि उये अविद्या, सहजइ निशा सिराय ॥६॥
छूटे ग्रन्थि अविद्या टूटे, रामहिं जीव समाय।
व्यापक राम समाइ जीव कहुँ, रहै न आवै जाय ॥७॥

[१७]

भव सर तजि बसु मन मानस सर।
राम रूप जल सिय सीतलता, गुन स्वरूप निज लहन पान कर ॥१॥
हिम गिरि ब्रह्म द्रवत जल आवत, बहि थल वेद पुरानन निर्झर।
लीला अनुपम प्रकटि मधुर रस, करत तृप्ति अरु हरत मृत्यु डर ॥२॥
भक्ति स्वाद विज्ञान तृप्ति, भव भ्रमत अबुध जिव मृग तृष्णा हर।
सीतलता अस निकट जात जिव, बिकट जगत त्रै ताप नहीं जर ॥३॥
तट तरु सुमन सुबास बासना हरत, जीव जेहि भव नु पुनः पर।
भाव ललित लीला तरंग, सिय पिय प्रसंग बहु बरन बनज बर ॥४॥
मधुकर मुनि शुक वालिभीकि, पिक काग भुशुण्डी हंस शिवा हर।
तुलसि सुगन्ध जलज प्रवृत्त कर, हरि पद चहूँ निवृत्त मुनीश्वर[1] ॥५॥

---

१. चहूँ मुनीश्वर = सनकादि।

[१८]

मन तू गीधराज सम मरिजा।

शरण गोद रहि राम नाम कहि, लखत राम होइ हरि जा ॥१॥
सीता बुद्धि हरत तू रावन, प्रबल अविद्या लरि जा।
आतमा राम अवशि तेहि मरिहहिं, नश्वर देह चह गरि जा ॥२॥
जीव रूप तेरे नाहीं बल, जेहि तव कारज सरिजा।
स्वामी बुद्धि राम खानि बल, सहैं न जन रुचि चरि जा ॥३॥
नर तनु पाइ सुअवसर प्यारे, पुरुषारथ अब करि जा।
पुनि न घूम लक्ष चौरासी, योनि भवार्णव तरि जा ॥४॥
अमर अवस्था जात प्रलोभन, सुखमय जीवन टरि जा।
मुक्त रूप हरि, राम ध्यान हिय, भक्ती शिक्षा धरि जा ॥५॥

[१९]

निज परिचय गिध राम बताई।

रावन अजय संग कुल हति कै, सक साकेत पठाई ॥१॥
द्रोही विश्व रूप अघ रावन, नरकहुँ जगह न पाई।
ऐसे राम, हते जाके कर, रामहिं जाइ समाई ॥२॥
विश्व होइ जेहि रूप, छमा सो, विश्व द्रोह करि पाई।
अस पुनीत, स्पर्श वस्तु जेहि, परसत पाप नसाई ॥३॥
जेहि रावन समाइ रूप सोइ, धाम जटायु सिधाई।
सोइ सुर धाम बसैं जेहि दशरथ, राम विश्व दरसाई ॥४॥
आमिष भोगी गीध कृपा जेहि, हरि तनु सहज लहाई।
राम सो जो हरि हिय हूँ राजइ, छवि शत काम लजाई ॥५॥
देइ परम गति, क्रिया देह की, करै जो मानि सगाई।
ऐसे स्वामि समर्थ सुहृद सम्बन्ध रखन रघुराई ॥६॥

[२०]

भजन विराजैं राम नजरिया।

जग सुख भोग भूंख नहिं लागै, उनकी लगे नजरिया ॥१॥
उलटि लखूं तो उनहीं देखूं, हिरदय सजे सेजरिया।
शीशा होत बीच परदा "मैं", से जग उठे बजरिया ॥२॥
निर्मल शीशा होत अहं हू, ममता टूटै धजरिया।
काम क्रोध तब लोभ उखाड़िय, जैसे मूलि गजरिया ॥३॥

भजन ध्यान छूटे येहो रिपु, तोड़ैं पुनः पँजरिया।
यातें नयन बसाइअ रामहिं, तजि अनि जतन हजरिया ॥४॥
ज्ञान विराग कुदारि गोड़िये, हृदय खेत बनजरिया।
सींचे भक्ति राम तरु निकसैं, बिकसैं नयन कजरिया ॥५॥

[२१]

टिकउ टुक तनु गृह शबरी राम।
जोग जतन जब लगि जिव शबरी, लहै, न तव पद ठाम ॥१॥
जो कोइ देखै मो कहँ देखइ, हाँड़ माँस अरु चाप।
"मैं" गद्दी तुम बैठि चलावहु, "मैं" को सगरो काम ॥२॥
जब लगि नहिं निःशेष होइ "मैं", सोवै आठों याम।
देखै स्वप्न तो चञ्चरीक निज, तब पद कमल ललाम ॥३॥
जन्म जन्म की करत प्रतीक्षा, जपत तुम्हारो नाम।
अपनी कृपा पतित मोहिं तारन, आये हिय अभिराम ॥४॥
बोइ कर्म तरु लहेउँ तासु फल, "मोर" मधुर सन्नाम।
तेहि रुचि खाई लेटि हिय शइया, नाथ करिअ विश्राम ॥५॥
जाउ तो रहै नहीं "मैं" शबरी, तन गृह थूनी थाम।
तनु तजि बसै चेतना चेतन, राम रूप ही धाम ॥६॥

[२२]

लागु रे मन राम भजनवा।
तजि अभिमान सिखइ सबरी से, विधिवत राम यजनवा ॥१॥
नवधा भक्ति अरनि मन्थन हिय, राम कृशानु सृजनवा।
तन मन बुधि चित अहमति आहुति, देन राम निज जनवा ॥२॥
जिव की व्यथा कथा रामहिं कहि, निज जिव बुद्धि तजनवा।
करि प्रवेश जिव ब्रह्म राम पद, सजनी होत सजनवा ॥३॥
यही परम पुरुषार्थ जीव यह, ब्रह्म राम रन्जनवा।
यही मुक्ति अनुरक्ति राम पद, जिव भव भय भन्जनवा ॥४॥

[२३]

उड़ि चलु हन्सा अपने देश।
जहँ आनँद सर सुख मोती बहु, नहिं दुख बधिक प्रवेश ॥१॥
दृश्य मात्र जग जाल बिछाये, ललित बनाये भेष।
इन्द्रिन मुँह डालत दाना जेहि, गुन बासना हमेश ॥२॥

मादकता मैं तैं दिखलावत, काम लोभ आवेश।
जिव पकड़त छोड़न डरवावत, देत विविध विध क्लेश ॥३॥
संसृति मुख से खात जीव खग, दया नहीं लवलेश।
अस बधिकिनि माया से जिव खग, सहज न पावै पेश ॥४॥
माया विधिकिनि दृग विवेक लखि, परइ कृपा अवधेश।
सुरति पंख तब उड़ि पहुँचत, निज देश न लगइ निमेष ॥५॥
तम न अविद्या रज न काम तहँ, सत नहिं उदित दिनेश।
निजानन्द तहँ नित प्रकाश निज, एक चेतना शेष ॥६॥

[२४]

रहनि शबरी मोहिं नहिं बिसरी।
गई न गुरु सँग लखन राम अंग, प्रेम न रँग कसरी ॥१॥
राम प्रतीक्षा करइ अहिल्या, भई भई शिला न टरी।
लावति असन बिछावति बसन, गिनति छन छन शबरी ॥२॥
परसि चरन रज राम अहिल्या, दर्शन हरसि करी।
राम चरन रति लहि भइ गवनति, जहँ मुनि पति ठहरी ॥३॥
गुरु ते गुरु बच गरू धरी, शबरी जग रही परी।
देह घोंसिला एक हौसिला, देखिअ राम हरी ॥४॥
दरस राम लहि करि प्रसन्न चहि, बिछुड़न सहि न घरी।
भल भजि तनु तजि राम प्रेम सजि, लय नित पद पकरी ॥५॥

[२५]

हेरि हारेउँ हिरान हरि हीरा।
इन्द्रिन मन बुधि अहँ परे तब, लखि गेउ स्वयं जमीरा[1] ॥१॥
तासु प्रकाश प्रकाशित अहमति, बुधिमन कर्ण शरीरा।
यही आवरन ढाकहिं हरि जो, परे अहम्मति तीरा ॥२॥
परम प्रकाश ग्रन्थि छूटइ जड़ चेतन, मिट भव भीरा।
तम रज सत छाया न बुझावइ, जग जुग लोभ समीरा ॥३॥
निजानन्द निज मणि लहि फणि जिव, होइ न कबहुँ अधीरा।
काम कामना क्रोध लहरि नहिं, द्वैत सूखि गे नीरा ॥४॥
जस जस सूक्षम होहिं आवरन, लखिअ साफ़ हरि हीरा।
शीशा भये अहं नहिं दीखइ, दीखइँ एक रघुबीरा ॥५॥

---

१. जमीरा = ज़मीर = हृदय, दिल, चेतना शक्ति।

[२६]

जिव सम्बन्ध सत्य सँभारु ।

ते न सम्बन्धी सगे जिन, स्वारथी व्यवहारु ॥१॥
सम्पदा प्रारब्ध वश रह, देह जौ लौं धारु ।
तनय भार्या बन्धु बान्धव, स्वारथी संसारु ॥२॥
देह वश इन्द्रियन ते मन, बुद्धि चल अनुसारु ।
चित अहं सँग ते चतुष्टय, कर त्रिगुन जस ढारु ॥३॥
इन समुच्चय जिव बहत वश, प्रकृति भव-निधि खारु ।
राम कृपा अहेतु तिन, विलगाव सेतु निहारु ॥४॥
सत्य सम्बन्धी सुहृद, समरथ सदैव उदारु ।
राम सीय समेतु सगे, अहेतु कृपा विचारु ॥५॥

[२७]

आपु मरिबै अमर निज करिबै ।

उदय भान जगि राम ज्ञान, जग स्वप्न ध्यान नहिं धरिबै ॥१॥
वस्तु व्यक्ति सम्बन्ध भक्ति हरि, शक्ति सँभरि उर टरिबै ।
तन मन हूँ बुधि चित न आपु सुधि, अहं राम बैठरिबै ॥२॥
पुण्य पापु फल सुख सँतापु, कारण न आपु तरु फरिबै ।
काम रोषु कामना दोषु, सन्तोषु स्वरूप थिदरिबै ॥३॥
माया रचित न सुख आकर्षित, निजानन्द नित ढरिबै ।
देश काल माया कुचाल, हरि कृपा ढाल नहिं डरिबै ॥४॥
राम चेतना जीव वेदना, चित्त छेदना हरिबै ।
भ्रम निवृत्ति हटि जीव वृत्ति, स्मृत्ति राम भव तरिबै ॥५॥

[२८]

भूमि "मैं" मरु कलपतरु जाम ।

नित्यानन्द अकाम रूप निज, आव सबन सब काम ॥१॥
हिम सुख असावधानि न गलि सुख, लगि कितनहुँ दुख घाम ।
शाखा पत्र फैल विश्व नित, शैल सिन्धु चित ठाम ॥२॥
सरस हरित नित कलित फलित होइ, महा प्रलय नहिं छाम ।
सदय हृदय सब समय देय फल, केवल माँगन दाम ॥३॥
जागृत स्वप्न सुषुप्ति न स्थिति, नित्य तुरीय मुकाम ।
जग जड़ तनु प्रतिबिम्ब बिम्ब सोइ, चेतन आठों याम ॥४॥

सकल विश्व सुख छाया सोइ रुख, शाश्वत ललित ललाम ।
करत वहाँ घरु अहं जहाँ मरु, नाम कलपतरु राम ॥५॥

[२९]

फ़िकरि निकरि सिख दोउ गुरुवर की ।
डूबत भव तरंग भंग भेउ, चढ़ि नव रंग निडर की ॥१॥
दायें लक्ष्मण लाल सुशोभित, बायें सिय रघुबर की ।
प्रथम जगत गुरु दूजो तनु धरु, विद्या विश्वम्भर की ॥२॥
राम बानि जिव सुहृद जानि, तेहि ठानि भवाग्नि उबर की ।
लखि जिव गति दोउ देहिं सुमति, जग विरति सुरति धनु-धर की ॥३॥
जानि दीन मोहिं जतन हीन, तिन कृपा पीन हिय फरकी ।
दीन्ह ज्ञान शुचि सुनेउँ ध्यान, हिय मान फ़िकर तब सरकी ॥४॥
लखन कहेउ दुख सकल सहेउ, जग सपन रहेउ हिय घर की ।
कह सीता जग राम सुभीता, दरस परस शिर कर की ॥५॥

□ □

॥ राम ॥

श्री रामचरितमानस पदावली

किष्किन्धा काण्ड

(भाव प्रकरण)

॥ राम ॥

[१]

श्याम गौर तन, सिय खोजत बन, आनन शशि छवि छीने।
शीश जटा घन घटा सुमन तहँ उडुगन बस दुइ तीने ॥१॥
अरुण तरुण वारिज लोचन, मोचन दुख दारिद दीने।
प्रबल पीन भुज, निबल त्रान ध्रुज, भव रुज हरन प्रवीने ॥२॥
शरणागत, आरत आश्रय रत, आयत सुन्दर सीने।
अवगुन निज जन, उदर न राखन, वन कटि केहरि खीने ॥३॥
पर उपकार रूप दोऊ पद, तरन कूप भव जीने।
गुरु गोविन्द चरणारविन्द सहजहिं कर द्वन्द अधीने ॥४॥
बर बिराग अनुराग सदन, मद मदन मोह मल हीने।
धनुष ज्ञान, नहिं कोउ समान, विज्ञान आत्म नित लीने ॥५॥
घालक दुष्ट, सेतु श्रुति पालक, चालक जग वश कीने।
दानि जानि, बानि माँगउँ पद, पद्म नेह जल मीने ॥६॥

[२]

राम नाम रसिया हनुमान।

अद्भुत अमृत राम नाम जो, सदा करत रह पान ॥१॥
ब्रह्म पयोधि मथन करि संतन, प्रकटेउ जाहि जहान।
जासु प्रयोग हलाहल विष भेउ, शिव कहँ सुधा समान ॥२॥
नाम सो जगन्मातु सीता कहँ, प्रिय समान निज प्रान।
कलि मल नाशन सकल विश्व महँ, जेहि सम नाहीं आन ॥३॥
अग्नि बीज "र" लंक जलायेउ, लीलेउ "आ," बल भान।
चन्द्र बीज "म" शीतल अपना, पूँछि कृशान महान ॥४॥
नाम जाप बल राम प्रकटि हिय, कीन्ह अचल स्थान।
सकल विश्व वश राम, पवनसुत वश्य राम भगवान ॥५॥
नाम बीज वृक्ष लीला यश फल, खानो तेहि गान।
तेहि तरु बसन लहन रस अनुपम, कपि भे शिव तजि मान ॥६॥

[३]

ब्रह्म राम मिल जिव हनुमान।

कोमल पद मृदु गात रूप मनहर लखि हर्ष महान ॥१॥

सहजाकर्षन प्रीति प्रदर्शन, मन करि चलेउ न जान।
कठिन भूमि हिम आतप दुख तिन, लागेउ आपु समान ॥२॥
विप्र रूप निज तिन कर क्षत्री, आपुहिं शीश झुकान।
सुख स्वरूप अनुपम प्रभाव लखि, कोउ विशिष्ट अनुमान ॥३॥
पूँछत तुम त्रिदेव महँ दोउ कै, नर नार-अयन सुजान।
कै ब्रह्माण्ड अखिल नायक समुझाइ हरहु अज्ञान ॥४॥
कोशलेश दशरथ सुत आवन, बच पितु करन प्रमान।
कहेउ हरन बन प्रिया ताहि, खोजत होवत हैरान ॥५॥
करत प्रतीक्षा परिचय सुनि गुनि, बानी ब्रह्म मिलान।
परेउ चरन पंकज हनुमति करि, भुवनन पति पहिचान ॥६॥

[४]

मैं भूलेउँ कस नाथ भुलाने।

राम चरन हनुमान शीश धरि, कह स्वर रुग्ध रुलाने ॥१॥
मोहि बिसरे अपराध नाथ किधों, आपुहुँ मोहिं बिसराने।
तव माया वश फिरउँ भुलाने, छूटउँ प्रभुहिं छुड़ाने ॥२॥
सकल अवगुनन खानि नाथ पर, तव सेवक निज जाने।
मोहि सेवक के स्वामि एक तुम, मोहिं सुत मातु समाने ॥३॥
बाणी प्रेम बाण बिंधि रघुपति, हनुमति हृदय लगाने।
प्रेम बारि बहि नयन बयन कहि, मृदु कपि दाह बुझाने ॥४॥
भ्रातहुँ से सेवक दूनों प्रिय, कोउ सम दृष्टि न माने।
सब तें प्रिय अनन्य सेवक मोहिं, स्वामि चराचर भाने ॥५॥
सब विधि स्वामी सानुकूल लखि, हनूमान हरषाने।
जूँठन ग्रसन असन सोइ सुख मैं, माँगउँ दाने दाने ॥६॥

(अर्थ—मैं उसी सुखान्न के जूँठन को खाने के लिये उसके दाने दान (भिक्षा) में माँगता हूँ।)

[२]

सिय के चीन्हत चीर गहनवा।

पिय हिय प्रेम प्रवाह तोरि तट, धीरज नयन बहनवा ॥१॥
बुद्धि बाँस नौका विवेक चढ़ि, चाहत पीर थहनवा।
प्रबल प्रवाह प्रेम सरि बहि चल, सिन्धु विषाद मुहनवा ॥२॥
जल मुँहकौर बोल नहिं आवत, चाहत राम कहनवा।
बूड़त लखि सान्त्वना बाहु, तैराक सुकण्ठ गहनवा ॥३॥

हनुमत लखन विटप धीरज तरु, वेग समूल ढहनवा।
प्रेम पसीजि भीजि गे जिव, बसते रिषिमूक पहनवा ॥४॥
राम ब्रह्म भक्ति सीता प्रति, प्रियता पर्व नहनवा।
राम कृपा जहाज भव वारिधि, सिय किय टिकट लहनवा ॥५॥

[६]

बालि बधन प्रतीति तब आई।
दुन्दुभि अस्थि ताल रघुनायक, सहजहिं जबहिं ढहाई ॥१॥
परमातमा जानि राम कहँ, हर्ष न हृदय समाई।
राम चरन सुग्रीव पड़ेउ, करते बहु बिनय बड़ाई ॥२॥
कहेउ शत्रु मित्र माया कृत, परमारथ रघुराई।
बालि परम हित तुमहिं मिलन जेहि, रिपुता भयेउ सहाई ॥३॥
सुख सम्पति परिवार, भक्ति बाधक भक्तन बतलाई।
सब तजि करउँ नाथ पद सेवा, अब प्रभु करहु उपाई ॥४॥
राम कहेउ बिनु पाये त्यागन, दृढ़ न विराग कहाई।
बालि हते लहि राज नारि सुख, तब तजि भक्ति सुहाई ॥५॥

[७]

लखु मन बालि सुकण्ठ लड़ाई।
जिव सुग्रीव बालि माया बल, पेश राम बल पाई ॥१॥
जानत बालि राम समदर्शी, राम न बान चलाई।
माल सुकण्ठ राम भुज आश्रित, मारत मारि गिराई ॥२॥
तब लगि राम रहत समदर्शी, दोउ कोऊ झगड़ाई।
निज बल कम कोउ दीन शरण भे, होते राम सहाई ॥३॥
जब लगि निज बल कर भरोस हिय, राम रहत सचुपाई।
निज बल तजि भरोस राम बल, करत राम बल पाई ॥४॥
जिव स्वतन्त्रता राज्य नारि सुख, माया बालि हराई।
बनि सुग्रीव भयें शरणागत, राम काम बनि जाई ॥५॥

[८]

पूँछत बालि राम क्यों मारा ?
थापन धर्म अवतरे मारेउ, हम का धर्म बिगारा ॥१॥
छिपि कर मोहिं व्याध जिमि मारन, उचित कि कर्म तुम्हारा।
तुम समदर्शिहि भयेउँ शत्रु किमि, भेउ सुग्रीव पियारा ॥२॥

अनुज वधू सुत नारि बहिन, सम कन्या धर्म विचारा।
काम दृष्टि देखइ तिन्ह मारन, ग्रन्थ न पाप पुकारा ॥३॥
समदर्शिता त्यागि साधारण, धर्म विशेष सम्हारा।
मम शरणागत कर कोउ बैरी, शत्रू परम हमारा ॥४॥
दीन सुकण्ठ मोर शरणागत, जानि चहसि सँहारा।
यह तव दोष विशेष, छमा नहिं, शक्ति स्वभाव उदारा ॥५॥
प्रश्न बालि पापी कि अजहुँ लहि, अन्त दरस श्रुति सारा।
उत्तर भयेउ राम जेहि कारन, छिपि मारन उर धारा ॥६॥
बालि बचन कोमल रघुनन्दन, हिय करुणा विस्तारा।
शीश धरेउ कर कमल कहेउ, तन अचल करउँ संसारा ॥७॥

[९]

राम प्रवर्षन गिरि ठहराई।

फटिक शिला रमणीक सुरन, सुन्दर गिरि गुहा बनाई ॥१॥
हरित फरित पुष्पित तरुवर बहु, लता रहे गिरि छाई।
मधुकर खग मृग बने सिद्ध मुनि सुर सेवा हित आई ॥२॥
मनहुँ प्रकृति सुषमा सेवा सुर, सिध मुनि जानि उपाई।
चाहत सिय वियोग दारुन दुख, राम बिसरि जेहि जाई ॥३॥
सिय सँयोग रमणीक सकल सुख, सिय वियोग दुखदाई।
प्रकृति सिद्ध सुर हिय प्रकटेउ, सिय राम प्रेम गहिराई ॥४॥
सिय स्वभाव राम डरपत सुनि, घन घमंड घहराई।
निज स्वभाव लखि शरद आगमन, सिय सुधि बिनु बिलखाई ॥५॥
कहियत भिन्न अभिन्न राम, तुलसी स्वरूप सिय गाई।
मोहि दोउ सदा अभिन्न, भिन्न लखियत लीला ललिताई ॥६॥

[१०]

निज बल काम न क्रोध नसाई।

अहमिति से उतपन्न दोउ बल, अहमिति बढ़े बढ़ाई ॥१॥
दरस राम लहि लखि महिमा, वैराग्य सुकण्ठहिं आई।
तदपि बासना बसत नारि मिलि, राम गये बिसराई ॥२॥
जिवाचार्य लछिमन समुझायेउ, जिव न काम जिति पाई।
काम क्रोध लोभ मद जीतिअ, देहि जो राम जिताइ ॥३॥
एक उपाय पञ्च रिपु जीतन, गहन राम शरणाई।
शरण गये स्थिति सुकंठ जो, पाँचउ भरत हराई ॥४॥

जहाँ काम तहँ राम नहीं, जहँ राम काम नहिं जाई।
काम वियोग योग राम हित, राम शरण्य उपाई ॥५॥

[११]

सिय खोजन कपि भालु पठायो।
अवनि सुता सिय भक्ति अमिय हित, प्रभु चह अवनि मथायो ॥१॥
राजाज्ञा मँदर कठोर, मथनी शिर कमठ धरायो।
राम प्रेम बासुकि गहि कपि सुर, भालू असुर नचायो ॥२॥
अथवा राम भालु कपि दर्शन दै, विज्ञान रँगायो।
ते पद रज करि तिलक माथ, पद राम पारषद पायो ॥३॥
सब ते पूँछत कुशल राम, बल कुशल करन तिन्ह जायो।
चहुँ दिशि भेजि सकल जग मंगल, कारज राम बनायो ॥४॥
संपाती लहि दरस चन्द्रमा मुनि, पुनि ज्ञान सिखायो।
देह जनित अभिमान छुटेउ पर पंख न जले जमायो ॥५॥
ज्ञान से अधिक पवित्र करन नहिं, पाप न गीध नसायो।
प्रात नाम लै लहै न भोजन, दरस पुनीत करायो ॥६॥
मुनि सतसंग ज्ञान ते बढ़ि हरि, जन संसर्ग लखाया।
हिय नयनन सिय राम बसत तिन, गुन मोहिं जाइ न गायो ॥७॥

[१२]

अंगद संशय सुनि लौटाने।
जाम्बवान हनुमान कहेउ कस, बैठेउ आपु भुलाने ॥१॥
पवन तनय बल पवन तुल्य, विज्ञान विरञ्चि समाने।
दुष्ट दलन सँहार शत्रु, शंकर करि जग जिव जाने ॥२॥
बाल केलि हिय गगन तरकि तुम, तरनि मेलि मुख आने।
राम काज अवतरेउ तरुण अब, काज पड़े अलसाने ॥३॥
सुनि हनुमान समान त्रिविक्रम मेरु, शरीर बढ़ाने।
कहेउ लाँघि सिन्धु मारउँ, रावन जस मूस दबाने ॥४॥
गिरि त्रिकूट सहसा उपारि, लावउँ लंका प्रभु थाने।
सीता राम मिलावउँ जग बल, राम दूत पहिचाने ॥५॥
जामवन्त समुझायेउ करिये, जेहि प्रभु आज्ञा पाने।
खोजि सिया सुधि बेगि कहहु, रामहिं जीवन दै दाने ॥६॥
निज भुज बल रावन मारे, यश राउ जगत बखाने।
राम दूत उल्लङ्घन सागर, भव जल सुनत सुखाने ॥७॥

□ □

॥ राम ॥

श्री रामचरितमानस पदावली

किष्किन्धा काण्ड

(सतसंग प्रकरण)

॥ राम ॥

[१]

अब निर्मल होइ मन रमु राम ।
जिव स्वभाव जग सुख ललात तू, कबहुँ न लहि विश्राम ॥१॥
बनु निर्मल सीता स्वभाव सिखि, तजि इच्छा धन धाम ।
जग तजि निज तजि बनै राम के, रमि रामहिं आराम ॥२॥
मति रति गति जब एक राम की, राम रमन तेहि नाम ।
निज सुख सम से उच्च दशा सुख, लहरैं ललित ललाम ॥३॥
मति लीला गुन नाम स्मरण, रति स्वरूप अभिराम ।
गति जो होत विस्मरण अपनहुँ, अन्तिम अविचल ठाम ॥४॥
रति प्रदान कर रूप लीनता, मति नित लीला धाम ।
गति पद राम जाहि जिव सिय, अवकाश न माया घाम ॥५॥

[२]

नहिं सहि सक दुख दीन दयाला ।
नयन नीर, भुज फरक, ढाल बन, जिव दुख राम बिहाला ॥१॥
मुनिन अस्थि लखि बिलखि नयन जल, निश्चर वध कहि डाला ।
कथा व्यथा सुग्रीव सुनत, फरके दोउ भुजा विशाला ॥२॥
एक बान बालि मारन पन किय, जन करन निहाला ।
रावन शक्ति विभीषन मारत, राम बने बिच ढाला ॥३॥
सिय दुख बिलपत लखन घाव लखि, दशा भरत उर साला ।
रावनहू भविष्य दीन लखि, भेजत दूत कृपाला ॥४॥
जो चिन्मय अछेद्य तेहि छेदत, दीनन दुख जस भाला ।
विरद मुकुट दीनन दयालुता, शिर ते राम न टाला ॥५॥
मारि बालि दीन लखि चरचा, अमर करन तेहि चाला ।
दीन ताड़का निरखि अहिल्या, सीमा दुःख निकाला ॥६॥
और गुनन ते गुन विशेष गुनि, दीनन कर प्रतिपाला ।
करन राम सम्बोधित सिय, करुणानिधान किय ख्याला ॥७॥

[३]

मन तोहिं तजन देह भय लागै ।
गीध जटायु बालि कपि देते, बर अमरत्व न माँगै ॥१॥
कनक कशिपु रावन कठोर तप, कियेहु हाथ नहिं लागै ।
विधि कहँ अगम सोइ बर रघुबर, देत न कबहूँ खाँगै ॥२॥
निज हित निज ते छति बिलोकि तन, जब करुणा उर जागै ।
बिनु माँगे दीनता दाम, बंचत सो राम जिमि सागै ॥३॥
राम दरस लहि निज स्वरूप धन देह दीनता भागै ।
तव यथार्थ परमार्थ चेत करि, राम चरन अनुरागै ॥४॥
तन राखइ तो राम भजन हित, जिमि भुशुण्डि चह कागै ।
स्मृति राम बालि तनु त्यागन, सुधि न माल जिमि नागै ॥५॥

[४]

धनि धनि धन्य रूप रघुराई ।
शीश जटा धनु बान हाथ तनु, कोटि काम छबि छाई ॥१॥
आनन चन्द चकोर करत मन, चितवनि चित्त चुराई ।
मुख मुसकानि खानि सुख सुधि जिव, सहज स्वरूप कराई ॥२॥
बनमाला सुगन्ध बासना, जग सुख जाइ हिराई ।
अभय बाँह निर्बाह निरखि जिव, माया तजइ डराई ॥३॥
दूरी देश मिटावन पग जेहि, गाल त्रिकाल समाई ।
उर उदार कर्म मेटन भेंटन जिव हृदय लगाई ॥४॥
कोटि जन्म कोटिहुँ उपाय करि, तनु ममता कहुँ जाई ।
अत्यान्तिक सो मिटेउ गीध कपि, अन्त राम दरसाई ॥५॥
राम ध्यान नित मन अटकै, नहिं भटकै अन्य उपाई ।
तौ जटायु बालि सम तुम्हरउ, अन्त बनइ गति पाई ॥६॥

[५]

अभय पद अपनो, करु अनुमान ।
पावन राखन छोरन दुख जौ, भयो होइ हैरान ॥१॥
अपने ते अतिरिक्त लहन कछु, रखन ताहि जो ठान ।
निज स्वतन्त्रता तौ तेहि कारन, करन पड़िय बलिदान ॥२॥
निज चिन्मय अतिरिक्त प्राकृतिक, जब कछु चहइ न आन ।
सत्य सुखद व्यक्तित्व आन, लवलेश होइ नहिं भान ॥३॥

सब सुख जो कछु चहिअ तासु, आपुहिं देखइ स्थान ।
परतन्त्रता न होइ देइ, इन्द्रिन मन बुधि चित प्रान ॥४॥
सुख स्वरूप चेतन देखइ, बिन नयन सुनइ बिनु कान ।
अभय अमर पद राम रमन सोइ, परम शान्ति निर्वान ॥५॥

[६]

जिव न शोच, तोहिं राम भुलानो ।
स्वयंप्रभा सम्पाति विभीषन, तोहिं प्रत्यक्ष प्रमानो ॥१॥
भूमि विवर एक राह विकट जेहि, जल खग कोई जानो ।
स्वयंप्रभा मिस तृषा दूत, पठयो अपनो पहिचानो ॥२॥
जन जटायु भ्राता सम्पाती, रह जरि पंख दुखानो ।
निज दूतन दर्शन दिवाइ तेहि, दोउ पर पुनः जमानो ॥३॥
सम्पाती स्पष्ट कहेउ सिय, तरु अशोक तरु थानो ।
कपि हिय हरि गृह ढूँढ़ विभीषन, जब लगि नहीं मिलानो ॥४॥
रहत सदा सर्वत्र राम, जानत जिव सदा ठिकानो ।
प्रीति रीति रघुनाथ जानि मन, उनके हाथ बिकानो ॥५॥

[७]

निज बल तजि बल राम लगावै ।
तौ कैलाश उठावन रावन, कपि पद टारि न पावै ॥१॥
जे बोरत आनहिं पषान सोइ, हरि प्रताप तैरावै ।
अग्नि प्रचण्ड कनक पिघलै, पर पूँछि न कीश जलावै ॥२॥
महा दान करते नृग निज बल, तम मय कूप गिरावै ।
राम कृपा कपि गीध निशाचर, भव सागर तरि जावै ॥३॥
कोटि जतन करते महेश मन, मनसिज काम जगावै ।
जग विख्यात तियन तन निरखन, हनुमति मति न चलावै ॥४॥
रामहुँ ते बल बड़ो राम जन, रामहिं बल अड़ियावै ।
निज पन तजन्न रखन निज जन पन, रामहिं सदा सुहावै ॥५॥

□ □

॥ राम ॥

श्री रामचरितमानस पदावली

सुन्दर काण्ड

(भाव प्रकरण)

॥ राम ॥

श्री सीताराम जी

हनुमान जी

[१]

चरन रावरो चहउँ पकरो ।
तुम जग प्रलय पयोधि अक्षय बट, पद मुकुन्द तुम्हरो ॥१॥
बूड़त मोहिं मारकण्डे, आश्रय तुम नहिं दुसरो ।
तव पद लहि न नाव अवलम्बन, भव जल रहौं परो ॥२॥
नख चन्द्रिका ज्योति तम नासत, अभ्यन्तर बहरो ।
तल लालिमा ललित लालत सिय, चित्त होइ हमरो ॥३॥
चरन चिह्न निरखत सुख मम दुख, जीव वृत्ति बिसरो ।
चूसत पद अंगुष्ट सुखामृत, होउँ हमहुँ अमरो ॥४॥
जग भव उदधि तरङ्ग वृत्ति बहु, देहिं न जिव उबरो ।
राम चरन बोहित सनेह सिय, गहि पतवार तरो ॥५॥

[२]

बन्दउँ राम दूत हनुमान ।
गुनातीत वश भयेउ जासु गुन, शिव लुटिगेउ कल्यान ॥१॥
जासु तेज रवि तेज छिपेउ जेहि, कान्ति कनक पिघलान ।
जासु शक्ति दे शक्ति सान्त्वना, अरु अनन्त जिव दान ॥२॥
लंक दहन के समय वेग जेहि, उदाहरन नहिं आन ।
लूक अटूट लखत चहुँ दिशि केहि, रावन मारै बान ॥३॥
नभ गति सूर्य साखि भुइँ, सन्जीवनि लहि निशि लौटान ।
गति पताल अहिरावन साखी, क्षय अक्षय बलवान ॥४॥
सुरसा साखी बुद्धि, राम अभिषेक लखावत ज्ञान ।
मणि फोरन रुचि नाम, चरित रुचि, जान न सँग भगवान ॥५॥

(कल्याण स्वरूप शिव का कल्याण लुट गया :—
"प्रभु कर पंकज कपि के सीसा । सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा ॥"
भगवान शिव के मगन होने पर उनकी कल्याण कारिणी भक्ति, जो उन्हीं के देने पर किसी को मिलती है, लुटा दी गई :—
"यह संबाद जासु उर आवा । रघुपति चरन भगति सोइ पावा ॥")

[३]

सुन्दर नाम काण्ड क्यों परिगा ।

भूधर सुन्दर कपि कूदेउ, कारज सब सुन्दर सरिगा ॥१॥
गिरि त्रिकूट के तीन शिखर एक, "नील" लंक जेहि जरिगा ।
एक "सुबेल" एक बन अशोक, "सुन्दर" जेहि अक्षय मरिगा ॥२॥
हनूमान काज अस कीन्हेउ, रिनी राम जो करिगा ।
कथा रचइता भये मग्न शिव, हाथ राम शिर धरिगा ॥३॥
पिय वियोग सिय प्रेम साधना, जाके हृदय ठहरिगा ।
भिन्नाभिन्न राम गति लहि सो, भव सागर से तरिगा ॥४॥
शरन विभीषन लेन राम यश, जाके हिरदय भरिगा ।
तेहि तरु पुण्य दबाइ पाप तृन, दोउ जग सुख फर फरिगा ॥५॥
बसत भक्त भगवन्त सुयश सुनि, एक दूजेहिं मन हरिगा ।
यातें अनुष्ठान काण्ड यहि करि न काज कोउ टरिगा ॥६॥

[४]

कूदते सिन्धु लख हनूमान ।

तनु गिरि सुमेर प्रकटेउ अखण्ड, तेहि बसत तेज मुख मारतण्ड ।
फरकते पंख जिमि भुज प्रचण्ड, मूरति प्रताप पति त्रै भुअण्ड ॥
लखि लोग करत बहु अनुमान ॥१॥
जहँ पहुँचन कूदे लख न लंक, यद्यपि तहँ तक कूदन न शंक ।
लंका महँ स्थित सिय मयंक, मुद्रिका भई चुम्बक निशंक ॥
तब कूदेउ करि निश्चित निशान ॥२॥
निज पद दाबेउ सुन्दर पहाड़, बिल तजे भजे अहि झंख झाड़ ।
केहरि दहाड़ करि कर चिंघाड़, मृग पशु भागे गिरि गये खांड़ ॥
गिरि भार न सहि पृथ्वी समान ॥३॥
सर्वज्ञ राम तेहि विषम काल, गिरि तले हाथ दीन्हेउ कृपाल ।
गिरिवर रोकेउ जाते पताल; हनुमान दियेउ गिरि ते उछाल ॥
गिरि धनुष बनेउ कपि राम बान ॥४॥

जिमि राम बान कहुँ रुकि तेजाइ, कहुँ टेंढ़ नीच होइ कर सिधाइ।
तस हनूमान सुरसा रुकाइ,सिंहिका सँहोरेउ तले धाइ॥
लौटेउ अमोघ निज करि प्रमान॥५॥

[५]

चढ़ गिरि कूदि अभय हनुमान।
लंका भीतर जहँ ते दीखत, जदपि काल स्थान॥१॥
कह मैनाक नात टुक टिकिये, जाइअ मिटे थकान।
हनुमत कहेउ राम काज मोहिं, करि विश्राम सुहान॥२॥
राम काज कर हनूमान कहँ, फ़िकर अधिक निज प्रान।
ताते सुरसहिं कहेउ काज करि, पैठब तव तन आन॥३॥
निज प्रानहुँ ते राम काज कर, अधिक जो राखत ध्यान।
निज प्रानहँ कर प्रान जानते, ता कहँ राम सुजान॥४॥
विष तेहि सुधा होत अग्नि हिय, काल बनत कल्यान।
अमर होत हनुमान् रहत जग, जात धाम भगवान॥५॥

[६]

खोजत सिय कपि वृत्ति सुहाई।
हृदय राम नयनन सिय सोहत, खोजत गृह गृह धाई॥१॥
ढूँढ़त रावन भवन बिलोकत, नारिन मध्य मझाई।
देव यक्ष गन्धर्व नाग नर, किन्नर तिय हरि लाई॥२॥
सोवत सावधान नहिं ते ढकि, अँग वश मादकताई।
लेन परीक्षा हनूमान मनसिज, सब साज सजाई॥३॥
सब कहँ निरखत हनूमान मन, कछु कामना न आई।
किहेउ प्रसंग प्रसिद्ध काम जय, हनूमान एक पाई॥४॥
शिव समाधि उर राखि राम, मन मनसिज काम जगाई।
हनूमान सिय राम राखि हिय, जागत काम हराई॥५॥

[७]

कपि खोजत सिय, राम विभीषन।
गृह गृह कपि खोजत सिय यद्यपि, संपाती देखेउ अशोक बन॥१॥
हनूमान हिय बसत राम, लालसा विभीषन प्रथम निरीखन।
ताते गृह गृह राम विलोकत, कपि चाहत तिन महँ सिय दीखन॥२॥

भवन विभीषन पाइ ताहि मिलि, मिटेउ भवन खोजन ताही छन ।
तब अशोक बन सिय पहँ गवनेउ, कपि जब राम लिहेउ मिलि निज जन ॥३॥
राम विभीषन कहेउ संत प्रिय, तुम सम सोइ मम जग आकर्षन ।
सीतहुँ ते प्रिय राम अधिक जन, बनेउ प्रसंग जगत यह सीखन ॥४॥
राम वियोग अधिक आरत सिय, तेहि ते दुख जन मानत तीखन ।
मोहि लखि परत राम मिलते सिय, जन तोषन सुख देते चीखन ॥५॥

[८]

मिलत दोउ राम प्रेम उमड़े ।
राम भक्त हनुमान विभीषन, होत समक्ष खड़े ॥१॥
दोउ स्तम्भित बोल न आवत, मानउँ अहैं जड़े ।
तन पर बनी ललित पुलकावलि, नयनन नीर झड़े ॥२॥
प्रश्न विभीषन किहेउ राम तुम, वा तिन भक्त बड़े ।
प्रीति हृदय स्वाभाविक उपजेउ, बिनु पहिचानि पड़े ॥३॥
राम कथा निज नाम कहेउ, हनुमान पहुँचि सकड़ें ।
पूँछ विभीषन राम दया कर, मोहि सम तम जकड़े ॥४॥
हनूमान कह कवन नीक मैं, तबहुँ राम पकड़े ।
राम दयालु दया निज जन जस धेनु करत बछड़े ॥५॥
सुमिरि सुभाव राम दोउ जन कहँ, भूलेउ जग झगड़े ।
अकथनीय आनन्द राम तिन, भरिगे हृदय घड़े ॥६॥

[९]

तले अशोक शोक रत सीता ।
रक्त न तनु अनुरक्त राम महँ बदन लखत सित सीता ॥१॥
बसन मलिन धूसरित धूरि, लखि परत रंग कछु पीता ।
हनूमान भा क्रोध लखत, नहिं अवसर भेउ तेहि पीता ॥२॥
कृशित दीन अति खीन सिया तनु, आवै भीतर बीता ।
दशा सिया लखि राम दूत कहँ, पलक कल्प सम बीता ॥३॥
हनूमान पायक रघुनायक, कालहुँ को जेहि जीता ।
दशा देखि सिय विह्वल भये अस, लौटहिं नहिं जनु जीता ॥४॥

[१०]

लखि सिय दशा भयो हनुमान ।
जनु गृह जोनि जीव खोजत लहि, सार ब्रह्म हरखान ॥१॥

राम पाइ अस हर्ष भयेउ नहिं, तिन कहँ लखत दुखान।
सुख स्वरूप दुख रूप राम, जेहि बिनु, तेहि लखेउ महान ॥२॥
राम चरन पंकज रेखन, निज पद देखन लग ध्यान।
पलक न झपत कलप जनु टारन, एक निमेष समान ॥३॥
राम नाम नित रटनि चलत जनु, बिरह धनुष धरि बान।
सुनत पपीहा भूलेउ पिव पिव, राम राम लग गान ॥४॥
जगत जननि जनु जिव शिशु सिखवति, साधन राम मिलान।
सकल प्रलोभन त्यागि राम पद, सदा रहत ललचान ॥५॥

[११]

ऐसी राम प्रिया लखाइ।

चन्द्र छबि जनु राहु त्रासित, दुःख देह लुकाइ ॥१॥
विरह में अनुरक्ति राम, कि शक्ति रही दिखाइ।
रूप धरि निश्चरिन माया, दौड़ि चाहत खाइ ॥२॥
साधना जनु रूप जोगिनि, बैठि ध्यान लगाइ।
वृत्तियाँ निश्चरी धाईं, हेतु चित विचलाइ ॥३॥
सती व्रत बर ब्रह्म पूजन, जीव तिय बनि आइ।
हित परीक्षा विघ्न धाये, बाघ जनु मुँह बाइ ॥४॥
धर्म धेनु सुता जनक, हरि बाँधि करत सजाइ।
हाथ असि दशशीश कलियुग, चलेउ मारन धाइ ॥५॥
विषमतम स्थिति प्रकृति जब, लेत सकल बनाइ।
विघ्न पर जय देत जन तब, राम पठइ सहाइ ॥६॥
शब्द राम वियोग कहि रख प्रान, विरह हटाइ।
लहि वियोग न प्रान तज जेहि, राम जनि बिलखाइ ॥७॥

[१२]

देखत सिय के वेश सुरतिया।

हनूमान कहँ लगेउ साधना, प्रेम वियोग मुरतिया ॥१॥
बसन मलीन खीन तनु ऊपर, सूखि पड़ीं कछु पतिया।
बिखरे केश देश चहुँ लटकन, वेश लखत कोउ यतिया ॥२॥
चरनन चिह्न दृष्टि केन्द्रित जल, नयनन बह दिन रतिया।
घेरि जलद जनु जरत चन्द्र, बरसत जल तेहि दुइ पतिया ॥३॥
लेत उसास कबहुँ सो सूचत, हिय विरहाग्नि दहतिया।
अति आरत नित राम पुकारत, मन कर भेजत पतिया ॥४॥

कपि हिय राम बिलोकि प्रिया की, परमिति दशा पिरतिया[१]।
चौखि पड़े लछिमन पूँछत कह, छतिया बहुत पिरतिया[२] ॥५॥

[१३]

सिखवति सिय जिव जननि चलनवा।
जोग बिराग ज्ञान भक्ति तप, साधन सार गहनवा ॥१॥
त्राटक चरनन लखन एक टक, श्वासा नाम जपनवा।
रमन रूप गुन भाव निरन्तर, याही जोग करनवा ॥२॥
वैभव रावन सीम तीन गुन, तृन सम ताहि तजनवा।
रामहिं लखन केन्द्र सुख अपनो, वर वैराग्य लहनवा ॥३॥
अपनो प्रान राम ज्ञान, आचरन तासु विग्यनवा।
रूप माधुरी बसन मनन गुन, परा भक्ति कहिलनवा ॥४॥
सती भाव राम पिय सेवन, सहि दुख सकल जहनवा।
सो तप सिया पिया जीवित हित, अग्नि आपु पैठनवा ॥५॥
राम आचरन कर्म सिखावति, भव सागर उतरनवा।
सिय चरित्र जिव शिशु समुझावन, राम स्वरूप रमनवा ॥६॥

[१४]

सिय आदर्श भारती नारी।
सती धर्म हरि भक्ति एक सम, तेहि आदर्श पुजारी ॥१॥
प्रिय पितु गृह सासुरे त्यागि सुख, बन पिय संग सिधारी।
बन दुख मानत सुख पिय सँग सोउ, पिय आज्ञा तजि डारी ॥२॥
निश्चर करन सँहार राम जब, लीला हृदय बिचारी।
पिय वियोग कारन जानत, मारन मृग कनक पुकारी ॥३॥
रावन देत प्रलोभन अगनित, भय मारन तलवारी।
राम मिलन कहँ कहेउ असंभव, पतिव्रत तवहुँ न टारी ॥४॥
मृत्युहुँ अधिक होत दुख राखेउ, तन पिय हिय सुखकारी।
जीवनि अवधि एक मास सुनि, जीवनि लागेउ भारी ॥५॥
राम चरितं आदर्श पुरुष, सिय चरित भक्त• अरु नारी।
सीता के संयुक्त राम, आदर्श पूर्ण अवतारी ॥६॥

---

१. पिरतिया = प्रीति। २. पिरतिया = पीड़ा होना।

कपिन देखि गिरि बैठे सिय जस, नीचे बसन गिराई।
संशय कथा जयन्त नाम करुणानिधान विनसाई ॥५॥
पूर्ण भयो विश्वास दूत लखि राम सिया हरषाई।
मरत देत सन्देश सजीवन, हनुमत सिया जिलाई ॥६॥

[१८]

यह मुद्रिका मातु मैं लायेउ।
दूत अहौं करुणानिधान के, दै पहिचान पठायेउ ॥१॥
सत्य कथा तेहि महँ प्रसंग, अति गुह्य जयन्त सुनायेउ।
सिय कर नाम राम सम्बोधित, सोउ रहस्य कपि पायेउ ॥२॥
विश्वसनीय जानि अति कपि कहँ, मुँह जेहि राम लगायेउ।
चित्र लिखित कपि कहँ डरात जो, यह कपि भेउ मन भायेउ ॥३॥
हरि जन जानि पुनः पुनि पुलकत, नयन प्रेम जल छायेउ।
किय कृतज्ञता प्रकट कहत मोहिं, मरते तात जिलायेउ ॥४॥
कहहु तात भ्रात सँग तुम कहँ, कुशल कि नाथ लखायेउ।
कुशल सकल विधि अकुशल तुम विनु, कहते कपि विलखायेउ ॥५॥

[१९]

कहहु का पिय सिय भूलि गये।
अति कृपालु कोमल करुणाकर, कठिन कि मोहिं भये ॥१॥
भक्त मुनिन जो भाव सँवारत, तजि पितु राज दये।
पाँय पयादे तिन कहँ ढूँढ़त, अहि जनु मणि दुरये ॥२॥
मग नर नारिन दरस देन हित, रुक मग जनु थकये।
जो मृग देखत रुकत आपहूँ, खग बोलत चितये ॥३॥
मुनि तिय दुख सहि सकत न छिन, निज तिय दुख दिन बितये।
परम अभागिनि मोहिं पापिनि पिय, किहेउ स्वभाव नये ॥४॥
तुमहिं मिलन विक्षिप्त मिलत तरु, पूँछत हरि मृगये।
कह हरि सीते सीते कहते, खग तरु नित्य सुनये ॥५॥

अर्थ—हरि (=कपि) हनुमान जी ने कहा कि हरि (श्री राम) को नित्य सीते-सीते कहते सुन कर पंछी और बृक्ष नित्य सीते-सीते कहते हैं।

[२०]

कपि कब देखि सकब रघुराई।
उडुगन सुमन घटा सुजटा तर, मुख मयंक सुखदाई ॥१॥

नयन निहरिहैं ताप बुझइहैं, चन्दनि मुख मुसकाई।
बचन सुधा श्रवनन पिआइ मोहिं, लेहैं मरत जिआई ॥२॥
आयत उर दुराइ दोष, कटि केहरि मनहिं लुभाई।
करि कर भुजा मोहिं गहि रघुबर, लेहँइ हृदय लगाई ॥३॥
धरब शीश चरनन मोहिं लागे, मृग पीछे जे धाई।
चिह्न निरखि तलवा भुलवै, भलवा छेदन बिलगाई ॥४॥
तुम्ह तें प्रेम राम को दूनो, कहि कपि सुधि बिसराई।
कपि हिय राम व्यथा वियोग सिय, अपनी कथा सुनाई ॥५॥

[२१]

तुम बिनु भई दशा सुनु सिय रे।
तुमहिं देखि मैं भयेउँ राम पिय, प्रथम रहेउँ सिय तिय रे ॥१॥
अब मैं भयेउँ समर्थ कहन जस, परिणत स्थिति हिय रे।
नहिं तो किमि असत्य कहि सकिये, सत्य जो अनुभव जियरे ॥२॥
चन्द्र भानु किशलय कृशानु, निशि काल राति सित पियरे।
विकसित बिना बनज बन बरछा, बिकसित मृत्यू हिय रे ॥३॥
बारिद बूँद तप्त तेल, बर बायू श्वास अहिय रे।
हितकर भये अहितकर रस विष, बिनु तव अधर अमिय रे ॥४॥
आनँद सिन्धु खानि सुख कहियत, सुख न लखउँ निज नियरे।
प्रान बसत तुम पहँ शरीर तजि, ताप भयेउ हिय सियरे ॥५॥

[२२]

पिय सन्देश सुनत हरषानी।
सुख आकृति तन पुलक नयन जल, मुख नहिं आवै बानी ॥१॥
कह कपि माता हृदय धीर धरु, प्रभु प्रताप उर आनी।
कपिन सहित रघुबर आवन यहँ, मन महँ देर न जानी ॥२॥
राम लखन जब कोपिहैं रन महँ, निश्चर रह न निशानी।
कोटि कोटि कपि कोटि मिलइहैं, धूरि लंक रजधानी ॥३॥
असहनीय रावन सुनि बानी, जो मन महँ मैं ठानी।
आजु दिखइहौं राम दूत बल, बनिहै अमर कहानी ॥४॥
कपि निश्चय सुनि मातु हृदय, जानकी अनिष्ट डरानी।
कपि तन किहेउ बज्र मिस देखन, का कपि तुमहिं समानी ॥५॥

[२३]

स्तन मातु देखि सुत भरिगा ।

प्रकृति स्वामिनी सिया दुग्ध रस, भरि विटपन फर फरिगा ॥१॥
सुन्दर फरन देखि सुत हिरदय, अतिशय भूख उभरिगा ।
बाधा करत पात निश्चर दल, वेग पवन सुत झरिगा ॥२॥
नव पल्लव नव कुमुक निशाचर, कीश चपेट बिदरिगा ।
कोटिन योधा अक्षय संयुत, उपवन लंक उजरिगा ॥३॥
निज शिव रूप शिष्य रावन, उपदेश करन चित धरिगा ।
ज्ञान पोटरी बल बटोरि तब, ज्ञानिन अग्र पकरिगा ॥४॥

[२४]

सुशोभित रावन के दरबार ।

नाग पाश बँधि हनूमान जस, गरुड़ भुजङ्ग मझार ॥१॥
वैभव विपुल वीर जहँ बैठे, बल नहिं वारापार ।
अति विनीत दिक्पाल खड़े वहँ, बनि कर खिदमतगार ॥२॥
अति अशंक हनुमान राम बल, जेहि विश्वास अपार ।
रावन पूँछेउ चकित कौन केहि, बल बाटिका उजार ॥३॥
कहेउ करत बिधि सृष्टि पालते हरि, हर कर सँहार ।
जाके बल बल अनल अनिल यम, शेष धरत महि भार ॥४॥
जितेहु चराचर तुम लहि टुक बल, जेहि बल पूर्णागार ।
तासु दूत मैं पवन पूत, हनुमान विदित संसार ॥५॥

[२५]

तू रावन पुलस्ति कुल जायो ।

पिता पितामह ब्रह्म लीन तू, नरक मार्ग मन लायो ॥१॥
बैर किहेउ जेहि हरि लायेउ, तिनको तू मर्म न पायो ।
जगत जनक रघुनाथ जानकी, जगत जननि श्रुति गायो ॥२॥
जाको बल भण्डार सकल बल, जो जग चक्र नचायो ।
जाके भृकुटि विलास सृष्टि लय, तू तेहि प्रिया सतायो ॥३॥
सब कारण को अन्तिम कारण, प्राण को प्राण सुहायो ।
अपनेहू के आपन ते कस, मूरख बैर कमायो ॥४॥
खर दूषण बिचारि बालि गति, करइ जो तोहिं मन भायो ।
ब्रह्म शक्ति अवतरेउ दूत बिधि, शिव आयेउँ समुझायो ॥५॥

[२६]

सार्थक किहेउ नाम हनुमान ।
किहेउ परम पुरुषार्थ पूर्ण हनि, परम कठिन अभिमान ॥१॥
जड़ चेतन की ग्रन्थि अहम्मति, तोरेउ तिनक समान ।
राजाज्ञा मारत निश्चर जब, लागे नगर घुमान ॥२॥
मसलि सकै निश्चर कर हनुमत, योधा अति बलवान ।
राम काज लगि लात सहत सो, कोउ कि कर अनुमान ॥३॥
अहमिति परे चित्त बुधि मन तन, निज हरि लखिय न आन ।
हनूमान भे धनी रखत तन, रिनिया भे भगवान ॥४॥
सब उपकार राम दाम दै सक, सुख तीन जहान ।
यहि उपकार उरिन न निरख, अपनहुँ दै राम सुजान ॥५॥

[२७]

नगर घुमाइ घृत बसन जुटाइ, बहु जतन बनाइ पूँछ कपि के मढ़ाइ दी ।
ताहि अगिनि धरत वाहि देखि कै जरत, पाश कपि निकरत
पुनि बदन बढ़ाइ दी ॥
देखि सब भय पायो कूदि महलन धायो, जरत ढहायो गहि
निश्चर चढ़ाइ दी ।
गति पवन लजायो नहिं दृष्टि ठहरायो, रूप बानर बनायो
कोइ देवन दृढ़ाइ दी ॥

[२८]

निश्चर अभागे भागे कोइ जागे अध जागे, कोट गृह अग्नि लागे
पाइ वायु भड़की ।
ऐसे बेतहाशे देखि गिरत लहाशे, सब बनिगे तमाशे सँग
लड़का न लड़की ॥
लौर आसमान सब भौन भासमान, लंक देखि स्मसान हनुमान
गर्ज कड़की ।
आकुलऽति दससीस चलत न भुज बीस, हिय देखि कृत्य कीस
धड़ धड़ धड़की ॥

[२९]

मुनि सुत पूँछि अग्नि भय माता ।
विरह अग्नि मोहिं वारि जो सींचेउ, सीझन चहत विधाता ॥१॥

पुनि प्रचण्ड लखि अग्नि लंक पर, सुबरन अति चमकाता।
बिबरन भयेउ मातु आकृति, जो पिय सुधि रहेउ सुहाता ॥२॥
निज ऐश्वर्य छिपाइ रखेउ, दुख रावन देत सहाता।
सुत सनेह सक सो सम्हारि नहिं, बरबस भेउ प्रकटाता ॥३॥
भयेउ अग्नि प्रलयाग्नि लंक हित, हिम कपि सुत सुखदाता।
भस्म भयेउ सुवर्ण लंक, कपि अग्नि घुसत हरषाता ॥४॥
लँक जराइ बुझाइ पूँछि, लखि सिय भे शीतल गाता।
माता सुत सन्तुष्टि वृष्टि किय, सिय सुभाव सुत त्राता ॥५॥

[३०]

अब चाहउँ मैं मातु बिदाई।
जेहि सँदेश लहि वेगि कटक संग, नाथ पहुँच यहँ आई ॥१॥
दीजै कोउ पहिचान आपनो, दै जिमि नाथ पठाई।
धरनि सुता धीरज धरि चूड़ामणि उतारि पकराई ॥२॥
कृपासिन्धु आरत सुबन्धु, करुणाकर कहेउ बुझाई।
वेगि न अइहैं तौ पछितइहैं, जियत न निज सिय पाई ॥३॥
जाकी केवल एक लालसा, तन बच मन सेवकाई।
तेहि दासी सों उदासीनता, बाढ़त विरद बुड़ाई ॥४॥
कहन चहेउ कछु अनि सँदेश, पर कहत गयेउ अकुलाई।
हनूमान समुझाइ चले करि, कठिन हृदय शिर नाई ॥५॥

[३१]

दुइ अपराध नाथ किधौं मानी।
एक कहे कटु बचन लखन, दूजो न त्रियोग नसानी ॥१॥
कुसमय सो कटु बचन कहायेउ, कबहुँ न जो उर आनी।
सरल सुभाव लाल बिसरइहैं, सदा मातु मोहिं जानी ॥२॥
प्रभु वियोग नहिं प्रान तजेउँ, प्रभु निरखि न कबहुँ अघानी।
पुनः मिलन लालसा रखेउँ तनु, दुख जेहि तनु तज प्रानी ॥३॥
आशा मिलन भये धूमिल, तनु त्यागन मन महँ ठानी।
माँगत रहेउँ अग्नि तात सो, नाथहिं कहवि बखानी ॥४॥
मोहिं बिनु जिअहिं न नाथ, नाथ बिनु, कोउ न अवध रजधानी।
मृत्यु मुक्ति ते सतत भक्ति प्रिय, नाथ जियेउँ समुझानी ॥५॥

[३२]

कह कपि यह दोउ बात न माता ।

ब्याकुल खोजत राम दिवस निशि, गुन समूह तब माता ॥१॥
तोहिं अकेल बन छोड़न लछिमन, पछिताते दिन राता ।
तन ते निशि दिन राम सम्हारत, मन निज तव पद राता ॥२॥
करत न दृष्टि वृष्टि धन कुसुमित बन सर बर बन-जाता ।
तुम बिनु रामहिं राम निरखि लछिमन, पल जुग सम जाता ॥३॥
शशि लखि बिलखि त्रिविध बायू छुइ, सीदत ढाँकत गाता ।
करि केहरि नागिनि खंजन मृग, मिस स्वरूप तव गाता ॥४॥
घुमची कमल बटोरत कबहूँ, सुमन सुकोमल पाता ।
करब श्रंगार तुमहिं ढूंढ़त, बिलपात गिरत नहिं पाता ॥५॥

[३३]

कपि जनि कहेउ पिय सों जाय ।

सिन्धु करुणा बन्धु आरत, दुखी जन के घाय ॥१॥
बनहिं आकुल विरह ब्याकुल, गयेउ नारि चुराय ।
एतेहुँ पर मम दशा सुनि कहुँ, चल न प्रान गवाँय ॥२॥
सान्त्वना दै वन्दना कै, चलेउ आयसु पाय ।
प्रेम सिय को लखि अलौकिक, हर्ष हिय न समाय ॥३॥
पातिव्रत अरु प्रेम भक्ती, आय अवसर पाय ।
गहिन सिय पद कहिन तीनउ, भइन सच यहि ठाँय ॥४॥

[३४]

थोरेहिं कहेउ दशा जनाइ ।

सुनि सविस्तर मोर दुख पिय, सहि न कबहुँ सकाइ ॥१॥
दीनबन्धु दयालु रघुवर, करुण सहज सुभाइ ।
आर्त जन के सुनि सुमिरि दुख, जात अतिहिं दुखाइ ॥२॥
कहेउ इतना अवशि दिन निशि, मन बचन अरु काइ ।
जाहि एक तुम्हार गति, सिय सति सो जनि बिसराइ ॥३॥
कहत इतना भइ विकल जिमि, गुडी नभ बिनु बाइ ।
वायु सुत दिअ आयु वायु, प्रसंग राम चलाइ ॥४॥
बिदा आयसु लहि अशीश, कपीश अति हर्षाइ ।
चलेउ गर्जि प्रचण्ड ध्वनि, निशचरनि गर्भ गिराइ ॥५॥

[३५]

जाम्बवान रघुनाथ सुनायो ।

हनूमान जिमि कूदि सिन्धु, सीता कर खोज लगायो ॥१॥
रावन बाग उजारि मारि बहु, सुभटन लंक जलायो ।
दै सन्देश सान्त्वना सीता, कुशल कूदि लौटायो ॥२॥
हर्षित अति कृतज्ञ रघुनायक, हनुमत हिय लिपटायो ।
पूँछत रहत जानकी किमि, विरहागिनि जरत बतायो ॥३॥
रटत रहत तव नाम निरन्तर, निज पद दृष्टि जमायो ।
रावन बरन भयंकर निशचरि, समुझावत डरवायो ॥४॥
प्रबल प्रलोभन त्रास रावना, सब विधि निफल बनायो ।
विरह सतीत्व लालसा दर्शन, मिलि एक रूप बनायो ॥५॥
दंड सती व्रत मरत न विराहगिनि, तव दरस लुभायो ।
आरत हरन मरन विलम्ब नहिं, चलन जो देर लगायो ॥६॥

[३६]

मुनि सिय विपति, विकल पिय भारी ।

धीर धुरन्धर धीरज त्यागेउ, भयेउ मीन बिनु वारी ॥१॥
राम विकलता विकल लखन, सुग्रीव कटक कपि झारी ।
मनहुँ बिहँग बन गिरेउ उपल, जल शीतल प्रथम सँचारी ॥२॥
कह हनुमान धरहु धीरज प्रभु, प्रभुता बान बिचारी ।
कहँ प्रभु सायक रवि प्रकाश कहँ, तिमिर निशाचर धारी ॥३॥
निज स्वरूप रघुनाथ सम्हारेउ, कहेउ विषाद विसारी ।
तव सेवा न तुल्य त्रिभुवन लखि, रिनियाँ भयेउँ तुम्हारी ॥४॥
पाहि पाहि कहि गिरेउ पवन सुत, पावन चरन खरारी ।
प्रभु कर पँकज कपि शिर फ़ेरत, मगन ध्यान त्रिपुरारी ॥५॥

[३७]

करतब कछु न मोर रघुराई ।

तव मुद्रिका समुद्र कुदाई, चूड़ामणि लौटाई ॥१॥
तव बल किय निश्चर सँहार, लंका सिय ताप जराई ।
सब सामर्थ्य केन्द्र राम किमि, मानउँ निज प्रभुताई ॥२॥
जाकर मूल्य नहीं त्रिभुवन तव, भक्ति परम सुखदाई ।
सोइ अनन्य गति देहु सियावर, अन्य न हम ललचाई ॥३॥

एवमस्तु रघुनाथ कहेउ, शिव हाथ सनद लिखवाई।
यह संवाद रहस्य जानि जिव, राम भक्ति सब पाई ॥४॥
करै कर्म अभिमान त्याग, त्रिभुवन सुख भक्ति बढ़ाई।
लख परमोत्कृष्ट भक्ति लह, राम चरन शरनाई ॥५॥

[३८]

पायेउँ पायेउँ जनम फल पायेउँ।
राम काज मन लाइ करत सब, सुकृतिन अग्र गनायेउँ ॥१॥
अजर अमर गुणनिधि बर पायेउँ, स्वामिनि स्वामि सुहायेउँ।
भयेउँ प्रेम पात्र दोऊ मुख, सुत प्रिय बचन कहायेउँ ॥२॥
भयेउ सिद्ध बर अमर जरेउँ नहिं, सुबरन लंक जरायेउँ।
गुणनिधि लखेउँ रिनी त्रिभुवन पति, धनी गयेउँ बतलायेउँ ॥३॥
शीश हाथ रघुनाथ कृपा-पात्रन शिरमौर जनायेउँ।
बरजोरी मोहिं हृदय लगायेउ, तब जानेउँ अपनायेउँ ॥४॥
अनपायनी भक्ति वर पायेउँ, आनँद सिन्धु समायेउँ।
शिव स्वरूप उपलब्ध न जो सुख, बानर रूप लहायेउँ ॥५॥

[३९]

जब कीन्हो कपि कटक पयानो।
डगमगानि महि दिग्गज डोले, नभ रवि धूरि छिपानो ॥१॥
बनचर भागे सुर भय त्यागे, लागे लखन विमानो।
बहु कपि कूदि चले जनु पंखन, राम प्रताप उड़ानो ॥२॥
हनूमान अंगद मयन्द नल, नील द्विविद बलवानो।
इन सम अगनित योधा दल महँ, बल जिन नहिं परमानो ॥३॥
अति उत्साह थाह नहिं इनकी, लड़न चाह कि बखानो।
बल भुज वीर्य दन्त कीसन पीसन चह निश्चर मानो ॥४॥
हनूमान काँधे रघुनायक, अंगद लखन चढ़ानो।
जीतन जग रिपु यह वपु मूरति, सूरति रखत सयानो ॥५॥

[४०]

लंका लोग सशकित भारी।
सुभटन हति अकेल कपि देखत, रावन लंका जारी ॥१॥
बल बोरता देखि हनुमत की, सब गे हिम्मत हारी।
हनूमान गर्जन प्रचण्ड सुनि, स्रवहिं गर्भ रिपु नारी ॥२॥

रावन सुनेउ पार सिंधु वहि, आइ गई कपि धारी ।
राम लखन सँग उत्सुक रन रँग, जँग सक शक्र पछारी ॥३॥
सचिवन पूँछन लगेउ, विभीषन निज मति कहेउ विचारी ।
नाथ त्रिलोकी नाथ राम, तिन सन का बैर हमारी ॥४॥
आत्म अभिराम वाम हूँ दाहिन, शोभा धाम खरारी ।
दै सीता तेहि सन्धि करिअ, पद बन्दि प्रणत हितकारी ॥५॥
सुनि रावन पद हनेउ गनेउ, कारज रिपु चहत सँवारी ।
चलेउ विभीषन सँग सचिवन जहँ, शरणागत भय हारी ॥६॥

[४१]

चलेउ राम पहँ हर्षि विभीषन ।
तप साधन स्वाध्याय ज्ञान होइ, पुर परिवार विरति मति तीक्षन ॥१॥
बहु लालसा राम दर्शन पर, तजेउ न भ्रात नीति अनुशासन ।
पद प्रहार भ्राता के लागे, अब बनि गयेउ विभीषन जस मन ॥२॥
जो पद पंकज अज सुरसरि, जो नासत पाप कैसहू भीषन ।
जेहि रज कारन भा तारन तिय, मुनि जो रही परम अघ भाजन ॥३॥
शिव पूजत पादुका भरत हिय, धरत जानकी गनि जीवन धन ।
सोइ पद आज निरखि नयनन भरि, हौंहुँ गनइहौं परम सुकृतिगन ॥४॥
तामस तनु परियाप्त प्रीति नहिं, किमि अपनइहैं राम जानि जन ।
पद प्रकाश तम मिटेउ जान नहिं, करत राम निज किये समर्पन ॥५॥

[४२]

तुमहीं एक आश्रय रघुराई ।
अस जिय जानि दयालु शिरोमनि, मैं आयेउँ शरनाई ॥१॥
प्रबल प्रतापी रावन रिपु, त्रिभुवन न अन्य रखि पाई ।
मैं तापर तामस तनु निश्चर, जिन मारन ठहराई ॥२॥
तव अपराधी रिपु रावन मैं, छोट सहोदर भाई ।
काम क्रोध मद लोभ मोह हिय, प्रीति न तव पद आई ॥३॥
भक्तवछलता जौ निज पन नृपनय से रुचि अधिकाई ।
तौ मोहिं दीन शरन राखउ तुम, दीन बन्धु श्रुति गाई ॥४॥
तुम नागर भव सागर खेवन, नौका निकट बुड़ाई ।
पार करहु आगार कृपा गुन, कहत न शेष सिराई ॥५॥

[४३]

रावन बन्धु विभीषन आयो ।

समाचार यह पाइ कपीश्वर, रघुपति आइ सुनायो ॥१॥
पूँछत राम करन का चाहिअ, मति सुग्रीव बतायो ।
मोहिं लखिं परत डरत रावन चह, धोखा काज बनायो ॥२॥
करत प्रतीत कनक मृग निश्चर, मिटत नहीं पछितायो ।
या तें राखिअ बाँधि विभीषन, मोहिं नीति यह भायो ॥३॥
हनुमत कहेउ कि आयेउ शरनागत सुनि विरद सुहायो ।
लखन कहेउ शरन्य अन्य सक, रावन रिपु कि बचायो ॥४॥
कहेउ राम सनमुख मोहिं आवत, जिव अघ सकल नसायो ।
मोर अंश जिव शरण लिहे बिनु, बिरदावलि बिनसायो ॥५॥
कहत विभीषन पाहि पाहि, हिय चाहि चाहि लिपटायो ।
विधि विरचेउ न जीव शरनागत, पात्र राम नहिं पायो ॥६॥

[४४]

मन अस करइ राम शरनाई ।

बिनु पंखन शिशु करत बिहँग जस, बछड़ा धेनु लवाई ॥१॥
रहत लोक यहि जात लोक पर, रामहिं निर्भरताई ।
जो स्वतन्त्र सर्वत्र सत्य, समरथ सर्वज्ञ सदाई ॥२॥
आपन करि कुछ राखइ नाहीं, तन मन बुधि समुदाई ।
अहं समर्पण किहे राम कहँ, आपु राम होइ जाई ॥३॥
जिव पुरुषार्थ प्रथम ज़ीना यह, अन्तिम इहै गनाई ।
साधन अनि न अपेक्षित, शरनागति पूरन प्रभुताई ॥४॥
स्वामी राम जीव सेवक, अस सृष्टि प्रवाह उपाई ।
निज न्योछावर किये राम कर, शरनागत सेवकाई ॥५॥
हित सुग्रीव बालि मारत, रावन पद पारत भाई ।
जगन्नाथ दास शौचावत, पहरा देत गुसाँई ॥६॥

[४५]

दूरिहिं ते देखे दोउ भाई ।

शशि चकोर मन, नयन मोर घन, स्वाति पपीहा पाई ॥१॥
आगे बढ़त दृष्टि केन्द्रित भइ, जब स्वरूप रघुराई ।
स्तम्भित एकटकँ निरखन लग, तन सुधि बुधि बिसराई ॥२॥

पाहि पाहि कहि परन चहेउ दण्डवत, न सकेउ गिराई।
भुज प्रलम्ब करि नहिं विलम्ब गहि, हिय लिय राम लगाई ॥३॥
पुनि समीप बैठारि कुशल पूँछेउ, तेहि बचन न आई।
कहेउ धीर धरि नयन नीर भरि, कुशल नाथ अपनाई ॥४॥
अति आरत प्रभु ताहि निहारत, बचन कहे सुखदाई।
जन तुम सम केवल मिलने हम, आवहिं धाम बिहाई ॥५॥

[४६]

नाथ भयेउ अचरज मोहिं भारी।
नारद नारि निवारि कण्ठ तेहि, क्यों सुकण्ठ के डारी ॥१॥
त्यागि विभीषन वैभव नारी, आयेउ शरन तुम्हारी।
तेहि का जानि राज्य नारी बहु, देत न हानि बिचारी ॥२॥
नरक द्वार नारि सेवत किमि, राम धाम पैठारी।
प्रश्न होत हिय अन्तर्यामी, संशय राम निवारी ॥३॥
नारद हिय न नारि कामना, मद भेउ मदन पछारी।
निज माया टुक देरि प्रेरि हिय, जन तरु गर्व उपारी ॥४॥
दोउ सुग्रीव विभीषन हिय रुचि, राज्य नारि दृढ़ धारी।
तिन बासना पुराइ प्रेम निज बल, दुराइ भय टारी ॥५॥
जो गति संत अंत लहि पावत, जग वियोग तजि नारी।
संगत नारि राज तेहि पंगत, जो बिठाव बलिहारी ॥६॥

[४७]

रवि कुल रवि हिय राम बसै।
काम क्रोध तम प्रिय उलूक, लखि ज्ञान प्रकाश खसै ॥१॥
सुमति तड़ाग कमल सद्गुन सब, बिन प्रयास विकसै।
गुन्जारै मन मधुप राम रवि, यश पी प्रेम रसै ॥२॥
प्रबल विवेक प्रकाश अविद्या, तम आपुहिं बिनसै।
माया मोह घोंसला सोवत, जगि जिव खग निकसै ॥३॥
विविध साधना हरि अराधना, दाना बिहँग ग्रसै।
पाइ प्रकाश लखत चेतन जड़, ग्रन्थि न जाल फँसै ॥४॥
संसृति विष भव सुख भुअंग, वासना न दन्त डसै।
जिव युवती लहि राम अमर बर, नित्य विहार हँसै ॥५॥

अन्तर्यामी होइ प्रत्यक्ष जब, उर मन्दिर निवसै।
बेलि विभीषन मन शरनागत, चढ़ि तरु राम लसै ॥६॥

[४८]

विरद गरीब निवाज लखाई।
राज विभीषन राम दीन बिनु रावन हते लड़ाई ॥१॥
श्री विहीन अति दीन विभीषन, रावन लंक भगाई।
भयेउ पात्र रघुनाथ कृपा, बिनु चाहे नृपति बनाई ॥२॥
रावन मारि विभीषन देते, लंक राज न बुराई।
प्रणत दुःख प्रणतारत भंजन, राम नहीं सहि पाई ॥३॥
निज ईशत्व प्रभुत्व राम, छिपवत करि विविध उपाई।
लखि सुग्रीव विभीषन जन दुख, सो प्रकटेउ बरिआई ॥४॥
कहि लंकेश प्रथम संबोधेउ, लखि सन्तोष न आई।
सिन्धु नीर राज्याभिषेक किय, प्रणतपाल रघुराई ॥५॥

[४९]

जलचर तारन चह रघुराई।
तिन तारन जलनिधि दुख टारन, कारन रचेउ उपाई ॥१॥
रामाश्रित हनुमान देन, विश्राम सिन्धु हिय आई।
देन परम विश्राम सिन्धु आश्रित हरि प्रश्न उठाई ॥२॥
संकुल मकर उरग दुस्तर अति, केहि विधि उतरिय भाई।
कहेउ विभीषन सकउ सोखि सर, विनय करउ पर ज्याई ॥३॥
लखन जानि बानि राम अरु, नहिं विलम्ब सहि पाई।
कहेउ नाथ सोखिये सिन्धु सर, पावक धनुष चढ़ाई ॥४॥
बिनु अपराध सिन्धु ताड़न तजि, मंत्र तासु अपनाई।
हित मत देत तजेउ रावन जेहि कहि जा राम बताई ॥५॥
यहि प्रथमहिं मति मानि विभीषन, पुनि किय लखन सुहाई।
उठेउ उदधि उर ज्वाल जन्तु, उबरे हरि दरस लहाई ॥६॥
सुखी सिन्धु नसि अघी उतर तट, राम जानि प्रभुताई।
राम नेह जिवँ दिय प्रसंग यह, भव सागर उतराई ॥७॥

[५०]

गुन सिय राम जीव हितकारी।
आनँद मंगल भवन शमन संशय, विषाद भय हारी ॥१॥

संसृति हरन अमंगल, सँग नित मंगल राम बिहारी।
मूल अविद्या मेटत दुख, आनन्द स्वरूप सम्हारी ।।२।।
राम प्रताप प्रभुत्व बिलोकत, पद रज मुनि तिय तारी।
शिव ब्रह्मा पद सेब्य लखन मन, संशय ब्रह्म निकारी ।।३।।
कृपा अहेतुक लखत जीव, थलचर जलचर नभचारी।
गीध सिन्धु निश्चर निषाद कपि, चिह्न बिषाद बिगारी ।।४।।
गति जटायु सुग्रीव विभीषन, शबरी बालि निहारी।
रामँ बानि बान सोखन भव सिन्धु, जीव भय टारी ।।५।।

□ □

॥ राम ॥

श्री रामचरितमानस पदावली

सुन्दर काण्ड

(सत्संग प्रकरण)

॥ राम ॥

[१]

अद्‌भुत लखिय नेह की नात ।

सुखद दुखद अरु दुखद सुखद कर, बिरह मिलन की बात ॥१॥
शरद चन्द सुमनोहर यामिनि, बहत त्रिविध बर बात ।
प्रिय के संग सकल सुख दायक, तेइ प्रिय विरह दुखात ॥२॥
सुनेउँ सीय कपि लगत भयानक, चित्रहुँ देखि डेरात ।
वाहक प्रिय सन्देश भयंकर, लखि हनुमत हरषात ॥३॥
जो कोउ करै प्रशंसा प्रिय की, सोई मनहिं सोहात ।
प्रिय की जो अपवाद सगउ कर, शत्रु स्वरूप लखात ॥४॥
जेहि प्रभाव सुख होत दुःख सम, दुख सुख महँ परिणात ।
प्रेम सो राम सीय अनुपम सुनि, उसरहुँ हिय हुलसात ॥५॥
आनन कुमुद निरखि दुख प्रिय की, चन्द रजनि मुरझात ।
प्रिय मुख चन्द्र लखनि चकोर ज्यों, दिनहिं बनावत रात ॥६॥
नाता सब हाता करि राखत, मानत नेइ सु-नात ।
सीय नाह को नेह रीति भल, मन नहिं सुमिरि अघात ॥७॥

[२]

पुनि पुनि प्रनवउँ पवन कुमार ।

भक्ति देइ दर्शनउ दिवावत, सिय रघुबर सुखसार ॥१॥
बनि बोहित प्रगटत जन बूड़त, दुख समुद्र मझदार ।
राम जनन के संकट मोचन, तुम हौ परम अधार ॥२॥
आर्ति हरन श्री राम धारते, नित धनु बान सम्हार ।
तव हिय बैठि गये सोऊ धरि धरि तुम्हरे सिर भार ॥३॥
जासु कर्म अवलोकत पुलकत, रघुपति बारम्बार ।
जेहि यश वर्णत राम तथा सुनि, हर्षित दोउ सरकार ॥४॥
राम चरित सुनिवे तक जाको, जीवन है दरकार ।
हाथ सजीवन माथ धरे किमि, भव रुज रहूँ बिमार ॥५॥
सद्‌गुन सकल बसत जाके हिय, जो करुणा आगार ।
दीन होत जो दीन न बनि सक, ऐसे हमहिं उधार ॥६॥
जा की सेवा, वश त्रिभुवनपति, रिनियाँ सब परिवार ।
जन्म दिवस निज धनी भीख दे, राम सिया दीदार ॥७॥

[३]

अति लालसा लखन पद चिह्निया ।

तीन लोक नहिं रामहुँ तनु अनि, रमइ चित जहँ सीता रनिया ॥१॥
आभूषन साजत सुख राजत, राम रूप उपयुक्त न गनिया ।
माया मृग पाछे धावत लखि, धरै ध्यान मानि निज धनिया ॥२॥
राम ध्यान महँ सर्व श्रेष्ट गुनि, दियो गीध तेहि की वलिदनिया ।
जाके ध्यान आप्तकाम होइ, गयो धाम राम की कनिया ॥३॥
अंकुश कुलिश कमल ध्वज आदिक, चौबीसों अवतारन दनिया ।
तिन्ह महँ कमल जनक रघुबर चुनि, भइ तेहि अलिनि
जनक लड़किनिया ॥४॥
राम वियोग बैठि पद्मासन, निज पद चिह्न पद राम लखनिया ।
राम विरह जेहि दिहेउ प्रान पद राम समान प्रमान कहनिया ॥५॥

[४]

पूछति शिवा शिवहिं शिर नाई ।

सुन्दर काण्ड प्रसङ्ग कहत एक, रहेउ कहाँ बिलमाई ॥१॥
जन्म उछाह विवाह कहत हूँ, दशा न यह दिखलाई ।
रोमावलि भइ ठाढ़ि बाढ़ि जल, नयनन्हि तें टपकाई ॥२॥
चित कहुँ अटकि देह सुधि बिसरेउ, रुकि गेउ कथा सुहाई ।
जन्म जन्म ते ढूँढ़त जिव जिमि, निज निधि कतहूँ पाई ॥३॥
कह शिव हनूमान रूप मैं, सीता मातु रिझाई ।
होइ प्रसन्न मोहिं सुत कह सो सुधि, पाइ गये रघुराई ॥४॥
लौटि प्रबर्षन गिरि नाथहिं सों, सिय सुधि जबहिं जनाई ।
गिरे चरन मोहिं लिय उठाइ प्रभु, हिरदय ते लिपटाई ॥५॥
पुनि बैठाइ गोद मोद भरि, सुत कह सबहि सुनाई ।
शिर धरि हाथ माथ मम सूँघेउ, प्रेम अश्रु अन्हवाई ॥६॥
यह आनन्द सकल आनँद रस, लहि तन सुरति गवाँई ।
सुख सुत जीव गोद ब्रह्म पितु, लाड़ ते का अधिकाई ॥७॥

[५]

बनब नहिं राम, बनाब सिया ।

कहुँ निज भूलि राम केवल कहुँ, भजत राम रसिया ॥१॥
नैहर ससुरे निजानन्द, जग लंक विभव तजिया ।
संकट प्रकट विश्व दारुन दुख, राम न बिसर हिया ॥२॥

राम ब्याह ग्रन्थि खोलेउ, जड़ चेतन ग्रन्थि जिया।
राम नाम शाश्वत निवास हिय, जिमि बर नाम तिया ॥३॥
चित्त सेज नित राम विराजत, देत न मन सखिया।
दरस प्रत्यक्ष हेतु तरसत नित, बरसत जल अँखिया ॥४॥
निज साधन न मिलै स्थिति बन, द्रवै जो राम प्रिया।
सीता प्रेम तत्व बर्णत सुनि, हर्षित सुलभ किया ॥५॥

[६]

अब कब मिलिहौ मोहिं रघुराई।
पौरुष गयो बुद्धि मन तन ते, दृष्टि होत कम जाई ॥१॥
अन्तिम शयन नयन बिनु देखन, मो पहँ किमि बनि पाई।
बिनु तव दया कर्म चौरासी लक्ष योनि भरमाई ॥२॥
जानत हौं तुम मिलत लखत, आकुलता अति अधिकाई।
मोहिं सो होइ देइ नहिं सम्भव, तव माया प्रभुताई ॥३॥
करुणा सिन्धु बन्धु आरत जन सब समर्थ श्रुति गाई।
मम जोगिता हरुअता हरु निज, गरुता बिरद बढ़ाई ॥४॥

[७]

बजत हिय बन्शी शब्द भरे।
सीता सीता करत राम हिय, सीता राम करे ॥१॥
बाहर पड़त सुनाई जब वह, उमँगि आव अधरे।
प्रेम मधुर आकुल तरंग तेहि, सुनत न मन ठहरे ॥२॥
भरेउ वायु मण्डल बन सीता, राम लंक सगरे।
बन महँ मृग खग मीन शिला तरु, निश्चर लंक तरे ॥३॥
सीता नाम विमल मति दायक, जड़हूँ कान परे।
राम नाम कर पावन परम, अपावन पाप जरे ॥४॥
राम नाम काशी सुनि शिव, सिय सुनत लंक उवरे।
सीता संग राम जपि जिव जग, माया होत परे ॥५॥

[८]

साकार राम हिय हनूमान।
अन्तर्यामी नित निराकार, हिय जीव विराजत निर्विकार।
चेष्टा उपजत जिव तेहि अधार, जेहि रहत जीव जग सुख भिखार॥
निज हृदय करत कोउ अनुमान ॥१॥

सिय सहित राम हिय भरत लाल, तेहि कहेउ शारदा गल न दाल ।
जब विनयेउ वाणी करन जाल, सुरपति लहि दरसन भेउ निहाल ॥
भरतउ न निरखि कह देन प्रान ॥२॥
रावन सुत मारेउ विषम तीर, गिरि भे मूर्छित तब लखन बीर ।
सुधि भये पूँछ सब कहाँ पीर, कह घाव मोहि दुख राम धीर ॥
सँग तजन राम आज्ञा न मान ॥३॥
अनुमान विभीषन किहेउ राम, कपि विप्र गये जब तासु धाम ।
आये हो करने आप्तकाम, अस कहि पूँछेउ हनुमान नाम ॥
दोउ लहेउ परम विश्राम दान ॥४॥
सिय जाना चाहति राम प्रेम, बिछुड़े जब ते मृग लहन हेम ।
मम बिनु कस निबहत कुशल छेम, हनुमान बुद्धि भइ बुझत टेम ॥
उर ते बोले रघुबर सुजान ॥५॥
कह भरत न जिय की जरनि जाइ, बिनु दर्शन रघुबर चरन पाई ॥
हनुमान दरस लहि दुख नसाइ, भे हर्षित जनु रामहिं मिलाइ ॥
कपि हृदय राम मिलि दुख नसान ॥६॥
सब गये राम सँग राम धाम, बिनु राम न काहू जगत काम ।
हिय बसत राम लोकाभिराम, हनुमान गयो नहिं संग राम ॥
हिय राम किहेउ तुलसी बखान ॥७॥

[९]

साधन सफल जगत मैं जानी ।
राम नाम कर जाप निरन्तर, ध्यान हृदय धनुपानी ॥१॥
अर्थ स्वभाव नाम नामी कर, गुन प्रताप उर आनी ।
कनककशिपु प्रहलाद अभय, हनुमत रावन रजधानी ॥२॥
अग्नि भानु चन्द्रमा बीज हर हरि बिधि मय अनुमानी ।
वेद प्रान अरु विरति ज्ञार्न, हरि भक्ति नाम बरदानी ॥३॥
नामी राम समर्थ सुसाहिब, स्वार्थ रहित बल खानी ।
विश्वरूप व्यापक सुजान, जन रक्षक तन मन बानी ॥४॥
हनूमान प्रहलाद साधना रत मन तजु हैरानी ।
उत्पति पालन प्रलय करन करतलगत अपने मानी ॥५॥

[१०]

जिव निज थापइ राम नाम अस ।
आपु आपुनो जहँ लगि जानइ, मानइ राम नाम कहँ सरबस ॥१॥

पिता दत्त गुरु दत्त नाम, तन मन सूचक रहि द्वैत अहै बस ।
राम नाम महँ स्थापन विज्ञापन निज स्वरूप एक रस ॥२॥
सकल तेज बल बीज अग्नि "र", प्राण बीज "ा" भानु लखिअ तस ।
शीतलता बिश्राम बीज "म", शशि अमृत लहि मृत्यु न दहि ग्रस ॥३॥
परे प्रकृति सूक्षम स्वरूप लहि, माया जाल सकइ न कबहुँ फँस ।
आनँद सिन्धु वारि सुख तैरै, दुख कंटक सड़ि गिरे न रहि धँस ॥४॥
नामी नाम अभेद होत, जो नाम अभेद, भेद नामी कस ।
राम ब्रह्म जिव अंश राम भे, कहहिं राम नाम निज साबस ॥५॥

[११]

मन सिखु सनमुख राम रहाई ।
सुहृद सुस्वामि राम तव ँग नित, सनमुख इमि होइ पाई ॥१॥
चित्त बहिर्मुख दृश्य मात्र, देखिअ स्वरूप रघुराई ।
नाना रूप अनेक चेष्टा, त्रैगुन प्रकृति दिखाई ॥२॥
चेतन शक्ति प्रकृति जड़ भीतर, पुष्पन जिमि महकाई ।
निरखु ताहि बल जासु आचरत, कर्म सुखद दुखदाई ॥३॥
कर्म विषम सम नाट्य लखिअ हरि, इन्द्रजाल न सचाई ।
रूप अनेकन छिपे राम लखि, हर्षि करै सेवकाई ॥४॥
चिन्तन करइ राम रूप नित, नाम जपै गुन गाई ।
अनुभव करै समक्ष राम बृति, अन्तर्मुख जहँ जाई ॥५॥
राम कृपा सुसहाय राम जब, वृत्ति सकल मिटि जाई ।
चितवत चेतन राम रूप निज, जीव होइ सुलभाई ॥६॥

[१२]

जिव नित सनमुख राम रहो ।
सुरति मीन बनि चढ़ो निरन्तर, भव न प्रवाह बहो ॥१॥
प्रबल प्रवाह बहावै नीचे, अड़ी नाम गहो ।
शीतल वायु कृपा रघुनायक, लहि न त्रिताप दहो ॥२॥
मिलन प्रतीक्षा करत तितीक्षा, दुख हिम उपल सहो ।
पकरि आस तोरउ आकर्षन, जग चारो न चहो ॥३॥
आनँद सिन्धु शान्ति शीतल पद, राम बिराम लहो ।
मछुआ काल न गम्य रम्य पद, को न निहाल कहो ॥४॥

[१३]

रघुबर मोहिं शरन किन लीजै ।
भव बारिधि विप्लव तव पद प्लव, तेहि मोहिं आश्रय दीजै ॥१॥
करुणासिन्धु दीन बन्धु मोहिं, डूबत देखि पसीजै ।
तुम शरण्य मेरे वरण्य, शरणागत मोहैं कीजै ॥२॥
मोहिं दीन के एक अधार तुम, आयेउँ पहुँचि नतीजै ।
राम सुजान ताहि लौटाइअ, जेहि साहिब दुइ तीजै ॥३॥
तव चरित्र मानस मराल किमि, भव खारो जल पीजै ।
मधुर नेह जल दरस अमिय डल, प्याइअ नित जन जीजै ॥४॥

[१४]

मैं को रहिउँ भुलाइ गइउँ बतिया ।
निरावरन मोहिं निराकार पिय, जबहिं लगायेउ छतिया ॥१॥
माता पिता सहोदर पुरजन, परिजन आपन जतिया ।
भूलेउँ जग जुग परे पवन जब, श्वास जपत भइ गतिया ॥२॥
दृश्य थहावत हरि बर पावत, जग भइ बिदा बरतिया ।
आनँद सेज गोद पिय सोवत, होइ चल द्वैत विरतिया ॥३॥
बरनत राम सुभाव विभीषन, लेते शरनागतिया ।
राम बानि चित चुभेउ लहेउँ यह, अनुभव पछली रतिया ॥४॥
सुनत गुनत गुन राम उपज, अनुराग राम जब मतिया ।
उपर्युक्त अनुभवै सुहागिन, मति जीवत पति सतिया ॥५॥

[१५]

बदलब अहमिति अन्तर्यामी ।
हम हमार रूप नाम तजि, होइबै पूरन-कामी ॥१॥
अन्तर्यामी बनइ सगुन साकार रूप निज स्वामी ।
तव मैं अहं अवस्था अइहउँ, भक्ति भाव उर जामी ॥२॥
रहेउ सो होइ बीज वृक्ष इव, एक दूजेहिं अनुगामी ।
उपर्युक्त दोउ खसी अवस्था, तौ आवइ बदनामी ॥३॥
कहेउँ सो भिन्नाभिन्न अवस्था, द्वैताद्वैत ववामी ।
परम उच्च यह स्थिति सीता, ज्ञान प्रेम नहिं खामी ॥ ॥
निज बल माया दलदल ते जिव, निकल न जतन तमामी ।
निज करुणा द्रवि जीव बनावैं, सीताराम नमामी ॥५॥

[१६]

ब्रह्म मुहूर्त कूँकिये घड़िया।

साधन कूँक देउ ऐसा हो, आठ पहर नहिं खड़िया ॥१॥
श्वास नाम मन ध्यान कान ध्वनि, साधन की त्रै कड़िया।
गुथी रहैं यह एक एक तें, कबहुँ न टूटै लड़िया ॥२॥
कूँकन घड़ी धाम साधन तन, कहै भेद भड़भड़िया।
जो यहि चाल घड़ी निज कूँकै, नहीं काल भय पड़िया ॥३॥
हृदय जेब नित घड़ी चलै, लखियत टहलत लै छड़िया।
घड़ी चाल कोउ लखै पारखी, बैद पकरि चित नड़िया ॥४॥

[१७]

हाथ जोरे मैं उनके चरन पर परूँ।

मुझको हिरदय लगा लें तो मैं क्या करूँ ॥१॥
उनके सद्‌गुन सुभाव जो हिरदय धरूँ।
हिरदय आसन जमा लें, तो मैं क्या करूँ ॥२॥
हिरदय दासोऽहम उनको जो मैं अनुचरूँ।
मुझको सोऽहम घटा लें, तो मैं क्या करूँ ॥३॥
शुद्ध भक्ती ही का उनके मैं दम भरूँ।
ज्ञान स्वर वह मिला लें, तो मैं क्या करूँ ॥४॥
उनकी लीला सगुन का मैं वर्नन करूँ।
अर्थ निर्गुन निकालें, तो मैं क्या करूँ ॥५॥
उनकी साकार दर्शन लिए मैं मरूँ।
रूप मेरा बना लें, तो मैं क्या करूँ ॥६॥

[१८]

मैं तम तुम प्रकाश रघुराई।

मोर स्थिती सिद्ध अविद्या, विद्या रूप गोसाँई ॥१॥
मैं माया वश, तहँ तुम्हार, माया प्रेरक प्रभुताई।
मैं नित चल संसृति प्रवाह, प्रभु नित्य अचल श्रुति गाई ॥२॥
भव सागर डूबत मोहिं नौका, तव पद एक लखाई।
मानस रोगी मोहिं मूरि तव, भक्ति संत बतलाई ॥३॥
मोर तुम्हार विरुद्ध अवस्था, दोउ सँग नहिं रहि पाई।
करत प्रेम मोहिं विवश मिलउँ तोहिं, निज अस्तित्व मिटाई ॥४॥

जस जस मैं नगिचाउँ तुर्महि, मम जिव स्वभाव विनसाई।
अपनावन नगिचावन मोहिं नर, तुमहूँ रूप बनाई ॥५॥
राम चन्द्र राका निवसत निशि, जीव होत सुखदाई।
प्रिथक प्रखर रवि कुहू निशा जस कबहूँ नहिं बनि पाई ॥६॥

[१९]

चलि चढ़ि साकेत सुरति अपनी।
जहँ बसत सदा आनन्द लदा, जग जीव प्रकाशक राम धनी ॥१॥
गुन लखन सुनन ते जगत भास, नित लेत श्वास बन जिव जिवनी।
सम्बन्धितइन्द्रिन अवलम्बित, चढ़ि बिषय सुरति बनि चली घनी ॥२॥
नयनन त्राटक हट जग नाटक, लय नाद अनाहत जगत ध्वनी।
प्रति श्वासध्यान नित नाम बास, गति जाव आव "रा" "म" कहनी ॥३॥
लखि सुनि न पास भा जगत नास, चढ़ि नाम श्वास अहमति खपनी।
जग जीव नास चेतन सो भास, जाके प्रकास जग जिव रहनी ॥४॥
सब क्लेश नाश आनन्द बास, नित रह प्रकास बिनु रवि रजनी।
चढ़ि सुरति धाम सँग राम नाम, लख नाम राम निज सिय सजनी ॥५॥

[२०]

दृग लख निज पद राम लीन मन।
परमोत्कृष्ट साधना सिय, हिय राम मिलत निर्वाह जगत तन ॥१॥
वृत्ति सकल अतिशय निवृत्ति, रहि कोइ न कृत्ति योगी समाधि बन।
कठिन ताहु एक सँग निबाहु, जग कर्म बाहु मन राम ठाहुँ जन ॥२॥
यह साधना राज्य काँधना, जनक बाँधना मन रघुबर सन।
हाव भाव यह नटिनी नाचन, मन लगाव नित सिर घट राखन ॥३॥
सँग इन्द्रिन रँग रामाराधन, यह मन केर प्रत्यक्ष विभाजन।
प्रथम कहिय मन अपर सुरति जन, बाह्य जगत अन्तर मुख साजन ॥४॥
परा भक्ति यह सफल युक्ति जीव तो मुक्ति चेतन जड़ ग्रन्थन।
गौण बहिर्मुख मुख्य अंतर रुख, लह अमृत सुख यह पद मन्थन ॥५॥

□ □

॥ राम ॥

श्री रामचरितमानस पदावली

लंका काण्ड

(भाव प्रकरण)

॥ राम ॥

[१]

शरणम श्री रघुनन्दन चरने ।

अक्षय परमोत्कृष्ट जीव गति, संसृति भव भय हरने ॥१॥
नवका एक मात्र भव सागर, सब प्रकार जिव तरने ।
नमत जिन्हिं शिर होत जीव वश, राम स्ववश आचरने ॥२॥
काल धनुष रघुनाथ हाथ नित, चलत बान बहु बरने ।
लव निमेष दण्ड रैन दिन, वर्ष कल्प को बरने ॥३॥
एक मात्र स्थान त्रान-प्रद, काल बान नहिं डरने ।
जीव मात्र आचार्य लखन, सोइउ जिव निर्भय करने ॥४॥
दया धाम ज्योति काम तम, हरन सकल आवरने ।
सिय सरबस्व रमन शंकर मन, निजानन्द नित धरने ॥५॥

[२]

शैल सुवेल शृङ्ग सम पाई ।

किसलय सुमन सँवारि ताहि, लछिमन मृग चर्म बिछाई ॥१॥
शीश कपीश उछंग वाम धनु, दहिन निषंग सुहाई ।
अंगद हनूमान पग चापत, शयन करत रघुराई ॥२॥
कान विभीषन देत मंत्रणा, पीछे कछुक हटाई ।
बैठे लखन सजग बीरासन, कर शर चाप चढ़ाई ॥३॥
उदित मयंक लखत मेचकता, रघुबर प्रश्न उठाई ।
कह सुकंठ भुइँ छाँह विभीषन, पद आघात बताई ॥४॥
रति हत छबि छीनी अंगद कह, राम बसेउ बिष भाई ।
कह हिनुमान दास शशि हिय तव, मूरति श्याम बसाई ॥५॥
मधुर विलास हास राम छवि, लंका करत चढ़ाई ।
हृदय बसत मद काम कोह गम, तम तमारि सुलभाई ॥६॥

[३]

मोहि सुनि पुनि पुनि अचरज आयो ।

बैठे राम पृथक किमि कपि गन, सागर सेतु बँधायो ॥१॥

शत योजन मारीच बहायो, बिनु फर शर रघुरायो।
शिव धनु भन्जेउ एक आपु रिपु, चौदह सहस नसायो ॥२॥
एक बान बालि मारेउ, एकइ समुद्र खौलायो।
तेहि सब भ्रम मन संशय नाहीं, राम समर्थ सुहायो ॥३॥
राम समान प्रताप नाम बल, राम संत समुझायो।
राम प्रताप शिला जल तैरेउ, नामाक्षर चिपकायो ॥४॥

[४]

चिन्मय दिव्य राम के बान।
जानत भाव राम के मन को, जो लखनहुँ नहिं जान ॥१॥
ऊँचे नीचे टेंढ़ बेंड़ होइ, चलते परम सुजान।
रुकत करत कम अधिक वेग, पलटत अमोघ जग मान ॥२॥
एकइ बान सँवारि कर्म कइ, रहत परे पहिचान।
रघुबर चिदानन्द विग्रह सँग, प्रकटत रहत छिपान ॥३॥
हरि द्रोहिन कहँ परम काल सम, भक्तन दाता त्रान।
नाशक तम अज्ञान भान सम, शमन जीव अभिमान ॥४॥
जीव जयंत प्रेरि गति हरि पद, निर्भय देते दान।
हरि जन पोषि प्रकाश देत, हरि द्रोहिन हति निर्वान ॥५॥
एक होत अगनित होइ जाते, करते सृष्टि विधान।
अगनित ते पुनि होत एक, लौटत निषंग भगवान ॥६॥
विष्णु अंश कहँ राम बान धनु, दो भुज करत प्रदान।
मोहिं लखि परत राम विग्रह, अवयव धनु बान समान ॥७॥

[५]

सुनु पिय राम मनुज जनि जानइ।
पुरुष परेश परम कारन, हृदयेश आपनो मानइ ॥१॥
अपनेहूँ के आपन ते बिनु, जाने बैर न ठानइ।
सब उर पुर वासी अविनासी, सुखरासी श्रुति भानइ ॥२॥
शिव विरञ्चि हरि सेवत जेहि, गुन शारद शेर्ष बखानइ।
जोगी जानत परम तत्व सब, रिषि मुनि कहु भगवानइ ॥३॥
सोचउ तुम वंशज पुलस्ति मुनि, त्यागउ तम अभिमानइ।
भजउ राम जो प्रणत न अवगुन, कबहूँ उर महँ आनइ ॥४॥
पग परि पुनि पसारि अंचल, अहिवात देन कह दानइ।
रावन पिये महा मद मदिरा, किहेउ अनसुनो कानइ ॥५॥

[६]
अंगद सों बोले रघुराई ।
तुम बुधि बल गुन धाम जाहु, लंका मोरे हित भाई ॥१॥
बहुत बुझाइ कहउँ का तुम कहँ, परम चतुर मैं पाई ।
वही हमार काज जेहि रिपु कर, होवै परम हिताई ॥२॥
बुधि बल गुन के धाम कहत तस, अंगद राम बनाई ।
कहत सत्य संकल्प चतुर अति, दिहेउ परम चतुराई ॥३॥
रावन गर्व दलन वा को हित, कीन्हेउ सफल उपाई ।
जिन जिन बातन गर्व ताहि, तिन तिन ललकारि नसाई ॥४॥
भुजा बीस कैलास उठावन, जौ पद सकइ हटाई ।
परम अभीष्ट तासु सीता तजि, जाहि राम लौटाई ॥५॥
परम प्रतापी शत्रु गर्व हरि, निज उर गर्व न लाई ।
आदि अन्त यहि परम चतुरता, कहेउ प्रसंग गोसाँई ॥६॥

[७]
राका शशि प्रताप राम, मधि अंगद हिय नभ प्रगट भयेउ ।
बीस बाहु दससीस उठावन, निज पद जब ललकारि कहेउ ॥१॥
पवन पंग दंग बिधि हरि हर, जेहि कैलास उठाइ लयेउ ।
ताको कहत उठावन कपि पद, मद विश्वास कि बुद्धि गयेउ ॥२॥
बाजी बीर लगायेउ सीता, आज्ञा राम न जाहि लहेउ ।
अस विश्वास आस स्वामी की, हृदय दास कोऊ न गहेउ ॥३॥
कै विश्वास प्रताप राम की, मूरति अंगद प्रगट महेउ ।
कै जन-राम राम अन्तर संशय कहँ अंगद आजु दहेउ ॥४॥
होइ चकोर हरि भक्त लखइँ, एकटक निज ग्रीव मरोड़ सहेउ ।
शशि विश्वास अचल अंगद पन, स्त्रवत सुधा बुँद हौंहु चहेउ ॥५॥

[८]
लखु मन अंगद कर्म कहानी ।
स्वयं सिद्ध रघुराज काज निज, पठवन आदर मानी ॥१॥
जोखिम मानि न दसन दसानन, कृपा जानि धनुपानी ।
परम चतुरता चेत न निज महँ, राम देत पहिचानी ॥२॥
राम प्रताप सम्हारेउ निज उर, भेउ बल बुधि फुर खानी ।
वेद विशारद रावन बुधि रद, अज शारद कपि जानी ॥३॥
बल प्रचंड भुज दण्ड दिखायेउ, धरा अंड कुडुलानी ।
गिर दशकंधर मुकुट सु-सुन्दर, कपि दल अन्दर डानी ॥४॥

भुज बल गर्व हिया बढ़ि सर्व, सिया रावन ललचानी।
वह ललकारेउ वह यह हारेउ, निज पद भूमि छुड़ानी ॥५॥
पायक होत सुभायक लायक, जग नायक उर आनी।
आपु न लद दायित्व कर्म मद, इव अंगद जिव दानी ॥६॥

[९]

लंका नाम रूप प्रभुताई।
काण्ड होत अघटित घटना, विज्ञान जीव सुलझाई ॥१॥
राम प्रताप स्मरन भारी, शिलन नीर तैराई।
नाम दु अक्षर सहज प्रीति बनि, उन्हे सेमेन्ट जुटाई ॥२॥
राम प्रताप सुमिरि पद अंगद, रावन सभा अड़ाई।
नारान्तक कराल भाला नहिं, सीना त्वचा धँसाई ॥३॥
हनूमान सुमिरत प्रताप नहिं, रावन तनिक डराई।
लक्ष्मण मूर्छा समय कहइ, कालहुँ सक मारि मिटाई ॥४॥
राम प्रताप लखन कह मारन, मेघनाद बरिआई।
शंकर शत सहाय कीन्हे हूँ, पन नहिं मिथ्या जाई ॥५॥
जिन राक्षसन अहार भालु कपि, राम प्रताप बड़ाई।
अस्त्र शस्त्र बिन तिन कहँ मारहिं, रूप नृसिंह बनाई ॥६॥
जन प्रहलाद प्रताप नाम, नरसिंह एक प्रकटाई।
नाम रूप विज्ञान राम, नरसिंह कीश कटकाई ॥७॥

[१०]

जनु घन घोर छायो शिखर सुमेर जब, कोटि कोटि जातुधान चढ़ि लंक गढ़िगे।
तरुण प्रताप रवि राम के उदय हिय, कपि भालु अगनित कूदि गढ़ चढ़िगे ॥
बहु जातुधान कम भालु कपि आपु जान, गहि रिपु एक एक जनु तेहि मढ़िगे।
कूदहिं धरनि करि नीचे रिपु मरि मरि, राम पद निश्चर प्रताप राम पढ़िगे ॥

[११]

राम के प्रताप वायु प्रबल चले उड़ाइ, निश्चर बरूथ सब धैर्य हिय हरि कै।
लंक भयो कोलाहल बालक अरु नारि रोये, सुनि कहै रावन सुनाइ रोष भरि कै ॥

सब कुछ खाइ भोग करि कै प्रकार बहु, भागि आये रन ते न काज
मम करि कै।
सुनि कै लजाइ यूथपति पुनि चले रन, जीति अब लौटब कि अइहै
लाश मरि कै॥

[१२]

परिघ त्रिशूल चाल लै तलवार ढाल, मारत किहे विहाल भालु
बनरन को।
लखि कै कटत शीश भूलि बल जानकीश, भागि चले भालु कीश
छाँड़ि भूमि रनको॥
कहँ बीर हनुमान अंगदादि बलवान, नल नील हैं लुकान विपति
हरन को।
सुनि धाय हनुमान फेंकेऊ शिला महान रथ के नसान मेघनाद
गयो घरन को।

[१३]

कूदि लंक गढ़ आइ हतै जातुधान धाइ, अंगद अकेल पाइ चढ़ेउ खेल
करिकै।
दोउ बीर मारैं रिपु कटक सँहारैं, दससीस पै पँवारैं पद भटन
पकरिकै॥
बड़ बड़ सुभटन कूदि कूदि झपटन, राम पास पटकन प्रान तिन
हरि कै।
कटक भगायो रिपु महल ढहायो, शीश राम को नवायो बहु मोद
मन भरि कै॥

[१४]

रावन बिचारो अर्ध कटक सँहारो, भालु कपि बल भारो अब करन
कहा चही।
मेघनाद कहेउ सब आजु मैं सहेउ, आपु जो कछू चहेउ सो देखइहौं
मैं सही सही॥
भोर कपि घेरि लागे हारि जातुधान भागे, मेघनाद बढ़ि आगे लौटि
मारिये कही।
कान धनु तान लक्ष लक्ष छाँड़ बान, सब सर्प के समान छायो गगन
दिशा मही॥

[१५]

भागि चले कपि भालु डरि जनु आयो कालु, घिरि विशिषन जालु
हृदय विकल भे ।
लखन विलोकि हाल धरि राम पद भाल, रंग हिम कछु लाल
रूपवान भल भे ॥
रिपु के समीप आइ मारें बान धाइ धाइ, दल बिचलाइ सामने
सबेग खल भे ।
रिपु प्रति शर काटि शीश काटि महि पाटि, जूथपति छाँटि छाँटि
लखन सबल भे ॥

[१६]

संग्राम भूमि लख लखन लाल ।
हिम वर्ण अरुणिमा रही छाइ, कोउ सुघर न तिन रघुबर बिहाइ ।
रन चले शीश रघुपति नवाइ, बल रखे धरोहर जनु उठाइ ॥
रज राम चरन जय भूति भाल ॥१॥
धनु बान हाथ तूणीर कमर, चले वायु वेग जहँ घोर समर ।
मकरन्द समर अति लुब्ध भ्रमर, जग प्रलयंकर रहि आपु अमर ॥
राक्षसन हेतु बनि चलेउ काल ॥२॥
निश्चरन कर्म ते रोष पाइ, दुख सीता से मन वेग लाइ ।
बढ़ते रावन सुत लड़न धाइ, साहस जस अहि मण्डूक खाइ ॥
अरि राम सँहारन हित निहाल ॥३॥
ललकारेउ मारु न कीश भालु, लड़ु मोते आयेउँ तोर कालु ।
तेहि बरसेउ भीषन बान जालु, तिन्ह लखन निमिष महँ काटि डालु ॥
लखि मेघनाद उर भयेउ साल ॥४॥
जब शक्ति चलावै मेघनाद, लौटावहिं तेहि निज शरन लाद ।
सुर वृन्द करहिं अहलाद नाद, शौरज लक्ष्मण लग चार चाँद ॥
लख इन्द्रजीत निज काल गाल ॥५॥

[१७]

मेघनाद बाढ़ेउ बिकलाई ।
जब देखेउ निज अस्त्र शस्त्र सब लछिमन विफल बनाई ॥१॥
काटि निवारि बान रिपु लछिमन, जब निज विशिख चलाई ।
सारथि हय हति रथ ढहाइ, रिपु रक्त वाहि बहलाई ॥२॥

भयो प्रान भय मेघनाद जब, शक्ति प्रयोग सो लाई।
जेहि विधि देते मेघनाद तेहि, वार अमोघ बताई ॥३॥
विधि हरि हर कर रखन मान, जेहि ज्ञान सिखेउ रघुराई।
सो लक्ष्मण तेहि शक्ति लगत महि, मूर्छित परे भ्रमाई ॥४॥
मर्यादा रघुनाथं रखन नहि हारन कबहुँ लड़ाई।
स्वयं शिकार अमोघ शक्ति बनि, किहेउँ सफल सेवकाई ॥५॥

[१८]

मूर्छित लखनहिं राम बिलोकत।
धीर धुरन्धर धीरज टिकि नहिं, शोक प्रवाह नयन जल रोकत ॥१॥
भायप भक्ति शक्ति सेवकाई, सोचत सर सम हिरदय भोंकत।
आनँद सिन्धु रूप व्याकुलता, भयेउ उसास छनहि छन धौंकत ॥२॥
बार बार चेतना निहारत, बन्धु विलोचन मुख अवलोकत।
अतिशय प्रिय सिय नगर अयोध्या, निज स्वरूप चित राम छिपेउकत ।३।
प्रेम पूर्ण निर्भरता लछिमन वायू विरह अग्नि महँ झोंकत।
आशा जिअन झोन बूँद जल, मीन राम प्रान टुक टोकत ॥४॥

[१९]

हनुमत देखि बिकल रघुराई।
कहै विषाद नाथ त्यागिय, आज्ञा दीजिय हर्षाई ॥१॥
लखन लाल जौ निकट काल, तौ हूँ बहु लखउँ उपाई।
भावै सो भाषिये नाथ, जन करत बिलम्ब न लाई ॥२॥
बिबुध बैद कहँ आनउँ तुरतहिं, औषधि लावउँ धाई।
जग पाताल स्वर्ग जहँ कहुँ कोउ, औषधि पता बताई ॥३॥
छीनि इन्द्र चन्द्रहिं निचोड़ि, अहिराज जोंति बरिआई।
आनि सकउँ अमृत लक्ष्मण हित, बल तुम्हारि प्रभुताई ॥४॥
विधि से भाल अंक मिटवावउँ, शिव देउँ अमर कहाई।
लौटावउँ घननाद काल सोइ, करउँ नाथ जो भाई ॥५॥

[२०]

तुम हनुमान आन नहिं मोरे।
लक्ष्मण सम तुम प्रिय तब जोखिम, मम मन सहै न भोरे ॥१॥
जाम्बवान कह बस सुषेन, लंका लोचन के कोरे।
वैद्यराज अति निपुन स्वस्थ कर, लखन समय अति थोरे ॥२॥

भवन सहित तेहि हनुमत लायेउ, देखि कहइ कर जोरे।
जिअहिं लखन सन्जीवनि लाये, हिम गिरि होत न भोरे ॥३॥
हनूमान कह सुनहु राम, निश्चय करिहउँ बल तोरे।
चलेहु गगन पथ लज्जित करि गति, गरुड़ पवन दोउ जोरे ॥४॥
औधधि चीन्हि न लिय उपारि गिरि, धरि चल हाथ कठोरे।
मनहुँ धरनिधर मूर्छित बोझा, धारेउ करन कटोरे ॥५॥

[२१]

निकट अवधपुर पहुँचे आइ।
तनु विशाल गिरि तरु अनेक, तेहि वेग प्रचण्ड हहाइ ॥१॥
निशा घोर पौरुष प्रचण्ड कोउ, अति उद्दंड लखाइ।
महाकाय नभ जाय दखिन दिशि, निश्चर ही ठहराइ ॥२॥
बिनु फर शर धरि धनुष तानि, लगि कान बिलम्ब न लाइ।
मारेउ भरत लगत गिर गिरिधर, मनहुँ गुडी बिनु बाइ ॥३॥
राम राम रघुनायक कहते, अशरन शरन सहाइ।
सुनत भरत जानत कोउ हरि जन, निकट पहुँचिगे धाइ ॥४॥
जागत नहिं बहु भाँति जगाये, अगनित किये उपाइ।
जागेउ कहे तात जगु जौ मोहिं, सानुकूल रघुराइ ॥५॥
राम भगत अति प्रेम भरत लिय, हिरदय निज लिपटाइ।
राम मिलन अनुभवेउ दोउ सुख, भ्रम सम राम मिलाइ ॥६॥

[२२]

लागते कपि सायक छतिया।
ढक्कन हटे चेतना छलकेउ, अन्तःकरण सु-बतिया ॥१॥
राम नाम जप नित्य विराजत, हनूमान की मतिया।
सोवत जागत निशि बासर नहिं, कबहूँ टूटत तँतिया ॥२॥
अनायास मुख ते निकलेउ, श्री राम राम रघुपतिया।
यह पीड़ा ते नहीं कहेउ, प्रकटेउ उन हिय की गतिया ॥३॥
जापक अस उत्कृष्ट अवस्था, भरत डरत तेहि हतिया।
हारि उपाय सजीवन प्यायेउ, राम चरन निज रतिया ॥४॥
होत स्वस्थ हनुमान लगायेउ, भरत हृदय यहि भँतिया।
मनहुँ जियेउ पति तेहि सँग पतिनी, होन चहति जब सतिया ॥५॥

[२३]
पूँछेउ भरत खबरि रघुराई ।
शोकाकुल हनुमान सकल, संक्षेप हवाल बताई ॥१॥
रघुनायक कछु काज न आयेउँ, प्रथम भरत बिलपाई ।
अवसर करि बिचार पुनि तुरतहिं, बोले धनुष चढ़ाई ॥२॥
शैल समेत चढ़इ मम सायक, तात विलम्ब न लाई ।
पहुँचावउँ तोहिं तुरत तहाँ जहँ, लखन बीच कटकाई ॥३॥
हनूमान कह यहँ लगि आयेउँ, राम प्रताप बड़ाई ।
तव महिमा बढ़ि चढ़ि जइहउँ मैं, यहँ ते वेग बढ़ाई ॥४॥
जाकी कृपा पंगु गिरि लङ्घै, बदलि काल गति जाई ।
ताके जन अशीष बल पल महँ, गिरि लै जाउँ उड़ाई ॥५॥

[२४]
बहु बिधि समुझत भरत बड़ाई ।
भरत प्रताप प्रबल स्वाभाविक, हनुमत चलेउ उड़ाई ॥१॥
लंक जलावत इन्द्रजीत शर, रावन छुइ नहिं पाई ।
तासों अधिक वेग मम बोधेउ, भरत ध्यान रत भाई ॥२॥
अस्त्र शस्त्र सबसे अभेद्य मैं, जहँ लगि श्रुति कह गाई ।
बिनु फर शर एक लगे गिरेउँ, चेतनता सब विसराई ॥३॥
चढ़ि मम सायक सपदि जाहु अस, बात न राम चलाई ।
लादे गिरिहिं तुरत पहुँचावन, शर कह भरत दृढ़ाई ॥४॥
विमल बुद्धि जौ होइ राम तौ, भव से पार लगाई ।
मोहिं लखि परत भरत दै सक गति, मति पषान कठिनाई ॥५॥
मोहिं जिअन हित, निज जीवन बित, भरत सुदावँ लगाई ।
भरत शील की रीति प्रीति पद, राम न अन्य लखाई ॥६॥

[२५]
रोवैं राम अर्ध गये रतिया ।
बिलपहिं कुहकहिं अगनित गुन कहि, लखन लगाये छतिया ॥१॥
बटुरि बिषाद विश्व व्यापेउ, बिश्वम्भर की जनु मतिया ।
निज आनन्द समुद्र लुटायेउ, जगत जीव जत जतिया ॥२॥
सेवा भक्ति भरोसा भायप, होन चहत जग हतिया ।
होइ सजीव ये बसे लखन महँ, बिकसित होइ बहु भँतिया ॥३॥

जाहिं भालु कपि निज निज गृह, मैं जइहउँ बन्धु सँगतिया।
भरि आवै छतिया जब सोचउँ, प्रणत बिभीषण गतिया ॥४॥
धीर धुरन्धर तजे धीर का, भालु कपिन औंकतिया।
करुण समुद्र तरंग तरुण बहु, ढंग कटक रोवतिया ॥५॥
हनूमान कुम्भज पहुँचे किय, औषधि बैद जुगतिया।
उठि बैठे लक्ष्मण लायेउ उर, राम नसान बिपतिया ॥६॥

[२६]

पूँछइँ हाल निहाल निहारी।
लखन कहइँ है चीरा मम तनु, पीरा अवध बिहारी ॥१॥
मैं तनु मन बुधि चित्त प्रकृति जड़, चेतन मोर खरारी।
जड़ को पीड़ा होइ कहहु कस, सो चेतन सक धारी ॥२॥
मम मन मधुप मध्य जग सर, पद राम पद्म अरुणारी।
सेवा हेत द्वैत नित जागउँ, जिव की बृत्ति बिसारी ॥३॥
अस स्वामी नहिं सुनेउँ लेइ, दुख सेवक बोझ सम्हारी।
एक सुस्वामि राम दुख जन बन, बाहन होत दुखारी ॥४॥
राम सुभाव बखानि लखन अस, संजीवनि संचारी।
विष विषाद ते मरे भालु कपि, अमर भये सुख भारी ॥५॥

[२७]

को बिनु राम रखै रुचि मन की।
कुम्भकर्ण हूँ की रुचि राखी, करि विचार नहिं तन की ॥१॥
पीछे लाइ कटक कपि आगे, राम अकेल गमन की।
जेहि भरि नयन निशाचर निरखइ, शोभा आनँदघन की ॥२॥
रिपु सम सुमिरत राम निशाचर, मुक्ती सबन लहन की।
कुम्भ कर्ण रामहिं प्रवेश किय, ध्यान करत आनन की ॥३॥
चातक शबरि सुतीक्षन प्यासे, स्वाति बूँद दरसन की।
तजि समुद्र सुख राम स्वाति घन, गवन कीन कानन की ॥४॥
मोहिं कंगाल कृपाल आस नहिं, कृषि अपने साधन की।
ऊसर मन जल नेह बरसि करु, सुलभ दरस निज अन की ॥५॥

[२८]

बन्धु मरे बहु रावन रोवत।
पावत नहिं आसरो दूसरो, कुंभकर्ण बलराशिहिं खोवत ॥१॥

तेहि अवसर घननाद भरोसा, दीन कहत बल रहेउ जो गोवत ।
भयो सान्त्वना राक्षसपति कहँ, तब भय गये भयो निशि सोवत ॥२॥
भोर भये बनरन घेरेउ गढ़, फेंकत शिला कोउ पुनि ढोवत ।
रथ चढ़ि गढ़ ते चलेउ इन्द्रजित, प्रतिद्वन्दी गोहरावत टोवत ॥३॥
हनूमान प्रलयंकर प्रगटे, अन्तर्धान भयो शठ होवत ।
नाग पाश बाँधेउ सब कहँ बिनु जाम्बवान कोउ मुक्त न जोवत ॥४॥
इन्द्रजीत तब प्रकटेउ पय सुख, पियन दुहन जयश्री गउ नोवत ।
पटकेउ फेंकेउ जाम्बवान जहँ, रावन बैठि विजय मन पोवत ॥५॥

[२९]

पितहिं देखि घननाद लजाई ।
गिरि कन्दरा गयेउ मख कारन, जेहि कोउ जोति न पाई ॥१॥
धूम देखि मख सोचि विभीषन, कहेउ राम समुझाई ।
मेघनाद मख ध्वंस कराइअ, नहिं तौ जोति न जाई ॥२॥
राम कहेउ तुम लखन जाहु, मारहु बल बुद्धि उपाई ।
अंगद हनूमान जाहिं सँग, द्विविद नील नल भाई ॥३॥
राम कहेउ सुर अति सभीत लखि, हमहुँ होत विकलाई ।
लखन कहेउ मारिहउँ इन्द्रजित, आजुहि आप दोहाई ॥४॥
पहुँचि कीन विध्वंस कपिन मख, बहु विधि भई लड़ाई ।
प्रगटै होइ अदृश्य कबहूँ रिपु, भागै मारै धाई ॥५॥
देखि अजय रिपु डरे कीश, लछिमन सुमिरेउ रघुराई ।
मारेउ बान मरत रिपु कह कहँ, राम लखन सुर साँई ॥६॥

[३०]

बरसहिं सुमन देव समुदाई ।
हर्षित परम प्रफुल्लित हारेहिं, विजय राम लौटाई ॥१॥
देव वधूटि विविध विधि नाचहिं, राम लखन गुन गाई ।
जयति सुमित्रा नन्दन लछिमन, प्रणतपाल रघुराई ॥२॥
लछिमन आइ राम पद पंकज, होइ कृतज्ञ शिर नाई ।
पूँछत कहेउ हाल हनुमत, बहु करते लखन बड़ाई ॥३॥
मेघनाद मृत्यु राम सुनि, खड़े भयेउ हर्षाई ।
अति कृतज्ञ रघुनाथ हाथ गहि, ललकि लखन उर लाई ॥४॥
गगन निसान प्रचण्ड भूमि ध्वनि, जय कहि कपिन मचाई ।
मन्दोदरि रावन विदीर्ण हिय, हर्षित सिय सुनि पाई ॥५॥

[३१]

रावन चमू चलो सजि धजि कै ।
अगनित हय गय रथ सवार ध्वनि, तुमुल बाजने बजि कै ।।१।।
बहुत निशाचर बीर सँघारे गये, न तेहि सुधि लजि कै।
जोधा जग विख्यात संग रावन, रन भय सब तजि कै ।।२।।
हौं मारिहउँ भूप सुत दोऊ, रावन कहेउ तरजि कै ।
सँहारहु कपि दल सुनि धाये, बहु कपि बीर गरजि कै ।।३।।
हनूमान अंगद रन मारहिं, जोधा कोउ न बरजि कै ।
मरे निशाचर धूह देखिये, भूमि जहाँ तहँ गँजि कै ।।४।।
बानर कहैं लेहु फल किय भल, नहीं राम सिय भजि कै ।
बानर बल सहि सकि न निशाचर, प्रान बचावहि भजि कै ।।५।।

[३२]

लखु लखन लड़नि अंजनीलाल ।
मुठिकनि हनि निश्चर बीस तीस, तिन्ह तुरतहिं डारत चरन पीस ।
कहुँ निश्चर भटन उपारि शीस, रावन मारत कहि जानकीस ।।
सन्मुख जो आव यह होइ हाल ।।१।।
कोउ पद प्रहार दे भूमि गाड़, लाँगूल फेंक कोउ सिन्धु खाड़ ।
पद पकरि कोउ फेंकत पहाड़, नख उदर हृदय कोउ देत फाड़ ।।
कपि के स्वरूप जनु महा काल ।।२।।
कोउ पकड़ि हाथ से मसलि देत, तेहि तुरत मिलावत सात रेत ।
मुष्टिक प्रहार भट गिर अचेत, रावन सशंक नायक समेत ।।
हनुमान कोप नहिं रक्षपाल ।।३।।
लुकि तूरत शक्ति त्रिशूल बान, हनि एक चपेट लै लेत प्रान ।
भागेउ रिपु कहूँ न लहहिं त्रान, जै हनूमान सुर करहिं गान ।।
ललकारत भट कपि ठोंकि ताल ।।४।।
कहुँ फेंकत शैलन शृङ्ग तूरि, कहुँ कूदि रथन पर स्लिव धूरि ।
सोइ मरन जान जेहिं लखहिं घूरि, कपि गरजि प्रशंसत राम भूरि ।।
भेउ रावन सेना सह विहाल ।।५।।

[३३]

रावन कोपेउ लखि सैन्य हाल ।
मन करि गलानि दस धनुष तानि, उर कोप आनि कपि किय बिहाल ।।१।।

विषय भूमि रथ तन इन्द्रिय हय, मन लगाम बुधि धारी।
सो सारथी रथी आतमा, सारथि पर अधिकारी ॥५॥
तन मन बुधि अस रथारूढ़ जिव, जीतै जग रिपु रारी।
जगत स्वर्ग अपवर्ग विजय, उपदेशेउ यह त्रिशिरारी ॥६॥

[३६]

सुरपति बिनु रथ राम निहारी।
निज रथ भेजेउ चढ़े राम रथ, कपि दल भयेउ सुखारी ॥१॥
रोदा धनुष चढ़ाइ राम, लगि कान खींचि टँकारी।
भये बिकल सुनि धीरज धरि पुनि, धाये खल बल-धारी ॥२॥
बरसैं बान लगे रघुनन्दन, मघा वृष्टि जनु भारी।
निशचर कटक कटत दसकन्धर, सन्मुख आई प्रचारी ॥३॥
बरसि बान रघुपति रथ तोपेउ, जनु घन प्रलय तमारी।
हाहाकार सुनत सुर रघुपति, छन महँ काटि निवारी ॥४॥
तब रावन रथ राम हयन हिय, चारि शूल तकि मारी।
हय उठाय राम रावन शिर, भुजन कटि महि डारी ॥५॥
कटे बाहु शिर पुनि उपजे भे, सुर मुनि विस्मय कारी।
पुनि पुनि रावन भुज शिर काटत, अति कौतुका खरारी ॥६॥

[३७]

संग्राम राम तव कोप धार।
रावन हारत शत शर झरत, मातलि होइ आरत प्रभु पुकार ॥१॥
शारँग टँकोर अरि बधिर शोर, रावन न थोर भय जोर वार।
कब शर निकार तेहि धनुष धार, कर वार न लखि अरि दल सँभार ॥२॥
एक बान होत शत सोउ बढ़त, उर चोरत हत कर कटक पार।
अस तेज चौंध रिपु मुड़त औंध, शर मति न सौंध निज ओर डार ॥३॥
चिक्करत बीर सहि सक न पीर, कोउ धर न धीर रघुबीर मार।
रावन जु लेत धनु रथ समेत, तेहि काटि देत प्रभु बार बार ॥४॥
धनु रथ विहीन रावन अधीन, लखि प्रभु प्रवीन कह घर सिधार।
करि नवल साज कल रन विराज, कह मन न आज चह कर प्रहार ॥५॥
सक कोप राम आरोप दया, नहिं कबहुँ लोप हिय नितागार।
नभ देव चकित रस भक्त छकित, शिव लखि पुलकित लीला उदार ॥६॥

[३८]

धनु मनु राम बानु प्रभुताई ।
जन रक्षक रन रिपुगन भक्षक, मन लक्षक रघुराई ॥१॥
राम नाम सम धाम अग्नि रवि, चन्द्र काम दिखलाई ।
जलनिधि जार उबार दरस विधि, खल बधि सिधि सितलाई ॥२॥
दहि सुबाहु प्रभु यश लखाहु, उर दाहु नसाहु सुनाई ।
गोध सान्त्वना सोध ताल कइ, बींध हर्ष कपि दाई ॥३॥
नसत एकदम माया घन तम, चमचम बान लखाई ।
जित माया इक बान नसाया, धनु रघुरामा धाई ॥४॥
इन कर रोक न सक कोइ टोक, अमोघ त्रिलोक कहाई ।
हरि भावत ये काम बनावत, पुनि आवत लौटाई ॥५॥
इन्ह कर ज्ञान अचूक मान, हनुमान विभीषन ताँई ।
धीमातुर सिध टेढ़े चातुर, चल उर राम जनाई ॥६॥
राम संग प्रकटत छिपात, यहि ढंग अंग सिधि भाई ।
इनहिं आन सँग राम ध्यान, चित अभय दान नित पाई ॥७॥

[३९]

सिय मन लह न सोच सर पार ।
सुनि रिपु भुज शिर कटे राम शर, जामहिं बारम्बार ॥१॥
त्रिजटा समझायेउ सुनु सीता, रावन तोहिं उर धार ।
तव डर बसत राम जेहि भीतर, जड़ चेतन संसार ॥२॥
हिय शर लागत मरइ शत्रु, जग राम डरत सँहार ।
कटत शीस भुज छुटै ध्यान तव, राम हृदय तब मार ॥३॥
कुछ सन्तोष भयो सीता, नहिं तदपि वियोग सँभार ।
फरकेउ वाम नयन भुज जानेउ, मिलिहइँ राम उदार ॥४॥

[४०]

लड़त रावनो राम लड़ावत ।
निफल करत रन कला राम सब, जोइ जोइ दुष्ट दिखावत ॥१॥
अन्धकार करि वृष्टि रक्त पवि, बहु निज रूप बनावत ।
हनूमान बहु लखन राम बनि, कपि एक एक डरावत ॥२॥
एकहि बान राम माया हरि, कपि दल सुख पहुँचावत ।
निज बल पौरुष धैर्य वीरता, देवन रिपुन लखावत ॥३॥

जस जस अंगद कहेउ रावनहिं, सो प्रभु सत्य करावत।
शिव पूजा कर तदपि अमित फल, रावन मिस दरसावत ॥४॥
देव देव-रिषि कहत मारिये वेगि, सिया दुख पावत।
रण क्रीड़ा बहु तदपि राम कर, तरें जीव जेहि गावत ॥५॥
भक्त विभीषन मारन रावन, शक्ति प्रचण्ड चलावत।
शरणागत वत्सल वक्षःस्थल, निज सहि भक्त बचावत ॥६॥
हारत लखि भागत सुर बानर, निज विश्वास नसावत।
परम असंभव संभव करि, तिन मन विश्वास दृढ़ावत ॥७॥
जोइ जोइ रथ चढ़ धनु लै रावन, प्रभु सोइ काटि गिरावत।
रावन लखि असहाय राम कह, वीर लड़उ कल आवत ॥८॥
राखे प्रान विभीषन रावन, मरन भेद बतलावत।
रावन नाभि पियूष राम सुनि, धनु शर तीख चढ़ावत ॥९॥
अहंकार रावन प्रतीक, न नसै बल और लगावत।
राम हतेउ तेहि सुर हर्षित, शिव आत्म सो राम समावत ॥१०॥
दसउ शीस दसशीस काटि दै, शिव भेउ अहं बढ़ावत।
करुणाकर शिर अहं काटि कर, निज भे ताहि मिलावत ॥११॥

[४१]

जन चित राखत अधिक जानकी।
करि अभिषेक विभीषन भेजेउ, राम लेत सुधि सीय प्रान की ॥१॥
जा कहँ खोजत फिरेउ बनहिं बन, सुधि लहि लंका कहँ पयान की।
रावन से संग्राम किहेउ जेहि, अगनित कपि गन प्रान दान की ॥२॥
निज वियोग दुख सुनेउ जियत जेहि, यहि छन पर निश्चय न आन की।
जाहि चेतावत बिनव देव रिषि, हित शिकार रिपु वेग बान की ॥३॥
ताहि मिलन रघुनाथ गँवावत, समय विभीषन पद प्रदान की।
राम कृपा विशेष तेहि कारण, यहि जेहिं बुधि पषान भान की ॥४॥
राम मिलन ते अधिक लालसा, राज्य विभीषन सुनन कान की।
पूर्ण प्रकाश विरद पिय निरखन, सिय रुचि राम रखन सुजान की ॥५॥

[४२]

सिय हिय अति लालसा दरस की।
राम विजय सुनि राज विभीषन, रहो न सीमा हृदय हरस की ॥१॥

सिया कुशलता हनूमान सुनि, पिया हिया सिय प्रेम करस को ।
सँग हनुमान विभीषन भेजेउ, लावन सिया स्वरूप तरस को ॥२॥
सिय मज्जन करवाइ अलंकृत, शिविका रुचिर चढ़ाइ सरस को ।
लै आये समीप रघुनायक, पद सरोज सिय चहइ परस को ॥३॥
राम हृदय सिय मिलन लालसा, यद्यपि तीव्र वियोग बरस की ।
प्रायश्चित कटु कहन लखन आदर्श ध्यान लालसा गरस को ॥४॥
सुनि कटु बच सिय दीन्ह परीक्षा, अग्नि प्रचण्ड न बाल झरस को ।
राम वाम अँग सिय लखि कूदत, कपि हर्षित सुर सुमन बरस को ॥५॥

[४३]

स्तुति करहिं देव मुनि झारी ।
निज हित सीता राम सहन दुख, बल दोउ ब्रह्म बिचारी ॥१॥
तन धन शत्रु विनष्टि सबन, मन रिपु संहार पुकारी ।
हमरे मारे कबहुँ मरहिं नहिं, त्राहि प्रणत हितकारी ॥२॥
युगल रूप माधुरी निरखि मन, मधुप विकार विसारी ।
लुब्ध भयो पद पद्म न अन्तर, दाहिन वाम चिह्नारी ॥३॥
महाराज दशरथ तहँ आये, सुत सुत-वधू निहारी ।
परे चरन नृप लिय उठाइ, सिय राम गोद बैठारी ॥४॥
मोह निवृत्ति कीन्ह राम हिय, ज्ञान भक्ति विस्तारी ।
करि प्रनाम राम चले दशरथ, राम भक्ति उर धारो ॥५॥

[४४]

करिअ पुनीत नाथ गृह जन को ।
सीता अनुज सहित पगु धारिअ, पुरइअ रुचि जन-मन को ॥१॥
मज्जन करिअ समर श्रम छीजै, करिअ सुसज्जित तन को ।
निरखहि पुर नर नारि मिटइ भव, बन्धन आव गवन को ॥२॥
भूषन बसन हेम मणि माणिक, बँटवाइअ कपि गन को ।
तब प्रभु सँग मैं चलउँ अवधपुर, राज छोड़ि लड़िकन को ॥३॥
कहेउ राम तव सत्य प्रेम तुम, सखा बिना कारन को ।
मोहैं कहत परत नाहीं बन, भरत दशा छन छन को ॥४॥
बीते अवधि न निरखि मोहिं दिन, एक न भरत सहन को ।
बीते अवधि न लखे प्रथम दिन, भरत न हमहुँ जिअन को ॥५॥
बार बार तोहि सखा निहोरउँ, करउ सुजतन मिलन को ।
प्रेम पयोधि भरत नैन दृग घन, राम वृष्टि सावन को ॥६॥

करेहु कल्प लगि राज सखा, सुमिरत माँहि, नहिं तन धन को ।
पुनि मोहि मिलिहउ आइ धाम मम, सर्वस सब सन्तन को ॥७॥

[४५]

सोह राम सिय पुष्पक यान ।
कनक सिंहासन दोउ विराजत, शोभा परे बखान ॥१॥
विश्व विमोहन मन दुख दोहन, मधुर मन्द मुसुकान ।
विश्व विजय सुर सिद्ध सृजय, आनन अनन्द अधिकान ॥२॥
राम दिखावत सिय जहँ लछिमन, लियेउ इन्द्रजित प्रान ।
पड़े भूमि रन रिपु योधा, मारे अंगद हनुमान ॥३॥
दिखलावत जहँ मारे रावन, कुम्भकर्ण बलवान ।
जहँ स्थापेउ रामेश्वर किय, दोउ प्रनाम धरि ध्यान ॥४॥
जय कोलाहल वृष्टि सुमन नभ, गावत सुजस सुजान ।
मिलत प्रमुख मुनि गंगा यहि तट, उतरेउ आइ विमान ॥५॥

[४६]

धरि निषाद पति बच सुचि सिय के ।
कहेउ गंग पूजिहउँ लौटि, सकुशल सँग देवर पिय के ॥१॥
रहेउ गंग तट करत प्रतीक्षा, गुनत मनोरथ जिय के ।
राम वियोग बहत निशि दिन जल, गयेउ ज्योति दृग हिय के ॥२॥
पूजन अकनि प्रशंसत सिय सुनि, बहु बिधि शान्तनु तिय के ।
देखि न, जानि पार वहि, माँगेउ, नाव नाव बहु लिय के ॥३॥
धाये राम भक्त वत्सल गउ, लखत बच्छ नव बिय के ।
उर लगाइ प्रेम पय प्यावत, नयनन थन द्रवि हिय के ॥४॥
गहि भुज भेंटत भाइ भरत सम, लहि जनु मरत अमिय के ।
राम गरीब निवाजन भाजन, दरसन मुख गुड़ घिय के ॥५॥

□ □

॥ राम ॥

श्री रामचरितमानस पदावली

लंका काण्ड

(सत्संग प्रकरण)

॥ राम ॥

[१]

ग्यान रूप रवि राम गगनवा ।

झलकेउ बोध रश्मि बेधि घन, अहमिति बुद्धि अँगनवा ॥१॥
अपनेहिं प्रखर प्रकाश कृपा किय, घन आवरन नगनवा ।
बोध प्रेम आनन्द मिले तिहुँ, बुधि हिय किहेउ मँगनवा ॥२॥
रितम्भरा की नाड़ि खोलि, पहिनायेउ बोध कँगनवा ।
एक राम जिय जानि आपनो, अविचल भई लगनवा ॥३॥
जीवित जीतै मरे न बीतै, हिय बासना जगनवा ।
मिथ्या जानि, ग्रन्थि मानि जड़, माया लखइ ठगनवा ॥४॥
हारे जीते रहै बासना, योग्य ताहि त्यागनबा ।
निज स्वरूप महँ केवल समता, रोकै तासु अवनवा ॥५॥
मिथ्या वस्तु व्यक्ति जग चिन्तन, निज आनन्द खँगनवा ।
तेहि तजि राम नित्य चिन्तन हिय, पिय रँग रहन रँगनवा ॥६॥

[२]

कबहूँ यह पन टरइ न टारी ।

स्वामी राम स्वामिनी सीता, नित सम्बन्ध हमारी ॥१॥
हृदय भूमि जिव अंगद रोपेउ, पद पन बल त्रिशिरारी ।
कोटिन झंझा वात जगत, घन नाद न सकइँ उपारी ॥२॥
रावन अहमिति बल उठाइ पद, पन जब चहइ पछारी ।
अहमिति परे बिलोकि मूल पद, पन तब बैठेउ हारी ॥३॥
उपजइ सृष्टि प्रलय नहिं बिनसइ, जस अनंत असुरारी ।
मैं हुँ विनष्टि प्रविष्टि राम, कोउ विलग न सकइ निहारी ॥४॥
विरति योग विज्ञान भक्ति सोइ, बिलसत होइ सुख भारी ।
रोपा पद अद्वैत त तनु, नित अद्वैत सम्हारी ॥५॥

[३]

राम बान बचिबे इक ठौर ।

लव निमेष युग कलप काल ये, जगत जीव इह कौर ॥१॥

कवनिहुँ छिनु ये तनिक न बिथकत, नित है इन्ह को दौर।
ब्रह्म लोक हूँ छार करहिं ये, तहूँ पहुँच इन्ह लौर ॥२॥
इन्ह से शेष वचेउ सोइ जानेउ बचइ इन्हहिं केहि तौर।
सोइ लछिमन सिधि किहेउ पदाम्बुज, भक्त वछल शिरमौर ॥३॥
सालत सब पालत शरणागत, पद रज कर जे खौर।
मन यहि आस बास चरणाम्बुज, हरि के करु बनि भौंर ॥४॥
नहिं विश्वास कहा तो सहा लखु, चरित जयन्तहि गौर।
बसहिं शीघ्र मन सीय राम पद, चरित जासु नित धौर ॥५॥
हरि के चरित सुनत या गावत, यह गति मुँह को कौर।
ताहि तजे त्यागिहुँ नहिं पावत, नित कराइ शिर क्षौर ॥६॥
त्यागु दृश्य लागु राम पद, देश काल भय औरै[1]।
मोह विषाद जहाँ नहिं पहुँचत, हरि पद अहमिशि चौर ॥७॥

(उपर्युक्त पद में निम्नलिखित दोहों का भाव है :—

लव निमेष परमानु जुग, बरष कलप सर चंड।
भजसि न मन तेहि राम कहँ, काल जासु कोदंड ॥
की तजि मान अनुज इव, प्रभु पद पंकज भृङ्ग।
होइ कि राम सरानल, खल कुल सहित पतंग ॥)

[४]

बन्दउँ भरत रघुबर बान।
दोउ सायक सुगति दायक, लक्ष्य निज पहिचान ॥१॥
राम शर सों शिर कटावत, लखि न साधन आन।
संत श्रुति पथ नहिं चलत जे, दीन कर हैरान ॥२॥
विप्र हरि जन धेनु पीड़त, भरे तनु अभिमान।
राम शर अवलम्ब केवल, लहि लहत निर्वान ॥३॥
भरत शर बिनु फर लगत उर, जेहि बसत भगवान।
राम निर्भरता लखा कर, भक्ति परा प्रदान ॥४॥
शर चढ़ा सक भेजि जीवहिं, निकट कृपानिधान।
भेज हरि ढिग जेहि चढ़ा तेहि, चढ़न होत न ज्ञान ॥५॥
राम शर निर्बान दायक, रावनादि प्रमान।
भरत शर हरि निकट भेजत, शैल सह हनुमान ॥६॥

---

१. औरै = ओर = अन्त।

काल हरि शर गति न जिव जेहि, प्राप्त हरि पद त्रान।
भरत शर पहुँचाव हरि पद, प्रबल तेहि अधिकान ॥७॥

[५]

शिव बर या पीयूष सही।
जेहि प्रभाव दशशीश शीश भुज, काटत पुनः लही ॥१॥
पूछत भरद्वाज याज्ञवल्कहि, आर्त ह्वै चरन गही।
जौ पीयूष नाभि किमि राख्यो, पायो कहाँ मही ॥२॥
सादर जपत शंभु निशि बासर, जिमि जिमि श्वास बही।
होइ अति सूक्ष्म नाभि केन्द्र पर, अमृत बटुरि रही ॥३॥
सकल कामना हीन राम जपु, सत्य पियूष वही।
सोइ हृद शिव संकल्प रखन भो, रावण नाभि मही ॥४॥
राम बिशिष विकराल अग्नि के, सोखत सुधा वही।
गन्ध स्पष्ट शब्द होइ निकलेउ, रावण राम कही ॥५॥
जौने युक्ति लहेउ शिव शिव-पद, सब कहँ सुलभ वही।
रामहुँ बान काल भय बाहर, पद जो राम गही ॥६॥
जिमि चन्दन कर गन्ध बिटप अनि, सँग बसि कछुक लही।
तिमि सुधांशु नाग पति शिव तनु, बसते सुधा चही ॥७॥

[६]

निज सुख सुधा नाभि जनु रावन।
काल राम धनु लव निमेष शर, शिर भुज कटे हानि कोउ घाव न ॥१॥
काटे बार बार पुनि जामत, जामन हेतु कटन जनु जावन।
जामत तुरत लगत उपमा लघु, जामुन त्रिन काटे रितु सावन ॥२॥
नाभि पियूष मिलेउ रावन कहँ, दसउ शीश निज ईश चढ़ावन।
अहमिति शिर जिव रामहिं सौंपइ, निज सुख लह जेहि डर न नसावन ॥३॥
रावन नाभि पियूषहुँ ते बड़, महिमा निज सुख नित्य सुहावन।
कटत बाहु शिर पीड़ा रावन, निज सुख छुइ दुख कबहूँ पाव न ॥४॥
तीनि काल तिहुँ लोक चारि जुग, चारि अवस्था एक रस भावन।
नित्य प्राप्त निज गुन आस्वादन, निज स्थिति लह परै न धावन ॥५॥

[७]

सुतन देन सिख स्वाँग बनाई ।
सीता निज प्रतिबिम्ब धरेउ जिव, लछिमन पता न पाई ॥१॥
प्रतिबिंब आत्मा सोई चिदात्मा, जेहि जिव हम हम गाई ।
सो प्रतिबिंब लगे विरहागिनि, अतिहि छीन होइ जाई ॥२॥
तब रघुनाथ प्रेम वश होइ, जिव लेवहिं निकट बुलाई ।
किन्तु नकल लखि शकल न ताकहिं, आदर देहिं भुलाई ॥३॥
जब प्रतिबिम्ब चिदात्म जलावइ, आत्मा शुद्ध दिखाई ।
जिमि श्रुति भाषै तब प्रभु राखै, निज हिय माँहि लगाई ॥४॥

[८]

राम नाम का जपे होत फल ।
जिन नहिं जपा मरम नहिं जाना, ताते ऐसा कहइँ अनर्गल ॥१॥
बृत्ति बहिर्मुख नाम जाप अभ्यास करत है ठाम मनस्थल ।
अनुभव करिये जपत नाम कबहूँ स्वप्नावस्था अति निश्चल ॥२॥
अर्ध चेतना लागत फेरन अभ्यासी लह माला जेहि पल ।
सिद्ध करत यह जपन इन्द्रियन, मन महँ शनै शनै कर निज थल ॥३॥
श्वास संग मन के स्थिर भे, नाम चेतना अहमिति महँ हल ।
निज पावन प्रभाव सोऽहं ते, राम नाम नासइ अहमिति मल ॥४॥
नामी नाम न भेद होत, जापक नामो अवश्य नाम बल ।
ब्रह्म राम अवतरत सकल गुन, जस जस अहमिति रामहिं महँ गल ॥५॥

[९]

राम भक्त तुलसी के प्रनवउँ चरनवा ।
राम की कहानी अति अद्भुत बखानी, ज्ञान भक्ति गुन खानी भव
सिंधु के तरनवा ॥१॥
जगत विराग मन नाम जप लाग, सिय राम अनुराग जिव
सहज वरनवा ।
काम कोह भाग माथ मिटि कर्म दाग, विज्ञान जोग जागे भक्ति
तिय आभरनवा ॥२॥
हृदय अकाश ज्ञान रवि के प्रकाश, तम भ्रम भय नाश सब
संशय हरनवा ।
मिटि गये त्रास आस जगत बिलास, बनि रामचन्द्र दास होइ
राम के सरनवा ॥३॥

भक्ति बेलि सरसत ज्ञान तरु बिलसत, राम रूप दरसत
बिनु आवरनवा।
फल न भजन चहि तोषन सजन राम, पूरत यजन यहि जन
के परनवा ।।४।।
राम भक्ति चह निर्बान चह लह, भाव सहित जो कह कृत्य
तुलसी करनवा।
राम रूप बोधक है तत्व ज्ञान सोधक, समस्त सम्बोधक
प्रशस्त उबरनवा ।।५।।

[१०]

श्वास साथे महल पिय चढ़ि चल।
जीना श्वास नाम द्वै अक्षर, पग धरि पहुँच निवास राम थल ।।१।।
भव प्रवाह बहु वृत्ति प्रबल जल, आये बहत जगत माया बल।
तिय चित चेति चलइ अब पिय पहँ, करइ न मग विश्राम एक पल ।।२।।
माया जनित न शत्रु बाघ डर, रुकइ न पियन मोह जग मृग जल।
अन्य पन्थ पाँव नहिं धारइ, गुरु मर्मज्ञ राह नाहीं टल ।।३।।
रामइ आदि मध्य अन्त तव, कन्त सुहृद सब रसन सार फल।
जीव वृत्ति की होइ इत्ति जब, राम रूप महँ निज स्वरूप गल ।।४।।
राम रँग भक्ती तरंग मन, चंग ऊँच निरखइ जग स्थल।
कहँ मैं तोर शोर द्वन्दु द्वै, एक राम राजत होइ अविचल ।।५।।

[११]

भगति वपु सीता देखि परै।
अहलादिनी शक्ति भक्ति सोइ, संशय कोउ न करै ।।१।।
जपइ निरन्तर नाम ध्यान उर, चित यश नित ठहरै।
अति आतुरता राम मिलन हित, नित जल नयन झरै ।।२।।
दोउ गुन सानुकूल रघुनन्दन, अतिशय प्रीति करै।
दोउ अनिवार्य निवारन माया, भव भव दुःख डरै ।।३।।
एकमात्र इन दोउ अवलम्बन, दर्शन राम सरै।
मिलैं न राम कोटिहूँ जन्मन, जिव तप ताप जरै ।।४।।
माया जिव अतिरिक्त राम, को चौथा जो न टरै।
कौशल्या अवलोक भक्ति सिय, भिन्न न राम चरै ।।५।।
सीतइ राम भक्ति गुरु जिव, जिव निज जब भक्ति भरै।
चतुर्नाम अनुभव वपु एक करि, नाभा कहेउ खरै ।।६।।

[१२]

देखेउँ स्वप्न स्वरूप भगतिया ।

भक्ति स्वभाव जीव जो प्रकटत, हटिगे चित से वृतिया ॥१॥
सहज प्रेम सम्बन्ध ब्रह्म जिव, सतत युक्त गति छतिया ।
इतर्नाहि अहमिति रहन जो राखइ, स्वामी सेवक मतिया ॥२॥
ब्रह्म जीव सम्बन्ध ब्याह कर, जग की विदा बरतिया ।
निज चेतना झीन होइ दिन दिन, प्रीतम पीन सुरतिया ॥३॥
पिय-स्पर्श दिव्य कर अतिशय, काम कोह मद हतिया ।
बाहर किहे आवरन माया, जीव ब्रह्म एक जतिया ॥४॥
सहजहिं होहि नाम स्मरण, रूप शील गुन पँतिया ।
स्थिति भक्ति परे माया पर, लय न ब्रह्म डटि दँतिया ॥५॥

[१३]

मना नित राम स्वरूप बसो ।

चिदानन्द सुषमा समुद्र नित, खानि नवीन रसो ॥१॥
ज्ञान सूर्य जातहिं समीप तम, भ्रम अज्ञान खसो ।
पाइ धूप विज्ञान बेलि बर, भक्ति ललित विकसो ॥२॥
अमर बेलि तेहि पत्र नाम हरि, सुमन सुभाव जसो ।
सुन्दरता सुगन्ध होवत जेहि, राम सुजान बसो ॥३॥
सुरति बेलि लहि रूप सहारा, राम तमाल लसो ।
मूल लहे अद्वैत शूल नहिं, भूल द्वैत बिनसो ॥४॥
पतझड़ निराकार तरु भे नहिं, भाव बेलि झरसो ।
रस सुस्पर्स नित्य अवलम्बन, चुम्बन तरु सरसो ॥५॥

[१४]

ताकत राम एक रुचि मन की ।

तेहि रुचि पूरन करन जीव की, करत न सुधि साधन की ॥१॥
माया मृग मारीच कौन बिधि, कुम्भ कर्ण किय रन की ।
तिन औगुन नहिं राम निहारेउ, फल दीन्हेउ जस जन की ॥२॥
हाथ मरन रघुनाथ बनेउ रुचि, महा अघी रावन की ।
नहिं हनुमत लछिमन मराय किय, निज शिकार बानन की ॥३॥
स्वयंप्रभा को खबरि जनायेउ, मिस प्यासे बनरन की ।
सूपनखा जनमाइ कूबरी, प्रभु तेहि भवन गमन की ॥४॥

तन मन वुधि चित परे अहम्मति, मेरे बल न मिलन की।
तुम समर्थ अर्थ पुरवहु, रखि, मरियादा निज पन की ॥५॥

[१५]

अनि विश्राम लखउँ न ठाउँ।
बुद्धि मन चित तट बिना, चहुँ दिशि समुद्र लखाउँ ॥१॥
वृत्ति बहुत तरंग जहँ, विश्राम एक सुनाउँ।
एक अक्षय बट बिराजत, सो तुम्हारहिं पाउँ ॥२॥
काउँ काउँ करत सो खोजत, फिरउँ लै तव नाउँ।
वृष्टि करुणा दृष्टि आवहु, उड़त थाह न पाउँ ॥३॥
निज कृपा तें प्राप्त केवल, लहेउँ संत जनाउँ।
होत शरणागत लखेउँ बट, राम बलि बलि जाउँ ॥४॥
अहं अक्षय बट पकरि पद, चढ़ि शिखर नगिचाउँ।
भयेउँ सीता राम निरखत, मोहिं चूमत चाउँ ॥५॥

[१६]

मन सिखु साधन सीता रीति।
अहं अंश आवश्यक जितना, पिया रिझावन प्रीति ॥१॥
सरि चेतन अद्वैत सिन्धु ढिग, रक्षा द्वैत सुभीति।
चिन्तन नित्य प्रेम निर्बाहन, निदरि कीट भृङ्ग नीति ॥२॥
पिय वियोग दुख सहन कठिन अति, मिलन तदपि परतीति।
पहरू नाम ध्यान पट जन्त्रित, नेत्र काल गति जीति ॥३॥
कहियत पृथक अपृथक स्थिती, माया सीमा बीति।
सिया साधना करत थापना, सहज ब्रह्म जिव मीति ॥४॥
राम प्रेम पग चलत जानकी, चाटइ मन मग सीति।
निज स्वरूप स्थापिय सिय, साधन पिय गावन गीति ॥५॥

[१७]

हृदय मञ्च राजत सिय राम।
अहं रहत बस सूक्ष्म चेतना, चितवन रूप ललाम ॥१॥
निरखत होत चेतना स्थिर, भूलत अपनो नाम।
मानहुँ नाम रूप राम सिय, प्रकटत, शुचि चित धाम ॥२॥
लहत अमित सुख रूप माधुरी, लखत मिटत जिव काम।
जगत बासना बीज भुनत पुनि, जमत न होत निकाम ॥३॥

अजहूँ अहं प्रकृति वश लेकिन, परे ताप त्रै धाम ।
लखन चेतना अहं शनै लय, होत रूप सिय राम ॥४॥

[१८]

मन सिय राम करइ विचार

राम पूरन ब्रह्म सीता, तासु शक्ति अपार ॥१॥
दोउ बिनु आकार लख, साकार कबहुँ उदार।
जगत जड़ चेतन सकल तिन्ह, दोउ रूप बिहार ॥२॥
राम आतम नित्य चेतन, सिय प्रकृति विस्तार।
राम एक स्वरूप, वीकृति प्रकृति गुन आगार ॥३॥
शक्ति शक्तिमान अन्तर, नहीं कोउ प्रकार।
सिय सुशुप्ति अभिन्न रामहिं, भिन्न जागृत बार ॥४॥
मुक्ति सिय मन बुद्धि चित लय, अहं रामाकार।
भक्ति सीता शक्ति सेवा, राम जग उपकार ॥५॥
राम सिय अस्तित्व केवल, जिव स्वरूप सम्हार।
हम हमार तुम्हार तू भ्रम, सिन्धु भव कर पार ॥६॥

[१९]

तउल मन बनिया, नित्य सार।

राम रूप राखइ इक पलड़ा, दूजे अहमिति भार ॥१॥
तीक्ष्ण विवेक तराजू लागे, राम अखर त्रै तार।
समता मूठि पकरि दृढ़ स्थिति, तौलइ वारम्बार ॥२॥
भक्ति हाथ ते अहं निकारइ, राम रूप दे डार।
अस साधन नित करत विमल मति, कबहुँ न मानै हार ॥३॥
ज्ञान हाथ से मूठी पकरइ, भक्ति से अहं निकार।
सिया कृपा ते पाइ तराजू, निर्मल रखइ सम्हार ॥४॥
परिणत होत राम रूप नित, अहमिति मिटइ पहार।
पलड़ा राम रूप भूमि लगि, उठि अहमिति भव पार ॥५॥

[२०]

सुनन दोष बड़ हरि विमुखन की।

इष्ट देव रुचि घटि उपजै, संशय अपने साधन की ॥१॥
हरि विमुखन गणना नहिं केवल, धन तिय प्रिय दुर्जन की।
अधिक भयंकर अनुमोदक, पूजक हरि गुरु नर तन की ॥२॥

जन्म जन्म की कठिन कमाई, नष्ट संग तिन छन की।
तिन वच विष अति भ्रष्ट करै मति जौ कहुँ कानन भनकी ॥३॥
परे ब्रह्म कहि सकैं सन्त, पड़ जेल बात कहि सन की।
निज बल बाहर जेल न तेहि कह, भय भगाव जम गन की ॥४॥
पारवती धारणा भक्ति, पातिव्रत प्रथम कहन की।
शिव प्रतिपाद्य ब्रह्म राम, अधिकारी एक भजन की ॥५॥

[२१]

कौतुक राम जाउँ बलिहारी।
तव संकल्प जीव उपजावै, पालै पुनि लय कारी ॥१॥
इच्छा राम राम अहलादिनि, दोउ सिय शक्ति खरारी।
शक्ति अभेद शक्तिमान तेहि, इक वेदान्त विचारी ॥२॥
प्रथम के अन्तर्गत माया, त्रिगुणात्मक विकट विकारी।
दूजो प्रेम स्वरूपा भक्ती, माया जीव निकारी ॥३॥
प्रकटइ नगर शीलनिधि माया, विश्वमोहनी नारी।
मोहइ नारद पुनि अदृश्य जब, माया राम निवारी ॥४॥
जो अकेल जाकी इच्छा बहु, रूप सृष्टि करि डारी।
ता कहँ लगइ पाप पुण्य नहिं, जब निज सृष्टि सँहारी ॥५॥
अपने यत्न मिटै नहिं माया, लड़त जीव कपि हारी।
सो माया बाली बिनसइ जब, राम कृपा शर मारी ॥६॥
रूपान्तरन होत निशचरन, बनि सब रामाकारी।
मूल राम रह काण्ड लंक, दाता विज्ञान पुकारी ॥७॥
जड़ जंगम जग जानि राम करु, भक्ति अनन्य सँवारी।
यहि प्रकार विज्ञान भक्ति प्रद, हरि तोषन सुखकारी ॥८॥